Series in Hindi on "My war against Blind faith" by Pankaj Oudhia.

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

वनस्पतियो पर विशेष रुचि होने के कारण इससे जुडे अन्ध-विश्वासो का अध्ययन कर फिर समाधान ढूढने मे मेरी रुचि रही है। कुछ समय पूर्व मै छत्तीसगढ राज्य के घटारानी क्षेत्र से गुजर रहा था। रास्ते मे कुछ पर्यटको की गाडियाँ जंगल के अन्दर देखकर मुझे संशय हुआ। मेरे ड्रायवर ने कहा कि हो सकता है खाना खाने वे अन्दर गये हो। मैने गाडी जंगल की ओर ले जाने को कहा। पास जाकर देखा तो बहुत से लोगो को तेन्दु के पेडो के ऊपर पाया। लगता था कि वे किसी चीज की तलाश कर रहे है। ध्यान से देखने पर पता चला कि वे आर्किड एकत्र कर रहे थे। वांडा प्रजाति के ये आर्किड तेन्दु जैसे पेडो पर ही उगते है। ये जमीन पर नही उगते। इनके फूल बहुत ही आकर्षक होते है और इनसे सुगन्ध भी आती है। मैने उनसे पूछा कि इस आर्किड को इतनी अधिक संख्या मे क्यो एकत्र कर रहे है? तो उनमे से एक ने जानकारी दी कि इसे तिजोरी मे रखने से धन मे बढोतरी होती है। उसकी बात काटते हुये दूसरे ने कहा कि चावल और हल्दी के साथ रखने से तो गरीब भी रातोरात अमीर हो सकता है। मैने पूछा, कहाँ से मिली यह जानकारी? तो उनका जवाब था कि एक तांत्रिक से। कोई प्रमाण कि ये असरकारक ही होगा? उनके पास जवाब नही था।

मैने उन्हे अपना परिचय दिया। कुछ लोगो ने मुझे पहचान लिया। मैने उनसे आर्किड लिया और फिर उसके बारे मे बताना आरम्भ किया। उन्हे एक पतली सी चाँदी के रंग की जड दिखायी जिससे पेड पर उगकर यह आस-पास के वातावरण से नमी खीच लेता है और इस तरह अपनी जल सम्बन्धी आवश्यकत्ता को पूरी करता है। जंगलो मे इसकी उपस्थिति वातावरण की शुद्धता का परिचायक है। जरा भी प्रदूषण फैला तो इनकी मृत्यु होने लगती है। इस पर नाना प्रकार के छोटे-बडे जीव आश्रित रहते है। इसे इसके प्राकृतिक आवास से अलग कर इसकी लाश तिजोरी मे रखने से धन मे बढोतरी होना कही से सम्भव नही है। विश्वास नही तो एक छोटा सा टुकडा ले जाकर आजमा लीजिये। पर इस टुकडे के लिये भी आपको कीमत चुकानी चाहिये। आप जितने ज्यादा लोगो को यह बता सके कि इस बात मे कोई दम नही है उतने ही प्रभावी ढंग से इसे जंगलो मे बचाया जा सकेगा। आज वनो का विनाश जारी है। पेडो को काटते वक्त उनके ऊपर उग रहे आर्किड की किसी को परवाह नही होती। अनुमति पेड काटने की मिलती है पर

अनुमति देने वाले को यह आभास नही रहता कि एक पेड की कटाई उस पर आश्रित असंख्य छोटे-बडे जीवो का विनाश है। मेरी बातो को सुनकर उन्हे अपनी इस हरकत पर पछतावा होता दिखा। उन्होने मुझे धन्यवाद दिया और मैने आगे की राह पकडी।

यह एक सामान्य घटना है और जंगलो से गुजरते हुये आप इसे अक्सर देखेंगे। आप आखिर कितने लोगो को इस तरह समझा पायेंगे? कुछ तो आपका माखौल उडा देंगे और कुछ आपको धमकाने से भी परहेज नही करेंगे। यह विडम्बना ही है कि आज हमारे अखबार अमेजान के जंगलो मे विलुप्त हो रही वनस्पतियो पर तो चिंता जताने वाले लेख प्रमुखता से प्रकाशित करते है पर आस-पास से खत्म की जा रही दुर्लभ वनस्पतियो की सुध तक नही लेते है।

फुटपाथ मे आपको ढेरो ऐसी किताबे मिल जायेंगी जो कपोल-कल्पित बातो से भरी पडी है। नाना प्रकार के चमत्कारो की बात उसमे लिखी रहती है और शार्टकट से सफलता पाने के चक्कर मे आम आदमी चमत्कारी जडी-बूटियो की तलाश मे आस-पास की वनस्पतियो के अस्तित्व पर संकट पैदा कर देता है। हम तो थोडी सी वनस्पति ले जा रहे है? भला इससे इतने विशाल जंगल को क्या फर्क पडेगा? ऐसे तर्क आमतौर पर सुनने को मिल जाते है। हम एक अरब से अधिक हो चुके है। जंगलो पर बढती मानव आबादी का प्रभाव स्पष्ट है। सभी थोडी मात्रा मे ही वनस्पतियो का विनाश करेंगे तो भी यह जंगल बहुत कम समय मे समाप्त हो जायेंगे। यह बात अब अच्छे से समझ लेनी होगी।

अन्ध-विश्वास और विश्वास के बीच पतली सी लकीर होती है। हमे अक्सर ही आम लोगो के विष बुझे तीरो का सामना करना पडता है। बहुत बार हमे नास्तिक मान लिया जाता है। धर्म विरोधी भी कहा जाता है। लोग हमारे घरो के सामने आम की पत्तियो का तोरण देखकर प्रश्न करते है कि ये आपने क्यो लगाया? क्या यह अन्ध-विश्वास नही है? हम उन्हे जब यह कहते है कि यह तो निज आस्था है। हम निज आस्था के खिलाफ नही है पर यदि कोई इस आस्था से लाभ उठाकर भयादोहन करे और लोगो को ठगे तो यह गलत है, तो लोग इससे सहमत नही होते और बिना किसी देर के हमारी समिति के प्रमुख के उस बयान का हवाला देते है जिसमे वे हरेली के दिन घरो के सामने नीम की डाल लगाने को अन्ध-विश्वास कहते है। लोग कहते है कि नीम की डाल लगाना निज आस्था है तो फिर क्यो इसे अन्ध-विश्वास कहा जा रहा है? इसमे तो किसी प्रकार की ठगी नही है। न ही भयादोहन किया जा रहा है। हम निरुत्तर हो जाते है। भले ही हम समिति के अंदर फूट के डर के चलते इन विषयो पर खुलकर चर्चा नही करते पर इससे

हर सदस्य को ऐसे प्रश्नो का सामना करना पडता है। इस बात पर मै आम लोगो की निज आस्था से सहमत होता हूँ और अपनी गल्ती स्वीकार लेता हूँ।

रोजगार की तलाश मे आस-पास के गाँवो और दूरस्थ अंचलो से भी बहुत से लोग शहर आते है। वे जडी-बूटियो की दुकान लगाकर बैठ जाते है। तरह-तरह के दावे करते है। हमने अपने अभियानो के माध्यम से इन्हे कई बार पकडा है और पुलिस के हवाले किया है। पर हर बार मन के पीछे यही सवाल उठता रहा कि कही हम गलत तो नही कर रहे है? क्या किसी गरीब की रोजी-रोटी छीनना ठीक है? मन मे यह सवाल भी आता है कि वनस्पति के विषय मे सबसे ज्यादा भ्रम तो शहर मे बैठे वास्तुविद फैला रहे है। लोगो के डर का लाभ उठाकर मन मर्जी से किसी भी पौधे को उखाडकर मनचाहे पौधे लगवा रहे है। किसी को झगडा करवाने वाला पौधा बता रहे है तो किसी को धन मे कमी करने वाला। ढेरो कमा रहे है और नयी पीढी मे खुल्लमखुल्ला अन्ध-विश्वास फैला रहे है। हम समिति की ओर से कभी इन पर हाथ नही डाल पाये क्योकि हम सभी को खबर है उनकी पहुँच की। उनके संगठन की। हमने जरा भी आवाज उठायी तो लेने के देने पड जायेंगे। इसलिये हमारे अभियान उन गरीबो पर केन्द्रित रहे जिनका कोई सहारा नही है। पुलिस के पास पहुँचने पर कोई मददगार नही है। एक दिन एक को पकडवाकर हम उसके पीछे कितने बेकसूर लोगो से निवाला छिन रहे है-इस बात का हमे अन्दाज भी नही है। मुझे लगता है कि सबके लिये नियम समान होने चाहिये। यह कठिन है पर यदि हम अपने नाम के लिये ऐसा भेदभाव करे तो हमारा मन कभी हमे माफ नही करेगा।
(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

आमतौर पर गाँव मे कोई भी समस्या आने पर ग्रामीण बैगा की शरण लेते है। चाहे वह किसी तरह की अनहोनी हो या फिर फसलो मे कीटो और रोगो का प्रकोप। बैग़ा उन्हे उपाय सुझाते है। धान की फसल मे जब कीडो का प्रकोप बढ जाता है और ऐसा लगने

लगता है कि अब स्थायी नुकसान को टाला नही जा सकता तो आज भी बैगा की मदद ली जाती है। यह सच है कि आजकल किसान रासायनिक आदानो के प्रति जगरुक हो गये है और कीटनाशको के प्रयोग के विषय मे वैज्ञानिको से अधिक जानकारी रखने लगे पर बहुत बार इन रसायनो से भी कीट नियंत्रित नही होते है। बैग़ा पवित्र जल लेकर झाड़ू से फसल पर छिडकते है और मंत्रो का उच्चारण करते है। वे खेतो को बाँध भी देते है ताकि कीडे अन्दर प्रवेश न कर सके। इसके बाद अक्सर यह सुनने मे आता है कि कीटो पर नियंत्रण हो गया है। ऐसे ढेरो किस्से ग्रामीण अंचलो मे सुनने को मिल जाते है। इसपर एकाएक विश्वास नही होता। विशेषकर जब आपने कृषि विज्ञान की शिक्षा ली हो और जानते हो कि कीडो को नियंत्रित करना कितना मुश्किल काम है। मै दसो बार ऐसे मौके पर पहुँचा हूँ ताकि यह जान सकूँ कि कैसे मंत्र और पवित्र जल से कीडे नियंत्रित हो जाते है? ज्यादातर मामलो मे मुझे तो यह एक साधारण प्रक्रिया लगी। मै इसे लोगो का विश्वास ही कहूंगा जो बैगा द्वारा किये जा रहे उपायो पर भरोसा कर लेते है और आने वाले सालो मे उनकी सेवाए लेते रहते है। इन उपायो के बाद भी मैने ज्यादातर मामलो मे कीटो के प्रकोप को बढते और फसलो को बर्बाद होते देखा है।

मै यहाँ बार-बार 'ज्यादातर मामलो मे' का प्रयोग इसलिये कर रहा हूँ क्योकि बहुत से ऐसे भी मामले मैने देखे है जिसमे बैगा विशेष प्रकार की वनस्पतियो के प्रयोग से कीडो पर नियंत्रण करते है। दक्षिण छत्तीसगढ मे एक बार मुझे बैगा द्वारा अपनायी जा रहे प्रक्रिया को देखने आमंत्रित किया गया। मैने देखा कि मंत्रो का उच्चारण जारी था पर पवित्र जल साफ न होकर गन्दला था। उसे ध्यान से देखा तो पता चला कि उसमे वनस्पतियो को सडाया गया था। खेतो को बाँधने के बाद बैगा ने एक विशेष वनस्पति की डालियो को खेत मे अलग-अलग स्थानो पर गाडा और फिर बची हुयी टहनियो को पानी की उस नाली मे डाल दिया जिससे खेत मे पानी आता था। मैने वनस्पति को देखा और कर्रा के रुप मे उसकी पहचान की। मै चौका नही क्योकि औषधीय और सगन्ध फसलो की जैविक खेती मे हमने कई बार इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया था। इसमे प्राकृतिक कीटनाशक के गुण होते है। देश के बहुत से भागो मे पारम्परिक जैविक खेती मे इसका प्रयोग अलग-अलग ढंग़ से होता है। इस पर आधुनिक अनुसन्धान भी हुये है। बैगा ने कर्रा का प्रयोग किया था। यह उसका पारम्परिक ज्ञान था। अब ऐसे मे कीडो का नियंत्रित होना किसी तरह का चमत्कार नही था। हम इसे अन्ध-विश्वास की श्रेणी मे भी नही रख सकते। ऐसी दसो वनस्पतियो का प्रयोग मैने बैगाओ के माध्यम से देखा है। ग्रामीणो को यह कहते भी सुना है कि हम जब इस वनस्पति का प्रयोग करते है तो हमे ऐसे परिणाम नही मिलते जैसे बैगा को मिलते है। यह उनका अपना विश्वास हो सकता

है। पर यदि यह प्रभाव वनस्पति का है तो सभी मामलो मे एक जैसा असर होगा। हाँ, यह हो सकता है कि बैगा इसे प्रयोग करते समय कुछ विशेष विधि अपनाता हो और इसके बारे मे जानकारी गोपनीय रखता हो। उदाहरण के लिये बच नामक वनस्पति का प्रयोग देखे। इसे खेतो के चारो ओर लगाने के बाद बैगा इनकी पत्तियो के ऊपरी सिरे को काट देते है। इससे पत्तियो के अन्दर उपस्थित आवश्यक वाष्पशील तेल हवा मे बिखरने लगते है और कीडो के बीच के रासायनिक संवाद मे दिक्कत आने लगती है। आम लोग जब बच को बिना पत्तियो को काटे लगा देते है तो उनको उतना अधिक प्रभावी नियंत्रण नही मिलता।

आधुनिक समाज गाँवो मे बैगा की उपस्थिति को कई समस्याओ की जड मानता है और सोचता है कि इन्हे गाँव से समाप्त कर गाँव को भयमुक्त किया जा सकता है। बहुत से लोग ऐसे भी है जो बैगा के बिना गाँवो को अधूरा मानते है। आज बहुत से गाँवो मे बैगा के पास मोबाइल है और वह आधुनिक सुविधाओ से लैस है फिर भी ग्रामीण समाज मे उसे वही सम्मान प्राप्त है। आज भी साल के हर दिन गाँव को उसकी जरुरत पडती है। बैगा का रहना गाँव के लिये सही है या नही-इस बहस मे मै नही पडना चाहता पर मैने अपने अनुभव से जाना है कि इनके पास वनस्पतियो के सम्बन्ध मे गहरा ज्ञान है। इस नजरिये से उनका हमारे बीच रहना जरुरी लगता है। मैने पारम्परिक चिकित्सको के साथ अधिक समय बिताया है और उनके ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया। बैगाओ से ये पारम्परिक चिकित्सक अलग है क्योकि वे झाड-फूँक की जगह वनस्पतियो को अधिक महत्व देते है।

वनस्पतियो की सहायता से कीट नियंत्रण की बात चल निकली है तो मुझे एक और रोचक बात याद आ रही है। आमतौर पर गृहवाटिका मे अच्छे फूलो की प्राप्ति के लिये लोग कीटनाशको का प्रयोग करते है। इन कीटनाशको से घर के सदस्यो के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पडता है- यह हम सभी जानते है। फिर भी इसे अनदेखा करते रहते है। मै बहुत सी देशी वनस्पतियो को गृहवाटिका मे स्थान देने की सलाह देता हूँ। सीताफल इनमे से एक है। सीताफल के फल हम बडे चाव से खाते है। बहुत से लोगो के मन मे इसके प्रति गलत धारणा है। वे फल तो खाते है मजे से पर इसे घर मे नही लगाना चाहते। उनका तर्क होता है कि यह उजाड जमीन विशेषकर श्मशान भूमि मे उगता है। वास्तु की कुछ पुस्तको मे भी इस तरह की बात मिल जाती है। मै ऐसे लोगो से जब गृहवाटिका मे उग रहे पौधो की सूची माँगता हूँ और उसका अध्ययन करता हूँ तो ज्यादातर पौधे विदेशी मिलते है। इसमे बहुत से ऐसे पौधे होते है जो विदेशो मे श्मशान

मे लगाये जाते है। प्लूमेरिया का ही उदाहरण ले। उसे तो ग्रेवयार्ड ट्री भी कहा जाता है। पर इनसे परहेज नही किया जाता है और शान से गृहवाटिका मे लगाया जाता है। इस बारे मे जानकारी न रखने वाले वास्तुविद भी इन विदेशी पौधो को लगाने की पैरवी करते है।

सीताफल को बहुतो ने अपने घर मे लगाया है और अभी तक उन्हे बुरे अनुभव नही हुये है जैसा कि इसके बारे मे प्रचार किया जाता है। मेरे अपने घर मे यह लगा हुआ है। किसान बडे पैमाने पर इसकी खेती कर रहे है। वैज्ञानिक चौबीसो घंटे इस पर अनुसन्धान कर रहे है। उन्हे तो किसी प्रकार का नुकसान नही हो रहा है। फिर सीताफल को गृहवाटिका मे लगाकर आप कीटनाशको के प्रयोग से बच सकते है। पत्तियो के रस का छिडकाव करे और गृहवाटिका को न केवल कीडो बल्कि रोगो से मुक्त रखिये। इस रस से अपना सिर भी धोए और बालो की सेहत सुधारे। डेंड्रफ से मुक्ति पाये। पत्तियो को नीम जैसी दूसरी पत्तियो के साथ जलाये और मच्छरो व मख्खियो से मुक्ति पाये। फिर स्वादिष्ट फल भी तो मिलेंगे। इन बातो को सुनकर बहुत से लोग गृहवाटिका मे सीताफल लगाने तैयार हो जाते है। पर देशी वनस्पतियो के विषय मे फैले भ्रम को आम लोगो से निकालना इतना आसान भी नही प्रतीत होता है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

हमारे एक मित्र मजाक मे कहते है कि क्या कभी आपने नीबू-मिर्च का अर्थशास्त्र जानने की कोशिश की है? नीबू-मिर्च का अर्थशास्त्र? मै चौका तो वे बोले हाँ उसी नीबू-मिर्च का अर्थशास्त्र जिसे लोग बुरी नजर से बचने अपनी दुकानो और गाडियो के सामने लगाते है। इसकी अपनी अलग अर्थव्यवस्था है। आप भले ही इसे अन्ध-विश्वास कहे पर इस पर आम लोगो की गहरी आस्था है और यह बढती ही जा रही है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि नीबू और मिर्च का भी बाजार बढ रहा है। यदि आप मुम्बई जैसे महानगरो मे सिर्फ इसी काम के लिये लगने वाले नीबू-मिर्च की गणना करेंगे तो इनसे लदे ट्रको से हो

रहे ट्रेफिक जाम का चित्र आपके सामने आ जायेगा। इस तरह के बहुत से अन्ध-विश्वास समाज की आर्थिक व्यवस्था से जुडे है। कभी किसी ने आँकलन नही किया पर विशेष प्रकार की माला और ताबीज बनाने पर एक पूरा उद्योग निहित है। खास लोगो के लिये बनी रुद्राक्ष की माला आज सभी वर्ग के लोगो के लिये उपलब्ध है। प्लास्टिक से लेकर रबर के बने रुद्राक्ष लोग गले मे पहने हुये है और मान रहे है कि इसका असर हो रहा है। एक अनुमान के अनुसार जितना रुद्राक्ष आज बाजार मे है यदि सचमुच मे इतना असली रुद्राक्ष होता तो दुनिया के एक बडे हिस्से मे इसके ही पेड होते। खुलेआम भयादोहन किया जा रहा है। वे बोलते रहे और मै उन्हे सुनता रहा। आप भारत को ही अन्ध-विश्वासी कहेंगे पर रुद्राक्ष का बाजार पूरी दुनिया मे है। आखिर दूसरे देशो मे भी तो लोग रातोरात अमीर बनना चाहते है। उन्हे भी तो नीन्द नही आती और आज की भाग-दौड की दुनिया मे वे भी तो नाना प्रकार के रोगो से परेशान है। अब हम चीन के मेढक और हँसने वाले गुड्डे को अपने घर मे रखकर उनसे शांति लाने की उम्मीद नही करते है?

भले ही कटु लगे पर यह आज का सत्य है जिसे उस मित्र ने खुलकर प्रगट कर दिया। यदि कोई यह कहता है कि लोगो को शिक्षित करने से अन्ध-विश्वास मे कमी आती है तो यह सही नही है। आज आधुनिक समाज मे जितना अधिक अन्ध-विश्वास फैला है उतना तो ग्रामीण समाज मे नही है। हाँ, आधुनिक समाज मे यह इतनी आसानी से दिखता नही है क्योकि इसे विश्वास या आस्था कह दिया जाता है। अन्ध-विश्वास फैलाने वाले डंके की चोट पर अपना साम्राज्य जमाये हुये है। सबके अपने गुट है और संगठन है। इनके अन्ध-विश्वास से आज का बाजार जुडा हुआ है। और बाजार के विरुद्ध मुहिम चलाना तो आसान है पर बाजार से जीत पाना बेहद मुश्किल। आपका भयादोहन अन्ध-विश्वास फैलाने वाले करते है और फिर इस भय से मुक्ति की सामग्री आज का आधुनिक बाजार उपलब्ध करवाता है। यह एक ताना-बाना सा बनता जा रहा है जिसे अलग कर पाना मुश्किल होता जा रहा है। ऐसे मे अन्ध-विश्वास के खिलाफ नारा बुलन्द करना भीड से अपने को अलग करना है।

रोज अन्ध-विश्वास की परिभाषा बदल रही है। ज्यादातर अन्ध विश्वास विश्वास की रजिस्टर्ड श्रेणी मे आ रहे है। भले ही हम चैनल वालो को कोसे पर असलियत यही है कि हमे जो पसन्द है उसे ही वे परोस रहे है। अब हम अपनी गल्ती को छुपाने दूसरो पर आरोप लगा रहे है। आने वाले वर्षो मे ऐसा लगता है कि अन्ध-विश्वास घटने की बजाय बढेगा और यह हमारे गाँवो से निकलकर हमेशा के लिये शहरो मे बस जायेगा।

रात मे पेड कार्बन डाइआक्साइड छोडते है इसलिये इनके नीचे नही जाना चाहिये। यही कारण है कि रात को मरीज के पास रखा गुलदस्ता हटा दिया जाता है। यह सब हमने प्रायमरी की किताबो मे पढा है और परीक्षाए पास की है। अब उन लोगो को क्या कहियेगा जो रात के कार्यक्रमो मे अपने सामने बाँस के पौधो से भरा कप लेकर बैठते है। यह चीन का अन्ध-विश्वास है कि बाँस का छोटा पौधा आपके जीवन को सुखमय बना देता है। इसलिये अब सुविधा के लिये कप मे इसे उगाकार दुकानो मे बेचा जा रहा है। रात को इसे सिरहाने पर रखा जा रहे है ताकि जब आप नीन्द मे हो तो भी समृद्धि आने का क्रम न रुके। क्या अपने देश मे अन्ध-विश्वासो की कमी हो गयी थी जो चीन जैसे देशो के अन्ध-विश्वासो को हम आमंत्रण दे रहे है?

यदि आप किसी ग्रामीण से बाँस के आस-पास रहने को कहेंगे तो वह साफ मना कर देगा। ग्रामीण विशेषज्ञो से मिलेंगे तो वे आपको बाँस से होकर आने वाली हवा के दोषो के विषय मे बतायेंगे। ये वे ही विशेषज्ञ होंगे जिन्हे आधुनिक समाज नीम-हकीम का दर्जा देता आया है। पर जब आप उनकी बातो की सत्यता परखने की कोशिश करेंगे तो आपको ढेरो सन्दर्भ प्राचीन ग्रंथो मे उनकी बातो के समर्थन मे मिल जायेंगे। मुझे तो लगता है कि समाज मे फैले अन्ध-विश्वास को खत्म करने के साथ ही यह जरुरी है कि नित जन्म ले रहे नये अन्ध-विश्वासो के विरुद्ध अलख भी जलायी जाये। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

छत्तीसगढ के राजिम क्षेत्र के वनीय भागो से गुजरते हुये मैने एक व्यक्ति को रोहिना नामक पेड के नीचे सोते पाया। घने जंगल मे इतनी बेफिक्री से किसी को सोया देखकर आश्चर्य हुआ। ध्यान से उसे देखा तो मुँह से निकल पडा ‘अरे, ये तो चतुर है। गाडी रोको, रोको गाडी।“ ड्रायवर ने गाडी रोक दी। चतुर जाग गया। उसकी आँखे लाल थी और चेहरे के हाव-भाव गडबड थे। मैने गाडी मे रखे पेडे उसे दिये और फिर उससे उसका हाल पूछा। वह बोला कि मैने अभी-अभी सपना देखा है। सपने से मुझे पता चला कि इस बार पानी क्यो कम गिर रहा है? बाहरी लोग जंगल के देवी-देवताओ के साथ ठीक बरताव नही कर

रहे है। वे उनसे ऊपर के स्थानो मे होटल और दुकाने बना रहे है। इसलिये देवी-देवता नाराज हो गये है। यही कारण है कि ऊँचे स्थानो मे बने झोपडो मे कुछ समय पहले अपने आप आग लग गयी। ऐसा तीसरी बार हुआ है। चतुर कहता गया और हम सुनते रहे।

वह घटारानी जंगल की बात कर रहा था। यहाँ देवी का मन्दिर है और एक मौसमी झरना है। यह घने जंगल मे है। इतना घना जंगल कि रात को मन्दिर के पुजारी भी मन्दिर से वापस जंगल के बाहर स्थित गाँव मे आ जाते है। वहाँ रेस्ट हाउस है पर कोई रात गुजारने को तैयार नही होता है। मैने कई बार देर रात तक रुकने की कोशिश की पर कोई भी स्थानीय व्यक्ति साथ देने को राजी नही हुआ। मेरी रुचि वनस्पतियो को खाने वाले जंगली जनवरो को रात मे देखने की थी। पहले इस जंगल मे कम लोग जाते थे। अब तो छुट्टियो के दिन 500 से अधिक गाडियाँ आ जाती है। सरकार ने अच्छी सडक भी बनवा दी है। पार्किंग स्थल को सीमेंटेड कर दिया है। नये होटल खुल रहे है जल-पान के लिये। पूजन सामग्री की दुकाने भी लग रही है। धीरे-धीरे जंगल विरला होता जा रहा है। गाडियो से प्रदूषण बढ रहा है और पर्यटको को तो आप जानते ही है। चिप्स से लेकर गुटखा पाउच तक सभी वही फेक कर चले जाते है। सफाई होती नही। पर्यटक जूते पहन कर कही भी चढ जाते है। स्थानीय निवासी जिनके मन मे इस स्थान के लिये गहरी श्रद्धा है, चाहकर भी कुछ नही बोल पाते। पर उनसे बात करने पर आक्रोश झलकता है।

मेरा ड्रायवर जो चतुर की बात ध्यान से सुन रहा था, बोल पडा कि यह तो अन्ध-विश्वास है। कोई सपने मे थोडे ही ऐसी बात बताता है। है न सर? चतुर नाराज हो गया। उसकी आँखे पहले से अधिक लाल दिखायी पड रही थी। मैने चुप रहना इसलिये उचित समझा क्योकि मै स्थानीय लोगो की भावनाओ से परिचित हूँ। जो दिन-रात अपने पूजा स्थलो की दुर्दशा देखेगा उसे ऐसे स्वपन दिखना तो स्वावभाविक है। ऐसे मे उसकी बात को सुनने की बजाय उसे अन्ध-विश्वासी कहना मुझे उचित नही लगा। यदि कह भी देता तो उसे तो कुछ फर्क पडना नही था।

हमने उसे गाडी मे बिठाया और फिर जंगल की ओर चल पडे। उसने थोडी दूर चलने पर एक पहाडी दिखायी। इस पहाडी पर एक गुफा है और उस गुफा तक बहुत कम लोग ही पहुँच पाये है। मै चलने को तैयार हो गया। ग़ाडी पार्क की और चढने लगे पहाडी पर। गुफा तक पहुँचे तो चतुर ने अपनी थैली से नारियल निकाला और द्वार की पूजा की। गुफा का द्वार बहुत नीचा था। लेटकर घिसटते हुये अन्दर तक जाना था। चतुर ने शर्त बतायी। द्वार पर नारियल रखकर जाने से ही गुफा मे गया व्यक्ति वापस आ सकता है।

अन्यथा वह अन्दर ही रह जायेगा। फिर मुस्कुराकर ड्रायवर की ओर देखा और बोला, यह भी अन्ध-विश्वास है। इसलिये तुम बिना नारियल अर्पित किये गुफा मे जाना। ड्रायवर को काटो तो खून नही। वह बोला मै तो नारियल अर्पित करके ही अन्दर जाऊँगा। अन्ध-विश्वास का व्याख्यान तो ये साहब देते है। इन्हे नारियल मत चढाने देना। अब मेरे सामने मुश्किल खडी हो गयी। मोटापे के कारण मै गुफा के अन्दर जाने से पहले ही बच रहा था। अब तो चुनौती आ गयी थी। पर मैनै इस चुनौती को न स्वीकारने का मन बनाया। मेरे चेहरे के भाव से चतुर समझ गया। फिर नारियल अर्पित कर वे दोनो गुफा के अन्दर गये और कुछ समय बाद बाहर निकल आये। चतुर ने कहा भले ही यह अन्ध-विश्वास हो पर खतरे वाली स्थितियो मे अनावश्यक जोखिम से लोगो को बचना चाहिये। नारियल रखना हमारा अन्ध-विश्वास नही, विश्वास है जिसके बल पर हम गुफा के संकरे रास्ते मे न केवल घुस जाते है बल्कि फिर उससे निकल भी आते है। ऐसी कोई चीज न हो तो शायद यह कठिन कार्य हम कभी न कर पाये। उस पहाडी के शिखर पर ज्ञान बाँटता हुआ चतुर किसी गुरु से कम नही लग रहा था। हमे उसे गुरु स्वीकारने मे जरा भी संकोच नही था अब।

आम लोग बहुत सपने देखते है। विचित्र से विचित्र सपने देखते है। गाँव के बैगा को भी ज्यादातर बाते सपने से ही पता चलती है-ऐसा वे दावा करते है। उनके सपने को मान्यता मिली हुयी है। वह अगर कह दे कि उसे सपना आया है कि फलाँ व्यक्ति गाँव का बिगाड कर रहा है तो सारा गाँव मान लेता है और फिर उस व्यक्ति की शामत आ जाती है। क्या बैगा को ऐसे सपने सचमुच आते है या फिर अपनी दुश्मनी निभाने निज स्वार्थ से प्रेरित होकर वह सपने का सहारा लेता है। यह शोध का विषय हो सकता है। अब तक तो ऐसा यंत्र निकला नही है जो इस बात की तसदीक कर सके कि अमुक सपना अमुक व्यक्ति विशेष का ही है और इतने बजकर इतने समय पर दिखा है। कल यदि ऐसा यंत्र निकल जाये तो मुझे लगता है कि बैगाओ को सपने दिखने बन्द हो जायेंगे और बेकसूर लोगो की जान बच पायेगी। सपने राजनेताओ को भी आते है। विशेषकर चुनाव के दिनो मे। वे बताते है कि कैसे फलाँ देवी-देवताओ ने उनसे फलाँ काम करने को कहा है?

पिछले कुछ सालो से मै बैगाओ और झाड-फूँक करने वालो को अब तक आये भाँति-भाँति के सपने की सूची बना रहा हूँ। क्यो? बस शौकिया तौर पर। इसमे अब चतुर को आया सपना भी दर्ज हो गया है। इन सपनो की सूची देखकर मेरे एक मित्र जो कि होम्योपैथिक चिकित्सक है, ने कहा कि इन सब को बिना विलम्ब इलाज की जरुरत है। आप तो जानते ही है कि होम्योपैथी मे सपनो पर जितनी दवाए है उतनी शायद ही दुनिया की

किसी और चिकित्सा पद्धति मे हो। आप कैसा भी सपना बताये चिकित्सक झट से आपको दवा का नाम बता देंगे। मेरे मित्र का कहना है कि सपने का अपना महत्व है। ऐसे उदाहरण मिलते है जब सपने के माध्यम से वैज्ञानिको ने कई ऐसे रहस्य सुलझाये है जो जागृत अवस्था मे नही सुलझा पाये पर सपने की आड मे किसी की मौत का फरमान जारी करना या किसी महिला को टोनही घोषित कर देना, शैतानी से कम कुछ नही है। मै इससे शत-प्रतिशत सहमत हूँ। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

फोटोग्राफी के लिये मै गाडी के रुकते ही जंगल मे घुस पडा। आस-पास ऐठी के बहुत से पौधे उगे हुये थे। मैने इसकी तस्वीर उतारी। यह वही ऐठी है जिसके फल मुडे हुये होते है और ऐठन को प्रदर्शित करते है। शरीर मे होने वाली किसी भी प्रकार की ऐठन मे इसका आँतरिक प्रयोग होता है। साथ मे चल रहे लोग पीछे रह गये और मै जंगल के अन्दर बढ चला। अचानक तेन्दु का एक पौधा मुझे दिखा जिसकी पत्तियाँ कटी-फटी थी। मै समझ गया कि इसमे कीडो का आक्रमण हुआ है। कीडो मे विशेष रुचि होने के कारण मैने पत्तियो को पलटना शुरु किया। अचानक ही अंगुली मे काँटे जैसी चीज चुभने का अहसास हुआ और मेरे मुँह से चीख निकल आयी। मुझे समझ नही आया क्योकि काँटे जैसी कोई चीज आस-पास नजर नही आ रही थी। दर्द असहनीय होता जा रहा था। प्रभावित भाग मे चकत्ते उभर आये। फिर सिर भी घूमने लगा। तब तक पीछे चल रहे लोग आ गये। चीख से उन्होने समझा था कि बिच्छू या साँप ने आक्रमण कर दिया है। जंगल की परवाह किये बिना तब मै जमीन पर लेट गया था औत दर्द से तडप रहा था। साथ चल रहे लोगो ने आस-पास तलाश की पर उन्हे न बिच्छू मिला न साँप। तभी एक बुजुर्ग ने कहा कि यह इस कीडे के कारण हुआ है। कीडे के कारण ऐसी पीडा? मै उठ खडा हुआ। सही मे एक इल्ली तेंदु की पत्तियो को चट कर रही थी। उसके शरीर के बाहरी ओर काँटो का समूह था। इसी पर मेरा हाथ पड गया था। पर उसे इससे कोई फर्क नही पडा था। वह अब भी मजे से खाने मे जुटी हुयी थी।

चाहे कुछ भी हो जाये, इसे खुजलाना नही। बुजुर्ग ने चेताया। यदि खुजलाया तो लेने के देने पड जायेंगे। सचमुच खुजली तो बहुत हो रही थी। पर मैने उसकी बात मानने का फैसला किया। जहर का असर बढता ही जा रहा था। मेरे चेहरे के रंग को देखकर उसने कहा कि कोने मे जाकर प्रभावित अंगुली पर पेशाब कर लो। मैने यह किया। अक्सर जब भी हमे चोट लगती है जंगल भ्रमण के दौरान तो आस-पास कुछ न मिलने पर हम यही करते है। पर इस कीडे के लिये मूत्र का उपयोग मेरे लिये नयी जानकारी थी। उस समय मेरे शरीर की जैसी स्थिति थी उससे मुझे बार-बार एंटी-एलर्जी दवा की याद आ रही थी। हल्दी पावडर की भी याद आ रही थी। मुझे लग रहा था कि गरम पानी के साथ इसकी फंकी काफी हद तक मुझे ठीक कर सकती है। पर यह सब जंगल मे मिल पाना नामुमकिन था। अभियान रुक चुका था। अस्पताल कोसो दूर था। अनिर्णय की स्थिति बन रही थी। क्या करे, क्या न करे।

अचानक ही उस बुजुर्ग ने मंत्रो का जाप शुरु कर दिया। फिर झूमने लगा। हम सब बडी रुचि से उसे देखने लगे। तरह-तरह के देवी-देवताओ के नाम कहने लगा। उनसे माफ कर देने की बात भी दोहराता रहा। खुजली और दर्द से ध्यान बँट गया और बीस मिनट बाद सारी समस्या से निजात मिल गयी। साथ चल रहे लोग उस बुजुर्ग के फैन हो गये। वे समझ गये कि यह तो पहुँचा हुआ इंसान है।

वापस आकर मैने सन्दर्भ साहित्यो को खंगालना शुरु किया। देशी ग्रंथो मे तो इस बारे मे कोई सूचना नही मिली पर विदेशी साहित्यो से पता चला कि यह स्लग कैटरपिलर है। इसके काँटे बडे ही जहरीले होते है। एक बार चुभ गये तो बडी यंत्रणा पहुँचाते है। जितना खुजलाओ उतना अन्दर घुसते जाते है और तकलीफ बढती जाती है। ठीक केवाँच नामक वनस्पति के खुजली करने वाले रोमो की तरह। अमेरीकी सेना ने अपने सैनिको की सुरक्षा के लिये एक निर्देशिका का प्रकाशन किया है। उसमे इस कीट के विषय मे विस्तार से जानकारी दी गयी है। कैसे इसे पहचाने से लेकर कैसे दर्द से मुक्ति पाये? यह आन-लाइन है। इसमे बताया गया है कि एडेहेसिव टेप को प्रभावित भाग मे चिपकाने से यह काँटो को बाहर खीच लेता है। इसमे एंटी-एलर्जी दवा लेने की बात की गयी है। यह भी कहा गया है कि आपात स्थिति मे प्रभावित को एयर लिफ्ट कर तुरंत अस्पताल ले जाना चाहिये। मै डर गया और मन ही मन ऊपर वाले को धन्यवाद दिया कि मेरे लिये ऐसी नौबत नही आयी। मुझे आधुनिक विज्ञान का ‘आ’ भी न जानने वाले बुजुर्ग के ज्ञान पर अचरज हुआ। मन ही मन आदर के भाव भी जागे। उसने खुजलाने मना कर समस्या को बढने से बचा लिया। मूत्र के प्रयोग से संक्रमण नही फैला। पर उसके बाद की प्रक्रिया

समझ नही आयी। सो मैने फिर से मुलाकात का मन बनाया।

एक कोने मे ले जाकर उस बुजुर्ग ने राज खोला और कहा कि उस पूरी प्रक्रिया का एकमात्र उद्देश्य आपका ध्यान दर्द से हटाना था। मूत्र अपना काम कर रहा था। आप खुजला नही रहे थे इसलिये मर्ज तो बढने वाला नही था। ध्यान बँटने से शरीर को मरम्मत के काम को करने मे आसानी हुयी। वह अपने संसाधनो को सही जगह पर लगा पाया। मै अवाक सा सुनता रहा। अपनी बात खत्म कर उसने कहा कि यह राज आप मेरे गाँव के लोगो को मत बताना। यह प्रक्रिया इलाज मे एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह भले ही बेकाम की लगे पर यह जरुरी है। यह मेरी औषधीयो के प्रभाव को बढा देती है। उस बुजुर्ग की बाते सुनकर मुझे सहसा दर्द निवारक बाम की याद आ गयी जो काउंटर इरिटेंट की तरह दर्द को कम करने की बजाय दर्द से ध्यान हटा देता है और रोगी को लगता है कि दर्द का उपचार हो गया।

मैने अपने निज चिकित्सक को यह बात बतायी तो उन्होने कहा कि ऐसे बहुत से मामले आते है पर हम दवा के माध्यम से त्वरित राहत नही पहुँचा पाते है। हमने अपनी पढाई के दौरान इस कीट के विषय मे नही पढा। फिर व्यव्हारिक अनुभव तो बिल्कुल नही है। यदि मै भी सीधे उनके पास पहुँचता तो वे शायद उस हद तक राहत नही दिलवा पाते जिस हद तक आधुनिक सुविधाओ से दूर उस बुजुर्ग ने दिलवायी। निज चिकित्सक ने उस बुजुर्ग के उपायो मे रुचि दिखायी और कहा कि मै भी आजमाऊँगा। मैने कहा एक बार चल कर उस महान आत्मा से मिलकर धन्यवाद तो दे दो। ऐसे ज्ञानी पुरुष हमारे समाज मे है पर उनके ज्ञान को सन्देह से देखा जा रहा है और उन्हे अन्ध-विश्वासी का दर्जा दिया जा रहा है। आज देश के 80 प्रतिशत गाँवो मे आधुनिक चिकित्सक नही है। ऐसे मे तो त्राही-त्राही मच जानी चाहिये थी। पर यह भारतीयो का पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान है जो उन्हे अपने आस-पास उग रही वनस्पतियो के सरल उपयोगो के बारे मे बताता है। और इसी ज्ञान के कारण वे आधुनिक चिकित्सा के अभाव मे भी जीवित है।

अमेरिकी सेना ने अपने सैनिको के लिये इतनी अच्छी जानकारी उपलब्ध करवायी है। इससे मै बडा ही प्रभावित हुआ। मैने भारतीय सैनिको विशेषकर छत्तीसगढ के जंगलो मे फौजी कारवाई मे बाधा पहुँचाने का दम-खम रखने वाले इस कीट जैसे विषैले जीवो के बारे मे एक वैज्ञानिक रपट बनाने का निर्णय लिया ताकि पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पर आधारित साधारण प्रयोगो की सहायता से हमारे जवान इनसे निपट सके। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

बरसात के दिन थे। शाम को बाहर रखे बर्तनो की टोकरी को जैसे ही मेरी माताजी ने उठाया उन्हे लगा कि किसी ने उनके अंगूठे को पकडने की कोशिश की है। किसी ने? पर किसने? वे चीख पडी। आस-पास देखा तो कुछ न दिखा। उनके चेहरे पर डर था। हम लोग पहुँचे। अंगूठे को देखा पर कुछ नजर नही आया। क्या वह कीडा था या चूहा? माताजी कुछ बता नही पा रही थी। पर ऐसा अहसास उन्हे पहले कभी नही हुआ था। उन्हे बिठाकर हम लोगो ने टोकरी उठायी और किचन मे रख दी। जैसे ही टोकरी रखी उसमे से उछलकर एक साँप निकला और सिंक मे जाकर बैठ गया। अफरातफरी मच गयी। याने अंगूठा इसी ने पकडा था। हम सब बुरी तरह से घबरा गये। पहले साँप से निपटना था। वह ऐसी जगह बैठा था जहाँ से बिना मारे उसे निकालना सम्भव नही था। डंडे का प्रायोग इस तंग जगह मे सम्भव नही था। मैने साँप को ध्यान से देखा और किताबी ज्ञान के आधार पर यह सुनिश्चित करने की कोशिश की कि यह जहरीला है या नही पर तय नही कर पाया। बाहर से रिक्शेवाले आ गये। कोई कहता रहा पानी वाला साँप है तो कोई जहरीला बताता रहा। माताजी के लिये गाडी बुलवायी गयी। साँप इधर-उधर घुस न जाये इसलिये सतत निगरानी रखी गयी उस पर। साँप को कैसे मारे यह समझ नही पडता था। किसी ने कीटनाशक डालने की बात कही और देखते ही देखते काकरोच मारने वाले कीटनाशक से साँप को नहला दिया। उस पर तो जैसे कुछ फर्क ही नही पडा। मै साँप से युद्ध छोड माताजी के पास आ गया।

अंगूठे को ध्यान से देखा तो कुछ दिखा नही। यदि यह जहरीला साँप है तो थोडी भी लापरवाही महंगी पड सकती थी। माताजी की हालत ठीक थी भी और नही भी। मैने नीम की कुछ पत्तियाँ दी चबाने को और स्वाद पूछा। कडवा-उनका जवाब आया। मै कुछ निश्चिंत हुआ कि यदि जहर होता तो पत्तियाँ मीठी लगती। पर इस ज्ञान के उपयोग से मै कुछ सशंकित भी था। मैने ऐसी परीक्षा के बारे मे देखा और सुना था पर कभी आजमाया नही था। आधुनिक विज्ञान से सम्बन्धित साहित्य तो इस परीक्षा के बारे मे कुछ नही

लिखते। मैने अंगूठे के ऊपर वाले स्थान मे कसकर कपडा बाँध दिया और चिकित्सक के पास जाने की तैयारी करने लगा। इस बीच पता चला कि साँप को बेहरमी से मार डाला गया है। बेहरमी से इसलिये क्योकि उसपर उबलता पानी डाला गया और पलभर मे उसका काम-तमाम हो गया।

चिकित्सक तक पहुँचते-पहुँचते पैरो की हालत खराब होने लगी। चिकित्सक ने सबसे पहले कसा हुआ कपडा हटाया और कहा कि किसने यह पुराना उपाय अपनाया? इससे कुछ फर्क नही पडता। मै अवाक था क्योकि मैने हर जगह यही पढा था। पर कपडा हटाते ही माताजी को अच्छा लगने लगा। इसके मायने कसकर बाँधा गया कपडा बढी हुयी तकलीफ का मुख्य कारण था। चिकित्सक ने अंगूठे को ध्यान से देखा और कहा कि हालत गम्भीर है। अभी से इलाज शुरु करना होगा। हालत गम्भीर है तो क्या एंटी-वेनम लगायेंगे? मैने पूछा। उसने कहा, नही एंटी-वेनम की जरुरत नही है। मतलब साँप जहरीला नही था। वह कुछ नही बोला। फिर उसने सात इंजैक्शन लगाने की बात कही। वह अपनी मेज तक गया और पर्ची पर कुछ लिखने लगा। काफी देर बाद उसने सिर उठाया तो पर्ची पूरी तरह भरी हुयी थी। अपने मेडीकल स्टोर से इन दवाओ को ले आने की बात की। फिर पास के अस्पताल का पता देकर कहा कि यहाँ माताजी को 24 घंटो तक निगरानी मे रखना होगा। हम चकित से खडे थे। भला यह कैसा इलाज है सर्प दंश का। चिकित्सक हडबडी मे था। मुझे कोने मे ले जाकर कहा कि चालीस हजार की व्यवस्था कर लो फिर इलाज शुरु करेंगे। मेरे सब्र का बाँध टूट गया। मैने अपने चिकित्सक मित्र को फोन लगाया। वे आनन-फानन मे आ गये। उनको देखते ही इस चिकित्सक के भाव बदल गये और मुझसे बोले कि मैने आपकी माताजी को चेक कर लिया आप इन्हे अभी घर ले जा सकते है। इन्हे कुछ नही हुआ है। मैने गिरगिट को भी इतनी तेजी से रंग बदलते नही देखा था। खैर, हमारी जान मे जान आयी और हम इस ठगी से बच गये। इस घटना (दुर्घटना कहे तो ज्यादा ठीक होगा) से मुझे यह आभास हो गया कि सर्प दंश से पीडीत लोग दूर-दराज के गाँवो से आते होंगे तो कैसे साँप के जहर से कम और इस लूट से वे मर जाते होंगे। यह सच है कि सभी चिकित्सक ऐसे नही होते पर यह भी सच है कि एक मछली सारे तलाब को गन्दा कर देती है।

कुछ वर्षो पूर्व अहमदाबाद मे सर्प विष चिकित्सा से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पर मै व्याख्यान दे रहा था। एक सज्जन बीच मे ही बोल पडे कि यह तंत्र-मंत्र से कुछ नही होता। एंटी-वेनम ही अंतिम विकल्प है। मैने उनसे कहा कि आप सही कह रहे है कि एंटी-वेनम उपयोगी है और तंत्र-मत्र से कुछ नही होता पर आज भी देश भर मे

जडी-बूटियो से सर्प विष की चिकित्सा हो रही है। लोग सर्प दंश के शिकार हो रहे है। कुछ मर रहे है और बहुत से बच भी रहे है जबकि दूर-दूर तक आधुनिक चिकित्सालय वहाँ नही है। ये कैसे सम्भव है? वे तमतमाकर बोले जितने लोग बच जाते है उन्हे जहरीले साँप ने नही काटा होता है और जो मर जाते है उन्हे वास्तव मे जहरीले साँप ने काटा होता है। और इलाज मे लापरवाही से वे मर जाते है। मुझे उनका तर्क नही जमा। शायद आपके गले भी नही उतरा होगा। यह तो चित भी मेरी और पट भी मेरे वाली बात हुयी। शहर के वातानुकूलित कक्ष मे बैठकर ऐसे बहुत से तर्क किये जा सकते है पर दूरस्थ जंगलो मे जाकर एक बार ही सही अपने साथी भारतीयो के हुनर को समझने का साहस कोई नही करता। गाँव की योजनाए शहरो मे बनती है। यही कारण है कि इन योजनाओ से आज तक देश का भला नही हुआ है। व्याख्यान के बाद वे सज्जन मुझसे मिले और चर्चा जारी रखी। मैने उन्हे आमंत्रित किया कि आप मेरे राज्य मे पधारे और मेरे साथ उन दूरस्थ अंचलो की यात्रा करे। जरा देखे तो कैसे सर्पो के साथ सारा जीवन बिताते है वे लोग। वे तैयार हो गये। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

वायदे के अनुसार अहमदाबाद वाले सज्जन हवाई-मार्ग से रायपुर पधारे। फिर दूसरे दिन हमारे साथ जंगल की ओर निकल पडे। एक गाँव मे हमने गाडी छोडी और फिर धान के खेतो की मेड मे चलना आरम्भ किया। आगे हमारा पथ-प्रदर्शक चल रहा था, उसके पीछे मै और फिर आखिर मे सज्जन। उनसे बीच मे चलने कहा तो वे बोले कि मै पीछे ही ठीक हूँ। मेडो मे बडी-बडी घास उगी हुयी थी। नीचे का रास्ता दिखाता नही था। बस चलते जाना था। अचानक सज्जन चीखे और बोले कि नीचे तो साँप है। हाँ, तो- मैने कहा। धान के खेतो के पास साँप होते ही है। क्या आप इससे पहले खेत नही गये? आप बस चुपचाप चलते रहे। साँप को खुद की जान की परवाह है। वे अपने रास्ते निकल जायेंगे। चुपचाप चलते रहे आप- मैने उनसे कहा। सामने वाला व्यक्ति आराम से चले जा रहा था। सज्जन के पास मेडीकल किट था और उसमे एंटी वेनम के इंजेक्शन थे। सामने वाला व्यक्ति नंगे पाँव था। मैने स्पोर्ट्स वाले जूते पहने हुये थे। सज्जन के पैरो मे गम

बूट थे। इस लिहाज से वे सबसे अधिक सुरक्षित थे। फिर भी डर रहे थे। मुझसे उन्होने कहा कि आप बढिया काम कर रहे है। मैने कहा, मै नही। मुझसे बढिया काम मेरे सामने वाला व्यक्ति कर रहा है।

साँपो के दिखने का क्रम जारी रहा। सज्जन ने आगे चलने से इंकार कर दिया। सामने वाले व्यक्ति ने मौके की गम्भीरता को समझा और आस-पास वनस्पतियाँ खोजने लगा उसने चिरचिटा और बघनखा नामक दो पौधो की जडे खोदी और फिर उसे सज्जन के जूते मे डाल दिया और कहा कि अब आप निश्चिंत हो जाये। साँप आपका बाल भी बाँका नही कर पायेंगे। मै कुछ पूछना चाहता था पर उसने चुप कर दिया। सज्जन के पैरो मे मानो पंख लग गये। उन्होने धान के खेतो के बाद का जंगली इलाका बिना किसी शोर के पार कर लिया। मुझे याद आ रहा था कि जब मैने ऐसी ही वनस्पतियो की बात अपने व्याख्यान मे की थी तो उन्होने हो-हल्ला मचाया था। पर अब उन्हे इसके प्रयोग से कोई परहेज नही था।

छोटी सी पहाडी को पारकर हम एक छोटे से गाँव मे पहुँचे जहाँ सिर्फ आठ-दस घर थे। एक घर के सामने भीड लगी हुयी थी। सामने ट्रेक्टर खडा हुआ था और लोग ट्राली को घेरे हुये थे। पास जाने पर पता चला कि सर्प दंश से पीडित किसी को इलाज के लिये लाया गया था। सरकारी अस्पताल ने जवाब दे दिया था। सर्प-दंश को बहुत देर हो चुकी थी। पर पीडित के परिवार वालो को उम्मीद थी कि यहाँ बात बन सकती है। यहाँ के बैदराज का काफी नाम है। बैदराज ने हमे देखा और आव-भगत की औपचारिकता छोड पीडित के लिये औषधियाँ लाने जंगल चले गये। सज्जन से नही रहा गया। वे बोल पडे कि अब कोई उम्मीद नही है। इसलिये किसी भी तरह का प्रयास व्यर्थ है। उनको अनसुना कर बैदराज चले गये।

कुछ देर बार वे ढेर सी वनस्पतियाँ लेकर आये और लोगो को उसे कूटकर रस निकालने को कहने लगे। कुछ वनस्पतियो को उन्होने पीपल के पुराने पेड के नीचे से लायी गयी मिट्टी मे सानकर एक लेप तैयार किया और फिर उसे पीडित के शरीर मे लगाने लगे। इस बीच रस निकाल लिया गया और बैदराज रोगी को मनहर नामक पेड की पत्तियो का दोना बनाकर पिलाने लगे। इलाज चलता रहा। दवा देते समय बैदराज कुछ बुदबुदाते रहे। जिस व्यक्ति के लिये ज्यादा से ज्यादा एक-दो घंटे का समय सरकारी अस्पताल ने निर्धारित किया था वह आठ घंटो तक दवा के सहारे जिया। इससे ज्यादा जीना शायद ऊपर वाले को मंजूर नही था। उसने प्राण त्याग दिये। सज्जन पूरी प्रक्रिया को ध्यान से देखते रहे। बैदराज ने पैसे लेने से मना कर दिया। फिर अपनी कुटिया मे चले गये।

सज्जन बोले कि इतना लम्बा समय एक मरीज के पीछे लगाया और कुछ लिया भी नही। शहर मे तो मरीज जीवित रहे या मरे, फीस तो देनी ही पडती है। आठ घंटे तक सेवा मतलब हजारो का बिल। फिर जो वनस्पतियाँ जंगल से लायी गयी उसे रिश्तेदार के पास रखना चाहिये फिर मरीज से कहना चाहिये कि उससे पैसो मे इसे खरीद लो। ये लोग तो बिल्कुल भी मार्केटिंग नही जानते। उन्हे सचमुच यकीन नही हो रहा था कि धरती मे ऐसे लोग भी है। इस बीच बैदराज कुटिया से बाहर आये और हमसे चर्चा करने लगे। उन्होने कहा कि जब तक हम प्रयास कर सकते है तब तक करते है। सरकारी अस्पताल वाले हथियार डाल देते है। उनके पास प्रयोग का साहस नही होता। हजार मे से एक आदमी की भी जान अंतिम प्रयासो से बच जाती है तो हम अपने ज्ञान को सार्थक मानते है। सज्जन मुँह बाये सुनते रहे। मैने उन्हे बताया कि छत्तीसगढ मे ऐसे हजारो पारम्परिक चिकित्सक है जो मरीजो से कुछ भी नही लेते है। उन्हे शपथ दिलवायी गयी है उनके पूर्वजो द्वारा कि यदि इस ज्ञान से कुछ कमाया तो इसका असर समाप्त हो जायेगा। वे खेती करते है या आजीविका के दूसरे साधन अपनाकर अपना और अपने परिवार का पेट पालते है। वे भारतीय ज्ञान पर आधारित चिकित्सा करते है और हमारा कानून आज भी इन्हे नीम-हकीम कहकर चिढाता है। पर अब धीरे-धीरे लोगो मे जागरुकता आ रही है और इनके महत्व को समझा रहा है। हाल ही मे एम्स से छपी एक रपट मे कहा गया है कि देश मे चिकित्सको की कमी को देखते हुये इन पारम्परिक चिकित्सको पर दूरस्थ गाँवो का जिम्मा छोड देना चाहिये। रपट तो अभी आयी है पर यह जिम्मेदारी तो वे सदियो से अपने कन्धे पर लिये हुये है और पीढी दर पीढी तिरस्कार के बाद भी सेवा मे जुटे हुये है। सच है इन्हे मार्केटिंग नही आती पर ईश्वर का लाख-लाख शुक्र है कि इन्हे सेवा आती है जो शहरो अब खत्म सी होती जा रही है।

बैदराज ने हमे दसो किस्म के सर्पो के विषय मे बताया। कुछ तो ऐसे जिनका वर्णन सन्दर्भ साहित्यो मे भी नही मिलता। फिर उन्होने सज्जन के मेडीकल किट के बारे मे पूछा। इंजैक्शन को देखते ही उन्होने कहा कि सरकारी अस्पतालो मे इसका प्रयोग होता है। यह आदमी की जान बचाने मे कारगर है पर गल्ती से यदि इसका गलत असर (वे रियेक्शन की बात कर रहे थे) हो गया तो मरीज की हालत बिग़ड जाती है। इसे लगाकर बच जाने वाले मरीज भी लम्बे समय तक नाना प्रकार की समस्याओ की शिकायत करते रहते है। सज्जन ने तर्क दिया कि जान बचनी जरुरी है। बाद मे भले ही कुछ भी हो। पर बैदराज इस तर्क से सहमत नही दिखे। उन्होने खुलासा किया कि जंगली इलाका होने के कारण यहाँ अक्सर साँप निकलते रहते है। सज्जन चौकन्ने हो गये और बोले कि आप

उसे कैसे मारते है? बैदराज हँसे और बोले कि कल ही मै सो रहा था तो पारस पीपल के पेड से साँप नीचे आ गया। मै उठा और दूसरी जगह जाकर सो गया। साँप कुछ देर बाद अपने आप चला गया। सज्जन को अब समझ आने लगा था कि जितने साँप शहरो मे शिक्षित लोगो द्वारा मारे जाते है उससे बहुत कम या नही के बराबर अशिक्षित लोगो द्वारा दूरस्थ इलाको मे मारे जाते है। उन्हे अपने और अपने तथाकथित सभ्य समाज पर शर्म सी आने लगी। अचानक उन्हे जूतो मे पडी वनस्पतियो की याद आयी। वे कुछ पूछते इससे पहले ही साथ आये व्यक्ति ने कहा कि ये वनस्पतियाँ बिच्छू से बचाती है कुछ हद तक। पर आप इतना घबराये हुये थे कि मैने इसे साँप को भगाने वाली वनस्पतियाँ कहकर आपको दिया तो आपका डर काफूर हो गया। जो संकट मे काम आये वही संजीवनी है।

ग्रामीण अंचलो से बहुत से सर्प विशेषज्ञ महानगरो मे चले आते है। वे साँप का प्रदर्शन करते है और कुछ वनस्पतियाँ बेचते है। उनके आने से अचानक ही समाजसेवी जाग उठते है। उन्हे सर्पो को होने वाले कष्ट की चिंता होती है। वे शोर मचाते है। अपनी तस्वीरे छपवाते है और सर्प विशेषज्ञो को पुलिस के हवाले कर देते है। ज्यादातर सर्प विशेषज्ञ जिनसे मै मिला हूँ, कुछ समय के लिये सर्प रखते है फिर उन्हे जंगल मे छोड देते है। समाजसेवी अपने घरो मे निकलने वाले साँपो को बिना हिचक मार डालते है, उनकी त्वचा से बनी फैशनेबुल चीजो से शरीर की शोभा बढाते है, दाँतो को अपनी तिजोरी मे धन की रक्षा के लिये रखते है तब उन्हे अपने कर्म दुष्कर्म नही लगते है।

सर्प विशेषज्ञो की वनस्पतियो का प्रयोग महज अन्ध-विश्वास है- ऐसा हर बार नाग पंचमी के आस-पास रायपुर मे अखबारो मे छपता है। लगभग इसी समय एक और खबर छपती है। इस खबर मे गरुड के पेड की फली के विषय मे लिखा होता है। सर्प की तरह दिखने वाली इस फली को घर मे रखने से सर्प नही आते है-ऐसा प्रचारित किया जाता है। यह प्रचार प्रायोजित होता है। शहर के प्रतिष्ठित जडी-बूटी विक्रेता यह खबर छपवाते है। खबर छपते ही आदिवासियो से नमक के बदले ली गयी फलियो को खरीदने की होड सी लग जाती है। इसे पाँच से साठ रुपते प्रति फली के मनमाने दाम पर बेचा जाता है। शहर के लोग इसे अन्ध-विश्वास नही मानते है। न ही अन्ध-विश्वास के खिलाफ मुहिम छेडने वाले कुछ कहते है। आखिर इससे बाजार जो जुडा हुआ है। अब यह भी जान ले कि फली कितनी कारगर है। इसके प्रभावीपन के लिये एकमात्र शर्त यह है कि सर्प को भी इसके प्रभाव का ज्ञान होना चाहिये। नही तो उस पर असर नही होगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

यह उन दिनो की बात है जब मै इन्दिरा गाँधी कृषि विश्वविद्यालय मे शोधार्थी हुआ करता था। एक दिन अपने कक्ष मे बैठा हुआ था तब एक छात्र ने मुझसे मिलने की इच्छा जतायी। उसने बताया कि वह इन-सर्विस कैंडीडेट है और बिलासपुर के एक गाँव का रहने वाला है। उसके पास सर्प दंश की चिकित्सा के लिये पूर्वजो का दिया एक नुस्खा है। यदि सर्प दंश मे बहुत अधिक समय नही हुआ है तो वह इस दवा को खिलाकर जान बचा सकता है। उसने कहा कि मैने इसे बहुत से लोगो पर आजमाया है। अब मै इस पर अनुसन्धान करना चाहता हूँ और इस नुस्खे को और अधिक उपयोगी बनाना चाहता हूँ। अभी यह करैत के विष के विरुद्ध ही प्रभावी है। छत्तीसगढ के तराई वाले क्षेत्रो मे हर साल करैत के काटने से सैकडो लोग अपनी जान गँवा बैठते है। आस-पास सरकारी अस्पतालो के न होने से देर हो जाती है और परिजन चाह कर भी कुछ नही कर पाते है। छात्तीसगढ का तपकरा नामक क्षेत्र तो नागलोक के नाम से जाना जाता है।

उस छात्र ने कहा कि यदि आप चाहे तो मै आपको भी नुस्खा बता सकता हूँ। हम लोग इसके पैसे नही लेते है। मरीज के परिजन यदि आने-जाने का खर्च दे दे तो काफी है। नही तो मै अपने खर्च से ही चला जाता हूँ। छात्र की बात सुनकर मै प्रभावित हुआ। मैने उसके प्रस्ताव के लिये आभार व्यक्त किया और कहा कि नुस्खा आप आपने पास ही रखे और इस तरह किसी से प्रभावित होकर उसे देने का दुस्साहस न करे। यह दुनिया बहुत टेढी है। पलक झपक़ते ही सारी स्थिति बदल सकती है। यहाँ तक कि नुस्खा पाने वाले की नियत भी। मै स्थानीय अखबारो के सम्पर्क मे था। अन्ध-विश्वास दूर करने वाली संस्था से भी जुडा था। मैने अखबारो मे उस छात्र के विषय मे खबरे प्रकाशित करवायी, इस उम्मीद मे कि उसे और उसके ज्ञान को सम्मान मिलेगा और इस तरह के और लोग सामने आयेंगे। इस तरह साथ आये लोगो का एक दल बनाकर सरकार से अनुरोध कर सकूंगा कि सर्प-दंश प्रभावित क्षेत्र मे इनकी सेवा ली जाये। चाहे तो इनके पारम्परिक ज्ञान का प्रमाणीकरण करवा ले। पर इस प्रक्रिया मे ज्ञान धारको के हित को किसी भी प्रकार से क्षति न पहुँचे। मैने अन्ध-विश्वास वाली संस्था के पास भी उसे भेजा। उसका

प्रस्ताव था कि संस्था के सदस्य या तो किसी सर्प-दंश से पीडित व्यक्ति को ले आये या फिर जानवरो को सर्प दंश करवाकर वह इलाज करके भी दिखा सकता है। पर संस्था के पास जाना उसके लिये भारी पडा। दूसरे ही दिन संस्था के प्रमुख का बयान आ गया कि यह अन्ध-विश्वास है और उसमे छात्र को यह उपचार बन्द करने की हिदायत दी गयी। वह बडा ही निराश हुआ। पर अखबारो मे खबर छपने का एक लाभ यह हुआ कि अस्पतालो के हाथ खडे कर देने के बाद मरीजो को लेकर उनके परिजन कृषि महाविद्यालय के हास्टल आने लगे जहाँ यह छात्र रहता था। फिर चोरी-छुपे उसे अस्पताल मे भी बुलाया जाने लगा। वह सरकारी चिकित्सको के बीच लोकप्रिय हो गया। उसने बहुत सी तस्वीरे खीची उन लोगो की जिनको उसने सरकारी अस्पतालो मे बचाया पर उसकी मजबूरी थी कि इस उपलब्धि को सार्वजनिक नही कर सकता था। यदि सार्वजनिक कर देता तो बवाल मच जाता और सरकारी डाक्टरो के सिर पर भी तलवार लटकने लग जाती है। यह बडी दुविधा वाली स्थिति थी पर मुझे उसके चेहरे पर संतोष नजर आता था। यह संतोष लोगो की जान बचाने का था। इस दौड-भाग मे वह अपनी पढाई पर ध्यान नही दे पाया और फेल हो गया। बाद मे भी यह क्रम जारी रहा और उसका अधिक समय अस्पताल मे कटने लगा। कुछ वर्षो बाद मुझे पता चला कि वह वापस अपनी नौकरी मे चला गया है।

काफी दिनो बाद वह मुझसे मिलने आया। उसने बताया कि अब अस्पताल जाना बन्द हो गया है। उस पर नुस्खे को सार्वजनिक करने का भारी दबाव था। दूर-दूर से चिकित्सक यह नुस्खा जानना चाहते थे। थक-हार कर उसने अपने गाँव मे ही रहकर यह सेवा करने का निर्णय लिया। मै बहुत क्षुब्ध था कि मै उसकी ज्यादा मदद नही कर पाया।

मै यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि वह विदेश मे जन्मा होता तो उसकी इच्छा पूरी हो गयी होती और वह अब तक शोधकर्ता के रुप मे नुस्खे को और अधिक शक्तिकृत कर चुका होता। आज के हमारे समाज ने उसके ज्ञान का सहारा तो लिया पर उसे मान्यता देने से इंकार कर दिया। भला कही और ऐसा छल होता है अपने ही देशवासी के साथ? नेशनल बुक ट्रस्ट की एक पुस्तक छपी थी काफी पहले साँपो पर। उसमे लिखा है कि देशी सर्प-विशेषज्ञ का ज्ञान मात्र ढोंग है। बस आज विज्ञान की पैरवी करने वाले इसे ही अंतिम सत्य मान बैठे है। यही उनके लिये गीता है। इससे आगे निकलकर वे नही सोचना चाहते । उनके इस रवैये से देश को और उसके पारम्प्रिक ज्ञान को बहुत बडी क्षति हो रही है और यह विलुप्तता के कगार पर है। यह विडम्बना ही है कि विदेशी ज्ञान हम अपने बच्चो को स्कूलो मे पढा रहे है पर अपने देशज ज्ञान के विषय मे बिल्कुल भी

नही बता रहे है। डॉ.एस.के.जैन जैसे वैज्ञानिको ने सर्प-दंश से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान का जो दस्तावेजीकरण किया है उसे दुनिया भर मे पूजा जाता है। हमारे बच्चे इस ज्ञान और डॉ. जैन जैसे लोगो को जानते ही नही है। आजादी के इतने सालो मे ढेरो विश्वविद्यालय खुले, नालेज कमीशन बन गया पर पारम्परिक ज्ञान के विषय मे शिक्षा देने और नयी पीढी को परिचित कराने के लिये विश्वविद्यालय तो दूर एक कोर्स भी नही बना। इस ज्ञान की परीक्षा किये बिना ही इसे अन्ध-विश्वास की श्रेणी मे डाल दिया गया। आज छत्तीसगढ की राजधानी से जब कोई शहरो मे पला-बढा व्यक्ति दो करोड से अधिक लोगो की परम्पराओ और विश्वासो को अन्ध-विश्वास घोषित कर देता है तो और लोगो की तरह मुझे भी उसकी नासमझी पर तरस आता है। छत्तीसगढ और उसके लोगो को समझने के लिये कम से कम एक जीवन ग्रामीण परिवेश मे बिताना जरुरी है ताकि हर विश्वास और परम्परा की जड को जाना जा सके। यह बात पूरे देश के लिये लागू होती है क्योकि भारत गाँवो मे बसता है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव - पंकज अवधिया

कुछ वर्षो पहले मै छत्तीसगढ की प्रसिद्ध केशकाल घाटी क्षेत्र मे चिडियो की विविधता पर जानकारी एकत्र कर रहा था। मै पिछले दस से अधिक वर्षो से इस घाटी मे चिडियो पर शोध करने जाता रहा हूँ। शुरु मे मुझे सडक के किनारे स्थित पेडो मे नाना प्रकार की चिडिया मिल जाती थी। पर अब जंगल मे काफी अन्दर तक जाना पडता है। इसके लिये बहुत से कारण उत्तरदायी है। इनमे से घाटी मे लगातार बढता ट्रेफिक भी एक है। पहले एक ट्रक घाटी से गुजरता था और फिर लम्बे समय तक खामोशी छायी रहती थी। अब यह शोर दिन हो या रात थमने का नाम ही नही लेता। तेज हार्न चिडियो के लिये बहुत मुश्किल पैदा कर रहे है। घाटी मे वैसे ही हार्न का अधिकता से प्रयोग जरुरी होता है। ऊपर से हर मन्दिर के सामने ड्रायवर द्वारा हार्न बजाने का जो दौर चला है उससे भी बहुत ज्यादा शोर पैदा हो रहा है।

मन्दिर चाहे छोटा हो या बडा हर गाडी बिना हार्न बजाये नही गुजरेगी। मेरा ड्रायवर कुछ ज्यादा ही आस्थावान है। वह चर्च और मस्जिद के आगे भी हार्न बजाता है। हाँ, मन्दिरो के सामने एक नही तीन बार हार्न बजाता है। जब हम शहरो से गुजरते है तो इस हार्न की ध्वनि से त्रस्त हो जाते है। जंगल मे भी जैसे ही कुछ पत्थरनुमा दिखा उसका हाथ हार्न पर चला जाता है। आखिर ये हार्न किसलिये? क्या यह अभिवादन का तरीका है? या आप अटैंडेंस लगवाना चाहते है कि मै गुजर रहा हूँ सामने से, आगे ध्यान रखियेगा। आखिर क्यो बजाया जाता है हार्न? मेरे इस प्रश्न से ड्रायवर झेप जाता है। मै भी ज्यादा जोर नही देता प्रश्नो पर। गाडी उसे ही चलानी है फिर उसे नाराज करके आफत क्यो मोल लेना भला। पर इस हार्न के शोर से बहुतो को तकलीफ होती है। मन्दिर के अन्दर बैठे साधक हार्न से परेशान रहते है। पूजास्थलो के आस-पास रहने वाले बिना-वजह रात-भर इस शोर को सुनते है। कोई बीमार हो या घर मे छोटा बच्चा हो तो यह मुसीबत और भारी लगने लगती है। इस शोर से वन्यजीवो विशेषकर चिडियो पर विपरीत प्रभाव पडता है। हमारे एक मित्र कहते है कि अभी तो फिर भी यह शोर कम है। अब नैनो का जमाना आने वाला है, तब देखना कैसा शोर होता है? पूजास्थलो के सामने हार्न बजाना निज आस्था हो सकती है पर चूँकि इससे बहुत से लोगो को नुकसान हो रहा है इसलिये इस पर अंकुश लगाने की पहल की जानी चाहिये।

शहरो मे कौवो की तेजी से कम होती संख्या पर्यावरणविदो को परेशान किये हुये है। कौआ महानगरो का प्रकृति प्रदत्त सफाई कर्मचारी है। जिस तरह से हम अपने शहरो को गन्दा कर रहे है, अब यह जरुरी हो गया है कि कौवे हमारे आस-पास रहे और अपनी भूमिका निभाये। यह बात मुझे आज तक समझ नही आयी कि प्राचीन समय से लेकर अभी तक बाल-साहित्यो मे कौवे जैसे जीवो को विलेन के रुप मे क्यो प्रस्तुत किया जाता रहा है? इस जगत मे सभी जीवो का महत्व है। सभी के प्रति समान भाव रखने की जरुरत है। फिर क्यो बच्चो को जीव विशेष के विषय मे उल्टी-सीधी और मनगढंत बात बतायी जाती है? क्या हमारे लेखको के पास जानकारी का अभाव है या वे जानबूझकर ऐसे साहित्यो की रचना कर रहे है?

पिछले दिनो मे एक स्कूल मै कौवे के जीवन के विषय मे चित्रो के माध्यम से बच्चो को बता रहा था। उन्हे तो छोडिये उनके प्राचार्य और अन्य गुरुजनो को भी यह विश्वास नही था कि कौवा इतनी अधिक सेवा करता है प्रकृति की। वे तो उसके खलनायक वाली छवि को ही जानते रहे थे। एक गुरुजन ने खडे होकर पूछा कि क्या यह सच है कि कौवे सिर्फ एक जगह जाकर ही मरते है और वह जगह है मौत की घाटी (वैली आफ डेथ)। स्कूल मे

इंटरनेट था और बच्चे इसका प्रयोग करते थे फिर भी मास्टर जी के इस प्रश्न को सुनकर मुझे एकाएक विश्वास नही हुआ कि कौवे की मौत के बारे मे उनकी ऐसी धारणा होगी। मैने उन्हे समझाया कि जैसे अन्य जीव मरते है वैसे ही कौवो की भी मौत होती है। फिर एक दिन जब मुझे कीटनाशको के कारण पास के गाँव मे कुछ कौवो के मरने की खबर मिली तो मै मास्टर जी को भी साथ ले गया। उन्होने मरे हुये कौवो को देखा और समझ गये है कि जहाँ मनुष्य है इन जैसे जीवो के लिये मौत की घाटी भी वही है। कीटनाशको से राष्ट्रीय पक्षी मोर के मरने की खबरे लगातार अखबारो मे आती रहती है। मोर के पंखो से जुडा हमारा प्रेम और अन्ध-विश्वास इस पक्षी के लिये अभिशाप बन गया है। इसे पवित्र होने का दर्जा क्या मिला हर कार्य के लिये इसके प्रयोग की होड सी लग गयी है। मैने मोर के पंखो के आधुनिक समाज द्वारा किये जा रहे उपयोगो की सूची बनायी तो दंग रह गया। पूजा से लेकर घरो की शोभा बढाने और विभिन्न उत्सवो मे पंखो का दिलखोलकर उपयोग हो रहा है। यहाँ तक कि बच्चे इसे अपनी किताबो के बीच मे रखना भी पसन्द कर रहे है इस आस मे कि इससे ज्ञान बढेगा। यह राष्ट्रीय पक्षी है, यह हम सब जानते है। यह हमे पढाया गया है। पर यह नही बताया गया है कि यह संरक्षण का मोहताज है और इसके पंखो से जुडा हमारा अन्ध-विश्वास इनके लिये जानलेवा बन गया है। मोर के शिकार पर पाबन्दी है पर फिर भी जिस सहजता से यह सर्वसुलभ है इसे देखकर यह तो स्पष्ट हो जाता है कि अपने आप झडने वाले पंख बाजार मे नही है। पता नही रोज कितने मोर हमारे अन्ध-विश्वास की बलि चढ रहे है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव -

- पंकज अवधिया

जंगलो मे अक्सर पहाडी नालो के साथ तरह-तरह की आकृति वाली शाखाए बहकर आ जाती है। छत्तीसगढ के भिम्भौरा गाँव की एक लडकी को ऐसे ही नाले से एक लकडी का टुकडा मिला जो कि बह कर आया था। उसने उसे ध्यान से देखा तो उससे प्रकाश निकल रहा था। लकडी से अपने आप प्रकाश निकलना उसके लिये अनहोनी बात थी। उसने इसे अपने पास रख लिया और गाँव ले आयी। गाँव मे यह खबर जंगल मे आग की तरह फैल

गयी ठीक उसी तरह जिस तरह गणेश जी के दूध पीने की खबर लन्दन से लेकर देश भर मे सभी जगह फैल गयी थी। लोग इकठ्ठे हो गये। बुजुर्ग भी एकत्र हुये। उनके लिये भी यह अजूबा था। उन्होने न तो इसके बारे मे सुना था न ही कभी देखा था। यह सब के लिये किसी चमत्कार से कम नही था। इसे चमत्कार मानते हुये इसकी पूजा आरम्भ हो गयी है और इसे लाने वाली बालिका की भी पूजा होने लगी। नारियल और प्रसाद बँटने लगे। जैसे ही यह खबर फैली दूर-दूर से लोग आने लगे और मेले जैसा दृश्य हो गया।

बात रायपुर तक भी पहुँची। उस समय छत्तीसगढ मध्यप्रदेश का ही एक हिस्सा था। शहर से पत्रकार भी पहुँच गये। अन्ध-विश्वास पर काम करने वाली संस्था भी सक्रिय हो गयी। उस समय मै उसका सदस्य नही था। संस्था के लोग गाँव पहुँचे और लोगो को बताना शुरु किया कि यह चमत्कार नही है। एक वनस्पति विज्ञानी के सन्दर्भ से कहा गया कि इस चमक का कारण लकडी के ऊपर जमी फंगस हो सकती है। वैज्ञानिक साहित्यो मे इस तरह के फंगस का वर्णन मिलता है। यह वनस्पति विज्ञानी का मात्र कयास था। इसी आधार पर गाँव के लोगो को समझाया गया और फिर उनसे पूजा-पाठ बन्द करने को कहा गया। गाँव वालो ने विरोध किया और जैसा कि उस समय के अखबारो ने प्रकाशित किया कि काफी मुश्किल के बाद उन्होने पूजा-पाठ बन्द किया। संस्था का यह कारनामा सुर्खियो मे छाया रहा। फिर धीरे-धीरे बात आयी गयी हो गयी।

उस घटना के बाद मै देश भर के जंगलो मे घूमा और लोगो से इस तरह की लक़डी के बारे मे पूछा तो सभी ने इस विषय मे जानकारी होने से इंकार कर दिया। मैने देश के वैज्ञानिक साहित्यो को भी खंगाला पर मुझे कही भी इस तरह की लकडी के विषय मे जानकारी नही मिली। विज्ञान सम्मेलनो मे इस बारे मे मंच से सवाल किया तो वैज्ञानिक मित्रो ने इसे मजाक समझा। संस्था का सदस्य बनने के बाद मैने यह पता लगाने की कोशिश की कि उस घटना के बाद लकडी गयी कहाँ? मुझे बताया गया कि उस वनस्पति विज्ञानी के पास लकडी अंतिम बार देखी गयी है। कुछ ने बताया कि लकडी गाँव मे ही रह गयी थी। उसका प्रकाश मध्यम हो गया था। और कोई जानकारी नही मिली। वर्षो बाद मै उस गाँव मे पहुँचा इस उम्मीद मे कि शायद लकडी मिल जाये और उस लडकी से भी बात हो जाये। हो सकता है इस तरह की और लकडी बहकर आयी हो। पर निराशा ही हाथ लगी। मैने अपने अंग्रेजी लेखो मे जब इस घटना का जिक्र किया तो अमेरिका सहित दूसरे बडे देशो से वैज्ञानिको के सन्देश आने लगे। उन्होने कहा कि यदि यह लकडी खो गयी है तो समझ लिये इससे विश्व के वैज्ञानिक जगत को बडी क्षति हुयी है। चाहे

प्रकाश कितना भी निकलता हो यदि वह लकडी आज होती तो इस पर वृहत अनुसन्धान हो रहे होते।

मै लकडी के एकत्र किये जाने से लेकर इसकी पूजा-पाठ बन्द करने के घटनाक्रम को कुछ इस तरह से देखना चाहता यदि उस समय मौका मिलता तो। जैसे ही इसके विषय मे सूचना मिली इसकी गम्भीरता को समझते हुये समाजसेवियो को गाँव जाकर उस लडकी को ऐसी अद्भुत चीज दुनिया के सामने लाने के लिये धन्यवाद कहना चाहिये था। उसने इसे लाकर कोई जुर्म तो किया नही था। फिर उससे विस्तार से इसके विषय मे जानकारी लेनी चाहिये थी। उस स्थान पर जाना चाहिये था जहाँ से यह मिली थी। हो सकता है कि कुछ और नमूने मिल जाते। इसकी तस्वीर देशभर मे छपवानी चाहिये थी ताकि वनीय क्षेत्र मे रहने वाले लोग नयी जानकारी दे सके। वनस्पति विज्ञानी को कयास लगाने की बजाय राष्ट्रीय स्तर के वैज्ञानिको से सलाह लेनी चाहिये थी। जरुरत पडने पर उन्हे यहाँ आमंत्रित करना था। ऐसी दुर्लभ लक़डी आखिर राष्ट्र की सम्पत्ति थी जो अब खो चुकी है और जिसका रहस्य अभी तक रहस्य ही है। पूजा-पाठ बन्द करवाने का उद्देश्य इसे बन्द कराने वाले ही जाने पर मुझे लगता है कि अपनी शान दिखाने के नाम पर आनन-फानन मे मामले को निपटा दिया गया और इस घटना को भुला दिया गया।

आज भी वनीय अंचलो से बहुत सी अजूबे भरी चीजे शहरो तक पहुँचती है। पर ज्यादातर मामलो मे शहर मे बैठे विशेषज्ञ क्लिष्ट शब्दो मे इसकी व्याख्या कर अपनी विद्वता प्रदर्शित करने का मौका नही छोडते है। मीडिया विशेषज्ञो के साथ होता है। वनवासी की आवाज कोई भी सामने नही लाता। परिणामस्वरुप बहुत से भागो मे ग्रामीण युवा अपने बुजुर्गो के ज्ञान को अन्ध-विश्वास मानने लगे है। वे स्कूल-कालेजो मे जाते है और आधुनिक शिक्षा ग्रहण करते है। इस शिक्षा मे बुजुर्गो के ज्ञान का एक भी अंश शामिल नही किया जाता है। जब मै सुदूर गाँवो मे बुजुर्गो के पास बैठकर उनसे इस ज्ञान की चर्चा करता हूँ तो वे आश्चर्यचकित हो जाते है। धीरे-धीरे दिव्य ज्ञान का भंडार लिये यह पीढी हमारे बीच से जा रही है। हमे इससे बहुत बडी क्षति हो रही है। इसलिये मै बार-बार उम्र के अंतिम पडाव मे पहुँच चुके इन असली विशेषज्ञो को महत्व देने की गुहार योजनाकर्ताओ से करता रहता हूँ। भले ही ये पुराने समझे जाने लगे पर भविष्य़ के सफल भारत की असली कुंजी इन्ही के पास है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

जैसे ही सर्प-दंश से पीडित कोई व्यक्ति गणेश के पास पहुँचता है वह तुरंत ही अपने चार-पाँच चेलो को बुला लेता है। यदि जहरीले सर्प का दंश है तो वे बिना विलम्ब मुँह मे धी और जडी-बूटियो का लेप लगाकर जहर खीचना आरम्भ करते है। मुँह से जहर खीचते जाते है और बगल मे थूकते जाते है। उसके शिष्य भी इस प्रक्रिया को दोहराते है। जल्दी ही मरीज ठीक होकर काम मे लग जाता है। गणेश ने अब तक सैकडो जाने बचायी है और उसके जीवन मे उसके गाँव मे एक भी व्यक्ति आज तक सर्प दंश से नही मरा है। दूर-दूर से उसके पास मरीज आते है। एंटी-वेनम के लिये कुछ घंटो की शर्त है पर गणेश का कहना है कि मरीज मे जीवन का अंश रहना चाहिये फिर वह उसे बचा सकता है। यदि मरीज खाने-पीने की स्थिति मे होता है तो उसे जडी-बूटियो से ठीक किया जाता है पर यदि मरणासन्न स्थिति मे हो तो फिर मुँह से जहर खीचने के अलावा कोई विकल्प नही होता। उसने अपने जीवन मे 25 से अधिक विषैली जातियो का विष निकाला है। मरीज की जाने बचाने की उसकी फीस है एक नारियल और सवा रुपये। हाँ, आपने ठीक पढा, एक नारियल और सवा रुपये। फिर भी यह दुखद बात है कि बहुत से मरीज इतना भी उसे नही देते है। फिर भी उसे किसी भी प्रकार की शिकायत नही होती।

आज अलसुबह से मै गणेश के साथ था। विभिन्न पहलुओ पर चर्चा करता रहा। जंगलो से लायी गयी जडी-बूटियाँ उसे भेट की और बदले मे उसने मुझे अपने पारम्परिक ज्ञान से परिचित कराया। वह साल भर साँप पकडता तो है पर जहर निकालने के पक्ष मे कभी नही रहता। केवल ऋषि पंचमी के दिन पकडे गये साँप का जहर वह निकालता है। वह और उसके शिष्य़ इसी दिन जडी-बूटियो का सेवन कर इस विष का पान करते है। इसी दिन वह एक अनुष्ठान के लिये सर्प के जहरीले दाँत तोडता है। वह सेठो द्वारा साँप को तिजोरी मे रखने के खिलाफ है। सेठ अपने धन की रक्षा के लिये इन दाँतो को अपनी तिजोरी मे रखते है। गणेश का कहना है कि इन दाँतो मे विष का अंश भी रहा तो ये इसे रखने वाले व्यक्ति के लिये अभिशाप बन सकता है। वह तो यह भी कहता है कि यदि साँप की चमडी या मरे हुये साँप के किसी हिस्से से पैरो का जख्म घिस जाये तो जहर फैलने की सम्भावना रहती है।

कृषि मे रसायनो के बढते प्रयोग ने साँपो पर विपरीत असर डाला है। गणेश बताता है कि पहले जब एल्ड्रीन का प्रयोग होता था तो ढेरो साँप मर जाते थे। अब थीमेट और हिनोसान से बडी संख्या मे साँप-बिच्छुओ का खात्मा हो रहा है। दोनो ही रसायनो का प्रयोग खेती मे बडी मात्रा मे होता है। साँपो की कमी से नेवले और चूहो की संख्या मे बेतहाशा बढोतरी हुयी है।

गणेश को रायपुर के जाने-माने अस्पताल एमएमआई के चिकित्सको ने हुनर दिखाने के लिये आमंत्रित किया। जब वह जहर खीचने को तैयार हुआ तो डाक्टरो ने उसे रोका और हिदायत दी कि इससे मुँह मे छाले हो सकते है। पर उसने कहा कि वह सालो से इस कार्य को कर रहा है और उसने इसे करके दिखा भी दिया। मै आज जब तक उसके साथ रहा पूरा क्षेत्र उसे नमन करता रहा है और वह सबका अभिवादन स्वीकार करता रहा।

इस साल राज्य के मुख्यमंत्री उसके गाँव मे हेलीकाप्टर से उतरे तो उसने एक नाग मन्दिर के लिये कुछ आर्थिक सहायता माँगी। उसे विधायक से मिलने कहा गया। विधायक ने एक लाख रुपये की घोषणा की तो गणेश के शिष्यो ने इसे अखबारो मे छपवा दिया। इस पर उसे बहुत डाँट पडी और विधायक ने अब तक दस रुपये तक नही दिये है-ऐसा गणेश ने दुखभरे स्वर मे मुझसे कहा। इस प्रकृति पुत्र के 250 से अधिक शिष्य है। इसे वह एक बडा परिवार मानता है। ये सभी शिष्य राज्य भर मे अपनी नि:शुल्क सेवाए दे रहे है।

सर्प दंश वाले स्थान पर चीरा लगाकर मरीज को बहुत जल्दी बचाया जा सकता है-गणेश का ऐसा कहना है पर ऐसा करने पर स्थानीय पुलिस वाले उसे परेशान करते है। इसलिये वह और उसके शिष्य जान जोखिम मे डालकर मुँह से जहर खीचते है। मुझे साँपो से डर लगता है फिर भी हिम्मत करके जब मैने उसका शिष्य बनने की इच्छा जतायी तो उसने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। मै अपने को बहुत ही सौभाग्यशाली मान रहा हूँ।

मैने गणेश के काम पर एक छोटी सी फिल्म बनायी है और ढेरो तस्वीरे ली है। जल्दी ही आप इन्हे इंटरनेट पर देख पायेंगे। गणेश जैसे लोगो से जब मै मिलता हूँ तो लगता है कि मै असली भारत से मिल रहा हूँ। नाम-मात्र के पैसे लेकर अपने जान पर खेलते हुये सैकडो लोगो की जान बचाने वाला गणेश उसके अपने देश मे सम्मान के लिये तरस रहा है। ऐसे धरती पुत्रो की सही जगह देश के नॉलेज कमीशन जैसे संस्थानो मे होनी चाहिये ताकि वे देश भर मे सही मायने मे पारम्परिक ज्ञान के माध्यम आम लोगो की सेवा कर

रहे भारतीयो के हित मे कुछ सशक्त कदम उठा सके। मुझे विश्वास है कि आप भी इससे सहमत होंगे। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“जैसे ही हम टीकावन (तिलक) के लिये लडकी वालो के घर पहुँचे तो एक अजीब सी महिला पर नजर पडी। उसने रस्म अदायगी के दौरान मेरा एक बाल तोड लिया। मेरी समझ मे कुछ नही आया। मुझे अपना बाल उसी समय वापस ले लेना चाहिये था। उस महिला ने बाल को अन्य बालो के साथ गूँथा और एक पुतली (गुडिया) तैयार कर ली। अब वह जो गुडिया को करती उसका सीधा असर मुझ पर होता। वह पेट पर वार करती तो मेरे पेट मे असहनीय दर्द होता है। वह उसे पटक देती तो मै भी उससे कोसो दूर अपने स्थान पर गिर जाता था।“ किशोर कुमार के सदाबहार गीतो के बीच मुझे कार की पिछली सीट से मेरे एक ग्रामीण सहायक की बाते सुनायी पड रही थी। इस उम्मीद मे कि मै सामने वाली सीट पर बैठा हल्की नीन्द मे होऊँगा, वह अपने साथी और ड्रायवर से बतियाये जा रहा था। इस सहायक की पहली शादी सफल नही हुयी थी। शायद वह इसी का किस्सा सुना रहा था। बालो से पुतली बनाने और फिर उसके माध्यम से किसी पर वश करने की बात से मुझे बचपन मे पढी फैंटम की एक कहानी याद आ गयी। हम लोग हिन्दी मे फैटम को पढते थे इसलिये वह हमारे लिये वेताल हुआ करता था। वेताल याने चलता-फिरता प्रेत, ली फाक और बेरी द्वारा। वेताल की एक कथा मे राष्ट्रपति लुआगा को मारने के लिये कुछ लोग षडयंत्र करते है तो आफ्रीकी ओझाओ की मदद लेते है। ओझा लुआगा का पुतला बनाते है और फिर उसे पिन चुभोकर धीरे-धीरे मारते जाते है। असल मे दूसरे लोग लुआगा पर हमला करने वाले होते है पर आम लोगो को बताया जाता है कि पुतले को पिन चुभोने का असर हो रहा है। ‘तिल-तिल कर मरेगा लुआगा’-यह डायलाग आज तक मुझे याद है।

हमारी गाडी घने जंगलो से गुजर रही थी। सहायक ने अपनी बात कहनी जारी रखी। “उस महिला ने मुझ पर जादू करने तीन शोधे को लगा रखा था। मै अपने घर मे रहता तो

बीमार पड जाता पर जैसे ही जीजा के घर जाता, सारी समस्याए हल हो जाती। मुझे तीन महिने बाद नवरात्रि मे बलि देने की तैयारी थी। पर अचानक ही एक तांत्रिक आ गया जिसने मुझे कडे परिश्रम के बाद बचा लिया।“ मेरे सहायक की बाते रुचिकर थी। कम से कम रास्ता काटने के लिये तो ऐसी बातो की माँग सदा रहती है। जो कहानी उसने अभी-अभी खत्म की थी उसे मै देश भर मे अलग-अलग लोगो से सुन चुका हूँ। बस पात्र बदल जाते है। यहाँ शोधे को पीछे लगाने की बात कही गयी। (मुझे उम्मीद है कि आप इस लेखमाला को शुरु से पढ रहे होंगे। इसलिये मै एक ही बात को बार-बार दोहरा नही रहा हूँ। आपने पहले पढा ही है कैसे गाँव की अकेली महिला को जादू-टोना करने वाली टोनही कह दिया जाता है छत्तीसगढ मे। शोधे को 12 टोहनियो से मिलकर अधिक शक्ति वाला पात्र बताया जाता है।) मध्यप्रदेश मे इस तरह की कथाओ मे नजर की बात जोड दी जाती है। झारखंड मे यह किसी और रुप मे सामने आता है। यह काला जादू और इससे जुडी एक ही तरह की कथाए आफ्रीका से लेकर पूरे भारत और इसी तरह पूरी दुनिया मे फैली हुयी है और सारी की सारी महिलाओ को निशाना बनाती है। चाहे ग्रामीण समाज हो या शहरी समाज किसी ने किसी रुप मे यह आम लोगो के मन मे दहशत के रुप मे उपस्थित है।

मुझे कुछ न कहता पाकर सहायक ने अपनी जीवन-गाथा जारी रखी। ड्रायवर ने उससे पहली शादी के असफल होंने के बाद वर्तमान प्रेमिका के बारे मे पूछा तो वह झेप गया। उसने अपने आप को फँसता और प्रेमिका के बारे मे राज खुलते देखकर एक और कथा रच डाली। उसने कहा “जब मै पहले पहल प्रेमिका के घर गया तो उसने मुझे खाना खिलाया। मुझे और अपने पति को साथ-साथ बिठाया।“ ओह माई गाड। इसका मतलब है इसकी प्रेमिका पहले से शादीशुदा है-मैने मन ही मन कहा। “ प्रेमिका ने हम दोनो को सब्जी परोसी। एक ही सब्जी पर दोनो को अलग-अलग पात्र मे दिया। मुझे परोसी गयी सब्जी मे उसने कुछ वनस्पतियाँ मिला दी।“ वनस्पतियो का नाम सुनकर मेरे कान खडे हो गये।“ ये वनस्पतियाँ मोहनी थी। इस सब्जी को खाने के बाद मै मोहपाश मे बन्ध गया और चाहकर भी उससे छूट नही पा रहा हूँ।“ मुझे मोहनी का नाम सुनते ही बडी हँसी आयी। मोहनी वाली वनस्पतियो की कथा भी कपोल-कल्पित है। मैने इस नाम की कितनी ही वनस्पतियो की परीक्षा की पर इसे देने वाला तांत्रिक मुझे मोहने मे सफल नही हुआ। भारतीय समाज नारी को देवी के रुप मे पूजता है पर अपने घर और आस-पास की नारी को पग-पग मे अपमानित करता रहता है। अब सहायक की ही कथा सुने। किसी का बसा-बसाया परिवार उजाडने का काम वह खुद कर रहा है पर पकडे जाने पर कैसे चतुराई से मोहनी का नाम लेकर अपनी प्रेमिका को कुसूरवार ठहरा रहा है। अपने

दिल फेक गुण के कारण उसकी शादी असफल हुयी पर अपनी गल्ती को न स्वीकारते हुये वह बालो और पुतली वाली कहानी गढ रहा है। ऐसे ही ढाल की तरह जब तक इस तरह की कथाओ को आधुनिक समाज अपनाता रहेगा तब तक हम कितनी भी कोशिश कर ले समाज से अन्ध-विश्वास को नही हटा सकते है।

"जब पेट मे दर्द हुआ तो डाक्टर के पास क्यो नही गये? कौन सी तारीखे को तुम गिरे थे। उस दिन तो तुम यहाँ मेरे घर पर थे।" मैने सहायक पर प्रश्नो की झडी लगा दी तो वह घबरा गया। जल्दी ही उसने आत्म-समर्पण कर दिया। मैने उसे समझाया इस छलावे से बाहर निकलो। कहानियाँ गढकर अपने आप को धोखे मे मत रखो। बस इससे ज्यादा मैने कुछ नही कहा। शायद उसे मेरी बात बुरी लगी। उसने काम छोड दिया। बात आयी-गयी हो गयी। थोडे दिनो बाद उसका फोन आया। चहकते हुये बोला कि सर मै पत्नी से माफी माँगकर उसे वापस ले आया हूँ। प्रेमिका को छोड दिया है। अब मै सुधर रहा हूँ। मुझे विश्वास नही हुआ। मैने सोचा कि हो सकता है कि यह नयी कथा हो पर बाद मे ड्रायवर उसके घर होकर आया और इसकी पुष्टि की। मेरा सहायक काले जादू की कथाओ से फिलहाल मुक्त हो गया है। पर ये कथाए अब भी विद्यमान है समाज मे। और सुविधानुसार ढाल के रुप मे अपने कुकर्मो को छुपाने चतुर इसका प्रयोग करेंगे। इससे अन्ध-विश्वास को बढावा मिलेगा और महिलाओ पर जुल्म होते रहेंगे। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

छोटी-सी पहाडी के नीचे बसे एक गाँव के पास हर्रा के पेड को देखकर मै रुक गया। पेड फलो से लदे हुये थे। मै तस्वीरे उतारने लगा। मेरा ड्रायवर और सहयात्री दो ग्रामीण गाडी से उतरकर आस-पास वनस्पतियो को खोजने लगे। दूर खेतो मे किसान अपने परिवार सहित काम कर रहे थे। हर्रा के बाद मै पास के महुआ पेड मे उग रहे आर्किड की तस्वीरे उतारने मे जुट गया। अचानक 'भाग साहब भाग' की आवाज से मेरा ध्यान टूटा। पीछे देखा तो तीनो लोग हडबडी मे गाडी की ओर भाग रहे थे। गाडी याने टाटा इंडिका। वे जल्दीबाजी मे गाडी के अन्दर घुस गये। लगातार मुझे आवाज लगाते रहे। उनकी आवाज

मे डर था। फिर जब उन्हे कार सुरक्षित नही जान पडी तो वे पास के घरो की ओर दौडने लगे। उन्होने पीछे मुडकर देखना बन्द कर दिया था। घरो के दरवाजे खुलवाये और फिर अन्दर गायब हो गये। वहाँ से फिर आवाजे आने लगी, ‘भाग साहब भाग’। मैने पहले समझा कि तेन्दुआ या भालू आ गया होगा। पर आस-पास कुछ दिखा नही। दिन मे उनके आने की सम्भावना कम थी क्योकि वे दिन मे ऐसे घने जंगलो मे रहना अधिक पसन्द करते है जहाँ रोशनी नही आती। इससे वे आँखो मे झूमने वाले कीडो से मुक्त रहते है। रात मे वे निकलते है।

मै आवाजे सुनकर घबरा रहा था पर मेरी समझ मे कुछ आ नही रहा था। अचानक कुछ दूरी पर एक महिला नजर आयी जिसके बाल बिखरे हुये थे और कपडे फटे से थे। वह घूरकर मेरी ओर ही देख रही थी। उसका घूरना अच्छा नही लग रहा था पर और कोई विशेष उसमे नही था। क्या वे तीनो इससे डर पर भागे है? मन मे प्रश्न आया और दूसरे पल ही लगा कि नही तीन हट्टे-कट्टे लोग भला क्यो इस तरह से भागेंगे, वो भी एक महिला से डरकर। इस बीच दो लोग मेरे पीछे आये। वे नीम की डाल रखे हुये थे और मुझे बलात खीचते हुये ले गये पास के घरो की ओर। वहाँ मुझे बताया कि वह जादू-टोना करने वाली महिला है। आप बाल-बाल बच गये।

मैने दूर से उस महिला पर नजर डाली पर फिर भी मुझे डर नही लगा। मैने इन लोगो का विरोध किया और पास जाकर बात करने की सलाह दी। पर कोई तैयार नही हुआ। यदि शहर होता तो मुझे विश्वास है बहुत से लोग तैयार हो जाते। मेरे बहुत कहने पर उन्होने नीम की डाल लेकर कुछ दूर तक चलने की सहमति दी पर अनमने ढंग से। पास गये तो महिला को देखकर यह स्पष्ट होने लगा कि वह मानसिक रुप से असंतुलित है। उसने शुरुआत से अब तक हमारा कोई बिगाड नही किया था। हमारे साथी बेकार ही डर रहे थे। एक बार गाजर घास नियंत्रण के लिये पास के मानसिक चिकित्सालय मे मुझे बुलाया गया। वहाँ मुझे इस तरह की बहुत सी महिलाए नजर आयी थी। उनका जादू-टोने से कोई सम्बन्ध नही था। यदि उस चिकित्सालय मे ये तीन पहुँच जाते तो शायद पल भर मे प्राण छोड देते।

आधे घंटे यूँ ही बीत गये। मुझे बोरियत होने लगी। अचानक एक ने चिल्लाकर कहा, ‘देखो, देखो वह गायब हो गयी।‘ गायब हो गयी? मैने उस ओर देखा तो वह सचमुच वहाँ नही थी। पर ध्यान से देखा तो एक चट्टान के पीछे उसकी साडी का किनारा दिखा। आगे बढे तो पता चला कि वह चट्टान की आड मे बैठ गयी थी। हम उससे डर रहे थे पर उसके चेहरे को देखकर साफ दिखता था कि वह हमसे ज्यादा डरी हुयी थी। मैने उन

लोगो को घुडका ‘ये तो यहाँ बैठी है। बेकार मे गायब हो गयी है कहकर भ्रम फैला रहे हो। यदि हम भाग जाते तो कभी इस सत्य का पता कभी नही लगता।‘ मैने गाडी मे रखे केले निकाले और पास मे रखकर आ गया। उसके चेहरे के भाव और गहरे हो गये। उसने केले नही उठाये बल्कि कुछ दूर खिसक गयी। उसे अकेला छोडकर हम गाँव के अन्दर आ गये। लोगो से पूछा तो वे बोले ‘किस्मत की मारी है बेचारी। उसके पाँच बच्चे थे। एक-एक कर सभी गुजर गये और पिछले साल पति भी चला गया। दर-दर की ठोकरे खाती है। मौकापरस्त लोग उसे परेशान करते है। पहले कुछ खाने का प्रलोभन देते है फिर – फिर तो आप जानते ही है साहब।‘ हमे समझ आ गया कि क्यो उसने हमसे फल नही लिया। बहुत सोचा पर समझ नही आया कि कैसे इस महिला की मदद की जाये। पास के एक बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक मे मिलना हुआ तो उम्मीद की किरण दिखी। उसने कहा कि मै औषधीयो से उसकी चिकित्सा कर सकता हूँ यदि गाँव वाले अनुमति दे तो। अब राह आसान हो गयी थी। थोडी सी बातचीत और पैसो से उसका इलाज शुरु हो गया।

भले ही मैने होम्योपैथी की पढाई की है और मनुष्यो से ज्यादा पौधो पर इन दवाओ का प्रयोग किया है पर मुझे ऐसा लगता था कि होम्योपैथिक दवा इग्नीशिया एमारा की एक खुराक उसे ठीक कर सकती है। आज उस घटना को सालो हो गये। कुछ ऐसी व्यवसायिक मजबूरियाँ हो गयी कि मै उस गाँव मे अब तक नही जा पाया हूँ। पर मुझे विश्वास है कि अब सब कुछ सुधर गया होगा। मै यह कर नही पाया पर मेरा बस चलता तो अपने तीनो साथियो को कुछ समय तक मानसिक चिकित्सालय मे अवश्य भर्ती करवाता क्योकि असली मानसिक असंतुलन तो उनमे था। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

कौन-सा पेड आपके लिये कल्पवृक्ष है? यह प्रश्न जब मैने छत्तीसगढ के छुरा क्षेत्र के उन किसानो से पूछा जो कि पास के जंगलो मे उग रहे हर्रा के पेडो से कच्चे फल एकत्र कर रहे थे तो उन्होने हरे फलो को दिखाया और बोले हम इन फलो को घर ले जाकर कुचलेंगे और फिर इसे लेप के रुप मे अपने पैरो मे लगायेंगे। उन भागो मे जो कि धान के खेतो

मे पानी मे लगातार डूबे रहने के कारण गल रहे है। यह लेप पुराने जख्मो को ठीक करेगा और साथ ही आने वाले दिनो मे पैरो को गलन से बचायेगा। हमारे लिये तो आज हर्रा का पेड ही कल्पवृक्ष है। यही हमारी संजीवनी है।

अम्बिकापुर के अजीरमा गाँव मे जब मै छात्र जीवन के दौरान वानस्पतिक सर्वेक्षण कर रहा था तब मुझे रोहिणी सरकार नामक सज्जन के घर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होने अपने घर के सामने निशिन्दी का पेड लगा रखा था। इसे आपने घर के सामने क्यो लगाया है? वे बोले कि यह बुरी हवा से हमारे घर और सदस्यो की रक्षा करता है। फिर उन्होने इसके उपयोग गिनाने आरम्भ किये तो यह मुझे बुरी हवा से बचाने वाले पेड की जगह कल्पवृक्ष प्रतीत होने लगा। वे निशिन्दी की छाल और पत्तियो से कीटनाशक तैयार कर धान और सब्जियो की फसल को कीटो से बचाते थे। कभी-कभी जब कीट इससे नियंत्रित नही होते थे तो वे नीम और आस-पास उग रहे खरपतवार समझे जाने वाले पौधो का प्रयोग इसके साथ करते थे। आज भी देश के बहुत से भागो मे निशिन्दी की पत्तियो का प्रयोग रोहिणी की तरह जैविक खेती कर रहे किसान करते है। अन्न संग्रहण के लिये जो मिट्टी के बडे-बडे पात्र बनाये जाते है उनके निर्माण के समय निशिन्दी की पत्तियो को मिट्टी के साथ मिलाया जाता है। देश के पारम्परिक चिकित्सक इसकी लकडी से जूते बनाते है और फिर इन्हे उन रोगियो को कुछ समय तक पहनने की सलाह देते है जो कि वात रोगो से परेशान रहते है। ऐडी के वात के लिये तो यह राम बाण है। वे युवा जिन्हे रात को ठीक से नीन्द नही आती है और जो स्वप्न-दोष से परेशान रहते है उन्हे इसकी तीन पत्तियो को सिर के नीचे रखकर सोने की सलाह दी जाती है।

पिछले सप्ताह मुझे औषधीय धान की खेती कर रहे किसान बिसाहू राम जी से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। मेरे साथ क्षेत्र के कुछ पारम्परिक चिकित्सक भी थे। उनसे लम्बी चर्चा के बाद जब हम चलने को तैयार हुये तो उनके चेहरे पर दर्द के भाव देखकर हमने उनसे कारण पूछा। उन्होने बताया कि बाये पैर मे दर्द है। हमने जाँचा-परखा तो समस्या जोडो के दर्द से सम्बन्धित निकली। अब हम लोगो ने अपने ज्ञान से उन्हे सरल उपाय बताने आरम्भ किये। सबसे सरलता से फुडकर का पौधा मिल जाता है पूरे देश मे। मै कुछ पत्तियाँ तोड लाया फिर तेल मे उसे सेककर उनके प्रभावित पैर को सेकने लगा। उन्हे कुछ राहत मिली। इस बीच पारम्परिक चिकित्सक नेगुर की डाल ले आये। आनन-फानन मे डाल को पानी मे उबाला गया और वाष्प को प्रभावित पैर की ओर भेजा गया। उन्हे ज्यादा आराम मिला। नेगुर माने निशिन्दी। मुझे बरबस ही रोहिणी जी की याद आ गयी।

किसान इन दो सरल उपायो से प्रसन्न हुआ और हमे धन्यवाद दिया। यदि ये उपाय नही किये जाते तो उन्हे रोज दर्दशामक के इंजैक्शन लगवाने पडते। साथ आये पारम्परिक चिकित्सको ने उन्हे कुछ और आंतरिक औषधीयाँ बतायी। हमने गुड की चाय पी और देश के ज्ञान को देश मे ही बाँटकर धन्य हो गये।

भले ही आज का हमारा शहरी समाज ग्रामीण आस्था को अन्ध-विश्वास माने पर आज भी इसी आस्था के कारण गाँवो मे पुराने वृक्ष और इनसे सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान आम लोगो को राहत पहुँचा रहे है। शहरो मे पतले विदेशी पौधो को लगाकर अखबारो मे वृक्षारोपण करते हुये तस्वीरे छपवा दी जाती है और सालो तक एक ही स्थान पर वृक्षारोपण का प्रपंच जारी रहता है। जब गाँव के लोग पेडो के प्रति अपनी आस्था जताते है तो वे चिढकर उन्हे पिछडा कहने लगते है।

आमतौर पर छत्तीसगढ मे हरियाली अमावस्या के दिन सुबह ही से घरो मे नीम की डाल लगा दी जाती है। इस बार इस दिन मै वनीय क्षेत्रो मे था। वहाँ जामुन से लेकर भिलावा तक के पेडो की डाल मैने घरो मे देखी। वापस शहर लौटा तो मित्र के नन्हे बालक ने उत्साहित होकर नीम की डाल दिखायी। उसका उत्साह देखते ही बनता था। यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी आगामी पीढी को अपनी परम्पराओ के विषय मे वैज्ञानिक तथ्यो के साथ बताये। आज के बच्चे विशेषकर शहरी बच्चे तो घरो मे चीनी घंटियाँ ही देख पाते है। जब उन्हे नीम, भिलावा जैसी वनस्पतियो से परिचय मिलता है तो एक अलग ही जोश उनमे दिखता है।

पिछले वर्ष मै नियमगिरि के अलाबेली गाँव के पारम्परिक चिकित्सक लक्सा माँझी से मिला तो अल्प समय मे ही उन्होने पलाश के इतने सारे उपयोगो की जानकरी दी जितनी कि हमारे प्राचीन साहित्यो मे भी वर्णित नही है। उन्होने बताया कि जंगल मे प्रत्येक पेड की अपनी विशिष्ट भूमिका है। एक प्रजाति का खात्मा माने पूरे जंगल मे असंतुलन। आज इसी तरह की बात वे लोग कर रहे है जिन्होने क्लाइमेट चेंज का शोर मचाया हुआ है। लक्सा का गाँव खतरे मे है। उसके जंगल भी खतरे मे है। आज वहाँ बाक्साइट का खनन किया जाना है। पूरा नियमगिरि तबाही की कगार पर है। जिन पेडो ने लक्सा जैसे पारम्परिक चिकित्सको के माध्यम से लाखो जाने बचायी, वे कट रहे है। हाथियो के वे समूह जो लक्सा के घर के पास से गुजरते थे या दुर्लभ सर्प जिनका जहर लक्सा ने लोगो के खून से अलग किया था अब खत्म हो जायेंगे। जिन लोगो ने गाँवो और जंगलो मे बसने वालो के दर्द को नही समझा वे यहाँ उत्खनन करेंगे और वैसे ही लोगो ने उन्हे इसकी सरकारी अनुमति दी है।

आज जहाँ नन्दी को पानी पिलाकर और गणेश जी को दूध पिलाकर हमारा शहरी समाज अपनी खिल्ली उडवा रहा है वही हमारा ग्रामीण समाज अपनी विज्ञान सम्मत परम्पराओ के माध्यम से पेडो और प्रकृति के दूसरे घटको को बचा रहा है। शहर का विश्वास आस्था और गाँव का विश्वास अन्ध-विश्वास- ऐसे नारो को बुलन्द करने वालो के हौसले पस्त करने की जरुरत है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

आई.आई.टी., खडगपुर से तकनीकी सहायक का साक्षात्कार देकर लौटते हुये मै ट्रेन मे रिजर्वेशन की तलाश मे भटक रहा था। ट्रेन मे तिल रखने तक की जगह नही थी। थकहार कर मै टायलेट के पास बैठे अपने ही जैसे यात्रियो के साथ बैठ गया। एक सहयात्री समय काटने के लिये लोगो का हाथ देख रहा था और विस्तार से सब कुछ बता रहा था। पास बैठे पिता-पुत्र की बारी आयी। पुत्र का हाथ देखते ही उसके माथे पर चिंता की लकीर उभर आयी। वह कुछ नही बोला। पिता को आशंका हुयी। वह पुत्र के बारे मे जानने व्यग्र हो उठा। एक कोने मे ले जाकर उस सहयात्री ने धीरे से बताया कि आपके पुत्र के हाथ को देखकर लगता है कि इसका कुछ समय पहले किसी से झग़डा हुआ है और ऐसा भी लगता है कि यह मर्डर करके भागा है। मै ने सोचा अब तो उस ज्योतिषी की खैर नही। ऐसा पिटेगा कि दम निकल जायेगा। पर हुआ उल्टा। पिता उनके पैरो मे गिर गया और बताया कि बिहार मे दोस्तो के साथ किसी झग़डे मे इन सब से किसी की हत्या हो गयी। कैसे भी मैने अपने बेटे को निकाला है। अब इसे मुम्बई ले जा रहा हूँ ताकि कुछ काम सीखने के बाद खाडी के देशो मे नौकरी मिल सके। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। मैने बहुत बार भविष्य़वाणियो के बारे मे सुना और पढा था पर उन्हे सच होते इतने करीब से नही देखा था।

उस ज्योतिषी के दिव्य ज्ञान ने मुझे प्रेरित किया कि मै इस प्राचीन विज्ञान का विस्तार से अध्ययन करुँ। मैने ढेरो पुस्तके खरीदी पर बिना गुरु के सही ज्ञान नही प्राप्त कर

सका। बाद मे जब मैने अन्ध-विश्वास हटाने वाली संस्था की सदस्यता ली तो ऐसे अभियानो मे जाने मिला जो ज्योतिषियो के खिलाफ थे। जब भी हमे अखबारो मे किसी ज्योतिषी का विज्ञापन दिखता हम उसके ठिकने पर पहुँच जाते। उल्टे-सीधे सवाल पूछकर उसका माखौल उडाते और फिर जब वह डरकर चला जाता तो वापस लौटकर अखबारो मे खबर छपवाते कि अन्ध-विश्वास नही चलेगा। अखबार ऐसी खबरे सुर्खियो मे छापते और इन खबरो मे अपना नाम देखकर हमारा सीना चौडा हो जाता। हम फिर नये मुर्गे की तलाश मे जुट जाते। कुछ समय तक यह सिलसिला चला फिर यह बात साफ होने लगी कि भगाये गये ज्योतिष दूसरे दिन वापस आ जाते थे। फिर उनके खिलाफ कोई अभियान नही होता था। इसी तरह जो शहर के ज्योतिषी थे उन्हे रोकने की हिम्मत किसी मे नही थी। घर के सदस्य और रिश्तेदार जब पंडित जी के पास जाते या पिताजी पंचाँग के अनुसार खेती करते तो बडा ही विचित्र लगता था। मन कचोटता था कि एक ओर हम इसे अन्ध-विश्वास कहकर लोगो की रोजी-रोटी छिन रहे है दूसरी ओर खुद हमारा समाज इसके आगे नत-मस्तक है। शादी-विवाह जैसे मामलो के लिये संस्था के सदस्यो को भी ज्योतिषीयो के पास जाना पडता था जिसका लाभ लेकर वे खुलेआम हमारा माखौल उडाते कि हमारे सदस्य कैसे इस विज्ञान पर विश्वास करते है। धीरे-धीरे समझ विकसित हुयी और जब एक ज्योतिष सम्मेलन मे दुनिया भर से आये विद्वानो से मिलवाने मेरे पारिवारिक मित्र मुझे जबरदस्ती ले गये तो मेरी आँखे खुली। मैने ज्योतिष को एक समृद्ध पारम्परिक ज्ञान की तरह पाया। उन्ही विद्वानो से पता चला कि कैसे भारतीय ज्योतिष के आगे सारी दुनिया नतमस्तक है। उसके बाद से मैने ज्योतिषीयो को पकडने के अभियान मे न जाने का निश्चय किया। सदस्यो ने पूछा तो मैने साफ-साफ हकीकत कह दी। कुछ ने समर्थन किया जबकि कुछ ने कहा कि हम ढोंगियो को पकडते है और हमारा इस विज्ञान से कोई बैर नही है। फिर भी मेरे प्रश्न अनुत्तरित थे। जब हममे से किसी ने इस विज्ञान को पढा नही, जाना नही तो कैसे हम यह तय करते है कि जिस पर हम कार्यवाही कर रहे है वह कितने पानी मे है?

कुछ वर्षो पहले एक ऐसे हस्तरेखा विशेषज्ञ से मिलने का अबसर मिला जो लोगो को टीवी पर या मंच से सुनकर उनकी हू-बहू हस्तरेखाए बना देता है। हस्तरेखा से लोगो के बारे मे बताना तो ठीक है पर लोगो को सुनकर भला कैसे कोई हस्तरेखा बना सकता है? यह विशेषज्ञ अपनी मर्जी से ही व्यक्ति का चुनाव करता है और इस ज्ञान से अर्थ लाभ नही करता है। वह इसके प्रदर्शन के भी खिलाफ है। मुझे पता है कि यदि वह इस ज्ञान के साथ बाजार मे आये तो उसे लोगो के सिर आँखो मे बैठने मे जरा भी देर नही लगेगी। डिस्कवरी चैनल मे एक बार एक फिल्म आ रही थी जिसमे बताया गया था कि

शीत युद्ध के दिनो मे अमेरीकी सेना ने एक ऐसे लोगो की टोली बनायी थी जो कल्पना के सहारे एक बन्द कमरे मे बैठकर दुश्मनो के बारे मे विशिष्ट जानकारी देते थे। आज ऐसी कोई बात भारत मे करे तो हमारा आधुनिक समाज इसे अन्ध-विश्वास घोषित करने मे जरा भी देर नही करेगा। इसी तरह की सोच ने आज भारतीय पारम्परिक ज्ञान को उसके अपने घर मे बेसहारा कर दिया है।

मै ज्योतिष को विज्ञान मानता हूँ। आम तौर पर ज्योतिषीयो द्वारा की जाने वाली भविष्यवाणियो पर तरह-तरह के सवाल किये जाते है। ये भविष्य़वाणियाँ व्यवसायिक ज्योतिष से जुडे लोग अर्थार्जन के लिये करते है। इसी आधार पर ज्योतिष के विज्ञान होने पर सन्देह किया जाता है। लोगो के इस तर्क को सुनकर मुझे बरबस ही एक और विज्ञान की याद आ जाती है। वह है हम सब का प्यारा मौसम विज्ञान जिसकी भविष्य़वाणियाँ शायद की कभी सही होती है। शहर से लेकर गाँवो तक सब जानते है इस विज्ञान को और इसकी उल्टी भविष्य़वाणियो को। पर फिर भी कोई इसे ज्योतिष की तरह कटघरे मे खडा नही करता। देश मे इस विज्ञान के विकास के लिये अरबो खर्च किये जा रहे है। इसका एक प्रतिशत भी भारतीय ज्योतिष के उत्थान मे खर्च किया जाता तो इसे नया जीवन मिल जाता।

कुछ वर्षो पहले एक किसान की हवाले से यह जानकारी स्थानीय अखबार मे छपी कि इस बार मछरिया नामक खरपतवार की संख्या को देखकर लगता है कि बारिश कम होगी। जैसी कि उम्मीद थी दूसरे ही दिन इसे अन्ध-विश्वास बताते हुये एक समाचार छप गया। किसान ने ठान लिया कि चुप रहने मे ही भलाई है। उस साल सचमुच बारिश कम हुयी। ऐसे ही वनस्पतियो और पशुओ के व्यवहार से मौसम की परम्परागत भविष्य़वाणी का विज्ञान अपने देश मे समृद्ध है। मौसम विज्ञानी इसे महत्व नही देते है पर जानकारी मिलने पर इस पर शोध-पत्र तैयार कर विदेशो मे प्रस्तुत करने का अवसर भी नही छोडते है। किसानो के पारम्परिक ज्ञान पर वाह-वाही लूटकर अवार्ड भी पा जाते है।

कौआ-कैनी नामक खरपतवार जो कि बरसात मे खेतो मे उगता है, के फूलो को बन्द होता देखकर किसान यह पूर्वानुमान लगा लेते है कि मौसम बिगडने वाला है। इसी तरह सर्दियो मे उगने वाले कृष्णनील नामक खरपतवारो के फूलो से भी ऐसी ही जानकारी एकत्र की जाती है। मैने अपने सर्वेक्ष्णो के माध्यम से अब तक ऐसी 20,000 से अधिक पारम्परिक विधियो का दस्तावेजीकरण किया है। अब भी यह सागर मे एक बूँद के समान है।

मुझे कभी-कभी लगता है कि पारम्परिक भारतीय ज्ञान की रक्षा के लिये और परम्पराओ और संस्कारो को नयी पीढी तक पहुँचाने के लिये लोगो को जोडकर एक ऐसा संगठन बनाऊँ जो इस विषय मे उपलब्ध तमाम जानकारियो को आम लोग तक तो पहुँचाये ही साथ ही इन्हे अन्ध-विश्वास बताकर अपनी दुकान चलाने वाले तथाकथित समाजसेवियो के खिलाफ भी आवाज उठाये। आखिर भारत मे रहकर उसकी परम्पराओ और संस्कारो को गलत ठहराना किसी अपराध से कम नही है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव -
पंकज अवधिया

छत्तीसगढ मे बरसात के दिनो मे अपने आप उगने वाली वनस्पति चरोटा को सभी जानते है। इसका वैज्ञानिक नाम कैसिया टोरा है। यह बेकार जमीन, मेडो और कभी-कभी खेतो मे भी उग जाती है। इस वनस्पति की नयी पत्तियो जिसे आम बोलचाल की भाषा मे बालक पत्ती कहा जाता है, से साग बनायी जाती है और बडे चाव से खायी जाती है। इस तरह से बरसात मे अपने आप उगने वाली दसो वनस्पतियो का प्रयोग भाजी के रुप मे होता है। इनमे बाम्बी, मुस्कैनी, मछरिया, बर्रा आदि प्रमुख है। राज्य के पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि इन वनस्पतियो का प्रयोग स्वाद तक सीमित नही है। इनके प्रयोग से साल भर लोग रोगो से बचे रहते है। विशेष रोगो की चिकित्सा मे इसकी विशेष भूमिका है। जैसे चरोटा का प्रयोग शरीर की सफाई करता है और जोडो के दर्द के लिये यह रामबाण है। मछरिया भाजी के प्रयोग से महिलाए साल भर रोगो से बची रहती है।

अब धीरे-धीरे इन भाजियो का प्रयोग समाप्त होता जा रहा है। यह कहा जाता है कि फुलपैंट पहनने वाले लोग मुफ्त की भाजी नही खाते है। वे बाजार से कीमती भाजी खरीदते है और फिर उसे अपने परिवार को देते है। चरोटा जैसी भाजियाँ नयी पीढी को अचानक ही बेकार मालूम पडने लगी है। इसके परिणाम सामने है। रोग गाँव तक पहुँच गये। आधुनिक दवाओ पर कमायी का एक बडा हिस्सा खर्च हो रहा है। खेती से उत्पन्न को रही भाजियो मे कृषि रसायनो के बढते प्रभाव से हम सभी परिचित है और चिंता भी जताते है पर रोज उन्हे खाते है और अपने परिवार को भी खिलाते है।

कुछ समय पूर्व चरोटा की पत्तियो मे सर्पाकार आकृति उभरने से बडा बवाल मचा। पत्तियो मे सफेद सर्पाकार आकृतिया बिल्कुल स्पष्ट थी। इससे जुडी नाना प्रकार की कहानियाँ सामने आने लगी। एक कहानी जो सबकी जुबान पर थी वह एक दुर्घटना से सम्बन्धित थी। चर्चा थी कि एक लापरवाह गाडी चालक ने प्रणय करते नाग-नागिन के जोडे को कुचल दिया था। इसकी छाप पत्तियो मे नाग-नागिन की तरह दिख रही थी। लोगो ने चरोटा भाजी खानी बन्द कर दी। जितनी मुँह उतनी बाते। इस कहानी का पता चलने पर इसकी जड पर जाने का निर्णय लिया गया। बुजुर्गो से सलाह ली गयी तो वे बोले कि इस तरह के निशान चरोटा की पत्तियो पर नये नही है। ऐसे निशान और भी वनस्पतियो पर देखे जा सकते है। पत्तियो को देखने पर पता चला कि सर्पाकार आकृति का कारण लीफ माइनर नामक कीट थे जो कि पत्तियो के क्लोरोफिल को खाते हुये पत्तियो मे सुरंग बनाते चलते है। जहाँ से क्लोरोफिल खत्म होता जाता है वहाँ सफेद निशान पडता जाता है। लीफ माइनर द्वारा बनायी गई माइंस याने सुरंग बहुत पतली होती है। लीफ माइनर नामक कीट बहुत सी वनस्पतियो पर पोषण करते है। शहरी लोगो के लिये यह नयी बात हो सकती है पर ग्रामीण तो इसके प्रकोप से रुबरु होते ही रहते है। बाद मे इस विषय मे अखबारो मे व्याख्या प्रकाशित करवायी गयी। तब जाकर यह दुष्प्रचार रुका। चरोटा के सभी पौधो पर एक ही समय मे इसका आक्रमण नही होता। साथ ही एक पौधे की कुछ पत्तियो मे इसका आक्रमण होता है कुछ मे नही। आक्रमण से बची पत्तियो को साग के रुप खाया जा सकता है। आम लोगो ने इस व्याख्या के बाद इसका प्रयोग फिर से आरम्भ तो किया पर यह कटु सत्य है कि इस दुष्प्रचार के बाद इसका प्रयोग काफी हद तक घटा है।

जहाँ एक ओर भारत मे पारम्परिक चिकित्सक अपने अस्तित्व की लडाई लड रहे है वही दूसरी ओर आफ्रीका मे उनके महत्व को समझते हुये उन्हे चिकित्सा के लिये लाइसेंस दे दिया गया है। कल ही खबर आयी कि क्लाइमेट चेंज अर्थात जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिये आफ्रीका के मसई लोगो के पारम्परिक ज्ञान की सहायता ली जायेगी। हमारे देश का चरोटा विदेशो मे शोधकर्ताओ के लिये कीमती बना हुआ है। हमारे देश के ज्ञान के आधार पर नित नये उत्पाद आ रहे है। भारतीय पारम्परिक खाद्य पदार्थो का जादू सिर चढ कर बोल रहा है पर हमारे अपने देश मे इसका कोई महत्व नही है। हमारे सामने बहुत से उदाहरण है। हाल ही मे छ्त्तीसगढ से एक शोध रपट आयी कि आम लोगो जो बासी खाते है उससे पेट का अल्सर हो जाता है। इस रपट को बढा-चढा कर प्रकाशित किया गया है। पीढीयो से आम लोग इसे बडे चाव से खा रहे है और इसकी बदौलत कठिन खेती कर रहे है। तब तो उन्हे अल्सर नही हुआ। अचानक अपनी दुकान

चलाने के लिये आधुनिक शोधकर्ताओ को इसमे खोट नजर आने लगा। पारम्परिक खाद्य पदार्थो पर अंगुली उठाने वाले जरा यह भी तो आम लोगो को बताये कि पिज्जा, बर्गर और नूडल्स खाने वालो को क्या-क्या बीमारियाँ होती है? उन रपटो का प्रचार भी हो जिनमे इन्हे कैसर के लिये उत्तरदायी माना गया है। देशी खाद्य पदार्थ बाजार से नही जुडे है। फास्ट फूड का एक बडा बाजार है। फिर इन्हे खाने से जो बीमारियाँ होती है उसका भी अपना बाजार है। ऐसे मे आधुनिक शोधकर्ताओ को शोध के लिये पैसा भी इन्ही के द्वारा मिलता है तो फिर पारम्परिक खाद्यो को हानिकारक बताने से परहेज कैसा?

चरोटा के अंतरराष्ट्रीय महत्व से अंजान छत्तीसगढ जैसे राज्यो के अधिकारी हर बरसात मे यह सूचना प्रकाशित करवा देते है कि चरोटा भाजी का सेवन न करे। इससे उल्टी-दस्त हो सकते है। उनका कहना है कि चरोटा साफ स्थानो मे नही उगता है। बेशक नाली के किनारे उग रहे चरोटा का प्रयोग न हो पर मेडो और अन्य साफ स्थानो मे उग रहा चरोटा तो खाया जा सकता है। फिर सीवेज वाटर जिसमे मानव का मल भी होता मे उगायी जा रही सब्जियो के विषय मे, जिसे मुम्बई जैसे महानगरो से लेकर रायपुर जैसे शहर के लोग रोज खा रहे है, कोई समाचार अधिकारियो के हवाले से नही छपते। कैसे छपेंगे? दूसरे ही दिन सब्जी विक्रेताओ का मोर्चा निकल जायेगा। अब चरोटा के लिये कौन मोर्चा निकालेगा?

पिछले वर्ष मुम्बई के एक सात सितारा होटल के मालिक अपने नये प्रयोगो के विषय मे मुझे बता रहे थे। उन्होने मुझे एक विशेष प्रकार की काफी दी और कहा कि इसे पीकर आपको स्वार्गिक आनन्द मिलेगा। मै काफी पीने के बाद कुछ बोलता इससे पहले ही वे बोल पडे कि यह फोटिड सेन्ना की काफी है। हम इसे विशेष पेय के रुप मे मेहमानो के सामने प्रस्तुत कर रहे है। अभी से विदेशो मे इसकी माँग होने लगी है। मै हतप्रभ सुनता रहा। मैने बस्तर के जंगलो मे इसे पहली बार चखा था। तब पारम्परिक चिकित्सक ने इसका औषधीय महत्व भी बताया था। बीजो को भूनकर पानी मे उबालने से काफी जैसा स्वाद आता है। यह फोटिड सेन्ना क्या बला है? फोटिड सेन्ना माने हमारा अपना चरोटा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

कुछ वर्षो पहले हमारे घर पर झाड़ू-पोछा का काम करने वाली महिला ने बताया कि उसके पास एक चमत्कारिक रोटी आयी है। ऐसी रोटी जिसे रखने से मनचाही मुराद पूरी हो सकती है। रोटी को सहेज कर रखना है और कुछ नियमो का पालन करना है। यदि सच्चे मन से सेवा की गयी तो रोटी डबल हो जायेगी। उसे यह भी कहा गया कि दूसरी रोटी को किसी और श्रद्धालु को दे देना जिससे तुम्हे लगाव हो। परिवार के सदस्यो से होते हुये यह बात मुझ तक पहुँची। मैने विस्तार से जानकारी माँगी। मुझे बताया गया कि रोटी रखने वाले को सात दिन तक उपवास करना होगा। सन्यम बरतना होगा। रोटी के ऊपर चाय पत्ती और शक्कर चढानी होगी नियमित तौर से। मैने अन्ध-विश्वास दूर करने वाली संस्था से सम्पर्क किया और उनके साथ ऐसी रोटी देखने चल पडा।

रास्ते मे इसके विषय मे और भी बहुत सी चमत्कारिक बाते सुनने को मिली। जब हमने रोटी को देखा तो उसमे रोटी जैसे कोई गुण नही दिखे, आकार को छोड कर। यह तो चिपचिपी द्रव मे डूबी रोटी जैसी कोई चीज थी जिससे खट्टी गन्ध आ रही थी। हम तो सिकी हुयी रोटी की कल्पना कर रहे थे। हम लोगो को बात समझ मे नही आयी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. एम.पी. ठाकुर से सलाह ली गयी। उन्होने बताया कि यह एक विशेष प्रकार का कवक है जो गोलाकार आकार मे बढता है। यदि इसे पोषण के लिये उचित सामग्री मिले तो यह बहुत तेजी से गुणन कर डबल हो जाता है। जब हमने उन्हे चाय पत्ती और शक्कर वाली बात बतायी तो उन्होने कहा कि बस यही दो चीजे सप्ताह भर मे इसे डबल कर देती है। और सन्यम? क्या सन्यम की इसमे कोई भूमिका नही है? वे हँस पडे। बाद मे अन्य विशेषज्ञो ने इसे बैक्टीरियल ग्रोथ बताया। जब मैने इसके विषय मे जानकारी इंटरनेट मे प्रकाशित की तो जाने-माने हिन्दी ब्लागर उन्मुक्त ने बताया कि सत्तरादि के दशक मे उनके कस्बे मे इस रोटी की चर्चा फैली थी और कहा जा रहा था कि इससे कैसर ठीक होता है। इसे जिस भी आकार के पात्र मे रखा जाता था वह उसी आकार की हो जाती थी। चूँकि इसे रोटी का नाम देना था इसलिये गोलाकार पात्र मे ही रखा जाता था।

बाद मे इस पर विस्तृत जानकरियाँ एकत्र की गयी तो सारे राज खुल गये। इस बारे मे अखबारो मे छपवाया गया ताकि रोटी के डबल होने का वैज्ञानिक कारण आम लोग समझ सके। अखबारो को पढकर कुछ लोगो ने बताया कि सत्तर के दशक मे धर्मयुग ने

इस रोटी के विषय मे विस्तार से छापा था और उस समय भी यही वैज्ञानिक कारण बताया गया था। इस घटना के बारे मे अपने अलग-अलग लेखो के माध्यम से हम सब आम जनता को लगातार सचेत करते रहे।

कल ही भिलाई से फोन आया कि एक चमत्कारिक रोटी आयी है जो मनचाही मुराद पूरी कर सकती है। इस बार रोटी एक पढे-लिखे सम्भ्रांत परिवार के ड्राइंग रुम मे सजी दिखी। सन्यम और बाकी औपचारिकताए वैसी ही थी। मैने उन्हे समझाने की कोशिश की पर जल्दी ही यह अहसास हो गया कि कम पढे-लिखो को समझाना ज्यादा आसान है, पढे-लिखो को समझाने से।

इस घटना से मुझे यह समझ मे आया कि अन्ध-विश्वास का समूल नाश बहुत मुश्किल है। एक ही अन्ध-विश्वास अलग-अलग रुपो मे हमारे सामने समय-समय पर आता रहता है। हर बार यह नयी मजबूती से आता है। इसके साथ तर्क जुड जाते है। हर बार यह उम्मीदे लेकर आता है। झूठी ही सही पर नयी आशाए जगाता है। हर युग मे मनचाही मुराद पूरी करने की इच्छा मनुष्य़ मे रही है। आगे भी ऐसी चमत्कारिक घटनाए सामने आती रहेंगी। हो सकता है मंगल मे बसे अपने आप को सभ्य कहने वाले धरतीवासी भी आने वाले दशको मे इस रोटी से मनचाही मुराद पूरी करने का मोह न छोड पाये।

इस रोटी वाली घटना पर कुछ लोगो ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि भले ही यह अन्धविश्वास है पर इससे किसी का बुरा नही हो रहा है और न ही किसी प्रकार की लूट हो रही है फिर इसका विरोध क्यो? लोग यदि आस्था से इसे अपने पास रखते है। इसकी पूजा करते है और कुछ सन्यम रखते है तो इसमे क्या बुराई है? मुझे उनका तर्क सही जान पडा। मैने जब यह जानने की कोशिश की कि रोटी क्या मुफ्त मे मिलती है तो पता चला कि रोटी प्राप्त करना इतना आसान नही है। चूँकि इससे सारी मुरादे पूरी होने वाली है इसलिये इसके ऊँचे दाम लिये जाते है। जब मुरादे पूरी नही होती है तो रोटी देने वाले यह कहकर आश्वासन दे देते है कि अब जीवन मे सुधार होगा और आने वाले दिन अच्छे होंगे। बहुत से मामलो मे रोटी देने वाला दोनो रोटी वापस ले लेता है। ताकि आगे इससे पैसे कमाये जा सके। बहुत से ठग इस तरह के चमत्कार दिखा कर अपना प्रभाव जमा लेते है और फिर दूसरे तरीके से लूटते है। इसलिये यह जरुरी हो जाता है कि जानकार लोग इस बारे मे आम लोगो को बताये और वह भी वैज्ञानिक तर्को के साथ। मनचाही मुराद वाली बातो का भी खुलासा करे। जो लोग ठगी के शिकार हुये है उनसे भी यह उम्मीद की जाती है है कि यथार्थ के धरातल मे आकर वे नये लोगो को जगरुक करे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

जंगलो से गुजरते हुये मै साथ बैठे ग्रामीणो से बातचीत कर रहा था। मुझे बताया गया कि इस बार माता का प्रकोप बहुत होगा पूरे क्षेत्र मे। माता मतलब चिकन पाक्स। कैसे पता? मैने पूछा। गाँव के एक बुजुर्ग का कहना है। बिना विलम्ब मैने ड्रायवर से गाडी उस दिशा मे मोडने को कहा जहाँ इस बुजुर्ग का गाँव था। ऊबड-खाबड सडक पार कर हम गाँव पहुँचे। बुजुर्ग का घर गाँव के आखिर मे था। उन्होने मेरी बात सुनी और कहा कि उन्हे वनस्पतियो के आकार और रंग मे आये परिवर्तन से यह पता चल जाता है कि किस तरह की बीमारी क्षेत्र मे इस बार फैलने वाली है। ऐसी बात सुनकर आप अपने किताबी ज्ञान के आधार पर बिना किसी देरी के हँस पडेंगे और माखौल उडाने लगेंगे। पर लम्बे समय से पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के दस्तावेजीकरण करते हुये मैने अपने अनुभव से यह सीखा है कि इस कार्य के लिये असीम धैर्य की जरुरत है। आपको सभी तरह की बाते सुननी पडती है। चाहे वह विज्ञान सम्मत हो या न हो। विज्ञान मतलब आज का विज्ञान या कहे अभी तक का विज्ञान। विज्ञान मे तो नित नयी बातो का समावेश होता ही रहता है। हो सकता है आज जो बात हमे विज्ञान सम्मत न लगे वह कल विज्ञान सम्मत हो जाये। इसलिये सभी बातो को अपने मूल स्वरुप मे दस्तावेजीकरण करने का प्रयास मै करता हूँ। यदि मै उस बुजुर्ग का माखौल उडाकर लौट आता तो भले ही साथ चल रहे ग्रामीणो पर मेरी धाक जम जाती पर मै कुछ नया नही सीख पाता। मेरी रुचि देखकर उस बुजुर्ग ने रात भर गाँव मे रुकने और फिर अगली सुबह पास की पहाडी पर चलने को कहा। उनकी बात मान ली गयी।

सुबह काफी चढाई के बाद हम शिखर तक पहुँचे। वहाँ उन्होने तेन्दू, जिसकी पत्तियो से बीडी बनायी जाती है, के पौधे दिखाये। पास से उन्हे देखने पर पत्तियो मे फफोले की तरह उभार दिखायी दिये। लगता था कि किसी रोग के कारण ऐसे फफोले पडे है। बुजुर्ग ने कहा कि पत्तियो मे ऐसे फफोले हर बार नही पडते। जिस साल पडते है उस साल माता का प्रकोप होना सुनिश्चित है। तेन्दु के साथ यदि पलाश की पत्तियो मे भी ऐसे निशान

दिखे तो फिर तो भगवान ही मालिक है। मैने तस्वीरे उतारी और उनके साथ वापस लौट आया। अब मुझे लगातार उस क्षेत्र मे निगाह रखनी थी कि आम लोगो पर कहर बरपा कि नही। इस बीच मैने इकोपोर्ट मे यह तस्वीर डाली और विशेषज्ञो से सलाह ली।

मुझसे पूछा गया कि फफोले को फोडकर देखने पर क्या दिखा? मैने तो ऐसा किया नही था। इसलिये फिर उस स्थान तक गया और फफोलो को फोडा। उसमे से ढेरो छोटे-छोटे मकोडे निकले। विशेषज्ञो ने पुष्टि की कि यह लीफ गाल माइट का प्रकोप है और मौसम के अनुसार जंगली और शहरी सभी पौधो मे इनका प्रकोप होता है। बडे ही संकोच से मैने इसके महामारी से सम्बन्ध होने की धारणा के विषय मे विशेषज्ञो से पूछा। उन्होने हाथ खडे कर दिये पर बहुतो ने कहा कि यदि यह पारम्परिक ज्ञान है तो इसकी तह तक जाओ।

उस साल माता का प्रकोप हुआ पर यह अन्दाज नही लग पाया कि बहुत ज्यादा हुआ या कम। जितनी मुँह, उतनी बाते। सरकारी आँकडो का सच तो हम सब जानते ही है। उस बुजुर्ग की आँखो मे गहरे छिपे विश्वास के कारण इसे अन्ध-विश्वास करार देने का मेरा मन नही था। इसके बाद मै जहाँ भी गया इसकी तस्वीर आम लोगो को दिखायी और उनके विचार पूछे। लोगो के मिले-जुले विचार सामने आये। तेन्दु और पलाश के अलावा मैने दसो जंगली पौधो पर इसे देखा। इसी बहाने इस पर विस्तार से अध्ययन भी हो गया। लोगो से बात करने पर लगा कि बुजुर्गो को इस पर अधिक विश्वास है।

अपनी नियमगिरि यात्रा के दौरान मैने अलाबेली गाँव के पारम्परिक चिकित्सक से भी यह पूछा। उन्होने भी इस तरह के ज्ञान के होने की बात कही। उन्होने बताया कि वे गन्ध बबूल और पलाश के पेडो की शाखाओ अपने आप बन जाने वाले मिट्टी के गोलो से इस तरह की महामारी के फैलने का अनुमान लगाते है। मेरे लिये ये मिट्टी के गोले नये नही थे। मैने छत्तीसगढ मे बबूल और पलाश दोनो ही मे इन गोलो को देखा था। ग्रामीणो ने कहा कि यह कीडे ने बनाया है और इसके अन्दर आपको वह मिल जायेगा पर गोलो को तोडने पर उनमे से कुछ भी नही निकला। मैने तस्वीर उतारी और वही प्रक्रिया अपनायी। विश्व खाद्य संगठन के विशेषज्ञो ने बताया कि यूरोमाइक्लेडियम नामक कवक के प्रकोप के कारण ऐसे गोले बनते है। ये मिट्टी के गोले नही होते है बल्कि शाखाओ मे अपने आप गाँठ बन जाती है। इस गाँठ मे कभी-कभी दीमक आ जाते है जिससे उसमे मिट्टी के होने का अहसास होता है। इस रोग का आक्रमण और वनस्पतियो का इससे प्रभावित होना आम है और इसमे कोई चमत्कार नही है। संगठन

से मुझे उपहार के तौर पर एक रंगीन पुस्तक भी आ गयी जिसमे दुनिया भर मे इसके प्रकोप के चित्र थे।

अलाबेली के पारम्परिक चिकित्सक इससे बरसात के मौसम मे होने वाले रोगो की भविष्य़वाणी करते है। उन्होने कहा कि हर साल प्रकोप का स्तर एक जैसा नही होता। उनका कहना सही है। पर मानव रोगो से इसके सम्बन्धो का पता लगा पाने मे मै असफल रहा। वैज्ञानिक साहित्य इस बात की पुष्टि करते है कि बाँस मे फूल आने से बीजो को खाने के लिये चूहे आते है और तेजी से उनकी संख्या मे बढोतरी होती है। जब बीज समाप्त हो जाते है तो ये चूहे किसानो के अन्न भंडार का रुख करते है और देखते ही देखते अन्न के लाले पड जाते है।पिछले हफ्ते ही मै एक विज्ञान चैनल मे मिजोरम मे बाँसो के फूलने पर बनायी गयी एक फिल्म देख रहा था। उसमे बडे अच्छे से यह दिखाया गया था कि पहले की तरह इस बार चूहो ने उतना नुकसान नही पहुँचाया।

प्रकृति मे लगातार परिवर्तन होते रहते है और उसे वे लोग ज्यादा अच्छे से जानते है जो उसके करीब रहते है। यही बात मुझे इसकी गहन विवेचना के लिये प्रेरित करती है। मै इस लेख के माध्यम से नयी पीढी को इसकी वैज्ञानिक व्याख्या का जिम्मा सौप रहा हूँ।(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव
- पंकज अवधिया

अपना बागीचा दिखाते हुये मेरी एक परीचित महिला शान से विदेशो से ऊँचे दामो पर मंगाये पौधो को दिखा रही थी। तभी मेरी नजर एक ऐसे पौधे पर पडी जिसे उस घर मे बिल्कुल नही होना चाहिये जहाँ बच्चे और पालतू जानवर हो। महिला ने उस पौधे की ओर इशारा करते हुये बताया कि यह जैट्रोफा पाडएग्रिका है। यह बायोडीजल के लिये लगाये जा रहे जैट्रोफा का सुन्दर रिश्तेदार है। मैने उनसे कहा कि इसे आपके घर मे नही होना चाहिये विशेषकर लान के पास जहाँ सभी बैठते है। मेरी बात सुनकर वे बोली कि क्या आप वास्तु वाले है? वास्तु वालो ने भी हमे कई बार कहा कि इसे यहाँ से हटा दे।

मैने खुलासा किया कि बहुत से विदेशी पौधे बच्चो और पालतू जानवरो के लिये नुकसानदायक होते है। इस पौधे से जो लेटेक्स निकलता है किसी भाग को तोडने से, वह यदि त्वचा मे लग जाये या आँख मे चला जाये तो समस्या हो सकती है। बडे बच्चो को तो समझाया जा सकता है पर छोटे बच्चो मे उत्सुकता कुछ ज्यादा ही होती है। वे पत्तियो को खा भी सकते है। उन्होने याद कर कहा कि एक बार मेरे छोटे बच्चे की आँख मे यह लेटेक्स चला गया था। आप सही कह रहे है। पर अब तो वह जान गया है इसलिये हमने इसे नही हटाया। बात आयी-गयी हो गयी।

कुछ दिनो बाद फिर मेरा जाना हुआ। मैने देखा वह पौधा मजे से उग रहा है। तीसरी बार जाने पर मुझे वह पौधा नही मिला। पता चला कि उन्होने वास्तु वाले महाराज की बात आखिर मान ली और पौधे को हटा लिया। मै सोचता रहा कि मुफ्त मे दी गयी सलाह की कोई कीमत नही होती। वास्तु वाले महाराज ने जरुर विशेष रुप से डराया होगा और मोटी फीस भी ली होगी। महिला ने बताया कि इसके रहने से हमे व्यापार मे घाटा हो रहा था। अब सुधार हो रहा है। अगले सोमवार महाराज एक विशेष पौधा लायेंगे जो व्यापार को बढायेगा। मुझे उत्सुकता हुयी। मंगलवार को अल-सुबह उनके घर जा धमका। देखा तो डाइफन बेकिया नामक एक दूसरा विदेशी पौधा लगा था। मुझे यकीन हो गया कि महाराज पहुँचे हुये है और जरुर किसी नर्सरी वाले से उनकी पहचान है। इस नये पौधे को भी जहरीला माना जाता है। इसे अंग्रेजी नाम डम्बकेन मिला हुआ है। इसकी शाखा तोडकर आपने कान मे घुसायी तो बहरे होने का खतरा है। यह पौधा अपने आप मे जहरयुक्त है। विदेशो मे इसे घरो मे सावधानी से लगाने की सलाह दी जाती है। मैने सब कुछ जानकर भी चुप रहना उचित समझा। यदि मै बहरे हो जाने की बात करता तो वे कह सकती थी कि हाँ-हाँ, आप सही कह रहे है हमारे फलाने रिश्तेदार बहरे हो गये है पर अब तो वे जान गये है तो फिर इसे क्या हटाना। फिर यह पौधा व्यापार बढा रहा था (?) इसलिये वो इसे किसी कीमत पर नही हटाती। मै मौन ही रहा।

यह कितनी बार अलग-अलग माध्यमो से बताया जा चुका है कि आस-पास उगने वाली वनस्पतियो का परिवारजनो के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर गहरा असर पडता है फिर भी विदेशी और जहरीले पौधो का मोह नही छूटता है। ये पौधे बहुत देखभाल माँगते है। देखभाल के नाम पर इन पर रसायनो का प्रयोग करना पडता है। इससे पौधे तो अच्छे हो जाते है पर परिवार इन रसायनो के दुष्प्रभावो को जाने-अनजाने तरीके से झेलता रहता है। देश भर मे हजारो हार्टीकल्चर सोसायटियाँ है। पर मुझे नही लगता कि वे अपने सदस्यो को इस बारे मे सचेत करती है। आकर्षक पौधे बाजार से जुडे है। इनके

साथ वास्तु का बाजार भी जुड गया। बाजार अपनी फिक्र करता है। उसे आम लोगो के हित-अहित की चिंता नही होती है।

क्या आप के घर मे तुलसी है? मै अपने व्याख्यान के दौरान जब यह प्रश्न करता हूँ तो बहुत से हाथ उठ जाते है। पर अधिक्तर घरो मे जब मै तुलसी को देखता हूँ तो उसकी दशा देखकर दुखी हो जाता हूँ। ज्यादातर पौधे बीमार होते है। सुबह-शाम उन्हे पानी से इतना ज्यादा सींचा जाता है कि वे बेहाल हो जाते है। तुलसी की मिट्टी नही बदली जाती है और न ही जैविक पोषक तत्व उसे दिये जाते है। यही कारण है कि तुलसी की घर के आँगन मे रहकर जो भूमिका होनी चाहिये वह सही तरीके से नही हो पाती है। हमारे बुजुर्ग कह गये है कि आँगन मे तुलसी का स्वस्थ्य पौधा माने एक निरोग घर। मैने स्वस्थ्य पौधा लिखा है। बीमार पौधा नही। आज का हमारा विज्ञान भी इस बात की पुष्टि समय-समय पर करता रहता है। आज विकास के नाम पर जिस तरह से अन्धाधुन्ध तरीके से पेडो की कटाई हो रही है और प्रदूषण फैल रहा है उससे तो लगता है कि पूरे देश मे तुलसी के व्यापक रोपण की एक मुहिम चलनी चाहिये। शहर मे जहाँ जगह मिले इसे लगाना चाहिये। कम से कम घर मे तो तुलसी के बहुत से पौधे होने ही चाहिये। मेरे एक मित्र ने अपने घर के बागीचे मे केवल तुलसी लगायी है। वो कहता है कि जब भी तनाव मे होता हूँ बागीचे मे बैठ जाता हूँ, कुछ समय बाद अपने-आप तरोताजा हो जाता हूँ।

पिछले दिनो एक घर मे बीमार तुलसी को देखने जाना पडा। घर के आँगन मे एक ही बडा सा पौधा था। ऐसा लग रहा था कि किसी ने उसे बहुत नोचा है लगातार। जल्दी ही राज खुल गया। घर मे सत्रह सदस्य थे और ज्यादातर तुलसी के दिव्य गुणो को जानते थे। वे रोज तुलसी की पत्तियो को खाते थे। इस लगातार तुडाई ने तुलसी की यह हालत कर दी थी। मैने उनसे तुलसी को माँ समझकर बख्शने का अनुरोध किया तो वे बिफर पडे और बोले हम रोज इसकी पूजा करते है और रविवार को कोई पत्तियाँ नही तोडता। चलिये धार्मिक आस्था के कारण ही सही पर तुलसी को एक दिन तो राहत मिलती है- मैने सोचा। मैने उन्हे बताया कि पत्तियो का काम भोजन बनाना है। पौधा यदि भोजन ही नही बना पायेगा तो कैसे बढेगा? मैने उन्हे दस और पौधे लगाने की सलाह दी और स्वस्थ्य पौधे की पहचान करायी। सभी सदस्यो से कहा कि यदि बडी मात्रा मे पत्तियो का उपयोग करना है तो खुद इसका रोपण करो और सेवा करो। रविवार के लिये मैने उन्हे गौमूत्र और ताजे गोबर का घोल बनाना सीखा दिया। अब वे इसका छिडकाव करते है और पौधे को बढने मे मदद करते है।

चलते-चलते मैने यह भी बता दिया कि इसे लगाने से घर मे समृद्धि आती है। फिर वही प्रश्न सुनने को मिला-क्या आप वास्तु वाले है? मैने 'ना' मे सिर हिलाया और समझाया कि तुलसी रोगो से बचाती है और अच्छे स्वास्थ्य से बढकर कोई धन नही है। वे समझ गये पर एक सदस्य ने मुझे कोने मे ले जाकर पूछ ही लिया, सही बताइये ना, इससे कैसे धन मिलता है? हम आपको दक्षिणा देंगे। मैने वहाँ से चलने मे ही भलाई समझी। जब अन्ध-विश्वास का ऐसा बोलबाला हो और वह भी पेशगी के साथ तो भला कौन रोक पायेगा इसके फैलते साम्राज्य को? (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

पीपल और बरगद के विषय मे उल्लेख मेरे लेखो और व्याख्यानो ने अक्सर आता है। मैने इनके विषय मे विस्तार से लिखा है और हमारे प्राचीन ग्रंथ भी इसके महत्व को समझाते रहे है पर फिर भी मुझे लगता है कि अभी भी बहुत सी बाते दस्तावेजो के रुप मे उपलब्ध नही है। एक बार मेरे व्याख्यान के बाद दूसरे अतिथि वक्ता ने भी इनके महत्व पर प्रकाश डाला और बोले कि मैने अपने घर मे पीपल और बरगद को नही काटा है और ढेरो पेड आज भी मजे से उग रहे है। उन्होने खूब तालियाँ बटोरी। मै भी उनके इस प्रेम से नत-मस्तक हो गया। बहुत सारे पीपल और बरगद को घर मे जगह देना माने बहुत बडा घर और बहुत बडा दिल चाहिये। व्याख्यान के बाद उन्होने मुझे अपने घर आमंत्रित किया। जब मै वहाँ पहुँचा तो उनका छोटा-सा घर देख हैरत मे पड गया। वहाँ ढेरो गमले थे और उनमे ही पीपल और बरगद उग रहे थे। आपने सही समझा उन्होने बोनसाई कला के माध्यम से इन्हे गमलो मे लगाया था। मेरा उत्साह ठंडा पड गया। मुझे सहसा पारम्परिक चिकित्सको की बात याद आ गयी। वे कहते रहे है कि वनस्पति से की गयी छेडछाड उनमे कई प्रकार के विकार पैदा कर देती है। इन विकारो को आज का विज्ञान पकड नही पाता है और पकड भी लेता है तो उन्हे स्वीकार करने मे हिचकिचाता है क्योकि आज जितनी भी फसले हमारे सामने है उन्हे माँ प्रकृति की व्यवस्था मे छेडछाड करके विकसित किया गया है। अब तो जीएम फसले भी आ रही है।

यदि आप इसका विरोध करेंगे तो आधुनिक विज्ञान शोध-निष्कर्ष लेकर खडा मिलेगा और यदि इसका समर्थन करेंगे तो पारम्परिक ज्ञान आपको खतरे से सावधान रहने की चेतावनी देता नजर आयेगा। यह बात तो आप भी मानेंगे कि आधुनिक विज्ञान ने यदि हमे भरपेट खाना दिया है तो नयी बीमारियाँ भी दी है। पारम्परिक ज्ञान की भूमिका मार्गदर्शक की रही है सदा से।

बोनसाई किये गये पौधे क्या अपने परिवर्तित रुप मे भी अपने आस-पास वही वातावरण पैदा करते है जो बडे पेड करते है? पहली ही नजर मे ही यह तर्क सही नही लगता है। कोटा (राजस्थान) मे विश्व कृषि संचार नामक किसान पत्रिका की ओर से श्रेष्ठ लेखक का सम्मान प्राप्त करने के बाद मैने अपने व्याख्यान मे आम लोगो से पीपल और बरगद को बचाने की अपील की। बहुत से लोगो ने पूछा कि हमारे पास जगह नही है और हम बोनसाई के रुप मे इन्हे नही लगाना चाहते तो फिर कैसे हम इन्हे बचाने मे अपना योगदान दे? उनका प्रश्न बिल्कुल सही है। मैने उनसे कहा कि आपके आस-पास बहुत से पुराने पीपल और बरगद है। आप उन्हे बचाने का जिम्मा लेकर इस दिशा मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते है। विकास के नाम पर शहरो के इन जिन्दा फेफडो को हजारो की संख्या मे काटा जा रहा है। छत्तीसगढ की राजधानी मे ही पिछले कुछ वर्षो मे दसो पुराने पीपल और बरगद उखाड दिये गये। मीडिया ने शोर मचाया पर किसी ने परवाह नही की। पर्यावरण की बाते करने वाले भी सामने नही आये। मैने इस बरबादी को रोकने की अपील की और सुझाव दिया कि यदि काटने के अलावा और कोई रास्ता नही है तो पारम्परिक उपचारो को अपनाकर इन्हे उखाडकर दूसरी जगह रोप दिया जाये। ऐसे प्रयोगो मे सफलता का प्रतिशत बहुत कम होता है पर कुछ पेडो को ही हम बचा पाये तो भी बहुत बडी बात होगी। बचपन मे हमने चिपको आन्दोलन के विषय मे पढा है। मुझे यह समझ नही आता कि आज विभिन्न मंचो से इस विषय पर बात तो होती है पर पेडो के विनाश को रोकने के लिये एक भी चिपको आँदोलन उसके बाद देश मे क्यो नही हुआ?

माँ प्रकृति को यह मालूम है कि गन्दगी फैलाने वाली मानव जाति को पीपल और बरगद जैसे पेडो की बहुत आवश्यकता है। इसलिये उन्होने बडी सरल व्यवस्था की है। इन पेडो के फलो को स्वादिष्ट बनाया है। चिडियाँ इन्हे चाव से खाती है। बीज आहारनली से बीट के साथ बाहर निकल जाते है। और इस तरह निरंतर इनका फैलाव होता रहता है। मानव जाति को कुछ भी अतिरिक्त करने की आवश्यकत्ता नही है। पर अब शहरो से पीपल और बरगद कम हो रहे है। पुराने पेडो को बचाने के प्रयास नही हो रहे है। चिडियो की संख्या

मे भी तेजी से कमी आ रही है। मानवो की बस्ती मे एक को छोडकर किसी को रहना गवारा नही हो रहा है और वह है रोग।

पीपल और बरगद से होने वाले लाभो के विषय मे इतनी अधिक जानकारी होने के बावजूद औद्योगिक इकाईयो को जिस वृक्षारोपण की अनिवार्यता होती है उसमे लगाने जाने वाले पेडो मे पीपल और बरगद का नाम नही है। हाँ, यह अवश्य देखने मे आता है कि इन पेडो को काटकर जगह साफ की जाती है और फिर दूसरी प्रजातियो के पेड लगाये जाते है। दूसरी प्रजातियाँ माने पतले तने वाले विदेशी पौधे जिनके दुष्परिणाम जग-जाहिर है। क्यो नही देश मे कानून बनाकर इकाईयो के आस-पास पीपल और बरगद जैसे देशी पेडो को ही लगाना अनिवार्य कर दिया जाता?

जंगल विभाग को पीपल और बरगद से जन्मजात दुश्मनी है। वे अपने व्यवसायिक रोपण मे इन्हे देखते ही उखाड देते है। इन्हे खरपतवार माना जाता है। उनका तर्क है कि कतार मे उग रहे इमारती लकडी के पेडो के बीच ये उगकर उनकी वृद्धि पर विपरीत प्रभाव डालते है। इस तरह के व्यवसायिक रोपण जंगलो मे किये जाते है और पीपल और बरगद को पनपने ही नही दिया जाता है।

पिछले वर्ष उडीसा के नियमगिरि जाना हुआ। नियमगिरि एक विशाल पर्वतमाला है और वहाँ के निवासी इस पूरे पर्वत को ही पूजते है। नियमगिरि जैव-विविधता से परिपूर्ण है। मैने वहाँ वानस्पतिक सर्वेक्षण किया। मैने वहाँ पीपल और बरगद के सैक़डो वर्ष पुराने असंख्य पेड देखे। इन पेडो मे नाना प्रकार की दूसरी वनस्पतियाँ उगी हुयी थी। एक विशाल पेड अपने आप मे एक पारिस्थितिकी तंत्र है। वह ढेरो वनस्पतियो और उन पर आश्रित रहने वाले जीवो को सहारा देता है। ऐसा तंत्र बना पाना मनुष्य़ के लिये सम्भव नही है। ये माँ प्रकृति की प्रयोगशाला है। पारम्परिक चिकित्सक इन पितृ वृक्ष समूहो की पूजा करते है और इनसे औषधियाँ बनाकर रोगियो को राहत पहुँचाते है। मैने इस पर एक वैज्ञानिक रपट तैयार की और सुझाव दिया कि इन समूहो को अपने प्राकृतिक रुप मे बनाये रखने के लिये इनके संरक्षण की जरुरत है। यह रपट उन पर्यावरणप्रेमियो के लिये उपयोगी थी जो इस पर्वत और इसकी जैव-विविधता को बचाने के लिये जीवन-मरण का संघर्ष कर रहे थे। दरअसल नियमगिरि मे बडे पैमाने पर बाक्साइट के लिये खनन होना है। इससे पूरा संतुलन बिगड जायेगा। मुझे बडी उम्मीद थी कि ऐसी रपटो से न्यायिक फैसला करने वाले विद्वानजनो को जैव-विविधता का पक्ष लेने मे मदद मिलेगी पर निराशा ही हाथ लगी। हाल ही मे बाक्साइट के खनन को सुप्रीम कोर्ट से मंजूरी मिल गयी है। खनन की राजनीति जो भी हो पर एक विशेषज्ञ होने के नाते मै बडा ही दुखी और क्षुब्ध

हूँ। आज दुनिया भर मे जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) पर सम्मेलनो के नाम पर अरबो रुपये बहाये जा रहे है पर नियमगिरि जैसे जैव-विविधता पूर्ण स्थानो को उजडने से बचाने की सुध किसी को नही है।

मधुमेह से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पर आधारित रपट मे मैने पीपल और बरगद के विषय मे ऐसी जानकारियो का समावेश किया है जो इससे पहले कभी नही प्रकाशित हुयी है। इन्हे सार्वजनिक कर भारतीय ज्ञान के बूते पर मै इठलाना चाहता हूँ पर एक डर भी मेरे मन के किसी कोने मे है। वनस्पतियो के नये उपयोग की जानकारी का खुलासा माने कीडे-मकोडे की तरह बढ रहे मानव द्वारा इसके विनाश की शुरुआत। इन वनस्पतियो का ऐसा अनैतिक विदोहन किया जायेगा कि रुह काँप जाये। धरती से इसका समूल नाश करके ही रुकेंगे। इससे तो अच्छा है कि इन उपयोगो को सार्वजनिक ही नही किया जाये। बडी उहा-पोह की स्थिति है।

हम पीपल और बरगद को ही अच्छे से जानते है पर गूलर, गस्ती, पाकर जैसे इसके नजदीकी रिश्तेदार भी है जिनमे इनसे मिलते-जुलते गुण है। इनके विषय मे प्राचीन लेखको ने ज्यादा नही लिखा इसलिये इनका महत्व अधिक नही माना जाता है। पीपल और बरगद से जुडे हुये विश्वास और अन्ध-विश्वास ने ही भारत के बहुत से हिस्सो विशेषकर ग्रामीण भारत मे इन्हे बचाकर रखा है। मेरे मित्र इसी विश्वास और अन्ध-विश्वास का लाभ उठाकर सभी वनस्पतियो को बचाना चाहते है। वे सिन्दूरी रंग का एक ड्रम लेकर भारत भ्रमण मे निकलना चाहते है। उनकी योजना हर पुराने पेड के पास रुकना और पास पडे पत्थर को रंगकर उसके नीचे स्थापित करना है ताकि डर और श्रद्धा से ही सही पर उसकी रक्षा हो सके। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

कुछ वर्ष पहले मै सतना से अमरकंटक जा रहा था सडक मार्ग से। यह व्यवसायिक दौरा था और हमे अमरकंटक मे जडी-बूटियो की उपलब्धता की जानकारी एकत्र करनी थी। हम

तीन लोग थे और ड्रायवर को मिलाकर चार। गाडी मारुति वैन थी। रास्ते मे जब हमारी व्यापारिक चर्चा खत्म हो गयी तो इधर-उधर की बाते होने लगी। अन्ध-विश्वास पर भी लम्बी बात हुयी। इस बीच हमारा ध्यान ड्रायवर की ओर गया जो हर मन्दिर के आगे हार्न बजाता था। उसे भी पट्टी पढाकर ऐसा करने से मना कर दिया गया। फिर भी मौका पाकर वह हार्न बजा ही लेता था। शाम का समय था हम जंगल से गुजर रहे थे कि अचानक ड्रायवर ने गाडी रोक दी। उसके चेहरे मे डर था। वह सामने देख रहा था एकटक। हमने भी उस दिशा मे देखा तो रास्ते मे बीचो-बीच कुछ सामान पडा नजर आया। ड्रायवर ने साफ कह दिया कि किसी ने जादू का सामान फेका है अब मै इस रास्ते से नही जाऊँगा। तो फिर किधर से जाओगे? हमने पूछा तो बोला कि बगल वाले कच्चे रास्ते से चलेंगे। हमे रास्ता नही दिखा। वैसे ही यह मध्यप्रदेश की सडक थी। मुख्य मार्ग ही कच्चे रास्ते के समान था। हमने पास जाकर इसे देखने का मन बनाया। ड्रायवर के चेताने के बावजूद हम लोग उस स्थान तक पहुँच गये। एक छोटी सी खुली पेटी औन्धे पडी थी। काला रिबन था, चूडियाँ भी थी। हमारे साथ चल रहे सज्जन ने सुझाव दिया कि पास के गाँव मे चलकर इसके विषय मे छानबीन की जाये। ड्रायवर का मानना था कि किसी भयानक बला को उतारने के लिये यह सब किया गया है। इन्हे छूने या देखने मात्र ही से यह बला किसी दूसरे को लग सकती है।

हम गाँव पहुँचे और एक टपरेनुमा होटल मे बैठ गये। चाय बनाने को कहा फिर सज्जन ने नाटक शुरु किया। होटल वाले से कहने लगे कि उन्हे नजर लग गयी है। सब जगह घाटा ही घाटा हो रहा है। आपके गाँव का नाम सुना है इसलिये आये है। होटल वाले को यह बिल्कुल भी अटपटा नही लगा। उसने तपाक से एक तांत्रिक का पता दे दिया। तांत्रिक के पास पहुँचे तो उसके पास पीडितो की लम्बी लाइन थी। हमारा नम्बर आया तो उसने दक्षिणा लेकर सामानो की सूची दे दी। हमे वही सब लेकर आना था जो हमने रास्ते मे पडा देखा था। अब प्रश्न खडा हुआ कि अनजाने गाँव मे इन सामग्रियो का जुगाड कैसे हो? उपाय तांत्रिक के पास ही था। उसने तीन दुकानो का नाम दिया और कहा कि वहाँ से सामग्री ले आये। रात को रुके और फिर पौ फटते ही विशेष पूजा करवा दी जायेगी। हम वापस होटल पहुँचे। सज्जन ने होटल वाले को कुछ लालच दिया तो राज खुल गया। यह चार दोस्तो का साझा व्यापार था। पेटी, रिबन और चूडी बेचने वाले तांत्रिक के अपने थे। पिछले दो वर्षो से सब कुछ आराम से चल रहा था। मैने पूछा कि खूब माल बेचते होंगे ये लोग तो होटल वाले ने एक मजेदार बात बतायी। उसने राज खोला कि विशेष स्थानो मे ही इन सामानो को फिकवाया जाता है ताकि कुछ दिनो बाद उनके नौकर जाकर उन्हे एकत्र कर लाये। याने रिसाइक्लिंग हो रही थी। मुझे देश के उन

धार्मिक स्थलो की याद आ गयी जहाँ नारियल के साथ अक्सर ऐसा होता है। नीचे नारियल खरीदो और पहाडी पर जब भगवान को चढाओ तो दूसरा नारियल प्रसाद के रुप मिलता है। हमारा नारियल फिर नीचे की दुकांनो मे बिकने चला जाता है। बहरहाल, सारा राज खुलने के बाद सज्जन हमारी ओर मुखातिब हुये और बोले कि इतने छोटे से गाँव मे जब इतने संगठित रुप से व्यापार चल सकता है तो आप सोचिये हमारे शहरो से अन्ध-विश्वास का कितना बडा बाजार होगा और इस व्यापार से लाभ पा रहे लोग कभी नही चाहेंगे कि अन्ध-विश्वास खत्म हो। उस तांत्रिक का बडा प्रभाव था गाँव मे। इसलिये हम लोग आगे बढ गये। बाद मे सज्जन ने स्थानीय अखबारो मे इसपर काफी कुछ लिखा।

नित नयी वनस्पतियो की खोज मे जंगल मे भटकते समय बहुत से तांत्रिको से मुलाकात होती है। उनमे से बहुत तो काफी करीब आ जाते है। एक बार एक बुजुर्ग तांत्रिक से मैने पूछा कि आप भी जानते हो कि यह सब अन्ध-विश्वास है फिर इसको बढावा क्यो? उसने जवाब दिया कि हम लोगो से यह बोलना छोड भी दे कि बला ने पकड लिया है तो भी वे हमारे पास आयेंगे इसकी शिकायत लेकर। यदि हम उन्हे कह देंगे कि यह मन का भ्रम है तो वे हमे नकारा समझ के दूसरे तांत्रिक के पास चले जायेंगे। भले ही बला हटाने की सारी प्रक्रिया बेकार लगे पर इससे प्रभावित का ध्यान बँटता है। वह आस्था से सामान लाता है। हमारे हाव-भाव को देखता है और फिर लम्बी पूजा मे बैठता है। अंत मे किसी निर्जन स्थान मे जाकर पीठ की तरफ इन सामानो को फेक आता है और भूलकर भी पीछे नही देखता है। उसके बाद उसके मनोविकार दूर हो जाते है और वह सामान्य जीवन मे लौट आता है। उसने दावा किया कि गाँव से लेकर विदेशो तक से भारतीय इस कार्य के लिये तांत्रिको की मदद लेते है। मुझे तांत्रिक की इस बात से होम्योपैथी की दवा रहित गोलियो जिसे कि प्लेसिबो कहा जाता है की याद आती है। दवायुक्त गोलियाँ देने के बाद चिकित्सक रोगी को एक महिने बाद आने को कहते है पर रोज दवा खाने का आदी रोगी इससे संतुष्ट नही होता है। ऐसे मे चिकित्सक उसे प्लेसिबो दे देते है। चिकित्सा शास्त्र के सन्दर्भो ग्रंथो मे ऐसे ढेरो शोध है जिसमे दावा किया गया है कि बहुत से रोगो मे विशेषकर मनोरोगो मे जब दवा रहित गोलियाँ, रोगियो को यह बता कर दी गयी कि इसमे दवा है तो भी रोगी स्वस्थ्य हो गये। यह उनके आत्मबल और इच्छा शक्ति का प्रभाव माना गया। तो क्या तांत्रिक अपने स्थान पर सही है? भले ही उनकी विधि डर पैदा करती हो पर क्या चन्द पैसे लेकर लोगो से डर हटाने का जो कार्य वो कर रहे है वह एक तरह की चिकित्सा है? इसका जवाब कभी किसी ने खोजने की कोशिश नही की। जैसे सभी प्रोफेशन मे ठग होते वैसे ही यह मान ले कि तांत्रिको मे ऐसे लोग ज्यादा ही है। पर बहुत से ऐसे भी तांत्रिक है जो पूरी प्रक्रिया के पैसे भी नही लेते है। क्या ऐसे

तेजी से कम हो रहे तांत्रिको के ज्ञान को नयी पीढी तक पहुँचाने का बीडा हमारा कोई संस्थान उठायेगा? यह सब पढना उन लोगो को निश्चित ही अटपटा लग रहा होगा जो मन मे वैज्ञानिक की वह छवि बनाये बैठे है जो बिना तर्क के पारम्परिक ज्ञान को अन्ध-विश्वास कह देगा। मुझे लगता है सभी बातो को तार्किक कसौटी मे कसना चाहिये। समाज मे खुलकर इसपर चर्चा होनी चाहिये।

अन्ध-विश्वास के विरुद्ध जन-जागृति अभियान के दौरान जब भी हमने तांत्रिको को पकडा तो वे इस पर खुली चर्चा की गुहार करते नजर आये। पर हम तो अपने ही को सही मानते रहे। उनकी एक न सुनी और हमारा दल उन्हे पुलिस के हवाले करता रहा। कुछ अभियानो के बाद मुझे लगा कि इस विधा के बारे मे विस्तार से जाना जाये ताकि सही तरीके से इसका विरोध किया जा सके तर्क के साथ। मैने बीस हजार से भी अधिक रुपये खर्च कर फुटपाथ मे बिकने वाली पुस्तको से लेकर विश्वविद्यालयो के पुस्तकालयो मे उपलब्ध ग्रंथो को बाजर से खरीदा और उन्हे पढा। मुझे इस बात का अहसास हुआ कि सस्ते साहित्य आधी अधूरी जानकारी देते है और इस विधा को बदनाम करते है। मूल ग्रंथो मे भी बहुत से दावे समझ नही आते है जैसे वशीकरण या गुप्त धन की प्राप्ति के दावे पर वनस्पतियो के विषय मे बहुत सी ऐसी बाते है जो आधुनिक सन्दर्भ ग्रंथो मे नही मिलती है। बहुत सी जानकारियाँ अब लोगो के सामने आ रही है। प्राचीन चिकित्सा ग्रंथो और इन साहित्यो मे बहुत सी बाते एक जैसी लिखी गयी। यह हमारा दुर्भाग्य है कि अंग्रेजो की नीतियो के कारण यह विधा जस की तस है। इसमे कुछ नया नही जोडा गया बल्कि इसे अन्ध-विश्वास बताकर इसके अस्तित्व के खात्मे की तैयारी है।

आपने बहुत-सी ऐसी वनस्पतियो के विषय मे पढा होगा जिनकी जड को प्रसव के समय जूडे मे बाँधने से प्रसव आसानी से हो जाता है। चिरचिटा उनमे से एक वनस्पति है। इसका प्रयोग प्राचीन चिकित्सा ग्रंथो मे मिलता है। तंत्र से सम्बन्धित ग्रंथो मे भी। छतीसगढ और झारखंड के पारम्परिक चिकित्सक भी इसका प्रयोग करते है। मैने पहले-पहल इसके विषय मे जाना तो प्रयोग की इच्छा जागी। अपने गाँव मे आम लोगो की सहायता से इसे आजमाया। उनके लिये भी यह प्रयोग नया था इसलिये हम असफल रहे। मन मे खिन्नता जागी। जैसा किताब मे लिखा था वैसा ही तो हमने किया था। फिर मन मे विद्रोह पैदा हुआ और बहुत से व्याख्यानो मे मैने कह दिया कि यह सब कोरी बाते है। वनस्पतियो के प्रयोग से आसान प्रसव नही होता।

बस्तर मे आयोजित एक व्याख्यान मे भी मैने ऐसा कुछ कह दिया। झारखन्ड से आयी एक अतिथि जो कि आदिवासी थी, ने व्याख्यान के बाद मुझसे प्रयोग विधि जाननी

चाही। मेरी बाते सुनकर वह बहुत देर तक हँसती रही फिर बोली किताब से पढोगे तो ऐसा ही होगा। आयोजको की मदद से हम पास के गाँव मे गये और वहाँ एक महिला पर इसका प्रयोग आरम्भ किया। मैने ध्यान से देखना शुरु किया। जडे लाल धागे की सहायता से गर्दन की नसो पर बाँधी गयी। सरल प्रसव के बाद तुरंत हटा दी गयी। इस प्रक्रिया के बाद जड को दूध मे डुबोया गया और फिर कुछ समय बाद एक पुराने पीपल की छाँव मे इसे गाड दिया गया। आदिवासी अतिथि ने कहा कि यह एक सामान्य प्रक्रिया है पर इसके वैज्ञानिक आधार को वह भी नही जानती। मै इस जमीनी ज्ञान से अभिभूत हो गया और अपने व्याख्यानो मे इसे बताने लगा। मुझे अन्ध-विश्वास हटाने वाली संस्था के मंच से ऐसी बाते न कहने की हिदायत मिली। मै तर्क करता रहा पर इसे अन्ध-विश्वास ही कहा जाता रहा। कुछ समय बाद कोलकाता मे एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमे दुनिया भर के दिग्गज वैज्ञानिक आये। अतिथि वक्ता के रुप मे मै भी आमंत्रित था। ब्रिटेन से आये एक वैज्ञानिक ने झारखंड के कुछ भागो मे किये गये सर्वेक्षणो के आधार पर लोगो को बताया कि कैसे चिरचिटा के प्रयोग से सरल प्रसव हो सकता है। उन्होने अपने देश मे इसे आजमाया और सफलता भी पायी। कोई आश्चर्य नही कि किसी उत्पाद के रुप मे यह वनस्पति हमारे ही देश मे बिकने आ जाये और तब तक हम इस दिव्य ज्ञान को अन्ध-विश्वास बताकर उससे पर्दा किये बैठे रहे। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

चौदह किस्म के जहरीले साँपो मे से पाँच कोबरा को चुना गया और फिर उनका जहर एक पात्र मे टपकाया गया। फिर इसमे धान की लाई अच्छे से मिलायी गयी। गुरु ने कुछ मंत्र पढा फिर 250 से अधिक चेलो ने इस विषयुक्त लाई को प्रसाद के रुप मे ग्रहण किया। किसी को चक्कर आया पर ज्यादातर इससे अप्रभावित रहे। उन्हे विश्वास था कि गुरु के रहते यह जहर उनका कुछ नही बिगाड सकता। मै अपने को सौभाग्यशाली मानता हूँ जो इस घटना का मै चश्मदीद गवाह बना। यह अवसर था ऋषिपंचमी का और पारम्परिक सर्प विशेषज्ञो के निमंत्रण पर मै 4 सितम्बर, 2008 को उनके साथ था।

सर्प के विषय मे लेखन एक फैशन सा बन गया है। मै पहले भी यह कह चुका हूँ कि भारत मे सर्प से सम्बन्धित दिव्य पारम्परिक ज्ञान है। ऐसा ज्ञान जिसका दुनिया मे कोई सानी नही है। विज्ञान की चंद पुस्तको को पढकर अपने को विज्ञान का पैरोकार बताने वाले बहुत से लोग समाज मे मिल जायेंगे पर पास के जंगलो मे जाकर अपने लोगो के पारम्परिक ज्ञान को समझने की चेष्टा शायद ही कोई करे। निमंत्रण मिलने के बाद विज्ञान के बहुत से पैरोकारो को मैने अपने खर्च पर इस आयोजन मे ले जाने की कोशिश की। गुरुवार को बहुत देर तक मै प्रतीक्षा करता रहा। पर कोई नही आया। अंततः मै अपने विडियोग्राफर को साथ लेकर चल पडा।

ऋषिपंचमी के दिन छत्तीसगढ मे कई तरह के आयोजन होते है पर सर्प विशेषज्ञो का आयोजन सदा से मुझे आकर्षित करता रहा है। आप इस लेखमाला की 13 वी कडी को पढकर फिर इसे पढे तो सन्दर्भो को और अधिक अच्छे से समझ पायेंगे। ऋषिपंचमी के दिन सर्प विशेषज्ञो के चेले अपने गुरु के पास एकत्र होते है। वे अपने साथ जहरीले सर्प लाते है और गुरु द्वारा दी गयी विद्या का प्रदर्शन करते है। किसी भी सर्प का विष नही निकाला जाता है। सर्प देवता की पूजा की जाती है। सर्प से सम्बन्धित जडी-बूटियो पर विचार-विमर्श होता है। इनसे माला तैयार की जाती है और बच्चो को पहनायी जाती है। जडी-बूटियो का सेवन इस दिन विशेष तौर पर उपयोगी माना जाता है। पारम्परिक चिकित्सक कहते है कि इस दिन सभी वनस्पतियो मे दिव्य औषधीय गुण आ जाते है। वे बडी मात्रा मे इन्हे एकत्र करके साल भर उपयोग करते है। इस दिन ऐसी जडी-बूटियो का सेवन भी किया जाता है जिससे वर्ष भर सर्प दंश का खतरा नही रहता है। यदि सर्प दंश हो भी जाये तो शरीर को इससे उबरने मे कम समय लगता है। इस आयोजन मे शामिल सभी लोगो को प्रसाद के रुप मे जडी-बूटियो का मिश्रण दिया जाता है।

हम लोग आधे रास्ते मे ही पहुँचे थे कि फोन आ गया कि गुरु याने श्री गणेश हमारा इंतजार कर रहे है। हम जैसे ही वहाँ पहुँचे हमे उनके घर के अन्दर बने पूजा स्थल पर ले जाया गया और फिर चौदह पिटारो को खोल दिया गया। सभी सर्प इतने लोगो की उपस्थिति से आक्रोशित हो गये। हमारे हाथ-पाँव फूल गये। मेरी तरफ दो कोबरा थे जिनका शरीर चमक रहा था। फुफकारे पूरे कमरे मे गूंज रही थी। वे फन काढे थे और हर हिलती-डुलती चीज पर आक्रमण कर रहे थे। ऐसे मे भला हमारी कहाँ हिम्मत होती कि हम शूटिंग करते। उनके बीच गुरु शांत बैठे थे। बार-बार हमारे मन मे प्रश्न आ रहे थे कि क्या हम यह सब ठीक कर रहे है? यदि किसी एक ने भी काट लिया तो रायपुर पहुँचने मे घंटो लग जायेंगे। पर गुरु की बातो ने धीरे-धीरे सारा डर दूर कर दिया।

उन्होने कहा कि शांत बैठे रहे और धीरे से कैमरा निकाल कर अपने कार्य मे लग जाये। हमने ढेरो तस्वीरे ली। इसके बाद उन्होने कोबरा को उठाया और हमारे गले मे डाल दिया। धीरे-धीरे हमारा डर दूर होने लगा। पूजा के बाद चेले जुलूस की तैयारी मे लग गये। वे गुरु की वन्दना मे गीत गा रहे थे।

हम चेलो के बीच जा बैठे। मैने उनसे उनके अनुभवो के बारे मे पूछा। ये चेले राज्य के विभिन्न हिस्सो से आये थे। किसी ने पचास लोगो की जान बचायी थी तो किसी ने चार सौ लोगो की। ज्यादातर ने कोबरा और करैत का विष उतारा था। बहुत से मामलो मे उन्होने उन मरीजो को भी ठीक किया था जिनको सरकारी अस्पतालो ने मृतप्राय घोषित कर दिया था।

इसके बाद गुरु और सर्प देवता का एक जुलूस निकला और गाँव भर मे लोगो ने रुक-रुक कर उसका स्वागत किया। फिर सर्प विशेषज्ञो ने भोजन किया और निकल पडे जंगलो की ओर सर्पो को वापस छोडने के लिये। हम उनके साथ रहे।

इस बीच समय निकालकर आस-पास के उन गाँवो मे गये जहाँ इस तरह के आयोजन किये जाते है। पर हमे निराशा ही हाथ लगी। जैसे-जैसे गुरुओ की संख्या कम होती जा रही है वैसे-वैसे ऐसे आयोजन भी खत्म होते जा रहे है। मेरे पिताजी ने बताया कि पहले हमारे गाँव खुडमुडी मे भी ऐसे आयोजन होते थे पर धीरे-धीरे सब खत्म हो गया। ये शुभ लक्ष्ण नही है। श्री गणेश अपने बूते पर यह सब कर रहे है। इस बात की कम ही सम्भावना है कि उनके बाद इस तरह के आयोजन जारी रहे।

सर्प से हम शहरी लोग बहुत घबराते है। बिना कुछ सोचे समझे इन्हे मार देते है। हममे से बहुत लोगो ने अपनी पाठ्य़ पुस्तको मे एक अध्याय पढा है जिसमे सर्पो की पहचान बतायी गयी है। उसके बाद हमे कुछ नही बताया गया। किसी भी तरह की जमीनी स्तर की जानकारी नही दी गयी है। यही कारण है कि मौका पडने पर यह किताबी ज्ञान किसी काम नही आता है। हाँ, व्याख्यानो और लेखो मे यह बार-बार दोहराया जाता है कि सभी साँप जहरीले नही होते है। पर इससे बात नही बनती। मुझे लगता है कि हमारे बीच तेजी से कम हो रहे इन सर्प विशेषज्ञो को महत्व देकर उन्हे समाज को जमीनी स्तर पर जागरुक बनाने का जिम्मा सौपना चाहिये। सबसे पहले इन्हे नीम-हकीम की श्रेणी से निकालकर पारम्परिक विशेषज्ञ का दर्जा दिये जाने की आवश्यकता जैसा आफ्रीकी देशो ने किया। इनका सम्मान इनकी नयी पीढी को प्रेरित करेगा कि वे सामने आये और इस हुनर को सीखे। जडी-बूटियो के दिव्य ज्ञान को भारतीय ज्ञान के रुप मे पहचान मिले

और इसका सम्मान हो। इसे विदेशी हाथो मे पडने से बचाया जाये। इस ज्ञान को आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर परखा जाये और उसके बाद जग-कल्याण के लिये इसका प्रयोग हो। पारम्परिक विशेषज्ञो के हितो की रक्षा हो।

जब हम शाम को वापस लौटे तो कुछ विज्ञान के पैरोकार घर पर आ धमके और वीडियो दिखाने की माँग करने लगे। फिल्म देखकर उनके तर्क शुरु हो गये। उन्होने चौदह सर्पो को विषहीन बता दिया। फिर कहने लगे कि जहर का इस तरह से सेवन सम्भव नही है। मै चुप रहा। भैस के आगे बीन बजाने से कुछ नही होगा। विज्ञान का दायरा बहुत बडा है और नित नयी जानकारियाँ सामने आ रही है। यदि कुछ लोग कूप-मंडूक बनकर बाहर नही निकलना चाहते है तो उन्हे उसी हाल मे छोड देना ही ठीक है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव
- पंकज अवधिया

इस ब्लाग के माध्यम से यह लेखमाला दुनिया भर मे पढी जा रही है। ढेरो सन्देश आ रहे है। इस लेखमाला को पूरा करने के बाद इन सन्देशो के जवाब देने की मंशा थी मन मे पर मै इस लेख मे एक महत्वपूर्ण पत्र की चर्चा कर रहा हूँ। मैसूर से एक पाठक पीपल के तीन पेडो के विषय मे लिखते है कि ये पेड एक ही स्थान पर पीढीयो से उपस्थित है। इन्हे ब्रम्हा, विष्णु और महेश का नाम मिला है। इनके विषय मे यह मान्यता है कि जो कोई भी इन्हे उखाडने की कोशिश करता है उसकी अकाल मृत्यु हो जाती है। यही कारण है कि यह बिना किसी नुकसान के इतने वर्षो से बचा हुआ है। हाल ही मे एक व्यक्ति ने एक पेड को काटने का दुस्साहस किया। उसकी भी मौत हो गयी। अब दो पेड और एक आधा कटा पेड है। इस घटना के बाद चन्दागल गाँव मे दहशत है और लगता है कि काफी लम्बे समय तक इन्हे कोई नही छू पायेगा। पाठक आगे लिखते है कि इस खबर के फैलने के बाद शहर की एक संस्था से कुछ लोग आये और इसे अन्ध-विश्वास कहकर अपने हाथो से इसे काटने की जिद करने लगे। मैने उन्हे समझाया कि यदि यह किसी विश्वास के कारण बचा हुआ है तो ऐसे विश्वास को जारी रहने देने मे क्या बुराई है? पर उन लोगो ने मेरी एक भी नही सुनी। गाँव वालो के विरोध के चलते वे

इन्हे काट नही पाये। मैने जब आपके लेख पढे तो सोचा कि आप से राय लूँ। आपने लिखा है कि पर्यावरण की रक्षा करने मे सक्षम ऐसे विश्वासो को जिनसे समाज का कोई नुकसान है, लोकहित मे जारी रहने देना चाहिये। आप अपने विचार बताये।

मैने उन जागरुक पाठक को धन्यवाद कहा। मन मे तसल्ली हुयी कि चलो मेरा लिखा किसी के काम तो आ रहा है। मै भी उन पाठक के विचार से सहमत हूँ। पीपल देववृक्ष है। मैने पूर्व मे यह लिखा है कि कांक्रीट के जंगलो मे रह रहे आम लोगो के लिये पीपल जैसे पेडो का शहरो मे बचा रहना जरुरी है। यह तो शुक्र है उस मान्यता का जिसने इन आक्सीजन सिलेंडरो को मैसूर के ग्रामीण अंचलो मे बचा के रखा है वर्ना पीपल हो या नीम विकास नामक सुरसा के आगे कुछ भी नही बचता।

आज से दस वर्ष पहले मेरे छायाचित्रो की एक प्रदर्शनी लगी। मैने जंगलो और वनस्पतियो के चित्र लगाये थे। शहर के एक पत्रकार श्री राजेश गनोदवाले ने सलाह दी कि शहर के पुराने पीपल और बरगद की सुध किसी को नही है। इन सब की तस्वीर लेकर इस पर आधारित एक प्रदर्शनी होनी चाहिये। उन्होने चेताया कि वह दिन दूर नही जब शहर मे ये नही दिखेंगे। मैने यह शुभ कार्य आरम्भ कर दिया और न केवल रायपुर बल्कि प्रदेश भर के पुराने पीपल और बरगद की तस्वीरे लेनी आरम्भ कर दी। आज 20,000 से अधिक तस्वीरे मेरे पास है। प्रत्येक पेड के साथ उसका स्थानीय महत्व और उससे जुडी कहानियाँ है। आस-पास के लोग इनका क्या उपयोग करते है, यह भी उपलब्ध है। पर यह बडे ही दुख की बात है कि हर दो-तीन साल के अंतराल मे जब मै इन बुजुर्गो मे मिलने जाता हूँ तो ज्यातार अपने स्थान पर नही मिलते है। ये सभी विकास की भेंट चढ गये होते है। रायपुर से आरंग मे सडक के दोनो किनारो पर स्थित पेड हो या रायपुर शहर के अन्दर के पेड। इन्हे न पाकर मन रो पडता है और ऐसा लगता है कि जैसे अपना कोई बिछ्ड गया है। यह सब बदस्तूर जारी है और मै दुखी होने के अलावा कुछ नही कर पाता हूँ।

कुछ वर्षो पहले मुझे रायगढ बुलाया गया था स्पांज आयरन प्लांट से हो रहे प्रदूषण पर एक वैज्ञानिक रपट तैयार करने। सभी ओर प्लांट से निकलने वाली काली धूल का मंजर था। जंगल ब्लैक फारेस्ट हो चुके थे। शहर मे धूल जमी थी। तालाबो का पानी काला हो गया था। लोग खंखार कर बलगम निकालते थे तो वह भी काला होता था। यह अंचल नर्क बन चुका था। फिर भी डंके की चोट पर यह प्रदूषण जारी था। बोलने वालो की जुबान बन्द कर दी जाती थी। रायगढ की खबर वही तक दब कर रह जाती थी। सारे प्रदेश को पता ही नही था इस तबाही का। मैने वनस्पतियो पर इसके असर की सैकडो

तस्वीरे खीची और फिर लोगो से च्रर्चा की। अपनी रपट मे इस तबाही का उल्लेख किया। यह तो हमारा सौभाग्य है कि आज हमारे पास इंटरनेट और ब्लाग है जिसके सहारे हम सारी बन्दिशो के बाद भी खुलकर सारा सच दुनिया को बता सकते है। मेरी रपट बाहर के लोगो तक पहुँची और उस पर व्यापक प्रतिक्रिया हुयी। रायगढ मे पीपल और बरगद के पुराने पेडो की बर्बादी पर मैने विशेष जोर दिया था। यह भी सिफारिश की थी कि प्रदूषण के इस नगे नाच को बन्द किया जाये क्योकि इससे जो क्षति हो रही है उसकी पूर्ति हम कभी नही कर पायेंगे। इस प्रयास के कई वर्षो बाद अब हमे पता चल रहा है कि स्पांज आयरन प्लांट पर अंकुश लगाने के नियम बन रहे है और जल्द ही ये लागू होंगे। सभी ने इसका स्वागत किया पर मै सोचता रहा कि इस बीच जो वनस्पतियो को स्थायी नुकसान हो चुका है उसकी भरपाई कौन करेगा? उसके लिये क्या कभी किसी को दोषी ठहराया जायेगा? नही ना, तो फिर तो लोग मनमाने ढन्ग से प्रदूषण फैलायेंगे और फिर काम खत्म हो जाने के बाद नियम के पालन की बात करेंगे। क्या मायने ऐसी कवायद के? काश! प्रदूषण फैलाने वाले मैसूर वाली बात जानते होते तो मारे डर ही सही कुछ पेड तो बच जाते।

स्पांज आयरन के प्रदूषण का दंश रायपुर शहर ने भी झेला। सारा शहर प्रदूषित होता रहा और राष्ट्रीय शोध संस्थान इसे देश का सबसे गन्दा शहर बताते रहे पर किसी के कानो मे जूँ तक नही रेंगी। यहाँ भी पुराने पेडो की शामत आयी। पर उस समय चुनाव दूर-दूर तक नही थे। सब कुछ सीना तान कर होता रहा। आज जब कुछ महिनो मे चुनाव होने वाले है तो काली धूल का नामोनिशान नही है। यदि चुनाव इतने ताकतवर है तो इस देश मे पर्यावरण की रक्षा के लिये हर महिने चुनाव की व्यवस्था की जानी चाहिये। जनता के सामने 'वोट बैक' की क्षमता होनी चाहिये ताकि उनके बल पर चुने गये राजनेता जीतने के बाद चन्द ऐसे लोगो का ही काम न करे जो जनहित के विरुद्ध काम करते है और चुनाव आते ही फिर जनता के सामने पहुँच जाते है।

विदेशो मे पेडो को चिन्हांकित करने की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी है। सेटेलाइट के माध्यम से पेडो की रक्षा की जा रही है। एक स्थान पर बैठकर सभी पेडो पर सूक्षम निगाह रखी जा रही है। पर ऐसे प्रयासो की भारत मे कमी है। जब तक हम साधन-सम्पन्न हो तब तक हमारे विश्वास और आस्थाए ही पेडो और पर्यावरण को बचाये रखेंगी-ऐसा मेरा मानना है।(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

हमारे बागीचे मे जासौन पर इस बार जमकर फूल लगे। सडक से आते-जाते लोगो की नजर इस पर टिक जाती है। यह फूल देवी को चढाया जाता है इसलिये बहुत से लोग सुबह-सुबह फूल माँगने आ जाते है। कुछ बिना पूछे ही तोड लेते है। पिछले कुछ हफ्तो से एक महिला नियमित रुप से फूल लेने आ रही है। वह अनुमति लेकर फूल ले जाती है। कुछ दिनो पूर्व हमारे यहाँ एक मेहमान आये। वे कानूनविद है। अलसुबह वे जब बागीचे मे घूम रहे थे तो उस महिला का आगमन हुआ और रोज की तरह उसने फूल तोडने की अनुमति माँगी। मेहमान ध्यान से उसे देखते रहे और फिर जैसे ही उसने फूल तोडा अचानक ही वे चिल्लाने लगे। बुरा-भला कहने लगे। जब तक हम पहुँचते वह महिला बिना फूल तोडे जा चुकी थी। मेहमान ने चिल्लाकर कहा कि मैने घर को अनिष्ट से बचा लिया। उनका कहना था कि वह महिला केवल एक फूल लेने आयी थी। जबकि बहुत से फूल चढाये जाते है। एक फूल ले जाना मतलब घर के किसी एक सदस्य पर जादू। वे बोलते चले गये। उन्होने पूछा कि कब से यह सब चल रहा है? शुरु मे हमे चिंता हुयी पर कुछ ही देर मे जब दिमाग दौडने लगा तो हमने नाश्ते मे उन्हे घेरने का मन बनाया। वैसे ही शहर मे सर्दी-खाँसी जैसी बीमारी लगी ही रहती है। कही वे किसी को बीमार देखकर हमारे मन मे उस महिला के जादू के असर करने का यकीन दिलाने की कोशिश न करे इसलिये उन्हे घेरना जरुरी था।

काफी देर की चर्चा के बाद उन्होने बताया कि किसी चैनल पर उन्होने इस पर एक विशेष कार्यक्रम देखा था। उनके साथ ऐसा कुछ नही हुआ था। बस चैनल का असर था। हमने उस महिला को बुलाया। उससे क्षमा माँगी। उसने बताया कि सभी को फूल चाहिये इसलिये उसने एक फूल तोडना ही उचित समझा। और कोई कारण नही था। पता नही मेहमान इस बात को समझ पाये या नही पर हमने इसे साधारण बात मानते हुये अनदेखा कर दिया। आप यकीन मानिये यदि हम कही भी कमजोर दिखायी पडते तो वे तर्को से हमे समझा ही डालते और फिर हमारे मन मे छिपी सुनी-सुनायी बाते सामने आने लगती और अपनी गल्तियो के लिये हम उस महिला को दोषी मानने लगते। कहा जाता है न कि शिक्षा से अन्ध-विश्वास मिटता है। यह बात मुझे सही नही लगती। कुछ

हद तक हटता हो पर मैने उच्च शिक्षा प्राप्त अन्ध-विश्वासियो को देखा है और उनके तर्क भी सुने है।

इसमे कोई दो राय नही कि पिछले कुछ वर्षो से टीवी चैनल चमत्कारो, अन्ध-विश्वासो और भूतो के साथ हो गये है। आम लोग त्रस्त भी दिखते है मस्त भी। इसके विरोध मे काफी कुछ लिखा जा रहा है पर चैनल वालो के कानो मे जूँ तक नही रेंग रही है। मेरे पाठक अक्सर लिखते है कि जब अन्ध-विश्वास फैलाने वालो पर अंकुश लगाने के लिये लिखित कानून है तो क्यो नही इन चैनलो पर इसका प्रयोग होता? उनकी बाते एकदम सही है पर बिल्ली के गले मे घंटी बाँधेगा कौन? मै तो पाठको को यही कहता हूँ कि आत्म सन्यम जरुरी है। किसी को मधुमेह हो जाये और डाक्टर मीठा खाने की अनुमति न दे तो कैसे सभी चौकस होकर उससे परहेज करने लगते है। शहर मे मिठाई की दुकान बन्द करवाने की माँग तो वे नही करते है। बस उस ओर का रुख नही करते है। वैसे ही रिमोट आपके पास है। यदि आपको लगता है कि यह सब परिवार के लिये अच्छा नही है तो चैनल बदल दीजिये। हाँ यदि देखने का मन ही है किसी का तो आप कैसी भी पाबन्दी लगाइये प्यासा कुँए को खोज ही लेगा।

भूतो के विषय मे पत्र-पत्रिकाओ मे लगातार छपता रहा है। हम लोग बचपन मे कादम्बनी मे ब्रिटेन के भूतो के बारे मे विचित्र जानकारियाँ पढकर रोमाँचित होते थे। ये जानकारियाँ बाक्स मे होती थी और बडे ही रोचक ढंग से दी जाती थी। उस समय इंटरनेट तो था नही जो जानकारी की प्रमाणिकता जान पाते। वैसे आज इंटरनेट है फिर भी हम सब कुछ नही जान पाते है। जहाँ आधुनिक विज्ञान भूतो से जुडी मान्यताओ को अन्ध-विश्वास मानता है विशेषकर भारतीय विज्ञानी अक्सर इसे कोरी-कल्पना बताते है वही प्राइम टाइम पर डिस्कवरी जैसे विज्ञान चैनल मे भूतो के अस्तित्व को सही ठहराने वाले कार्यक्रम देखकर हम दुविधा मे फँस जाते है। हमारा यह हाल है तो ग्रामीण अंचलो के लोग किस हद तक भ्रमित होते होंगे, इसका अन्दाज लगाया जा सकता है। क्या डिस्कवरी जैसे चैनल भारतीय जनमानस को यह बताने का प्रयास करते है कि देशी भूत-भूत नही और विदेशी भूत सचमुच के भूत है? यह आश्चर्य और दुख का विषय है कि बहुत से घरो मे ऐसे कार्यक्रमो को शैक्षणिक कार्यक्रम मानकर पालक अपने बच्चो को इसे देखने की छूट दे देते है।

मैने भूत से मिलने की बहुत कोशिश की। हर बार नयी जानकारी मिली। पढाई के दौरान जब मै अम्बिकापुर मे था तो हमारे हास्टल के पीछे अमरुद का बागीचा था। खबर थी कि इसमे रात को भूतो का वास रहता है। दिन मे तो हम लोग वहाँ बागवानी सीखते थे

और आँखे चुराकर आस-पास देख भी लेते थे। इस भूत की बात आस-पास के गाँव वालो को भी थी। रात को हम जब सो जाते तो पेशाब के लिये उठने मे भी जी घबराता था। भूत का खौफ इतना था कि बागीचे मे रात को पहरा देने वाले चौकीदार भी हमारे हास्टल मे सोये रहते थे। प्रशिक्षण पूरा होने के बाद जब जाते-जाते हमने भूत के दर्शन कराने की जिद चौकीदारो से की तो वे तैयार नही हुये। एक चौकीदार ने बडी मुश्किल से राज खोला कि पहले इस बागीचे मे बहुत चोरी होती थी। हम लोग सो नही पाते थे। रात मे बागीचे मे भालुओ का भी डर रहता था। इसलिये हम लोगो ने यह अफवाह फैलायी। यह बहुत कारगर सिद्ध हुयी और अब हम लोग मजे से सो पाते है।

बचपन मे अक्सर रायपुर से भिलाई के बीच की यात्रा होती थी। पिताजी के पास लेम्ब्रेटा स्कूटर थी। सामने मै खडा हो जाता था, बीच मे माता-पिता बैठते और सबसे आखिर मे बडे भाई को स्थान मिलता था। भिलाई से लौटते वक्त रात हो जाती थी। रास्ते मे चरोदा के पास एक मोड पडता था। वह अभिशप्त बताया जाता था। रात मे कभी सफेद साडी पहने कोई महिला लिफ्ट माँगती थी तो कभी किसी ड्रायवर को रास्ते के बीचो-बीच दीवार खडी दिखती थी। अखबार भी इन कथनो को प्रमुखता से छापते थे। वहाँ अक्सर दुर्घटना होती थी। ट्रेफिक आज जैसा नही था। उस मोड पर मेरी हालत खराब हो जाती थी। आज भी वह मोड है। बाद मे जब मै बडा हुआ तो मैने यह महसूस किया कि बहुत दूर तक सीधी सडक मे यह अचानक सा मोड था। तेज गति से सीधी राह पर रात के समय गाडी चला रहा चालक इस मोड की आशा नही करता था। यदि सामने से दूसरी गाडी आ जाये तो फिर तो रौशनी की चकाचौन्ध मे दुर्घटना होना निश्चित था। शायद इसी कारण ऐसी घटनाए होती रही हो। बाद मे मोड पर एक मन्दिर बना दिया गया। इससे लोगो को दूर से मोड का अहसास होने लगा और दुर्घटना मे कमी आ गयी। फिर धीरे-धीरे लोग यह सब भूल गये। आज वहाँ लाइटो से सजी होर्डिंग लगी है। ढाबा है, पेट्रोल पम्प है।

जब आप मैनपुर से रात को गरियाबन्द की ओर आयेंगे आपको एक नाला मिलेगा। जैसे ही आप ऊपर चढने लगेंगे अचानक ही बाये हाथ की ओर कुछ सफेद सा नजर आयेगा। घने जंगल मे इस तरह का दृश्य सिहरन पैदा कर देता है। ट्रक वाले बहुत परेशान रहते है। वे कहते है कि रात को नाले के चढाव पर सफेद साडी पहने एक महिला दिखती है। उनको कहना सही ही है खासकर जब वे नशे मे धुत होते है। घना जंगल और चढाव के कारण गाडी की धीमी गति माहौल को सचमुच डरावना बना देती है। दिन मे आप जायेंगे तो आपको चूने मे पुती एक चट्टान दिखायी पडेगी जिसे किसी कलाकार ने दशको पहले

महिला की आकृति मे तराश दिया है। ऐसे सुन्दर ढंग से तराशा है कि यह चट्टान जैसी ही लगती है दिन मे। रात मे गाडी की रोशनी मे उल्टा-पुल्टा हो जाता है।

मै सालो तक इस मार्ग से गुजरते समय इस स्थान मे रुकता रहा। पिछले साल अचानक ही मैने इस चट्टान को नीले रंग से पुता पाया। फिर अगली बार उसे लाल साडी मे लिपटा पाया। फिर बिन्दी लग गयी। उसे और तराश दिया गया। मै समझ गया कि दशको के भय को “एनकैश” करने का समय आ गया है। जरुर इसे किसी देवी का नाम दिया जाने वाला है और मन्दिर बनाने की तैयारी है। अब मेरा शक यकीन मे बदलता जा रहा है। मुझे इस बात का सदा दुख रहेगा कि एक अंजाने कलाकार की कृति को हमने खो दिया।

मेरे बडे भाई साहब ने भी पिछले साल भूतो से मिलने की कोशिश की। वे एक साल के कोर्स के लिये आई.आई.टी., खडगपुर गये। होस्टल मे उन्हे बताया गया कि पास मे अंग्रेजो के जमाने की एक जेल है जहाँ यातना दिये जाने के कारण बहुत से बन्दियो ने जान दे दी और भूत अभी भी भटकते है वहाँ पर। पिछली बरसात मे उन्होने रात मे उस स्थान पर चलने की मंशा प्रकट की तो कोई तैयार नही हुआ। फिर हिम्मत करके चार लोग जुटे। वे स्थान पर पहुँचे तो बरसात होने लगी। उन्होने जेल भवन के अन्दर शरण ली। सारी परिस्थितियाँ अनुकूल थी पर फिर भी वे खाली हाथ वापस लौट आये। पर इस घटना से अफवाहो का प्रसार थमा नही। वहाँ अभी भी ऐसी बाते फैली हुयी है।

भूतो को तो हमने खूब खोजा पर इस दुनिया मे तो वे नही मिले। हमे यह पता चल गया है कि भूत आखिर रहते कहाँ है? और वह जगह है लोगो का मन। इस जगह से भूत का अस्तित्व मिटाना कठिन है पर असम्भव नही। चलिये इस पुण्य कार्य के लिये हम संकल्प ले।(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

अपनी शिक्षा पूरी करते ही मैने अन्ध-विश्वास पर काम कर रही संस्था की सदस्यता ग्रहण कर ली और युवा तुर्क बनकर सभी अभियानो मे बढ-चढ कर हिस्सा लेने लगा। अब मुझे लगता है कि मैने सदस्यता लेने मे जल्दीबाजी कर दी। आमतौर पर जैसा कि ज्यादातर संस्थाओ मे होता है आपस मे सदस्यो के बीच कम संवाद होता है। हमारी संस्था मे भी प्रश्न न पूछने का रिवाज था। किसी अभियान से पहले आपस मे खुलकर चर्चा नही होती थी। अध्यक्ष सबसे अलग बात कर लेते थे फिर जब हम अभियान स्थल पर पहुँचते थे तो सभी अपनी-अपनी भूमिका मे लग जाते थे। हमने बहुत बार लोगो पर चढे भूत को उतारने के लिये उन स्थानो पर छापे मारे जहाँ किसी मूर्ति के अचानक प्रकट होने या किसी को विशेष स्वप्न आने की बात फैलने के बाद लोगो का हुजूम जमा होता था। जैसे ही हम वहाँ पहुँचते और लोगो को पता चलता कि अमुक संस्था से आये है तो उनमे आक्रोश फैल जाता। ऐसे समय मै एक आम लोगो मे घुसकर फसलो की चर्चा करने लग जाता ताकि उनका ध्यान बँटे। दूसरे साथी श्री चन्द्रशेखर व्यास लोगो को सरल और मजेदार भाषा मे समझाने लगते। जादू करने वाले लोगो तक श्री राजेन्द्र सोनी पहुँच जाते और छत्तीसगढी मे ही उनसे तर्क करने लगते। जिन पर देवी या देवता आये हो उन्हे पकडकर डॉ अशोक सोनी ऐसी डाँट पिलाते कि लोग तुरंत होश मे आ जाते। संस्था प्रमुख और दूसरे सदस्य सरपंच और गाँव के प्रभावशाली लोगो से चर्चा करने लगते। हमारे साथ पुलिस तो होती नही थी और न ही आत्मरक्षा के लिये हथियार। हजारो की भीड मे सब सदस्य अपने कार्य मे लगे होते थे। सबके मन मे अनिष्ट की आशंका होती थी। पर जब बाद मे सब कुछ सामान्य हो जाता तो हम कठोर होते जाते और फिर भीड पर हावी हो जाते। भीड जादू वालो को छोडकर हमे सुनने लगती। इस तरह अभियान समाप्त हो जाता और हम वापस शहर लौट जाते थे। मुझे याद है कि शुरु मे सब कुछ सदस्यो की जेब से होता था। शिकायत करने वालो से आने-जाने के लिये गाडी का अनुरोध कर देते थे पर पैसे कभी-कभार ही मिल पाते थे। पास के इलाको मे हम अपनी गाडियो से चले जाते थे। वापस आकर हमारे संस्था प्रमुख अखबारो के लिये विज्ञप्तियाँ बनाते फिर उनके नाम की प्रमुखता के साथ खबरे छपती, अंत मे हमारे नाम भी होते थे और मारे गर्व हम सब के सीने चौडे हो जाते है। उस समय संस्था के पास सब कुछ था सिवाय पैसे के। आज वह सब कुछ नही पर पैसे बहुत है।

मैने अनुभव किया कि हर अभियान के बाद सदस्य असमंजस मे होते और उनके पास चर्चा के लिये ढेरो विषय होते पर चर्चा की बात करने वालो को पता था कि आवाज उठाने की सजा अगले अभियान मे न बुलाकर दी जा सकती थी। इसलिये कोई कुछ कहता नही था। लोगो के ऊपर देवी-देवता आने को अन्ध-विश्वास के रुप मे हम देखते

रहे और गाँवो मे इसके विरोध मे अभियान चलाते रहे। इस बीच एक बार मुझे आबू के जाने-माने अध्यात्मिक संस्थान मे व्याख्यान के लिये आमंत्रित किया गया। मै वहाँ के माहौल से बडा ही प्रभावित हुआ। चर्चा के दौरान मुझे बाबा की मुरली की बात पता चली। मुझे बताया गया कि साल के एक दिन किसी साध्वी पर बाबा आते है और वर्ष भर के निर्देश देते है। मैने इस बारे मे अपने साथ आये संस्थान के लोगो से बात की तो उन्होने विस्तार से इस बारे मे बताया। मुझे अचानक ही अपने अभियानो की याद आ गयी। हमे तो बताया गया था कि यह अन्ध-विश्वास है। यह संस्थान दुनिया का जाना-माना संस्थान है और यहाँ बहुत से वैज्ञानिक अनुसन्धान हो रहे है। फिर यदि यह सब यहाँ हो रहा है तो क्या इसमे भी कोई विज्ञान है? आबू शहर मे मित्रो से चर्चा की तो उन्होने बताया कि महाराष्ट्र की अन्ध-विश्वास मिटाने वाली संस्था ने एक बार इसका व्यापक विरोध किया था पर उनकी आवाज नक्कारखाने ने तूती की आवाज साबित हुयी। यह सब सुनकर मन मे संश्य बढ गया। वापस लौटकर अनमने ढंग से मै फिर अभियानो मे जुट गया। एक बार पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के दस्तावेजीकरण के दौरान उन आदिवासियो के चर्च मे जाने का मौका मिला जिन्होने ईसाई धर्म अपना लिया था। एक उत्सव के दौरान उन्हे भी वैसे ही झूमते देखा जैसा देवी-देवता आ जाने पर गाँवो मे लोग झूलते थे। फर्क इतना था कि वे किसी दूसरे देवता का नाम ले रहे थे। मुझे बडा आश्चर्य हुआ। दरगाहो मे भी जाना हुआ और ऐसे दृश्यो को देखा। मुझे विश्वास हो गया कि यदि यह अन्ध-विश्वास है तो इसकी जडे धर्म के परे, बहुत गहरी है और इसे जनमानस से दूर करना कठिन है। यह भी प्रश्न आया कि यदि यह सभी धर्मो मे अलग-अलग रुपो मे है तो फिर हम क्यो हिन्दू धर्म के लोगो को ही समझाने मे तुले है। हमारे धर्म विशेष के विरोध मे काम करने से शहर के बहुत से लोग नाराज भी थे और वे समय-समय पर अपशब्द कहते रहते थे। संस्था प्रमुख से चर्चा करनी चाही पर नतीजा सिफर ही रहा। एक बुजुर्ग सदस्य ने बताया कि मेरे आने से पहले एक बार दूसरे धर्म के अन्ध-विश्वास के खिलाफ आवाज उठायी गयी थी तो उन्होने बडे जोरदार ढंग से प्रतिरोध किया। मारे डर संस्था प्रमुख ने सेफ गेम खेलने की राह चुनी। हिन्दू काफी सहनशील होते है इसलिये उनके बीच ही अन्ध-विश्वास मिटाने की मुहिम जारी रही। और संस्था पर अंगुली उठाने वालो से पर्दा कर लिया गया।

मुझे याद आता है कि एक बार चंगाई सभा के विरुद्ध एक अभियान हुआ था। इस सभा के विषय मे यह प्रचारित किया जा रहा था कि इसमे प्रार्थना की जायेगी जिससे अन्धे देखने लगेंगे, गूंगे बोलने लगेंगे और लंगडे चलने लगेंगे। यह आयोजन रायपुर मे होने वाला था। दूसरे शहरो मे यह हो चुका था। वहाँ से खबर आ रही थी कि सभा के चरम मे

अचानक ही कुछ लोग मंच पर आ जाते है दर्शको के बीच से और कहने लगते है कि चमत्कार हो गया, चमत्कार हो गया। मै लंगडा था देखो प्रार्थना से ठीक हो गया, मै गूंगा था, बोलने लगा, चमत्कार हो गया, चमत्कार हो गया---। असल मे ये आयोजको के ही लोग होते थे। हमारी संस्था ने रायपुर मे इसके आयोजन पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग कर दी। संस्था का यही कहना था कि यदि आपके पास इतना ही सामर्थ्य है तो देश मे लाखो अन्धे, गूंगे और लंगडे लोग है उन्हे आप पहले ठीक करे। हम ऐसे लोगो को आपके सामने लाते है आप इन्हे ठीक करे। हमारे विरोध का शहर ने साथ दिया। आयोजको ने एक खुली चर्चा मे हमे बुलाया। उन्होने साफ इंकार कर दिया कि ठीक होने वाले लोग उनके लोग होते है। जब हमने उस सभा मे उपस्थित रहकर प्रकट होने वालो पर नजर रखने की बात की तो वे आग-बबूला हो गये। उन्होने इसे धर्म प्रचार कहा और अपने ग्रंथो का हवाला दिया। संस्था के सदस्यो ने भी जबरदस्त तैयारी की थी। कुछ ने तो बाइबल पढकर ईसा मसीह द्वारा कहे गये वाक्य ढूँढ निकाले थे जिसमे कहा गया गया था कि मेरे बाद भी कुछ लोग आयेंगे और चमत्कारो से आम लोगो को भ्रमित करेंगे। इनसे दूर रहना। हमने चर्चा के दौरान बाइबल मे कही गयी बाते सामने रखी तो वे हैरान रह गये। उन्हे एकाएक भरोसा ही नही हुआ कि हम लोग इस हद तक मेहनत कर सकते है। बाद मे इस कार्यक्रम का आयोजन तो हुआ पर कोई भीड से प्रकट नही हुआ। उसके बाद हम ऐसे अभियानो के लिये तरस गये। और हमारी संस्था सेफ गेम की राह पर चलती रही। कालांतर मे यह इतना अधिक सेफ गेम हो गया कि अभियान अतीत की बात हो गये, पुराने सदस्य एक-एक कर चले गये, अब लोगो के बीच व्याख्यान होते है, सदस्य अब भी साथ होते है पर संस्था प्रमुख का नाम ही छपता है, वे ही अपने नाम पर पुरुस्कार जुगाड लेते है। इस तरह शहर के जागरुक लोगो द्वारा शुरु की गयी संस्था अब एक की बपौती बनकर रह गयी है। अन्ध-विश्वास फैल रहे है दिन दूनी और रात चौगुनी की दर से और साथ ही संस्था प्रमुख को मिलने वाले निजी पुरुस्कारो और सम्मान की सूची भी। संस्था के गठन के समय से जुडे चन्द्रशेखर व्यास और राजेन्द्र सोनी जैसे अहम सदस्यो के योगदान को भुला दिया गया। जिन लोगो ने इन सदस्यो के साथ अभियान मे भाग लिया वे अपनी जान जोखिम मे डालकर अन्ध-विश्वास के खिलाफ असली लडाई करने वाले इन सदस्यो को कभी भूल नही पायेंगे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

औषधीय और सगन्ध फसलो की व्यवसायिक खेती के क्षेत्र मे वर्ष विशेष मे अचानक ही किसी फसल की माँग बढती है और किसानो के साथ मिलकर वह फसल लगायी जाती है। उत्पाद बेचकर किसान फिर पारम्परिक खेती मे लग जाते है। वनौषधि विशेषज्ञ होने के कारण अक्सर कम्पनी के लोग सम्पर्क करते रहते है। वे मुझसे फसल उत्पादन की जैविक विधि पूछते है फिर किसानो को मार्गदर्शन का काम सौपते है। अभी तक मैने 100 से अधिक फसलो की खेती मे दुनिया भर के लोगो का मार्गदर्शन किया है। इस दौरान मुझे बडे ही दिलचस्प अनुभव हुये है। यहाँ मै विश्वास और अन्ध-विश्वास से जुडे अनुभवो की बात करुंगा।

कुछ वर्षो पहले रायपुर के पास मुझे बच (एकोरस कैलामस) नामक औषधीय फाल की खेती के लिये अनुबन्धित किया गया। मुझे प्रतिदिन किसानो से मिलने जाना होता था। सफेद रंग की एम्बेसडर उपलब्ध करवायी गयी थी। मै सबसे पहले पूरे प्रक्षेत्र का भ्रमण करता और फिर किसानो से चर्चा करता। हर दिन मै भ्रमण के दौरान दूर खडे एक व्यक्ति को देखता था। उसकी नजर मेरी ओर होती थी। नजर मिलने से पहले ही वह दूसरी ओर देखने लगता था। साल भर तक यही सिलसिला चलता रहा। जब फसल तैयार हुयी और कन्दो को खोदने की बारी आयी तो मैने एक दिन उस व्यक्ति को फार्म पर पाया। वह हाथ जोडे खडा था। उसके चेहरे पर आदर का भाव था। मेरे पहुँचते ही उसने बढकर पैर छूने की कोशिश की। मै पीछे हटा और इस सब का कारण पूछा। किसानो ने बताया कि वह गाँव का ओझा था। दरअसल वह बच की खेती से परेशान था। बच एक सुगन्धित वनस्पति है। भूत उतारने के लिये ओझा अक्सर इसका आँतरिक और बाहरी प्रयोग करते है। इसका धुँआ दिमाग को चैतन्य बना देता है। यही कारण है कि मानसिक रोग की अवस्था से रोगी असली दुनिया मे आ जाता है धुँए के शरीर के अन्दर पहुँचते ही। देश के बहुत से भागो मे मृगी के दौरे के समय इसे सुँघाया भी जाता है। ओझा इसकी पूजा करते है और जंगलो से इसे एकत्र करके लाते है। वे मानते है कि इसे इधर-उधर ऐसे ही लगा देने से गाँव की हवा बदल जाती है। वे इसे देवनाशन कहते है। एक भी पौधा दिखने पर वे इसे उखाड कर ही दम लेते है। यह भी सुनने मे आता है कि ओझा को बस मे करने के लिये उसके दुश्मन इसे लगा देते है। जब इस ओझा ने मुझे बडी मात्रा मे इसे खेतो मे लगाते देखा तो वह भयभीत हो गया। उसने किसानो को डराया पर शायद किसान नही डरे। उन्होने मुझे इसके बारे मे बताना उचित नही समझा उस समय। वह

ओझा यह भी मानता था कि इसे उगाना सरल नही है। मैने इतने बडे क्षेत्र मे इसे उगाया था इसलिये अब वह मेरी सत्ता स्वीकारने को तैयार था और इसलिये पैरो मे गिर रहा था। मुझे खूब हँसी आयी। मै उसे खेतो तक ले गया और इस फसल से परिचित कराया। उसके लिये भले ही यह कठिनाई से उगने वाला पौधा था पर मैने तो इस औषधीय फसल को आलसियो की फसल का दर्जा दिया है। बिना किसी देखभाल के इसे लगाया जा सकता है। छत्तीसगढ मे तो यह धान के खेतो मे धान के साथ उग सकता है। शहर से बच से तैयार की गयी एक विदेशी मदिरा भी मैने ओझा को दी। वह मस्त हो गया। वह बच के बारे मे जानकर और इससे बनी मदिरा पीकर उतना खुश नही था जितना यह जानकर कि मैने उसे पराजित करने के लिये बच नही लगाया था।

आमतौर पर सन्दर्भ साहित्यो मे वनौषधीयो की खेती पर ज्यादा कुछ नही मिलता है। जैसे ही माँग आती है मै जंगल मे उग रही वनस्पतियो को जानने उनके प्राकृतिक आवास मे चला जाता हूँ। फिर वहाँ माँ प्रकृति के प्रयोग से सीखने की कोशिश करता हूँ। जब कलिहारी (ग्लोरियोसा सुपरबा) नामक वनस्पति की माँग आयी तो मैने यही रास्ता अपनाया। वनवासियो ने बताया कि ओझा ही आपको ऐसे स्थानो मे ले जा सकते है जहाँ यह बहुलता से उगती है। ओझाओ से बात की तो वे तैयार नही हुये। वे किसी खास दिन की बात करने लगे। फिर उन्होने मुझसे चेला बनने की शर्त रखी। चेला बनने के लिये कुछ तंत्र क्रियाए करनी थी फिर मुर्गे का प्रसाद लगाना था और अंत मे मदिरा का भरपूर सेवन करना था। पहली प्रक्रिया मे कोई मुश्किल नही थी। पर शाकाहारी होने और मदिरा का सेवन न करने के कारण पूरी प्रक्रिया कर पाना सम्भव नही था। मैने अपने ड्रायवर को आगे किया तो ओझाओ ने कहा कि ड्रायवर बस जायेगा। आपको जंगल के बाहर रुकना होगा। मैने इस योजना को त्याग दिया। बस्तर की ओर रुख किया और फिर अपने वानस्पतिक सर्वेक्षणो के माध्यम से कलिहारी के स्त्रोतो का पता लगा लिया। जब इसकी व्यवसायिक खेती आरम्भ की तो एक बार फिर आस-पास के ओझाओ ने हल्ला मचाया। यहाँ तो वे खुल्लम-खुल्ला विरोध करने लगे। किसान हमारे साथ थे। बाद मे काफी समझाने-बुझाने के बाद ओझाओ ने अनुमति दी। वे सोच रहे थे कि शायद मै इन्हे उगाकर उनपर कुछ जादू करुंगा।

एक रात फसल के आस-पास के क्षेत्र मे रात को लालटेन जलती देखकर बडे गुस्से मे वे एकत्र हो गये। लालटेन के पास मुझे खडा देखकर उन्हे यकीन हो गया कि मै जादू कर रहा था। आमतौर पर क्षेत्र मे कौन से कीडे सक्रिय होने वाले है-इसका पता लगाने के लिये हम लोग छोटा सा प्रयोग करते थे। रात को खेत के पास एक परात मे पानी भरकर

बीच मे ईट रखकर उसमे लालटेन रख देते थे। चारो ओर अन्धेरा होता था। सिर्फ यहाँ प्रकाश होने के कारण कीडे पास आ जाते थे। फिर मरकर पानी मे तैरने लग जाते थे। इन कीडो को प्रयोगशाला मे ले जाकर हम उनकी पहचान कर लेते थे। नर-मादा साथ होने पर हमे सहज की अन्दाज लग जाता था कि किस प्रकार के अंडे दिये जा चुके है और कौन से कीडो का प्रकोप आगामी दिनो मे हो सकता है। यह सरल तकनीक है पर बस्तर के जंगलो मे यह प्रयोग हम पर भारी पड गया। ओझाओ को खूब समझाया तब जाकर जान छूटी।

इतनी सारी तथाकथित जादुई फसलो को उगाकर भी किसी प्रकार का जादू मै सीख नही पाया। यदि थोडा भी सीख जाता तो किसानो को कम्पनी वालो से उत्पाद की अधिक कीमत दिलाने का प्रयास मै जरुर करता। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

किसानो के खेतो मे बन्दरो के बढते उत्पात ने मुझे प्रेरित किया कि मै किसानो के लिये ऐसे सरल उपायो की तलाश करुँ जिससे नुकसान कम हो और बन्दरो को भी किसी तरह की क्षति न पहुँचे। हमारे क्षेत्र मे काले मुँह वाले लंगूरो ने कोहराम मचा रखा है। ये न केवल फसलो को नष्ट कर रहे है बल्कि गाँव के घरो के छप्परो को भी नुकसान पहुँचा रहे है। बन्दर धार्मिक आस्था से जुडे हुये है। वैसे भी आम किसान इस बात को जानते है कि बन्दरो का आवास छिन जाने के कारण ही उन्होने खेतो का रुख किया है। पहले भी बन्दर आते थे पर कुछ समय के लिये। अब तो लगता है कि जैसे बन्दर यही के होकर रह गये है। किसानो ने दसो उपाय अपनाये पर अब थक-हार कर किसी चमत्कार की प्रतीक्षा कर रहे है। किसानो को बहुत अधिक धन गँवना पड रहा है। देश भर मे भ्रमण के दौरान मै जहाँ भी जाता हूँ बन्दरो से निपटने के स्थानीय तरीको की पूछ-परख करने से नही चूकता हूँ। पर ज्यादातर मामलो मे लोग मुझसे ही नये उपाय जानने की उम्मीद कर बैठते है।

छत्तीसगढ के वनीय क्षेत्रो मे भ्रमण के दौरान साथ चल रहे एक बैगा से मैने ऐसे ही पूछा कि क्या कोई उपाय है बन्दरो से छुटकारा पाने का? आशा के विपरीत उसने कहा कि हाँ साहब बिल्कुल है। जहाँ भी बन्दर हो मुझे वहाँ ले चलिये। मै पूजा करुंगा और कुछ चीजो को गाड दूंगा जिससे बन्दर वहाँ आयेंगे ही नही। मैने पूछा कि क्या वे उस खेत विशेष मे नही आयेंगे या पूरे क्षेत्र से भाग जायेंगे? उसने कहा कि सिर्फ खेत की रक्षा वह कर सकता है। मै सोच मे पड गया। अन्दर की वैज्ञानिक सोच बैगा के उपाय को अपनाने मे बाधक बन रही थी। भला यह कैसे सम्भव है? फिर यह बात मन मे आयी कि वह कुछ गाडेगा। हो सकता है यह कोई ऐसी चीज हो जिससे बन्दर दूर भागते हो या नफरत करते हो? आजमाने मे क्या जाता है? अंततः मै उस बैगा को लेकर उस स्थान तक पहुँचा।

सन्योग से बन्दर खेत मे आये हुये थे। बैगा ने उन्हे प्रणाम किया और अपने इस कृत्य के लिये एडवान्स मे क्षमा भी माँग ली। करीब एक घंटे तक पूजा चलती रही। बीस तरह की जहरीली वनस्पतियो को उस स्थान पर गडाया गया जहाँ से अक्सर बन्दर आते थे। फिर पूजा का दौर चला। भावावेश मे वह जोर-जोर से मंत्र पढता रहा। पूजा खत्म होने के बाद मैने दक्षिणा देनी चाही तो उसने कुछ लेने से इंकार कर दिया। अब तो पूरा यकीन हो गया कि उसका उपाय असर करेगा। मैने उसे वापस उसके घर छोड दिया।

कुछ दिनो बाद फिर से उस खेत मे जाना हुआ। किसान से पूछा तो उसने कहा बन्दर आ रहे है। मैने खेत का मुआयना किया तो बन्दर दिख गये। कुछ तो उस जगह पर बैठे थे जहाँ वनस्पतियाँ गडायी गयी थी। मतलब नतीजा सिफर रहा। बाद मे मैने एक बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक से इस विषय मे चर्चा की तो वह मेरी बात सुनकर हँस पडा और बोला कि सब जीव पर मंतर के असर होथे पर बेन्दरा ऊपर कोई मंतर नही चले अर्थात सभी जीवो पर मंत्रो का असर होता है पर बन्दरो पर कोई मंत्र नही चलता है। उसने मुझे एक सप्ताह बाद आने को कहा। मैने सोचा कि शायद नयी वनस्पतियाँ या नया उपाय मिलेगा। मै सप्ताह भर बाद पहुँचा तो उसने दस छोटे पौधे दिये और कहा कि इन्हे अपने खेत मे रोपना और बाकी सभी बडे पेडो विशेषकर बबूल को उखाड देना। उसने इन पौधो के इतने सारे उपयोग बताये कि मै सुनते-सुनते थक गया। ये पौधे सेमल के थे। सेमल मे काँटे होते है। यही कारण है कि बन्दर इस पर आश्रय लेना पसन्द नही करते है। खेतो मे यदि इनकी बहुलता हो तो वे खेतो से दूर ही रहते है। मुझे पारम्परिक चिकित्सक की बात अच्छी लगी पर यह स्थायी समाधान नही था। सेमल जैसे दसो पेडो की आवश्यकत्ता है जो बन्दरो को दूर रख सके। सभी किसान सेमल नही लगायेंगे। दस तरह के पेड होंगे

तो उन्हे अपनी सुविधानुसार पेडो के चुनाव मे आसानी होगी। जैसा इस पारम्परिक चिकित्सक महोदय ने कहा कि बन्दर पर कोई मंत्र चलता। यदि कल को बन्दरो ने सेमल पर बैठना सीख लिया तब क्या होगा? काँटे उनके लिये बहुत बडी समस्या नही है। वे मजे से बबूल के पेडो मे रात गुजार लेते है। उनके बच्चो को बबूल के कीडो को खाते देखा जा सकता है।

कुछ वर्षो पहले राजिम क्षेत्र के एक पारम्परिक सर्प विशेषज्ञ से मेरी चर्चा हो रही थी। मैने उनसे पूछा कि आप घने जंगलो मे बिना जूतो के चले जाते हो। क्या आपको डर नही लगता? जंगल खूँखार जानवरो से भरे होते है। सोन कुत्ते से लेकर भालू जैसे वन्य जीव लोगो को पल भर मे ही मौत के पास ले जाते है। मेरी बात सुनकर वे बोले कि मेरे पास एक विशेष वस्तु है जिसे लेकर जंगल जाने से किसी तरह का भय नही रहता। फिर उन्होने वह वस्तु दिखायी। मै चौक पडा। वह वस्तु लाल कपडो मे बन्धी बन्दर की खोपडी थी। उन्होने कहा कि यह ऐसी-वैसी खोपडी नही है। जब बन्दरो का समूह एक डाल से दूसरी डाल पर छलाँग लगाता है तो सभी को बिना गिरे दूसरी डाल तक जाना होता है। यदि गल्ती से कोई बन्दर गिर जाये तो उसे तुरंत ही दल से बाहर निकाल दिया जाता है। कालांतर मे जब यह मरता है या गिरने से मौत होती है तो इसकी खोपडी सुरक्षित रख ली जाती है। इस खोपडी का प्रयोग तंत्र साधना के लिये होता है। ऐसा माना जाता है कि इस खोपडी को रखने से सभी तरह का डर समाप्त हो जाता है। मैने यह बात बहुत बार सुनी है पर बन्दरो से सम्बन्धित वैज्ञानिक साहित्यो या पुरानी शिकार कथाओ मे इसका वर्णन कही नही पाया। डिस्कवरी जैसे चैनलो पर बन्दरो पर तैयार की गयी फिल्मो मे भी यह नही दिखाया जाता। सर्प विशेषज्ञ का कहना था कि ऐसा कभी-कभार ही होता है। मुझे लगा कि जब इस खोपडी का इतना अधिक महत्व है तो जरुर यह व्यापार का हिस्सा होगी। हमारे देश मे बन्दरो के शिकार की मनाही है। हो सकता है इनसे बात करते करते किसी तस्कर गिरोह का पर्दाफाश हो जाये। यह सोचकर मैने उनसे कहा कि मुझे यह खोपडी चाहिये किसी भी कीमत पर। इतना सुनना था कि उनकी आँखो मे क्रोध के भाव आ गये। उन्होने कहा कि यह खोपडी गुरु ने दी है और कडी साधना से मिली है। मैने कहा कि तो फिर दूसरी खोपडी ला दो। पैसे की चिंता न करो। उन्होने जवाब दिया कि जिन्दा बन्दर को तो मारने की बात ही हम सोच नही सकते है। वे बजरंगबली के रुप है। अपने आप मरने वाले बन्दरो और वह भी इस खास तरीके से मरने वाले बन्दरो की खोपडी का ही प्रयोग होता है। अब तक यह स्पष्ट हो चुका था कि बन्दरो की खोपडी की तस्करी जैसा कुछ नही था। यह उनका विश्वास था जो वे खोपडी को साथ रखते थे। यह बात मै यकीन से इसलिये कह सकता हूँ क्योकि मै कई बार

उनके साथ जंगल गया और वन्य जीवो से सामना करते वक्त उन्हे पेडो मे चढते देखा। मै तो सोच रहा था कि खोपडी पास होने पर वन्य जीव पास ही नही आयेंगे। उनका सीधा तर्क था कि खोपडी के कारण ही वे पेड पर समय रहते चढ पाये और अपनी जान बचा पाये। किसी ने सही ही कहा है कि विश्वास अपने पक्ष मे तर्क खुद ही गढ लेता है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

आम तौर पर अल सुबह मै घने जंगलो मे जाना पसन्द नही करता। इस समय वन्य जीवो विशेषकर भालुओ के लौटने का समय होता है। ऐसे समय मे नीचे उतरकर वनस्पतियो को देखना और उनकी तस्वीरे उतारना जोखिम भरा होता है। एक बार विशेष कीटो को देखने सुबह-सुबह जंगल जाना ही पडा। मै सामने की सीट पर बैठा था। स्थानीय लोग पीछे बैठे थे। ड्रायवर अपनी मस्ती मे गाडी चला रहा था। अचानक ही घने जंगल मे एक निर्वस्त्र व्यक्ति पर हमारी नजर पडी। पहले हमने सोचा कि शौच आदि के लिये कोई बैठा होगा पर घने जंगल मे भला कौन शौच के लिये आयेगा? हमने गाडी रोक दी। साथ चल रहे लोगो ने न रुकने की सलाह दी। मै जिद करके उस व्यक्ति तक पहुँचा तो वह तेजी से दूर जाने लगा। मैने कुछ पूछना चाहा तो उसने चुप रहने का इशारा किया। वह साधारण व्यक्ति ही था। शरीर निर्वस्त्र था पर कुछ भागो मे उसने लोकटी नामक छोटी मक्खियो से बचने के लिये मिट्टी का लेप लगा रखा था। उसने इशारे से हमे रुकने के लिये कहा और इशारो-इशारो मे ही वापस आने का अश्वासन देकर जंगल मे गुम हो गया। हमने दो घंटो तक इंतजार किया।

जब वह वापस आया तो उसके हाथ मे चाबुक की तरह लम्बी जड थी। उसने कपडे पहन लिये थे। उसने खुलासा किया कि आज का दिन गुंजा की जड उखाडने के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। गुंजा अर्थात रत्ती या गोमची (एब्रस प्रीकेटोरियस)। जड उखाडने की उसकी विधि अनूठी थी। वह अल सुबह जंगल मे आ गया फिर झरने मे स्नान करके निर्वस्त्र ही जडो को उखाडने चल पडा। इस दौरान उसे किसी से बात नही करनी था। इसलिये उसने

हमसे भी बात नही की। जड को लकडी के औजार से उखाडना था। फिर कपडे पहनकर वापस गाँव आना था और ताजे दूध मे जड को धोकर उपयोग करना था। मैने पारम्परिक चिकित्सको से जडो के एकत्रण की कई विधियो के विषय मे सुना था पर यह सर्वथा नयी जानकारी थी।

गुंजा पर विशेषकर इससे सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पर मैने सैकडो शोध आलेख लिखे है। सफेद बीजो वाले गुंजा को विशेष उपयोगी माना जाता है। यह दुर्लभ होता है। पिछली बार जब मैने एक देहाती मेले मे शिरकत की थी तो सफेद गुंजा के सारे बीजो को खरीद लिया था। इसे अपने घर और खेतो मे लगा दिया था। वैज्ञानिक अनुसन्धान बताते है कि इस तरह गुंजा को लगा देने से जमीन की उर्वर क्षमता बढ जाती है। मैने अपने अनुभव से पाया है कि खेतो मे इसका फैलाव कई प्रकार के खरपतवारो को बढने से रोक देता है। घर पर आमतौर पर गुंजा को नही लगाया जाता है। इसके विषय मे यह मान्यता है कि यदि किसी के घर मे गुंजा के बीज फेक दिये जाये और वे पौधे के रुप मे जम जाये तो उस घर के लोग लड-लड के बेहाल हो जाते है। हमारे यहाँ गुंजा तो उग रहा था पर झगडा नही हो रहा था इसलिये हमने इस मान्यता को अनदेखा करना ही उचित समझा। मैने अपने पिछले लेखो मे लिखा है कि बहुत सी वनस्पतियो से जुडी ऐसी बाते आमतौर पर वनस्पति को घर मे लगाने से रोकने के लिये फैलायी जाती है। उदाहरण के लिये कलिहारी को ही ले। इसे झगडहीन या झगडा पैदा करने वाला पौधा माना जाता है। इसके सुन्दर फूलो के लिये इसे घर मे लगा दिया जाता है पर बहुत कम लोग जानते है कि यह एक अत्यंत विषैला पौधा है। इतना विषैला कि इसकी जड का एक छोटा सा हिस्सा पल भर मे मनुष्य़ की जान ले ले। लिट्टे के लोग इसीलिये अपने सुसाइड केप्सूल मे इसे रखते है। इसी विषैलेपन को देखते हुये हमारे बुजुर्गो ने इसके साथ झगडे वाली बात जोड दी ताकि लोग मारे डर इसे घर मे न लगाये और इस तरह वे इससे बचे रह सके। गुंजा के बीज भी नुकसानदायक होते है। गर्भपात के लिये इसके बीजो का प्रयोग चोरी-छिपे किया जाता है। हमारे देश मे तो मालाओ मे गुंजा के बीज पिरोकर उन्हे खूबसूरत बनाया जाता है। बच्चो के गले पर ऐसी मालाए आप देख सकते है। बीज के जहरीलेपन को देखते हुये आस्ट्रेलिया मे ऐसी मालाओ के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। यह एक तरह से सही भी है क्योकि लाल रंग बच्चो को आकर्षित करता है। और वे कभी भी बीजो को निगल सकते है। हो सकता है गुंजा से झगडे वाली बात इसी के चलते जोडी गयी हो।

चलिये अब वापस उसी रहस्यमय व्यक्ति के पास चले। उसने बताया कि वह औषधीय प्रयोग के लिये जड नही ले जा रहा है। वह कुछ तांत्रिक प्रयोग करना चाहता है। कैसे तांत्रिक प्रयोग? मेरे प्रश्न पर वह चौका और उसके चेहरे पर ऐसे भाव आये जैसे कि उसे इस बारे मे बताने की इच्छा नही है। जिद करने पर उसने साथ मे गाँव चलने को कहा। वहाँ उसने एक मोटी सी पुस्तक दिखायी। मै तुरंत ही उस पुस्तक को पहचान गया। यह तंत्र की पुस्तक थी और मेरी अपनी लाइब्रेरी मे भी थी। यह पुस्तक विचित्र दावो से भरी पडी है। ऐसे दावे जो पढने मे रोचक लगते है पर जमीनी स्तर पर उनकी कोई उपयोगिता नही है। इसमे गुंजा के बहुत से तांत्रिक प्रयोग दिये गये है। मैने इन दावो की परीक्षा के लिये कई बार इन प्रयोगो को किया पर हर बार दावे खोखले निकले। मैने उस व्यक्ति से पूछा कि आप किस प्रयोग को करना चाहते है? उसने जिस प्रयोग पर अंगुली रखी उसे पढकर मुझे हँसी आ गयी। यह प्रयोग रातोरात अमीर बनने से सम्बन्धित था। पुस्तक का दावा था कि विशेष विधि से एकत्र की गयी गुंजा की जड को अंकोल के तेल मे घिसकर आँखो मे काजल की तरह लगाने से जमीन के अन्दर गडे गुप्तधन के दर्शन हो सकते है। मैने पहले इस प्रयोग के विषय मे पारम्परिक चिकित्सको से पूछा था। उनका कहना था कि इससे धन मिलना तो दूर आपकी आँखो को नुकसान हो सकता है। अत: भूलकर भी सत्यता परखने की कोशिश न करे। मुझे पारम्परिक चिकित्सको की बात याद आ गयी। मैने तुरन्त ही उस व्यक्ति को यह बात बतायी। पर इस बार वह हँस पडा और बोला कि आप शहर के लोगो को कभी इन बातो पर विश्वास नही होगा। मै चुप हो गया। मेरी बात सुनकर उसके बडे बेटे ने भी ऐसे प्रयोग का विरोध किया। पर अंतत: उसने काजल लगा ही लिया। हम उसे उसके हाल मे छोडकर वापस आ गये। रास्ते मे चर्चा होती रही कि चाहे शहर हो या गाँव, सभी शार्टकट से धन अर्जन करना चाहते है। चाहे इस शार्टकट के लिये उन्हे जान भी जोखिम मे क्यो न डालनी पडे।

काफी समय बाद एक नेत्र विशेषज्ञ मित्र के पास जाना हुआ। उसकी व्यस्तता के कारण मुझे कुछ देर बाहर बैठना पडा। तभी एक लडका मेरे पास आया और नमस्कार किया। मैने उसे पहचान लिया। यहाँ कैसे? मैने पूछा। बाबूजी के आँखी खराब हो गे हे। जाँच बर आये हवव। (बाबूजी की आँखे खराब हो गयी है। जाँच करवाने के लिये आया हूँ।) वह उसी व्यक्ति का बडा लडका था। गुप्त धन शायद उसे नही मिल पाया था पर दृष्टि रुपी धन उसने इस चक्कर मे खो दिया था।

उसे सबक मिल गया था एक बडी कीमत चुकाने के बाद पर बात यही खत्म नही होती। मेरा मानना है कि उन प्रकाशको और लेखको को भी सबक सीखाना जरुरी है जो ऐसी

पुस्तको को प्रकाशित करते है और आधी-अधूरी जानकारी आम लोगो तक पहुँचाते है। ऐसी पुस्तके आसानी से मिल जाती है। इनकी कीमत भी अधिक नही होती है। यदि इनके दावो की वैज्ञानिक स्तर पर जाँच की जाये और बेसिर-पैर के दावे करने वाले साहित्यो पर अंकुश लगाया जाये तो मुझे लगता है कि कुछ लोगो को तो हम ठगी से बचा ही लेंगे। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

एक पहलवान के लिये डाइट चार्ट बनाने से पहले मैने उससे कहा कि आप दिन भर जो खाते हो और जो भी बाहरी चीजो का इस्तमाल करते हो उसके बारे मे विस्तार से लिखकर मुझे दे दो। मै उसी आधार पर एक उपयोगी पर सरल डाइट चार्ट बना दूंगा। वह सहर्ष तैयार हो गया। उसने खूब मेहनत की और कुछ दिनो बाद मेरी मेज पर सारे विस्तार उपलब्ध थे। मैने गौर से सब कुछ पढा पर एक प्रयोग ने बरबस ही मेरा ध्यान खीच लिया और वह था एक विशेष प्रकार के तेल से शरीर की मालिश। रोज व्यायाम से पहले इसकी मालिश की जाती थी और कुश्ती के मुकाबले से पहले तो इसे किसी भी हालत मे लगाना ही होता था। आमतौर पर पहलवान तेलो से मालिश तो करवाते ही है। इसमे कोई नयी बात नही थी। पर विशेष तेल के जिक्र ने मुझे उससे इस बारे मे पूछने के लिये प्रेरित किया। पहलवान ने बिना किसी हिचकिचाहट के बता दिया कि यह जादुई तेल है। इसे लगाने से हारती हुती बाजी भी मै जीत जाता हूँ। किसने दिया यह तेल? मैने पूछा। एक तांत्रिक ने। उसने कहा और कहता ही गया। दरअसल यह काले कौव्वे की चरबी है जो बडी मुश्किल से मिलती है। तांत्रिक ने इसे बडी मुश्किल से प्राप्त किया है और फिर मुझे इसकी बडी कीमत चुकानी पडी। मैने पूछा कि क्या इससे शरीर की ताकत बढती महसूस होती है? उसने कहा, ताकत तो नही बढती पर तांत्रिक का कहना है कि इसका प्रभाव मात्र ही प्रतिद्वन्दी को चारो खाने चित कर देता है। तुमको कैसे पता कि यह कौव्वे की ही चर्बी है? क्या मुझे उस तांत्रिक ने मिलवाओगे? वह तैयार हो गया।

पास के ही गाँव मे तांत्रिक का घर था। हम उसके घर पहुँचे तो वह मोबाइल पर किसी को सलाह दे रहा था। घर को अन्दर से देखने पर लगता ही नही था कि हम किसी गाँव मे है। सुख-सुविधा की सारी चीजे उपलब्ध थी। तांत्रिक से परिचय हुआ और मेरे आने का कारण पूछा गया। चरबी पर बात शुरु हुयी तो मेरी रुचि देखकर उसका कौव्वा-पुराण शुरु हो गया। उसके घर मे मरे हुये कौव्वो के विभिन्न भागो का अम्बार था। उसने एक लाकेट खोला और मुझे नाखूननुमा चीज दिखाते हुये बोला कि यह मै आपको मुफ्त मे दूंगा। इस नाखून को सदा जेब मे रखियेगा। आपकी जेब सदा भरी रहेगी। भला ऐसे कैसे सम्भव है-मैने सोचा। यह बेसिर-पैर वाली बात हो गयी। वैसे मेरे मन मे कौव्वे के भागो को देखकर क्रोध भर रहा था। उसने घर के पिछवाडे मे चर्बी एकत्र कर रहे एक व्यक्ति से भी मिलवाया। तांत्रिक ने भी इस बात को दोहराया कि चर्बी का असर केवल चमत्कारिक है। यदि आप खुद बनायेंगे तो यह इसका असर नही होगा।

मैने उससे पूछा कि साल भर मे कितने कौव्वे मार लेते हो? क्या तुम्हे पता है कि कौव्वो का शिकार प्रतिबन्धित है? इतना सुनना था कि उसने अपना फोटो एलबम निकाल लिया जिसमे बडे-बडे राजनेताओ के साथ उसकी तस्वीरे थी। कुछ प्रमाणपत्र थे। एक पुलिस के उच्च अधिकारी का भी पत्र था जिसमे कहा गया था कि मुझे स्वामी के बताये उपायो से फायदा हुआ। इतना सब दिखाने के बाद वह तन कर बैठ गया और मुझे समझाने की कोशिश की। कौव्वा शैतान का रुप है। इसको मारकर मै तो समाज सेवा कर रहा हूँ-उसने कहा। मुझे तो तांत्रिक ही जीता-जागता शैतान लग रहा था। कौव्वे तो माँ प्रकृति के सफाई कर्मचारी है। वे हमारे गन्दे शहरो से बिना शुल्क लिये और बिना हडताल पर जाये नियमित तौर से कचरे को उठाते है। आस-पास कौव्वो की उपस्थिति जीवित वातावरण की सूचक है यह तो वैज्ञानिक अनुसन्धानो से भी अब पता चल चुका है। फिर कौव्वो को क्यो दुष्टता का प्रतीक माना जाता है? क्यो नही इतने उपयोगी पक्षी के उपयोगी गुणो के विषय मे विज्ञान सम्मत बाते सभी को बतायी जाती है? क्यो कौव्वे के चिल्लाने को नाहक ही बिना किसी वैज्ञानिक आधार के अशुभ माना जाता है?

तांत्रिक वाली घटना के बाद मै पारम्परिक चिकित्सको से मिला और इस बारे मे चर्चा की। वे भी इससे दुखी लगे। उन्होने कहा कि वैसे ही खेतो मे कीटनाशको के बढते प्रयोग से कौव्वे अकाल मौत मर रहे है। मैने जंगल विभाग मे काम कर रहे एक मित्र से चर्चा की। उसने इस बात की पुष्टि की कि इस तरह कौव्वे को मारने पर प्रतिबन्ध है पर यह भी कहा कि कौव्वे के लिये कौन सामने आयेगा? मोर या कोई दुर्लभ प्रजाति की चिडिया की बात होती तो बहुत से स्वयमसेवी संगठन सामने आ जाते और अभियान

चलाने की जिद करने लगते। उसने अंत मे कह ही दिया कि क्यो बेचारे तांत्रिक की रोजी-रोटी छीनते हो? कोई मंत्र ले लो उससे या फिर खर्चा-पानी ले लो वह खुशी-खुशी दे देगा। नही तो मै साथ चलूंगा।

मैने कलम को हथियार बनाया और उस तांत्रिक के विषय मे लिखना आरम्भ किया। कौव्वो पर भी एक लेखामाला लिखी। इसका प्रभाव पडा या नही, यह तो पता नही पर वह गाँव छोडकर चला गया। उसने यह काम नही छोडा। आज भी मै जब देहाती मेलो मे जाता हूँ तो कौव्वे के विभिन्न भागो से बनी वस्तुओ के विषय मे पूछता हूँ। लोग बेहिचक जानकारी देते है और इससे कौव्वे से जुडे अन्ध-विश्वास के विषय मे जानकारी मिलती है। बडा दुख होता है कि मै इस अवैध व्यापार को किसी भी तरह से रोक नही पाता हूँ।

कौव्वे से सम्बन्धित सबसे प्रचलित अन्ध-विश्वासो के बारे मे आप सुनते ही समझ जायेंगे कि यह सचमुच का अन्ध-विश्वास है। बहुत से देहाती मेलो मे तांत्रिक कौव्वे का ताजा खून लेकर बैठे होते है। ग्रामीण बेरोजगार युवक उनके पास जमे रहते है। तांत्रिक दावा करते है कि यदि नौकरी का आवेदन पत्र कौव्वे के खून से लिखा जाये तो नौकरी मिलने से कोई नही रोक सकता। वे मोटी रकम वसूलते है। इसी तरह प्रेम मे असफल प्रेमी से शनिवार को कौव्वे को मारने और फिर उसके हृदय को प्रेमिका के घर के सामने गडा देने से प्रेमिका का पैर उस पर पडते ही वह वापस प्रेमी के पास आ जाती है-ऐसा दावा किया जाता है। आज के वैज्ञानिक युग मे ऐसी मान्यताए इस तरह प्रचलन मे है-यह जानकर दुख होता है।

भारत मे गरीबी है, लोग बेरोजगार है और प्रेम मे असफलता एक सामान्य सी बात है, ये सब बढते ही जा रहे है पर इनसे मुक्ति पाने के नाम पर अनगिनत बेकसूर कौव्वो की हत्या की जा रही है। हमारे पास कानून है और कानून के रक्षक भी पर फिर भी हम इस अन्ध-विश्वास से नही लड पा रहे है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

अन्ध-विश्वास ने जिन पक्षियो का जीना मुहाल कर दिया है उनमे उल्लू का नाम सबसे ऊपर है। इसे रहस्यमय शक्तियो के स्त्रोत के रुप मे प्रचारित किया गया है। बेचारे के लिये अजीब सी दिखने वाली शक्ल और निशाचर होना अभिशाप बन गया है। पिछले दिनो हमारे एक वैज्ञानिक मित्र का सन्देश आया। वे उल्लूओ की तेजी से घटती संख्या पर शोध कर रहे थे। उन्होने अपने अध्ययन मे पाया है कि देश भर मे पिछले एक दशक मे उल्लूओ की संख्या मे तेजी से कमी आयी है। शहरी इलाको मे तो वैसे ही उल्लू कम दिखते है पर अब गाँवो मे भी ये कम दिखने लगे है। पिछले दिनो देश के मध्य भाग से समाचार आया कि एक विचित्र-सा पक्षी मिला है। लोग उसे गरुड मानकर पूजा कर रहे है। पैसे चढा रहे है। यह खबर सतना से प्रसारित हुयी। उसके बाद छत्तीसगढ के जाँजगीर से भी यह खबर आयी। अखबारो ने प्रथम पृष्ठ पर इसकी तस्वीर छापी। खबर मे बताया गया था कि इस विचित्र पक्षी के पास जाने से फुफकारने की आवाज आ रही है। चित्र देखते ही इसके बार्न आउल होने का अन्दाज विशेषज्ञो को हो गया। फुफकारने के कारण इसे हिसिंग आउल भी कहते है। बार्न आउल पीढीयो से खलिहानो मे रहता आया है। यह किसानो का मित्र रहा है। हानिकारक कीटो और परमप्रिय चूहो को खाकर उनकी आबादी पर प्राकृतिक नियंत्रण करता रहा। अचानक ही इसकी संख्या मे कमी हो गयी। लोग इसे भूल गये। यही कारण है कि जब ये दिखे तो उन्हे गरुड मान लिया गया। इस खबर से यह भी स्पष्ट होता है कि ग्रामीण अंचलो मे अब गरुड को भी लोग भूल चुके है। यह बडा दुखद है। बार्न आउल की संख्या मे दुनिया के कई देशो मे कमी आयी है। पर सब जगह अलग-अलग कारण है। मसलन ब्रिटेन मे ग्रामीण क्षेत्रो मे बढते यातायात को इसके लिये उत्तरदायी माना गया है। दुनिया के उन देशो मे जहाँ कृषि रसायनो का अन्धाधुन्ध प्रयोग होता है जिनमे भारत भी शामिल है, ये लुप्तप्राय होते जा रहे है। वे किसानो के बदले हुये रुप को देखकर अब खलिहान छोडकर जा रहे है। किसान जाने-अंजाने अपना एक परम मित्र खो रहे है।

इन सब कारणो के अलावा जो सबसे महत्वपूर्ण कारण है वह है उल्लू से जुडा अन्ध-विश्वास और तांत्रिक क्रियाओ मे इसके सभी भागो का प्रयोग। मैने अपने वैज्ञानिक मित्र से इस कारण को भारत के सन्दर्भ मे सबसे ऊपर रखने का अनुरोध किया। उन्हे मेरे अनुरोध से कुछ अचरज हुआ। आमतौर पर वैज्ञानिक पूर्व मे प्रकाशित रपटो के आधार पर ही आगे बढते है। यदि उन्हे कुछ नया मिलता है जो कि सन्दर्भ साहित्यो मे नही मिलता है तो उसे लिखने से हिचकिचाते है। यह मेरा निजी अनुभव है। भारतीय वैज्ञानिको मे यह हिचकिचाहट कुछ ज्यादा ही है। यदि उन्हे कोई विदेशी रपट मिल गयी

तो फिर तो वे इस आधार पर आगे बढने से जरा भी नही हिचकिचाते है। बहरहाल, वैज्ञानिक मित्र ने इच्छा जतायी कि वे उल्लू के अंगो से जुडे व्यापार को देखना चाहते है। मैने उनसे कहा कि यह व्यापार अस्तित्व मे तो है पर इतना भी खुला नही है कि आप किसी बाजार मे जाये और आपको खुलेआम यह बिकते हुये नजर आ जाये। मैने उन्हे अपने पास बुला लिया और फिर हम एक तांत्रिक से मिलने चल पडे। शहर से बहुत दूर इस तांत्रिक का गाँव था। हम व्यापारी बन कर गये। ऐसे व्यापारी जिन्हे व्यापार मे घाटा ही घाटा हो रहा था। लाखो खर्च कर चुके थे पर कोई मंत्र असर नही कर रहा था। हमारा यह छदम रुप तांत्रिक को खूब भाया। हमने ऊपर वाली जेबो मे हजार के नोट कुछ इस तरह रखे थे कि वे पहली नजर मे ही उसे दिख जाये। तांत्रिक ने बहुत से उपाय बताये पर उल्लू की बात नही की। आखिर मे हमने ही उल्लू पर चर्चा आरम्भ की। तांत्रिक का कहना था कि उल्लू का प्रयोग बहुत ही कारगर है पर इसमे बहुत खर्च है। खर्च की चिंता बिल्कुल न करे-हमने उसे आश्वस्त करना चाहा। तांत्रिक ने हमे उल्लू का ताजा खून और पंख लाने को कहा। हम कहाँ से लायेंगे, हमसे पैसे ले लीजिये और आप ही ले आये? हमने मजबूरी दिखायी। अरे, यह सब तो आपके शहर मे ही मिलता है? चलिये मै आपके साथ चलता हूँ ताकि आपको नकली सामान न दे दे। उसने कहा। हम भौचक्क थे। शहर गये तो भरे बाजार मे एक दुकान मे सब कुछ मिल गया। दुकान वाले को किसी बात का डर नही था। उसके पास उल्लू का कपाल भी था और जीभ तो उसने दुकान के सामने सजा रखी थी। हद हो गयी। यह खुल्लमखुल्ला बाजार था। मैने दुकान वाले से पूछा कि डर नही लगता छापा पडने का तो वह बोला छापा कैसा छापा? यह तो पूजा सामग्री है। इसे बेचने मे कोई मनाही नही है। उसने आगे बताया कि नेपाल और बंगाल के उल्लू की कीमत ज्यादा मिलती है। जाहिर है इन पर तांत्रिको का कमीशन भी ज्यादा रहता है। न केवल दूसरे राज्यो बल्कि पडोसी देशो से भी उल्लूओ की तस्करी होती है। दुकान वाले का कहना था कि आप दिल्ली जाइये। दीपावली के समय। वहाँ उल्लूओ की बोली लगती है लाखो मे। अरबो का बाजार है इसका और यह बढता ही जा रहा है।

उल्लू के ताजे खून से हमे पूजा के बाद तिलक लगाया जाना था। फिर हमे अपने प्रतिद्वन्दी के सामने जाने था। यह तिलक इतना करामाती बताया गया था कि प्रतिद्वन्दी कदमो मे गिर पडेगा और रहम की भीख माँगने लगेगा। यह सब पाँच हजार एक मे होने वाला था। वैज्ञानिक मित्र ने पूछा कि यदि प्रतिद्वन्दी पैरो मे नही गिरा और हमारी पिटायी हो गयी तो। तांत्रिक ने कहा, ऐसा हो सकता है, बिल्कुल हो सकता है यदि उसने भी ऐसा ही तिलक लगाया हो। पर इसकी सम्भावना कम है। हमे खूब हँसी आयी। इस बचकाने तर्क पर। हमारे बाद आये एक अन्य व्यक्ति को उल्लू की जीभ देकर उसने इसे

धतूरे के रस के साथ मिलाकर धोखे से अपने शत्रु को पिलाने की सलाह दी। इससे शत्रु का दिमाग घूम जायेगा और वह कही का नही रहेगा। यह तो सरासर गलत बात थी। केवल धतूरे का रस यह काम कर सकता है। फिर उल्लू की जीभ डालने के क्या मायने? जीभ के लिये एक हँसते खेलते प्राणी की हत्या?? फिर धतूरे की जो मात्रा वह बता रहा था वह तो जान भी ले सकती थी। क्या शत्रु की हत्या करने की सलाह दी जा रही थी?

किसी जरुरी काम का बहाना बनाकर हमने तांत्रिक से पिंड छुडाया। दक्षिणा तो दी ही जा चुकी थी इसलिये तांत्रिक ने भी हमे छोड दिया। बाद मे हमने तंत्र-मंत्र की पुस्तको को खंगाला तो ऐसे बेसिर-पैर के कई प्रयोग पढने को मिले। ये सभी प्रयोग सत्य से कोसो दूर थे। जिस तरह उल्लू के अंग खुलेआम बिक रहे है उसी तरह इनके चमत्कारिक प्रयोगो से भरी पुस्तके भी आसानी से उपलब्ध है। इन पर किसी का अंकुश नही है। आप किसी सामाजिक मंच पर इस विषय मे चर्चा छेडना चाहे तो लोग तैयार नही होते है। उनकी अपनी ढेरो समस्याए है। राजनीति इस देश मे चर्चा का सर्वाधिक पसन्दीदा विषय है। उसके बाद फिल्मे और क्रिकेट है। पर्यावरण और प्रकृति से जुडी खबरो पर लोगो मे अफसोस जाहिर कर उन्हे भूल जाने की आदत है। ऐसे मे उल्लू जैसे जीवो पर संकट आने वाले दिनो मे गहराता ही जायेगा। उल्लूओ को कही का नही छोडने वाला इंसान यह क्यो भूल जाता है कि इस तरह के खिलवाड से वह भी जल्द ही कही का नही रहेगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

बचपन मे जब मै अपने सहपाठियो के साथ गाँव की सैर किया करता था तो रोचक बाते सुनने को मिलती थी। कोई भी नया जीव दिखते ही हम उसके पीछे लग जाते थे। पर उल्लू को देखते ही हम राह बदल लेते थे। हमे चेताया गया था कि यदि शाम को उल्लू को ढेला मारा और ढेला पानी मे गिर गया तो जैसे-जैसे वह घुलता जायेगा वैसे-वैसे मारने वाले की जान निकलती जायेगी। गाँव के बडे आँखे निकाल-निकाल कर यह बात बताते थे। मन ही मन बहुत डर लगता था। हमारी हिम्मत भी नही होती थी कि हम इस

प्राणी के दर्शन करे। पिछले हफ्ते एक वन ग्राम मे शाम के समय पेड पर एक उल्लू दिख गया। मैने अपना कैमरा निकाला और जुट गया तस्वीरे लेने मे। यह सब देखकर एक बच्चा तेजी से मेरे पास आया और एक ही साँस मे उसी बात को दोहरा दिया। मेरे सामने बचपन की यादे तैर गयी। इसका मतलब यह बाते दूर-दूर तक प्रचलित है। पढे-लिखे लोग निश्चित ही इसे अन्ध-विश्वास कह सकते है। पर मुझे यह विश्वास उल्लू की प्राण रक्षा मे सहायक लगा। चलिये अन्ध-विश्वास ही सही पर यह एक निरीह प्राणी की जान बचा रहा है, यह कितनी अच्छी बात है। ऐसे बहुत से तथाकथित अन्ध-विश्वास है जिनके बारे मे मुझे लगता है कि हमने इन विश्वासो का पूरी तरह से वैज्ञानिक विश्लेषण किये बिना ही इन्हे अन्ध-विश्वास घोषित कर दिया है और एडी-चोटी लगाकर भिड गये इन्हे समाज से मिटाने के लिये।

बचपन मे अपने ननिहाल जबलपुर जाना होता था। वहाँ यदि आँखो मे गुहेरी या सलोनी (Stye) हो जाती थी तो हमारी बूढी नानी एक टोटका बताती थी। शौच के समय अपने बाये हाथ की तर्जनी से छै बार गुहेरी की ओर अंगुली ले जाते हुये एह कहना था कि छूते है। पर गुहेरी को छूना नही था। फिर सातवी बार यही कहते हुये उसे छू देना था। नानी कहती थी कि इससे गुहेरी शरमाकर बैठ जायेगी। आखिर बार छूने के बाद कुछ समय तक तर्जनी को गुहेरी के ऊपर फिराना था। हम लोगो को यह सब सुनकर बडा मजा आता था। हम इसे करते भी थे। अब गुहेरी के लिये तो किसी डाक्टर के पास जाते नही थे। बस यही कर लेते थे। पता नही किस कारण से पर गुहेरी से निजात मिल जाती थी। बडे हुये तो मन मे यह विचार आया कि यह मात्र टोटका है और अन्ध-विश्वास से आगे कुछ नही। अपने व्याख्यानो मे मैने इसे अन्ध-विश्वास की सूची मे शामिल कर लिया। श्रोताओ के लिये व्याख्यान के दौरान इसकी चर्चा रोचक हो जाती थी।

एक बार एक योग आश्रम मे व्याख्यान हुआ। मैने सारी बाते दोहरायी। लोगो को व्याख्यान पसन्द आया। व्याख्यान के बाद एक बुजुर्ग स्वामी जी कोने मे ले जाकर धीरे से कान मे बोले कि आपकी नानी सही कहती थी। अगर यह अन्ध-विश्वास होता तो कही भी इसे करने की बात होती। शौच के समय ही इसे करने की बात क्यो कही गयी? क्योकि इस खास स्थिति मे बैठने और फिर तर्जनी से गुहेरी को छूने से उस पर असर होता है। आपकी नानी ने आपको दिव्य ज्ञान दिया है और आप नाहक ही इसे अन्ध-विश्वास बताते फिर रहे है। उन्होने आगे बताया कि शौच के समय जोर लगाने से मना किया जाता है क्योकि इसका सीधा असर आँखो मे होता है। कमजोर नजर के लिये यह भी एक उत्तरदायी कारण है। मै शर्म से पानी-पानी हुआ जा रहा था। उन्होने इस मुद्रा मे

बैठकर आँखो के लिये उपयोगी बहुत से आसन बताये और बताया कि भारतीय तरीके से शौच के लिये बैठने मात्र से कई रोगो से छुटकारा मिल जाता है। कमोड मे बैठने से न ही अच्छे से पेट साफ होता है और न ही शरीर को रोगो से मुक्ति मिलती है। स्वामी जी, आप यह बात लोगो के सामने भी समझा सकते थे? मुझसे रहा नही गया तो मैने पूछा। वे बोले आप हम सब के लिये आदरणीय है। वहाँ सबके सामने कहता तो आपको बुरा लग सकता था। अब आप अपने व्याख्यान से इस बात को निकाल दे तो मेरा उद्देश्य पूरा हो जायेगा।

इस आँख खोल देने वाली घटना से मै बडा ही प्रभावित हुआ। ऐसी बहुत सी बाते है जिनके बारे मे हम नही जानते और कुछ पुस्तके पढकर ही अपने को ज्ञानी समझने की भूल कर बैठते है। यह माना कि आधुनिक विज्ञान ने जानकारियो का अम्बार लगा दिया है हमारे सामने पर फिर भी बहुत सा ज्ञान अभी भी स्वामी जी जैसे दिव्य आत्माओ के पास है और वह उनके सानिध्य से ही मिल सकता है। आज भारतीय योग की दुनिया दीवानी है। आज से कुछ वर्षो पहले इससे सम्बन्धित बहुत सी बाते अन्ध-विश्वास की श्रेणी मे डाल दी जाती थी। अब आप ही बताइये यदि दोनो हाथो के नाखूनो को परस्पर रगडने की सलाह पहले दी गयी होती तो क्या आप मानते? जब इसे बाबा रामदेव ने विशेष अन्दाज मे कही तो यह रातो रात लोकप्रिय हो गया। इससे बाल नही झडते और नये बाल उगते है-ऐसा कहा जाता है। कितनो के बाल उगे यह तो मै नही जानता पर मै तो केवल आदरणीय आडवाणी जी को यह करते हमेशा देखता हूँ टीवी पर।

आप जानते ही है मै वनस्पतियो और कीटो से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण कर रहा हूँ। मेरा यह कार्य लाखो पन्नो के रुप मे इंटरनेट पर उपलब्ध है। यह ज्ञान अनंत है और मै यदि दस जन्मो तक भी यह करता रहूँ तो भारतीय ज्ञान के दस्तावेजीकरण का कार्य पूरा नही हो सकता। अभी मधुमेह से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान पर एक रपट तैयार कर रहा हूँ। पहले दस हजार फिर पचास हजार फिर एक लाख, पाँच लाख और दस लाख पन्नो से बढती हुयी यह रपट समाप्त होने का नाम नही ले रही है। अब पन्ने गिनना बन्दकर जीबी मे रपट को माप रहे है। अब तक इसका आकार 80 जीबी से अधिक हो चुका है जबकि मै आधे रास्ते तक भी नही पहुँचा हूँ। चलिये वापस विषय पर आते है। पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण के दौरान गुहेरी के टोटके जैसी बहुत सी जानकरियाँ सामने आती है। कुछ इसे अन्ध-विश्वास मानते है तो कुछ इसे पारम्परिक ज्ञान मानते है। सभी विश्वास की वैज्ञानिक विवेचना मेरे बूते की बात नही है। तो क्या जिनका विश्लेषण मै नही कर पाऊँ उन्हे अन्ध-विश्वास

मानकर अपने डाटाबेस मे शामिल न करुँ? बडी ही अजीब स्थिति हो जाती है कभी-कभी। स्वामी जी की विवेचना के बाद इस टोटके को मैने बाटेनिकल डाट काम के शोध लेखो मे शामिल कर लिया। मुझे वैज्ञानिक मित्रो से विरोध की आशंका थी पर जल्दी ही यह निर्मूल साबित हुयी। स्वामी जी की तरह ही बहुत से लोगो ने इसके समर्थन मे तर्क दिये। ये तर्क विज्ञान सम्मत थे।

इस लेखमाला से पहले मै आरम्भ नामक ब्लाग पर अन्ध-विश्वास पर ही एक लेखमाला लिख रहा था। विश्वासो के वैज्ञानिक विश्लेषण पर जब मैने लिखा तो यूएई से मीनाक्षी जी ने लिखा कि पहले हमारे घरो मे शाम को घर मे झाड़ू लगाने से मना किया जाता था। कारण यह था कि उस समय बिजली नही होती थी। अन्धेरे मे झाड़ू लगाने से हो सकता था कि कोई कीमत चीज भी बाहर कचरे के साथ चली जाती। इसलिये लम्बे अनुभव के फलस्वरुप यह बात पीढी दर पीढी चलती आयी थी। आज इसका कोई महत्व नही है पर फिर भी इसे सहेज के रखना चाहिये। यह हमारे बुजुर्गो का ज्ञान है। पता नही कब यह फिर से काम आ जाये। इसे अन्ध-विश्वास कहकर इसका माखौल नही उडाना चाहिये बल्कि बच्चो को बताना चाहिये। अन्यथा आगामी पीढी हमारे अनुभवो का भी ऐसा ही मजाक उडायेगी। मै मीनाक्षी जी से सहमत हूँ। आशा करता हूँ कि आप भी सहमत होंगे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

देश के विभिन्न भागो मे भ्रमण के दौरान मैने एक अजीब सी बात महसूस की है कि एक ही वनस्पति जहाँ एक स्थान पर पूजी जाती है वही वनस्पति दूसरे स्थान पर हानिप्रद मानी जाती है। पूजने और तिरस्कार करने, दोनो ही के विशेष कारण है। भटकटैया का ही उदाहरण ले। इसे कंटकारी भी कहा जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम सोलेनम जैंथोकारपम है। यह कंटीला पौधा बेकार जमीन मे उगता है। मध्यप्रदेश के कुछ भागो मे इसे घर के बागीचे मे देखते ही उसी समय उखाडने की परम्परा है। वैसे बागीचे मे इसकी उपस्थिति खरपतवार की तरह ही होती है। आमतौर पर जिस पौधे को हम

बागीचे मे नही लगाते और जो अपने आप उग जाता है उसे खरपतवार मानकर उखाड दिया जाता है। ऐसा पूरे देश मे होता है। इसमे काँटे भी होते है और इस कारण बागीचे मे खरपतवार की तरह इसकी उपस्थिति बच्चो और पालतू जानवरो के लिये मुश्किल पैदा कर सकती है। शायद इसलिये इसे उखाड दिया जाता हो-मैने सोचा। पर विस्तार से जानकारी लेने पर पता चला कि इसे तंत्र-मंत्र से जुडा पौधा माना जाता है। घर मे इसकी उपस्थिति अशांति और क्लेष पैदा करने वाली मानी जाती है। इसे सन्देह से देखने वाले यह मानते है कि किसी दुश्मन के बीज फेक देने से यह बागीचे मे उग जाता है। इसलिये इसे उखाडने के बाद तुरंत जलाकर हिसाब बराबर कर दिया जाता है। कुछ लोगो ने बताया कि यदि आस-पास के सन्दिग्ध लोगो को बुला कर उनके सामने इसे जलाया जाये तो जिसमे बैचैनी के लक्षण दिखे उसे ही शत्रु समझना चाहिये।

मेरे लिये यह अजीब-सी बात है क्योकि मै इसे एक स्थापित औषधीय वनस्पति के रुप मे जानता हूँ। इसके सभी पौध भाग औषधीय गुणो से भरपूर है। हमारे प्राचीन ग्रंथो मे भी इसके गुणो का बखान है। आधुनिक चिकित्सा प्रणालियो मे भी इसका प्रयोग होता है। प्रतिवर्ष बडी मात्रा मे इसे बेकार जमीन से एकत्र कर दसो ट्रको मे लादकर देश भर की दवा निर्मात्री कम्पनियो को भेजा जाता है। भारतीय किसान इसे अच्छे से पहचानते है। जब कोई वैज्ञानिक उन्हे डराता है कि यह खतरनाक खरप्तवार है और इसे मारने के लिये खरपतवारनाशक रसायन का प्रयोग करो तो वे मुस्कुरा देते है। वे जानते है कि फसलो के लिये ये नुकसानदायक है। वे यह भी जानते है कि रसायन उनके लिये महंगे और स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। इसलिये वे इसे हाथ से उखाडते है। अधिक काँटे होने पर देशी यंत्रो की सहायता ली जाती है। फिर इसके विभिन्न भागो को अलग-अलग कर सुखाकर साल भर के प्रयोग के लिये रख लिया जाता है। ताजी पत्तियो से साग तैयार की जाती है। यह साग दमा के रोगियो के लिये महौषधि है। इसका मौसम भर प्रयोग साल भर दमा के दौरो से बचाता है। मुझे याद है मेरी दादी बडे चाव से इसे खाती थी। इसके लिये घंटो बैठकर लकडी से पीट-पीट कर पत्तियो से काँटो को अलग करती थी और फिर स्वादिष्ट साग बनाती थी। इससे वे दमे से मजे से निपट लेती थी। किसान इसे स्वाद के लिये खाते है। देश के पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि इसके इस तरह प्रयोग से बहुत से फायदे है। सबसे बडी बात यह है कि इसका प्रयोग शरीर की प्रतिरोधक शक्ति को बढाता है। किसान के घर मे जब किसी को दाँत दर्द होता है तो सुखाकर रखे गये बीजो को जलाया जाता है और धुँए को कीडे लगे दाँत की ओर भेजा जाता है। कुछ ही समय मे न केवल दर्द से मुक्ति मिल जाती है बल्कि लम्बे समय तक इसके प्रयोग से दाँत भी दुरुस्त हो जाते है। इसकी जडो से बवासिर या पाइल्स की चिकित्सा की जाती है। मेरे ही

गाँव के किसान इस बेकार समझे जाने वाले पौधे के दो सौ से अधिक सरल उपयोग जानते है। पूरे देश मे धरती पुत्रो के पास जानकारियो का कैसा अम्बार होगा- इसका अनुमान आप सहज ही लगा सकते है। किसान साफ कहते है कि रसायनो के प्रयोग से पौधे मर जाते है। हमे कुछ नही मिलता। इस प्रयोग से आने वाले सालो मे इसकी उपलब्धता कम हो जाती है और इसका सीधा असर हमारे स्वास्थ्य पर पडता है। यदि यह हमारे खेतो मे उग रहा है तो इसे हम माँ प्रकृति का उपहार मानते है।

दीपावली के एक दिन पहले छत्तीसगढ मे कडु पानी तैयार करने की परम्परा है। आस-पास खरपतवार समझी जाने वाली वनस्पतियो को रात भर पानी मे उबाला जाता है और फिर दीपावली की सुबह केवल काढे ही से स्नान किया जाता है। भटकटैया को इसमे मुख्य घटक के रुप मे डाला जाता है। इसका काढा त्वचा रोगो के लिये वरदान है। बहुत से जटिल रोगो मे तो अन्य वनस्पतियो के साथ बनाये गये इसके काढे को साल भर उपयोग करने की सलाह पारम्परिक चिकित्सक देते है। बहुत अधिक तनाव से जब दिमाग उलझ जाता है और कुछ नही सूझता। खीज पर खीज होती है। ऐसे समय मे दिमाग को फिर से चैतन्य करने लिये कई प्रकार की वनस्पतियो को जलाया जाता है और धुँए के बीच रोगी को रहने के लिये कहा जाता है। भटकटैया इनमे से एक है। इसके विषय मे इतना सब यदि कोई जान ले और यदि सचमुच शत्रु इसे घर मे फेक जाये तो आप निश्चित ही उसे गले लगा लेंगे। हमारे प्राचीन ग्रंथो मे सही लिखा है कि इस दुनिया मे सभी वनस्पतियो मे औषधीय गुण है और यह मनुष्य की अज्ञानता है कि उसने कुछ को उपयोगी मान लिया है और शेष को अनुपयोगी की श्रेणी मे डाल दिया है। मुझे लगता है, यह मुझ जैसे लोगो का नैतिक कर्तव्य है कि ज्यादा से ज्यादा लोगो को अपने आस-पास फैली देशी वनस्पतियो के विषय मे बताये और पारम्परिक ज्ञान को आत्मसात करने के लिये उन्हे प्रेरित करे। हरेक को व्यक्तिगत तौर पर समझाना मुश्किल है। लेख एक सशक्त माध्यम है पर मुझे लगता है यदि बच्चो की किताबो के माध्यम से सही जानकारी उन तक पहुँच जाये तो एक पूरी पीढी तक यह ज्ञान पहुँच जायेगा।

आमतौर पर बैगनी फूलो वाले भटकटैया को हम देखते है। सफेद फूलो वाला भटकटैया भी होता है जिसके बारे मे पिछले लेखो मे लिखा जा चुका है। इसके बारे मे यह मान्यता है कि इसके नीचे गडा खजाना होता है। पर हकीकत कुछ और ही है।

बन्दरो की यह प्रिय वनस्पति है विशेषकर बीमारी के समय। देश के पारम्परिक चिकित्सक नि:संकोच यह स्वीकार करते है कि इसके बहुत से उपयोग उन्होने बन्दरो से सीखे है। कोई आश्चर्य नही कि बन्दरो ने भी हमसे इसके बहुत से उपयोग सीखे होंगे। मेरे

भतीजे के कहना है कि उसका पालतू कुत्ता इस पौधे को पसन्द करता है। मैने उससे कहा है कि नजर रखो, हो सकता है इससे कुछ नयी जानकारी निकल के आये।

भटकटैया से भयभीत लोगो को मैने विस्तार से इसके गुणो के विषय मे बताया। इसकी साग खिलायी और साथ ही इसकी हर्बल चाय भी पिलायी। कुछ लोगो का भ्रम दूर हुआ पर ज्यादातर लोगो के मन मे अन्ध-विश्वास की जडे इतनी गहरी दिखी कि बडा दुख हुआ। फिर भी मेरा प्रयास जारी है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव
- पंकज अवधिया

सत्यानाशी ऐसा नाम है जो सब कुछ कह देता है। अब भला यदि सत्यानाशी किसी पौधे का नाम हो तो कौन इसे अपने घर मे लगायेगा? वैसे यह देखने मे आता है कि वनस्पतियो के मूल नाम विशेषकर अंग्रेजी नाम अच्छे होते है पर स्थानीय नाम उनके असली गुणो (दुर्गुण कहे तो ज्यादा ठीक होगा) के बारे मे बता देते है। सत्यानाशी का ही उदाहरण ले। इसका अंग्रेजी नाम मेक्सिकन पॉपी है। ऐसे ही मार्निंग ग्लोरी के अंग्रेजी नाम से पहचाना जाने वाला पौधा अपने दुर्गुणो के कारण बेशरम या बेहया के स्थानीय नाम से जाना जाता है। सुबबूल की भी यही कहानी है। यह अपने तेजी से फैलने और फिर स्थापित होकर समस्या पैदा करने के अवगुण के कारण कुबबूल के रुप मे जाना जाता था। वैज्ञानिको को पता नही कैसे यह जँच गया। उन्होने इसका नाम बदलकर सुबबूल रख दिया और किसानो के लिये इसे उपयोगी बताते हुये वे इसका प्रचार-प्रसार करने मे जुट गये। कुछ किसान उनके चक्कर मे आ गये। जब उन्होने इसे लगाया तो जल्दी ही वे समझ गये कि इसका नाम कुबबूल क्यो रखा गया था। अब लोग फिर से इसे कुबबूल के रुप मे जानते है। वैसे अंग्रेजी नाम भी कई बार वनस्पतियो की पोल खोल देते है। जैसे बायोडीजल के रुप मे प्रचारित जैट्रोफा को ही ले। जिस तेल से बायोडीजल बनाया जाना है उसे ही ब्रिटेन मे हेल आइल (नरकीय तेल) का नाम मिला है। यूँ ही यह नाम नही रखा गया है। वहाँ के लोग लम्बे समय से जानते है कि इस तेल

मे कैसर पैदा करने वाले रसायन होते है। इसलिये उन्होने इसे यह गन्दा नाम दे दिया है। चलिये अब वापस सत्यानाशी पर आते है।

यह वनस्पति आम तौर पर बेकार जमीन मे उगती है। इसमे काँटे होते है और इसे अच्छी नजर से नही देखा जाता है। घर के आस-पास यदि यह दिख जाये तो लोग इसे उखाडना पसन्द करते है। गाँव के ओझा जब विशेष तरह का भूत उतारते है तो इसके काँटो से प्रभावित महिला की पिटाई की जाती है। बहुत बार इस पर लेटा कर भी प्रभावित की परीक्षा ली जाती है। तंत्र साधना मे भी इसका प्रयोग होता है। आम तौर पर ऐसी वनस्पतियो से लोग दूरी बनाये रखते है। सत्यानाशी से सम्बन्धित दसो किस्म के विश्वास और अन्ध-विश्वास देश के अलग-लग कोनो मे अलग-अलग रुपो मे उपस्थित है। आम लोग जहाँ इसे अशुभ मानते है वही चतुर व्यापारी इससे लाभ कमाते है।

आपने सरसो के तेल मे मिलावट और इसके कारण होने वाले ड्राप्सी रोग के विषय मे तो समय-समय पर पढा ही होगा। दरअसल मिलावट तेल मे नही होती है। मिलावट होती है बीजो मे। और सरसो के साथ ऐसे बीज मिलाये जाते है जो बिल्कुल उसी की तरह दिखते हो। भारत मे सबसे अधिक मिलावट सत्यानाशी के बीजो की होती है। व्यापारी बडे भोलेपन से यह कह देते है कि यह मिलावट हम नही करते है। यह खेतो मे अपने=आप हो जाती है। कैसे? इस पर वे कहते है कि सरसो के खेतो मे सत्यानाशी के पौधे बतौर खरपतवार उगते है। दोनो ही एक ही समय पर पकते है। इस तरह खेत मे ही वे मिल जाते है। वे यह भी कहते है कि सरसो को उखाड कर जब खलिहान मे लाते है तो सत्यानाशी के पौधे भी साथ मे आ जाते है। यह एक सफेद झूठ है। सत्यानाशी का पौधा सरसो के खेतो मे नही उगता है। जैसा कि मैने पहले ही बताया कि यह बेकार जमीन की वनस्पति है। इस बात को सिद्ध करने के लिये मैने एक छोटा सा प्रयोग भी किया। दोनो तरह के बीजो को मिलाकर खेत मे लगाया। फिर बिना किसी कटाई-छटाई के उन्हे उगने दिया। खेतो मे सत्यानाशी के पौधे ठीक से जम नही पाये। हर साल बेकार जमीन मे उग रहे सत्यनाशी के पौधो से बीजो का एकत्रण कराया जाता है। ये बीज व्यापारी खरीदते है और फिर जान-बूझकर इसकी मिलावट करते है। पहले इस मिलावट पर बहुत शोर-शराबा होता था। पर अब आम लोगो ने इसे अपना लिया है- ऐसा प्रतीत होता है। आपके घर के बुजुर्ग जब शिकायत करते है कि आज के सरसो तेल मे वो बात नही है तो आप खीझ उठते है। पर यह कटु सत्य है कि सरसो के तेल मे सत्यानाशी की मिलावट होती है जो कि आपको सीधे नुकसान करती है। कुछ समय पूर्व मै छोटे से कस्बे मे एक व्यापारी से मिलने गया और जब मैने दसो ट्रक बीज गोदाम मे देखे तो मेरा माथा ठनका। व्यापारी

ने अंजान बनते हुये कहा कि इससे दवा बनती है इसलिये मैने खरीद की है। एक छोटे से कस्बे मे इतनी अधिका मात्रा देखकर देश भर का अनुमान मैने सहज ही लगा लिया।

इसका मतलब सत्यानाशी सचमुच ही शहरी लोगो के लिये सत्यानाशी साबित हो रहा है। मैने शहर मे सरसो का तेल बेचने वाले व्यापारियो से बात की। वे कहते है कि ऐसी मिलावट से सरसो के तेल की सनसनाहट बढ जाती है। आजकल लोग यही देखकर तेल खरीदते है। इसलिये इस तरह की मिलावट करनी होती है। बहुत से शहरियो मे इस मिलावट के विषय मे जागरुकता है पर ऐसा सरल उपाय उनके पास नही है जिससे वे इस मिलावट को पकड सके। वे कहते है कि यदि मिलावट पकड मे आ भी गयी तो हम क्या कर लेंगे? कोई विकल्प तो है नही इसलिये मजबूरी मे हमे यही उपयोग करना होता है। पर सत्यानाशी मे बुराई ही बुराई ही नही है। भले ही इसका वैज्ञानिक नाम आर्जिमोन मेक्सिकाना यह इशारा करे कि यह मेक्सिको का पौधा है पर प्राचीन भारतीय चिकित्सा ग्रंथो मे इसके औषधीय गुणो का विस्तार से वर्णन मिलता है। इसका संस्कृत नाम स्वर्णक्षीरी सत्यानाशी की तरह बिल्कुल भी नही डराता है। यह नाम तो स्वर्ग से उतरी किसी वनस्पति का लगता है। यह बडे की अचरज की बात है कि सत्यानाशी के बीज जिस रोग को पैदा करते है उसकी चिकित्सा सत्यानाशी की पत्तियो और जडो से की जाती है। आज भी देश के पारम्परिक चिकित्सक सत्यानाशी के बीजो के दुष्प्रभाव हो ऐसे ही उपचारित करते है। आधुनिक विज्ञान भी अब इस बात को स्वीकारता है। यहाँ मुझे अमलतास नामक वनस्पति की याद आ रही है। इसकी फल्लियो का गूदा खाने से जब दस्त हो जाते है तो उस दस्त को उसी के फूलो के सेवन से रोका जा सकता है पर यदि फूलो को अकेले खाया जाये तो वैसे ही दस्त शुरु हो जाते है। सचमुच प्रकृति की व्यवस्था को समझ पाना इतना सरल नही है। सत्यानाशी पर फिर वापस आते है। देहातो मे जानकार इस तेल का प्रयोग बाहरी रुप मे त्वचा रोगो की चिकित्सा मे करते है।

दुनिया भर के वैज्ञानिक साहित्य इसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओ पर विस्तार से प्रकाश डालते है। इससे मै दुविधा मे पड जाता हूँ। बहुत बार व्याख्यान के बाद लोग इस पौधे को दिखाकर सवाल पूछते है। वे जानना चाहते है कि इसे घर के आस-पास रहने दिया जाये या ओझाओ से इसकी नजदीकी देखते हुये इसे उखाड दिया जाये? आप से कही गयी बाते मै उनको भी बताता हूँ। बहुत से लोग कहते है कि हम उखाड देंगे तो व्यापारी बीज नही एकत्र कर पायेंगे। पर व्यापारी शहरो से थोडे ही बीज एकत्र करते है। अपनी उडीसा यात्रा के दौरान मैने तो खुलेआम इसके बीजो को बेकार जमीन पर छिडकते

देखा है। वैसे भी यह बेकार जमीन पर बहुतायत से है। ओझाओ से नजदीकी के आधार पर इसे उखाडना तर्क सम्मत नही लगता।

पिछले हफ्ते ही आँख आने (कंजक्टिवाइटिस) से प्रभावित ग्रामीणो को सत्यानाशी की पत्तियो के रस के सरल प्रयोग से मुक्ति दिलाते एक पारम्परिक चिकित्सक से मैने वही प्रश्न पूछा। उसने कहा कि जानकार लोगो के लिये यह वनस्पति उपयोगी है। जिन्हे इसके विषय मे नही पता और जो गल्ती से इसका प्रयोग कर सकते है, वे बेशक इसे अपने आस-पास से उखाड सकते है। मुझे उसकी बात ठीक लगी। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

रात बारह तक फोन आना मेरे लिये आश्चर्य का विषय नही है पर कुछ सप्ताह पूर्व रात को दो बजे जंगली इलाको से दो फोन आये। पहला फोन उसी सर्प विशेषज्ञ का था जिसके विषय मे पहले मैने लिखा है। कैसे फोन किये गणेश? मैने पूछा। उसने बताया कि एक ग्रामीण महिला रात को जब शौच के लिये उठी तो उसे जहरीले साँप ने काट लिया। उसके घरवाले आनन-फानन मे उसके पास आये है। इलाज शुरु ही होने वाला है। यदि सम्भव हो तो आप आ जाये। सामने-सामने देख लीजियेगा कैसे जहर उतारते है हम लोग। मुझे उसकी बात पर हँसी भी आयी और गुस्सा भी। रात को दो बजे फोन किया था। मै अभी घर से निकलता तो घंटो लगते उस तक पहुँचने मे। पहले मैने गणेश को लोगो की सेवा करते देखा है। अब फिर बार-बार फोन की क्या जरुरत? गणेश अभी भी फोन पर था। उसने कहा कि यदि आप आ रहे है तो हम रुक भी सकते है। मैने कडे शब्दो मे कहा कि इलाज मे देरी मत करो। मै अभी नही आ सकता पर अगले हफ्ते जरुर आऊँगा। ऋषिपंचमी के दिन ली गयी तस्वीरो को फ्रेम मे लगवाकर परसो मै गणेश के पास पहुँचा। उसने तस्वीरे तो रख ली खुशी-खुशी पर बदले मे मुझसे कुछ उपहार स्वीकार करने की गुजारिश की। मैने सोचा कोई जडी-बूटी होगी। मैने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वह घर के अन्दर गया और वापस लौटा तो उसके हाथ मे बाँस की दो पिटारी थी। पिटारी मे हाल ही मे पकडे गये दो कोबरा साँप थे। उसकी इच्छा थी कि इन्हे मै

अपने साथ ले जाता और फिर आस-पडोस मे दिखाकर छोड देता। ऐसे उपहार को देखते ही मेरी हवा गायब हो गयी। दोनो साँपो का जहर नही निकाला गया था।

देश भर मे पारम्परिक सर्प विशेषज्ञ बुरे दौर से गुजर रहे है। ज्यादातर ने तो अपना यह पारम्परिक काम छोड दिया है। वे या तो खेती कर रहे है या शहर चले गये है नौकरी की तलाश मे। आधुनिकता की पटरी मे तेजी से भागती दुनिया को इन लोगो और इनके हुनर की परवाह ही नही है। मेरे जैसे शोधकर्ता जब ऐसे सर्प विशेषज्ञो के पास पहुँचते है तो पढे-लिखे समाज से सदा तिरस्कार पाने वाले ये विशेषज्ञ हमसे उम्मीद बाँध लेते है। उन्हे लगता है कि कैसे वे हमे एक दिन मे ही सारे हुनर सीखा दे। वे मुझसे उम्मीद करते है कि मै उनकी बाते आधुनिक समाज तक पहुँचाऊँ और समाज उनके ज्ञान को प्रमाणिकता प्रदान करे। पर यह आसान राह नही है। मै अब तक देश भर मे हजारो सर्प विशेषज्ञो से मिला हूँ और उनके ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया है।

उस दिन की घटना के बारे मे गणेश ने बताया कि महिला के घर वाले एकमत नही थे। किसी का कहना था कि इसे अस्पताल ले जाया जाये जबकि ज्यादातर लोग गणेश से इलाज शुरु करने को कह रहे थे। आखिर मे उसे शहर ले जाना तय हुआ। पास के एक छोटे से शहर मे जब वे पहुँचे तो अस्पताल मे एंटी-वेनम खत्म हो चुका था। महिला को रायपुर ले जाने के लिये कहा गया। महिला की बिगडती हालत को देखते हुये घरवाले उसे फिर से गणेश के पास ले आये। गणेश और उसके छह चेलो ने मोर्चा सम्भाला और तब तक मुँह से जहर खीचते रहे जब तक कि महिला ठीक नही हो गयी। सुबह तक जडी-बूटियाँ देकर उसे घर भेज दिया गया। रात भर की अथक मेहनत के बदले गणेश ने लिया सिर्फ सवा रुपया और एक नारियल। परसो मै उस महिला से मिलने गया और विस्तार से इस घटना की चर्चा की। उसकी आँखो मे गणेश के प्रति गहरे आदर के भाव सारी घटना अपने आप ही बयाँ कर रहे थे।

चलिये फिर उसी रात पर चलते है और दूसरे फोन की बात करते है। मैने फोन उठाया तो दूसरी ओर से कोई घबरायी हुयी आवाज मे बोल रहा था। साहब, मै बुधराम? उधर से आवाज आयी। बुधराम याने एक बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक जो पेट के रोगो की चिकित्सा मे माहिर है। यहाँ मै बताना चाहूँगा कि रात-बेरात को आने वाले अधिक्तर फोन विशेषकर पारम्परिक चिकित्सको के फोन तभी आते है जब उन्हे पुलिस वाले वसूली के नाम पर परेशान करते है। वे मेरा नाम बताते है। अब पुलिस वाले मुझे तो जानते नही है इसलिये बात कराओ उससे, कहकर मुझे फोन लगवाते है। जब से छत्तीसगढ नया राज्य बना है तब से राजधानी के रुप मे रायपुर का महत्व बढ गया है। आप यदि रायपुर से

आये है या रायपुर से फोन कर रहे है तो सामने वाले का रवैया पलक झपकते ही बदल जाता है। फिर कुछ वाक्य अंग्रेजी मे बोले तो बात बन जाती है। पर बुधराम का फोन इस वसूली से सम्बन्धित नही था। उसने बताया कि गाँव के कुछ लोगो ने उसके घर को घेर रखा है और उसे टोनहा अर्थात जादू करने वाला कह रहे है। मैने फोन पर उन लोगो से बात की और जैसे-तैसे मामले को शांत किया। दूसरे दिन मै बुधराम से मिलने गया और उससे चर्चा की।

मैने इस लेखामाला मे टोनही पर लिखे लेखो मे अंडी (कैस्टर) की जड के प्रयोग की बात लिखी है। आम धारणा यह है कि अपना जादुई प्रभाव दिखाने के लिये टोनही इस जड से दातौन करती है। मैने लिखा है कि जब मैने इसे आजमाया तो सारी बाते फिजूल निकली। इसी तरह राज्य के अलग-अलग भागो मे अलग-अलग वनस्पतियो के प्रयोग के विषय मे मान्यताए है। इन वनस्पतियो की जड से दातौन करते यदि कोई दिख गया तो उसे जादू करने वाला घोषित कर दिया जाता है। यह बडी ही अजीब बात है फिर भी यह प्रचलन मे है। जैसा कि मैने ऊपर लिखा है, बुधराम एक पारम्परिक चिकित्सक है। उसने अपने पिता से सुना था कि सेनहा नामक पेड की जड से दातौन करने पर दाँतो के रोगो से मुक्ति मिलती है। उसे इस मान्यता का भी ज्ञान था कि सेनहा सन्दिग्ध वनस्पतियो की सूची मे भी है। यही कारण था कि वह इसे आजमा नही पाया था। अब जब उससे रहा नही गया तो उसने चोरी-छिपे इस दातौन का प्रयोग 21 दिन तक करना आरम्भ किया। कुछ दिन सब सही चलता रहा। दाँतो के रोगो से मुक्ति मिलने पर उसका उत्साह बढा पर एक दिन किसी ने उसे देख लिया। बस फिर क्या था। यह बात जंगल मे आग की तरह फैल गयी और बुधराम घेर लिया गया।

सच क्या था यह मै और बुधराम दोनो ही जानते थे पर गाँव वालो को कैसे समझाया जाये-यह समस्या थी। मैने गाँव के स्कूल की राह पकडी और प्राचार्य को अपना परिचय दिया। मैने उन्हे प्रस्ताव दिया कि यदि आप चाहे तो मै आस-पास पायी जाने वाली वनस्पतियो के औषधीय उपयोगो के विषय मे छात्रो के बीच छोटा-सा व्याख्यान दे सकता हूँ। प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। मैने दस वनस्पतियो के विषय मे बताया जिनके सेनहा को भी शामिल किया। जब मैने कहा कि आधुनिक विज्ञान सेनहा की जड के उपयोग से दाँतो के रोगो की चिकित्सा को मान्यता देता है तो सुनने वालो के बीच खुसुर-फुसुर शुरु हो गयी। छात्रो ने खुलकर सवाल पूछने की हिम्मत दिखायी। दो घंटो मे हमने गाँव मे वनस्पतियो से सम्बन्धित दसो अन्ध-विश्वासो का पर्दाफाश किया। छात्रो के साथ सन्दिग्ध वनस्पतियो तक भी गये। प्राचार्य भी संतुष्ट नजर आये। शाम को छात्रो ने

घर जाकर पूरे गाँव को यह समझाया और फिर उनके सवालो का स्वयम ही जवाब देने लगे। इस तरह एक गाँव तो जाग ही गया।

वापसी मे रात हो रही थी। गाडी की हेड लाइट मे जगह-जगह पर लोमडियाँ नजर आ रही थी। साथ चले रहे ग्रामवासी ने बताया कि इनकी संख्या हाल के वर्षो मे बढी है। अपने गाँव खुडमुडी मे मै बचपन मे रात को ठंड के दिनो मे इनकी हुआँ-हुआँ सुना करता था। अब तो गाँव मे इनके दर्शन नही हुये है कई सालो से। बढती मानव आबादी से ये दूर चले गये। जो बच गये उन्हे तांत्रिको ने नही बख्शा। बुधराम के गाँव से लौटते वक्त मै लोमडियो को देखते हुये मन ही मन उनके लम्बे जीवन की कामना करता रहा।(क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

वानस्पतिक सर्वेक्षण के दौरान जब जंगलो मे जाना होता है तो पारम्परिक चिकित्सको के साथ स्थानीय लोगो को भी साथ मे रख लेता हूँ एक दल के रुप मे। इस बार ऐसे लोगो की तलाश मे जब हम गाँव पहुँचे तो लोग नही मिले। पता चला कि जडी-बूटियो के एकत्रण के लिये जंगल गये है। हम उनके बिना ही जंगल चल पडे। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको ने बताया कि इस बार सभी लोग भुईनीम नामक वनस्पति को उखाडने मे लगे है। धमतरी के व्यापारियो ने इस बार बडी मात्रा मे इसके एकत्रण का लक्ष्य रखा है। इसकी बढी हुयी माँग को देखते हुये उन्होने ऐसे स्थानो को भी चुना है जहाँ से पहले कभी इसे एकत्र नही किया गया। इस वनस्पति की देश-विदेश मे बहुत माँग है। देश के दूसरे भागो से भी इसकी आपूर्ति होती है। जिस साल एक भाग मे वर्षा कम होती है उस साल दूसरे भागो मे इसकी माँग बढ जाती है। छत्तीसगढ के व्यापारी दशको से इसका व्यापार कर रहे है।

रास्ते मे हमे बहुत से लोग मिले जो बडी बेदर्दी से इसे उखाड रहे थे। मैने बेदर्दी शब्द इसलिये इस्तमाल किया क्योकि स्थानीय लोग बताते है कि इसे हँसिये की सहायता से भी एकत्र किया जा सकता है। इससे जड सहित पौधे नही नष्ट होते है और बहुत से पौधो

को जीने का एक और मौका मिल जाता है। पर हँसिये के उपयोग मे मेहनत अधिक करनी पडती है। आजकल जमाना शार्टकट का है। इसलिये सीधे ही इसे उखाड लिया जाता है। हम एक स्थान पर रुके तो साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक धनीराम ने भुईनीम उखाड रहे लोगो से अनुरोध किया कि कुछ तो छोड दो ताकि उनमे बीज लग सके। ये बीज अगले साल फिर से नये पौधे के रुप मे सामने आयेंगे और इस तरह साल दर साल इस वनस्पति से क्षेत्र के लोगो को आय मिल सकेगी। पर धनीराम की बात अनसुनी कर दी गयी। सचमुच इस साल के एकत्रण को देखकर ऐसा लग रहा है कि जंगल मे इस वनस्पति की ऐसी आबादी फिर से देखने के लिये सालो तक इंतजार करना होगा। राज्य की राजधानी मे वातानुकूलित कक्षो मे योजनाकार और वन अधिकारी वैज्ञानिक विदोहन पर अक्सर लम्बे व्याख्यान देते रहते है। वे इस पर व्याख्यान देने विदेश भी जाते है। पर उन्हे जंगल जाकर जमीनी हालात देखने की फुरसत नही है।

पारम्परिक चिकित्सको से मैने कुछ पौधे घर के लिये रख लेने का अनुरोध किया तो उन्होने विनम्रता से जवाब दिया कि अभी औषधीय उपयोग के लिये इसके एकत्रण का समय नही है। यह सुनकर मै चौका। उन्होने कहा कि यदि आपको कल सुबह इसका एकत्रण करना है तो चलिये अभी चलकर पौधो से अनुमति प्राप्त कर लेते है। हम एक ऐसे स्थान की ओर चल पडे जहाँ भुईनीम एकत्र करने न पहुँच पाये। पारम्परिक चिकित्सको ने कुछ मंत्र पढे और अपने पास रखे चावल और हल्दी के मिश्रण को जड के पास डाला। पास की कुछ वनस्पतियाँ एकत्र की और उनके घोल से भुईनीम को उपचारित किया। फिर हाथ जोडकर हम वापस आ गये। दूसरे दिन सुंबह हम फिर उस स्थान पर गये और पौधो को एकत्रित कर लिया। क्या इस जटिल प्रक्रिया से पौधे सचमुच औषधीय गुणो से परिपूर्ण हो गये? या फिर केवल परम्परा के नाम पर इस जटिल प्रक्रिया को पारम्परिक चिकित्सक अपनाये हुये है? क्या यह उनका अन्ध-विश्वास है? अब देखिये इसे अन्ध-विश्वास कहने वाले बहुत से लोग आपको मिल जायेंगे। वे इसे करके भी नही देखंगे और कह देंगे कि यह अन्ध-विश्वास है। विज्ञान सम्मेलनो मे इस विशिष्ट पारम्परिक ज्ञान के विषय मे बताते समय पहले-पहल मुझे भी झिझक होती थी। प्राचीन भारतीय साहित्यो मे इस ज्ञान की झलक मिलती है पर इसके विषय मे विस्तार से नही लिखा गया। विश्व साहित्य मे तो ऐसा ज्ञान खोजने से भी नही मिलता। लम्बे समय तक पारम्परिक चिकित्सको के बीच रहते हुये मैने इस पर विस्तार से अध्ययन किया फिर ट्रेडीशनल एलिलोपैथिक नालेज के रुप मे इसे अपने शोध आलेखो के रुप मे प्रस्तुत किया। नतीजतन आज दुनिया भर मे इस पर विस्तार से शोध हो रहे है। एक बडी सी रसायन प्रयोगशाला मे कार्यरत अपने मित्र को जब मै इसके बारे मे बताता हूँ तो वे कहते है कि

यदि औषधीय गुण बढते है तो आधुनिक मशीनो से यह बात स्पष्ट होनी चाहिये। ये मशीने पौधो मे उपस्थित प्राकृतिक रसायनो मे हुयी घट-बढ को बता देती है। मैने बहुत बार उन्हे उपचारित और अनुपचारित नमूने दिये। कई बार उन्हे फर्क दिखा कई बार नही। जब फर्क नही दिखता है तो मै कह देता हूँ कि नयी मशीन आने की प्रतीक्षा करो जो इस फर्क को बता सके। पारम्परिक चिकित्सको के पास ये मशीने नही है। वे तो रोगी की चिकित्सा मे इसके सीधे उपयोग से अपने प्रयोगो की सफलता का पता लगाते है। उनका ज्ञान बहुत व्यापक और जटिल है। इतना सब इसके विषय मे लिखने के बाद भी मुझे लगता है कि सागर मे एक बून्द के समान ज्ञान का दस्तावेजीकरण ही मैने किया है। हमारे देश मे व्यवसायिक आयुर्वेद का बोलबाला है। जितनी भी बडी कम्पनियाँ जडी-बूटी खरीदती है उनकी गुणवत्ता का कोई भरोसा नही होता है। उन्हे उपचारित करके एकत्र नही किया जाता है। यह नही देखा जाता है कौन से पौधे एकत्रण के मानदंड को पूरा करते है और कौन से नही? किसमे कीडे लगे या कौन रोग से मर रहा है? अलग-अलग क्षेत्रो से एकत्रित एक ही प्रकार की वनस्पतियो मे अलग-अलग गुण होते है। पर व्यवसायिक आयुर्वेद को इससे कोई मतलब नही है। अब गौर करने वाली बात यह है कि इतनी लापरवाही के बाद भी वनस्पतियाँ करोडो लोगो को राहत पहुँचा रही है। जिस दिन पारम्परिक चिकित्सको के इस ज्ञान के प्रयोग से तैयार वनस्पतियाँ लोगो तक पहुँचेगी तो चमत्कार ही हो जायेगा। फिर तो दुनिया भर मे हमारे ज्ञान की तूती बोलेगी और दुष्प्रभाव युक्त दवाओ वाली चिकित्सा प्रणालियाँ स्वत: ही प्रचलन से बाहर हो जायेंगी।

भुईनीम कडवाहट मे नीम को भी पीछे छोड देने वाली वनस्पति है। आम तौर पर लोग मलेरिया से बचाव के लिये इसका प्रयोग करते है। पारम्परिक चिकित्सक कहते है कि मौसम भर इसका प्रयोग साल भर मलेरिया से रक्षा करता है। मलेरिया की चिकित्सा मे भी इसका प्रयोग होता है। पारम्परिक चिकित्सो ने कहा और आपने लिख दिया? आप जैसे लोग जिम्मेदार है गलत-सलत बाते फैलाने के लिये।- ये बाते कही दिल्ली से आये एक जाने-माने चिकित्सक ने जिन्हे राज्य मे मलेरिया के विषय मे शोध करने का अवसर मिला था। भरी सभा मे ऐसे बाते सुनना अटपटा लगता है। साथियो को उम्मीद थी कि मै भडक कर उन्हे तगडा जवाब दूंगा। पर मैने उनसे क्षमा माँगी और फिर पूछा कि क्या एंड्रोग्राफिस पैनीकुलेटा नामक वनस्पति मलेरिया के रोगियो को दी जा सकती है? वे बोले, वेरी गुड। बिल्कुल एंडोग्राफिस पैनीकुलेटा दी जा सकती है। आप इसका काढा बना सकते है? इस पर बहुत से अनुसन्धान हुये है और यह बहुत ही कारगर दवा है। अब मेरी बारी थी। मैने विनम्रतापूर्वक उनसे कहा कि एंडोग्राफिस पैनीकुलेटा को ही हमारे पारम्परिक चिकित्सक भुईनीम कहते है। भुईनीम के पारम्परिक उपयोगो का जब

दस्तावेजीकरण किया गया तब आधुनिक शोध हुये और सभी चिकित्सा प्रणालियो मे इसका उपयोग आरम्भ हुआ। अब उल्टे पारम्परिक उपयोगो को फालतू बताया जा रहा है? अब क्षमा माँगने की बारी उनकी थी। एक सभा मे मै ज्ञानी साबित हो गया पर मुझे इस तरह का वाद-विवाद कम ही पसन्द है। जो समझना चाहे उसके लिये माँ प्रकृति की प्रयोगशाला चारो ओर है और जो सीखने की इच्छा त्याग चुका है उसे समझाने के लिये समय व्यर्थ करना सही नही है-ऐसा मेरा मानना है। जितनी ऊर्जा इस वाद-विवाद मे गयी उससे मै मधुमेह की अपनी रपट मे कुछ और पक्तियाँ जोड लेता।

जब पहले-पहल मैने किसानो के साथ मिलकर औषधीय और सगन्ध फसलो की व्यवसायिक खेती आरम्भ की तो कीटो और रोगो से लडने के बहुत कम जैविक विकल्प हमारे पास उपलब्ध थे। उस समय हम लोगो ने गेन्दा और सदाबहार जैसे सजावटी पौधो की मदद ली। पर जब बहुत सी महंगी फसलो मे इनसे बात नही बनी तो हमने पारम्परिक चिकित्सको की मदद ली। उन्होने हजारो किस्म की वनस्पतियो के विषय मे हमे बताया। इनमे भुईनीम का भी नाम शामिल था। हमने इसे सफेद मूसली और कस्तूरीभिण्डी जैसी फसलो के चारो ओर लगाकर उनकी रक्षा सफलतापूर्वक की। बाद मे इस सफलता के विषय मे बताने पारम्परिक चिकित्सको के पास गये तो उन्होने राज खोला कि जंगल मे भुईनीम की उपस्थिति बडे पेडो को रोगो और कीटॉ से सुरक्षा प्रदान करती है। जब प्रकृति की इस उत्तम व्यव्स्था से अंजान लालची मनुष्य्र भुईनीम जैसी वनस्पतियो का अन्धाधुन्ध एकत्रण करता है तो पूरे जंगल को इसका खामियाजा भुगतना पडता है। पीढीयो से हमारे जंगल बिना उफ किये मनुष्यो को वनस्पतियाँ दे रहे है। अब उन्हे भी कुछ विश्राम की आवश्यकत्ता है विशेषकर ऐसे समय मे जब वनस्पतियो की बढती लोकप्रियता और बढती मानव आबादी का दोहरा दबाव उन पर है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

हमारे देश मे बहुत सी ऐसी वनस्पतियाँ किसानो और आम जनो के लिये सिरदर्द बनी हुयी है जिन्हे सजावटी पौधे के रुप मे विदेशो से लाया गया। विदेशो से लाने से पहले

इनके गुणो को तो देखा गया पर दोषो को अनदेखा कर दिया। परिणामस्वरुप बहुत सी वनस्पतियो को लोगो ने अपने बागीचे से उखाड फेका। कुछ वनस्पतियाँ बागीचे से भाग निकली। उन्होने अपने बीज हवा और पानी के माध्यम से दूर-दूर तक फैला दिये और इस तरह जगह-जगह पर उनका साम्राज्य कायम हो गया। कुछ ने किसानो के खेतो को घर बनाया तो कुछ ने जंगल मे डेरा डाल लिया। इन विदेशी वनस्पतियो के दुश्मन अर्थात इन्हे खाने वाले कीडे और रोग विदेश मे ही छूट गये। केवल इन्हे ही लाया गया। यहाँ इन कीटो और रोगो के न होने के कारण वे मजे से उग रहे है और दिन दूनी-रात चौगुनी की दर से अपना साम्राज्य बढा रहे है। जाने-अनजाने इनसे देश को हर साल अरबो रुपयो का नुकसान हो रहा है। लेंटाना का ही उदाहरण ले। सजावटी फूलो के कारण इसे पसन्द किया गया और विदेश से ले आया गया। पर इसकी पत्तियो की अजीब गन्ध और कंटीले तने के कारण लोगो ने इसे नापसन्द कर दिया। आज लेंटाना बेकार जमीन मे फैला हुआ है। जंगलो मे इनकी उपस्थिति आग के फैलने मे मदद करती है जिससे हर साल बहुत नुकसान उठाना पडता है। इसके जैविक नियंत्रण के लिये वैज्ञानिको ने एक मित्र कीट जंगलो मे छोडा। उम्मीद थी कि यह कीट लेंटाना के फैलाव पर अंकुश लगा सकेगा पर कुछ समय तक लेंटाना को खाने के बाद इसने सागौन की ओर रुख कर लिया। इस तरह सागौन को बहुत नुकसान होने लगा और इस कीट के प्रसार पर रोक लगानी पडी।

यदि आप विदेशो से भारत लाये गये उन सजावटी पौधो की सूची तैयार करे जो कि अब खरपतवार बनकर नाक मे दम किये हुये है तो सैकडो नाम आपकी सूची मे शामिल हो जायेंगे। अन्ध-विश्वास से जंग पर आधारित इस लेखमाला मे मै इस विषय पर चर्चा इसलिये कर रहा हूँ क्योकि ये विदेशी वनस्पतियाँ भारतीय समाज से जाने-अनजाने जुड गयी है। इनके साथ अन्ध-विश्वास जुड गया है और यह अन्ध-विश्वास इनके फैलाव मे मददगार साबित हो रहा है।

छत्तीसगढ-उडीसा सीमा पर गाडी की खिडकी से बाहर झाँकते हुये मैने अपने साथ चल रहे बैगाओ से खेतो और बेकार जमीन मे उग रहे पीले फूलो के बारे मे पूछा तो कुछ बताने से पहले उन्होने हाथ जोडकर उन पौधो को नमस्कार किया और फिर बोले कि इन्हे स्थानीय भाषा मे हम हिंगलाज कहते है। साहब, इसके पास आते ही अच्छो अच्छो का भूत उतर जाता है। जब किसी को भूत आता है तो बैगा इसी पौधे के पास प्रभावित को ले आते है और पीले फूलो को देखते ही भूत उतर जाता है।यह मेरे लिये नयी बात थी। मै इन पौधो को कैसिया एलाटा के नाम से जानता था। ये सजावटी पौधे है और

कुछ दशक पहले ही इन्होने भारतीय बागीचो मे प्रवेश किया है। वहाँ से जब लोगो ने इन्हे बेघर किया तो इनका फैलाव होने लगा। बहुत से भागो मे इसे दादमारी भी कहा जाता है क्योकि इसकी पत्तियो के बाहरी प्रयोग से दाद की चिकित्सा की जाती है। यह बहुत उपयोगी पौधा साबित नही हुआ। लोगो ने इसे अनदेखा किया और इस तरह यह फैलता रहा। अब इसके भूत से जुड जाने की बात को सुनकर बडा ही आश्चर्य हुआ।

मैने पहले लिखा है कि भूत उतारने मे जिन वनस्पतियो का प्रयोग किया जाता है वे ज्यादातर बहुत तीव्र गन्ध वाली होती है। जब यह गन्ध प्रभावित के दिमाग तक पहुँचती है तो वह तन्द्रावस्था से बाहर आ जाता है। चालू भाषा मे कहे तो यह दिमाग की बत्ती जला देता है। आपने सुना और देखा होगा कि मिर्गी के दौरे के समय मरीज को चमडे की चप्पल सुन्घायी जाती है। इसका उद्देश्य भी यही होता है। आपको एक मजेदार बात बताये। हमने कई बार ओझाओ को भूत उतारने के समय कंडो (छेना) को जलाकर धुँए को प्रभावित की नाक मे डालने का प्रयास करते देखा था। वे बार-बार प्रभावित का सिर पकडकर जलते कंडे के पास लाते है। जब ओझाओ से राज पूछा गया तो उन्होने कुछ कहने से इंकार कर दिया। काफी मशक्कत के बाद पता चला कि यह धुँआ सल्फर (गन्धक) का होता है। यह बहुत ही तेज होता है। उन्माद की अवस्था मे प्रभावित की नाक से अन्दर कोमल भागो पर जब यह धुँआ पहुँचता है तो तरल से क्रिया करके तनु सल्फ्यूरिक एसिड बनाता है। इससे तीव्र जलन होती है और प्रभावित सामान्य हो जाता है। कई बार जान-बूझकर भूत आने का दिखावा कर रहे लोगो की हालत तो इस धुँए से खराब हो जाती है और वे रंगे हाथो पकड लिये जाते है। ओझा खुशी से चिल्लाते है कि उन्होने भूत को साध लिया है पर वास्तव मे कमाल गन्धक का होता है। बहुत से चतुर ओझा गन्धक की गन्ध छुपाने के लिये बच जैसी सुगन्धित वनस्पतियाँ इसमे मिला देते है। पर ऐसी सुगन्ध वाली विशेषता पीले फूलो वाले कैसिया मे नही है। इसीलिये भूत भगाने मे इसकी उपयोगिता की बात मुझे हजम नही हुयी। यह अजीब सी ही बात है कि बहुत से मामलो मे जिस पर भूत आने की बात कही जाती है उसे यह मालूम होता है कि किस वनस्पति से भूत उतर जाता है। ओझा के हाथ मे उन्हे देखते ही भूत हवा हो जाता है। पीले फूलो वाले कैसिया के विषय मे जानकारी उस समय तो नही मिली पर बाद मे जब मै एक बुजुर्ग ओझा से मिला तो उसने कहा कि यह प्राचीन समय से उपयोग मे आ रही वनस्पति नही है। इस पीढी के ओझाओ ने इसका प्रयोग खोजा है। उसे भी सही कारण का पता नही था फिर भी उसने कयास लगाया कि इसके पीले फूलो मे काले चीटे हमेशा रहते है। शायद वे ही काटकर भूत उतारते होंगे। भूत के उपचार मे

उपयोग होने के कारण अब पीले कैसिया को कोई नही उखाडता है। लोग इससे दूरी बनाये रहते है। मै जब लोगो को इससे हो रहे नुकसान के विषय मे बताता हूँ तो भी वे इसे उखाडने के लिये तैयार नही होते है। कैसे यह स्थानीय वनस्पतियो से उगने के अवसर छीन रहा है, कैसे पानी की बर्बादी कर रहा है आदि-आदि खतरो पर आधारित मेरा व्याख्यान व्यर्थ साबित होता है। अब एक ही रास्ता है और वह यह है कि इस वनस्पति के सरल उपयोग विकसित किये जाये ताकि धीरे-धीरे ये खत्म हो जाये। मैने सरल उपयोग लिखा है। क्योकि वैज्ञानिको ने लेंटाना और जल कुम्भी जैसी विदेशी वनस्पतियो के ढेरो उपयोग सुझाये है पर जमीनी स्तर पर ये सफल नही है। जलकुम्भी से खाद बनायी गयी, इससे फर्नीचर बनाये गये, लेंटाना से मच्छर भगाने की दवा बनायी गयी, हर्बल चाय बनायी गयी पर नतीजा सिफर ही रहा। औषधीय और सगन्ध फसलो की व्यवसायिक खेती के सिलसिले मे मैने काफी वक्त बस्तर के किसानो के साथ बिताया। स्थानीय भाषा मे वे लेंटाना को बेमारी लाटा कहते है यानी बेमारी फैलाने वाली वनस्पति। वे इसे उखाडने के लिये हरदम तैयार रहते है। जब मैने इससे जैविक कीटनाशक बनाये और नयी फसलो पर सफलतापूर्वक प्रयोग किये तो वे बडे प्रसन्न हुये। उन्होने इसे कोदो, कुटकी जैसी पारम्परिक फसलो पर भी आजमाया। आज वे अपने चारो ओर इस विदेशी वनस्पति के फैलाव पर इसी तरीके से अंकुश लगाये हुये है।

इस लेखामाला को नियमित रुप से पढ रहे गोवा के एक पाठक ने कल ई-मेल कर मुझसे पूछा कि एंटीगोनन नामक विदेशी वनस्पति को कैसे नष्ट करे? यह वनस्पति अपने फूलो के कारण पसन्द की जाती है। यह बेल के रुप मे फैलती है और एक बार आश्रय देने से निर्बाध गति से फैलती है। यदि इस गति पर अंकुश नही लगाया गया तो इसका एकछत्र राज्य हो जाता है। मैने सोचा शायद इसी कारण उस पाठक ने नष्ट करने का उपाय पूछा होगा पर उसका कारण चौका देने वाला था। उसने कहा कि इसकी उपस्थिति घर के बागीचे मे अच्छी नही मानी जाती है। यह परिवार वालो के बीच मानसिक अशांति पैदा कर देता है। गोवा क्षेत्र मे ऐसी मान्यता है। मैने उसे उपाय तो बता दिया पर काफी देर तक सोचता रहा कि आखिर क्यो इससे मानसिक अशांति की बात जुडी होगी? विश्व साहित्य खंगाला पर जवाब नही मिला। जिस देश से यह वनस्पति लायी गयी है वहाँ ऐसी मान्यता प्रचलन मे नही है। जब तक सही कारण नही मिल जाता तब तक मै यही मान रहा हूँ कि इसके फैलाव से बागीचे के दूसरे सुन्दर और कीमती पौधे नष्ट होने लगते होंगे इसलिये परिवार वाले उस सदस्य पर बरस पडते होंगे जिसने इसे लगाया है और अशांति हो जाती होगी। सही कारण की खोज जारी है।
(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

साँपो से जुडी वनस्पतियो मे सदा ही से मेरी रुचि रही है। एक बार मुझे पता चला कि पास के गाँव मे कोई तांत्रिक ऐसी दवा बेच रहा है जिससे सर्प दंश की चिकित्सा हो सकती है। मै वहाँ पहुँचा तो मुझे लाल रंग का एक पाउडर दिया गया और बताया गया कि इसे दंश वाले स्थान पर लगा देने से तुरंत ही यह जहर खीच लेता है। उसका यह भी दावा था कि इस पावडर को घर के उन स्थानो मे भी रखा जा सकता है जहाँ से साँप के भीतर आने की सम्भावना हो। इस पावडर के प्रभाव से साँप दूर ही रहेगा। पावडर एक छोटे से डब्बे मे बन्द था और उसकी कीमत थी 251 रुपये। मैने डब्बा खोला तो तेज बदबू से मेरा सिर घूम गया। यह बदबू एंटीबायटिक दवाओ से मिलती-जुलती थी पर उनसे कुछ अलग भी थी। मेरा दिमाग इसे सही रुप से पहचान नही पाया। मैने डब्बा खरीद लिया। उसे लेकर जब सर्प विष चिकित्सा मे दक्ष पारम्परिक चिकित्सक के पास गया तो उसने पावडर को पहचान लिया। उसका मत था कि सर्प दंश वाले स्थान पर इसे लगाने से फायदे की जगह नुकसान हो सकता है पर हाँ, घर मे रखने से शायद साँप न आये। यह वनस्पति से तैयार चूर्ण नही था। यह था छछून्दर को मारकर और फिर सुखाकर बनाया गया पावडर। इसकी विशेष बदबू से आम भारतीय परिचित है क्योकि घरो मे यह बिन बुलाये मेहमान की तरह इसका आना-जाना लगा रहता है। आपने साँप-छछून्दर वाली कहावत पढी होगी। साँप इसे खाना पसन्द नही करते है। यदि लालच मे निगल भी ले तो आधे मे ही असमन्जस मे पड जाते है कि निगले या उगले। इसी को साँप- छछून्दर वाली स्थिति कहते है। आम तौर पर लोगो मे यही मान्यता है कि जहाँ यह प्राणी रहता है वहाँ सर्प आना पसन्द नही करते है। इसी मान्यता का लाभ उठाकर इसे मारकर सुखाकर बेचा जाता है पर यह सचमुच कितना प्रभावी है इसकी परीक्षा नही हुयी है।

अपना कम्प्यूटर लेने से पहले मै पास के साइबर कैफे जाया करता था जिसे आदिल खान नामक व्यक्ति चलाया करते थे। अक्सर काम करते वक्त पैरो के पास कुछ हलचल

महसूस होती थी। मै समझ जाता था कि छछून्दर ही है। मुझे बडा डर लगता था क्योकि बचपन मे एक बार इसने मेरे बडे भाई के पैर मे काट लिया था। मैने बार-बार नाराजगी दिखायी पर आदिल इसे मारने के लिये तैयार नही होता था। मैने कैफे मे न आने की धमकी दी तो उसने बताया कि हम लोग इस प्राणी को लक्ष्मी का रुप मानते है। इसलिये आप भले ही चले जाये पर इनका आना-जाना बन्द नही होगा। आमतौर पर आधुनिक घरो मे इसे पसन्द नही किया जाता है। कारण सामान्य सा है। यह नालियो से होकर आती है इसलिये इसे बीमारी फैलाने वाला माना जाता है। यह सही भी है। भले ही इसके प्रशंसक इसे घर का सफाई कर्मचारी माने पर इसकी शक्ल और आवाज के कारण इसका स्वागत नही होता है।

देश मे विभिन्न भागो मे पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के दस्तावेजीकरण के दौरान छछून्दर का नाम मैने बहुत से सन्दर्भो मे सुना। बाहरी और आँतरिक दोनो ही रुपो मे नाना प्रकार के रोगो की चिकित्सा मे इसका उपयोग होता रहा है। इससे बनाये गये तेल का वर्णन प्राचीन साहित्यो मे मिलता है। इसे कामोत्तेजक भी माना जाता है। पर आजकल इसका उपयोग कम ही होता है। पारम्परिक चिकित्सक इसका कारण जानते है। उनका कहना है कि इसकी बदबू एक प्रमुख कारण है। फिर इन रोगो के लिये बहुत सी वनस्पतियाँ उपलब्ध है इसलिये भी इसका उपयोग कम किया जाता है। छछून्दर आमतौर पर आसानी से दिख जाने वाला प्राणी है और इसके शत्रु भी अधिक नही है। विदेशो मे विशेषज्ञ छछून्दर प्रभावित घरो मे बिल्ली पालने की सलाह देते है। पर मुझे नही लगता कि बिल्ली इसे खाती होगी। हाँ, वह कुछ को मार जरुर सकती है। अपने अनुभवो से मैने उल्लू को बडा ही लाभकारी पाया है। वैज्ञानिक साहित्य भी ऐसा ही कहते है। उल्लू की उपस्थिति से इन पर प्राकृतिक नियंत्रण रहता है। पर आपने पहले के लेखो मे पढा ही है कि कैसे मानवीय गतिविधियो से उल्लू कम होते जा रहे है। छछून्दर का उत्पत्ति स्थान भारत को ही माना जाता है। चूँकि यह मानव आबादी के आस-पास निवास करने वाला प्राणी है इसलिये मानव ही ने इसे भारत से दुनिया भर मे फैलाने मे मदद की है। दुनिया के कुछ देशो मे पहले पहल इसे घर मे चूहो के नियंत्रण के लिये पाला गया पर जल्द ही उन्हे पता चल गया कि चूहे से अधिक खतरनाक बला ये छछून्दर है।

भले ही दुनिया भर के वैज्ञानिक साहित्यो ने इसे खतरनाक आक्रांता घोषित कर रखा है और इसे मारने की मुहिम छेडी हुयी है पर पारम्परिक चिकित्सक मानते है कि जब माँ प्रकृति ने इसे प्राकृतिक रुप से मानव आबादी के आस-पास ही रखा है तो जरुर कोई

विशेष कारण होगा। इन कारणो को पता लगाने वाले शोधो को बढावा देना जरुरी है। मै उनकी इस बात से सहमत हूँ। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

पर मै पहचानूंगा कैसे कि शहद असली है या नकली? जंगली इलाके से आये एक शहद बेचने वाले से मैने पूछा। वैसे तो शहद की शुद्धता की पहचान के बहुत से तरीके है पर मुझे इस वनवासी से नये तरीके की जानकारी मिली। उसने जेब से पाँच सौ रुपये का नोट निकाला और उसे शहद मे डुबोया फिर उसमे आग लगानी चाही। यह नोट नही जला। उसका दावा था कि यदि शहद नकली होगी तो नोट पलक झपकते ही जल जायेगा। उसने यह भी कहा कि नोट शहद बेचने वाले से लिया जाये। इससे यदि शहद बेचने वाले ने मिलावट की होगी तो वह बहानेबाजी शुरु कर देगा और इस तरह आप सब कुछ बिन जाँचे ही जान जायेंगे। पाँच सौ का नोट इसलिये क्योकि यह बडी रकम है। चाहे तो सौ के नोट पर भी यह प्रयोग किया जा सकता है। वनवासियो के पास पाँच सौ के नोट भला कैसे मिलेंगे? आपकी बात सही है पर जंगली क्षेत्रो से आये बहुत से शहद बेचने वाले आपको रायपुर शहर मे दिख जायेंगे। वे घर-घर जाकर शहद बेचते है और लोग बडी मात्रा मे इसे खरीदते भी है। बहुत से आयुर्वेदिक डाक्टरो ने भी इन वनवासियो से कमीशन के आधार पर सम्बन्ध बना लिये है। चलिये अब मुद्दे पर आ जाये। जिस तरह असली शहद की पहचान के बहुत से उपयोगी तरीके है उसी प्रकार जडी-बूटियो की शुद्धता पहचानने के लिये भी सरल पर प्रभावी तरीके है। पारम्परिक चिकित्सक इन तरीको को रोजमर्रा के जीवन मे उपयोग करते रहते है। जडी-बूटियो मे मिलावट करने वाले नये-नये तरीके इजाद करते है और पारम्परिक चिकित्सको को लगातार नयी काट खोजनी पडती है। यह अच्छी बात है कि अपने इस ज्ञान को पारम्परिक चिकित्सक बिना संकोच रोगियो और आम जनो को बता देते है ताकि वे और लोगो को जागरुक कर सके। बहुत सी जडी-बूटियाँ है जिनकी शुद्धता की पहचान करना मुश्किल होता है। तंत्र से जुडी वनस्पतियो की सही पहचान के लिये बहुत सी ऐसी विधियाँ सुझायी जाती है जिससे

किसी की जान मुश्किल मे आ सकती है। अर्थात रंग, रुप या रसायनो के प्रयोग से इन्हे नही जाँचा जा सकता। तांत्रिक दावा करते है कि इसका प्रयोग दुश्मन पर करो यदि उसका नुकसान हो या उसकी जान के लाले पड जाये तो समझो वनस्पति असली है। अब भला यह कौन सी बात हुयी? पर ऐसी मान्यताए समाज मे प्रचलित है।

इंटरनेट से मेरे होमपेज पर जिन वनस्पतियो का नाम खोजते-खोजते दुनिया भर के लोग पहुँचते है उनमे काली हल्दी का नाम भी है। काली हल्दी का नाम आपमे से बहुत से पाठको के लिये भी नया होगा। साधारण हल्दी, जंगली हल्दी और आम्बा हल्दी को हम सब जानते है। पर इसके अलावा काली हल्दी भी होती है। यह जंगलो मे होती है। बहुत से लोग इसकी खेती करने के प्रयास भी कर रहे है। यह दुर्लभ मानी जाती है। पारम्परिक चिकित्सा मे जटिल रोगो की चिकित्सा मे इसका प्रयोग होता है। कैसर मे इसकी उपयोगिता ने इसके महत्व को बहुत अधिक बढा दिया है। आधुनिक विज्ञान भी इसके महत्व को समझ चुका है। तंत्र क्रिया से जुडे लोगो से आप इस पर बात करेंगे तो वे आपको नाना प्रकार की रोचक बाते बतायेंगे इसके विषय मे। कहेंगे कि असली काली हल्दी मिलना टेढी-खीर है। यह तो हिमालय मे होती है। यदि कोई कामी इसे देख ले तो उसके आँखे चली जाती है। जितने मुँह उतनी बाते। आप जडी-बूटी विक्रेता के पास जायेंगे तो वह बिना विलम्ब आपको चन्द रुपयो मे इसे दे देगा। पर इसके असली होने की गारंटी नही देगा। मैने देश भर की ऐसी सैकडो दुकानो से काली हल्दी के नाम से बेची जा रही वनस्पतियो के भाग एकत्र किये और फिर जब उनकी जाँच की तो पता चला कि एक भी नमूना काली हल्दी का नही था। पता नही ऐसी गलत हरकतो से कितने लोगो की जान खतरे मे पड रही होगी।

कुछ साल पहले मुझे एक फोन आया कलकत्ता से काली हल्दी के दाम के बारे मे। तथाकथित असली काली हल्दी के दाम के बारे मे। फोन पर कहा गया कि मेरे पास असली वाली है जिसकी एक गठान की कीमत लाखो मे है। मै चौका नही क्योकि ऐसी बाते मै पहले भी सुन चुका था। उस व्यक्ति ने बाद मे रायपुर मे मुझे लाखो की कीमत वाली काली हल्दी दिखायी। मैने नमूने का परीक्षण किया। उस व्यक्ति ने कहा कि यह गठान उसने जंगली इलाके से अच्छी कीमत देकर खरीदी है। मैने नमूने को जाँचने की प्रक्रिया मे देश भर से एकत्र किये गये नमूनो से उसे मिलाया। मध्य भारत से खरीदी गयी गठान से कलकत्ता वाली गठान मिल गयी। इसका मतलब यह नकली थी। उस व्यक्ति को किसी ने जोर से चूना लगाया था। मैने उसे कुछ चित्र दिखाये जिसमे देश भर से एकत्र किये गये कन्दो को खेतो मे उगाकर देखा गया था कि आखिर वे वास्तव मे

किसी वनस्पति के थे। उसे बेची गयी काली हल्दी दरअसल जंगली हल्दी थी। मेरी बात से वह सहमत नही हुआ और बोला कि इसकी गठान के माध्यम से उसने बहुत से शत्रुओ को निपटाया है। यही असली काली हल्दी है। मैने उससे और बहस न करने की ठान ली। वह मुझसे मनचाही रकम के ऐवज मे इस गाँठ को असली काली हल्दी की गाँठ बताने वाला प्रमाणपत्र चाहता था ताकि उसे ऊँची कीमत पर वह महानगरो मे बेच सके। मेरे इंकार करने पर आग-बबूला होकर उसने उस गाँठ को हाथ मे लिया और कहा कि अगले चौबीस घंटो मे मै भस्म हो जाऊँगा। वह चला गया। चौबीस घंटे बीते फिर चौबीस महिने भी पर कुछ न हुआ। मै आपके सामने हूँ। यदि जंगली हल्दी यह सब कर पाने मे सक्षम होती तो भारतीय सेना को इसकी खेती की सलाह दे देता। बिना जंग लडे की सारे शत्रु भस्म हो जाते।

बहुत से तांत्रिक प्रेत बाधा से बचने के लिये प्रभावित व्यक्ति को काली हल्दी का टीका लगाने की सलाह देते है। पहले चन्दन का टीका लगाया जाता है फिर उसके ऊपर काली हल्दी का और सबसे अंत मे मानव रक्त का। यह कितना प्रभावी है यह तो नही पता पर जब मैने पारम्परिक चिकित्सको को इस विषय मे बताया तो वे बोले कि चन्दन का तिलक तो स्वास्थ्य के लिये अच्छा माना ही जाता है। काली हल्दी और चन्दन का मेल भी उपयोगी माना गया है। वे दसो प्रकार के ऐसे मिश्रण बनाते है जिनमे ये दोनो मुख्य घटक के रुप मे उपस्थित रहते है। इन मिश्रणो से सिर सम्बन्धी रोगो की चिकित्सा की जाती है। पारम्परिक चिकित्सक मानव रक्त के तिलक को औचित्यहीन मानते है विशेषकर काली हल्दी और चन्दन के साथ। तांत्रिक इन तीनो तिलक के हजारो वसूलते है।

तंत्र से जुडे होने के कारण काली हल्दी को घर मे लगाने से मना किया जाता है। इसकी खेती से तो तौबा ही की जाती है। पर देश मे औषधीय और सगन्ध फसलो की खेती मे जुटे किसान जल्दी ही बडे पैमाने पर इसकी व्यवसायिक खेती आरम्भ करेंगे क्योकि जिस तरह से इसके लाभकारी गुण नये शोधो के माध्यम से सामने आ रहे है उससे तो लगता है कि इसका भविष्य उज्जवल है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

हमारे एक मित्र देहाती बाजारो का अक्सर जिक्र करते है। उनका बचपन सागर क्षेत्र मे बीता। वे एक देहाती मिठाई बेचने वाले का किस्सा सुनाते है। बाजार के शुरु होते ही वह सिर के बल शीर्षासन पर तन जाता था। फिर पेट को घुमाकर योग की नौली प्रक्रिया का प्रदर्शन करने लगता था। यह सब देखकर जब उसके पास भीड जुट जाती थी तो फिर वह अपना पिटारा खोलता और मिठाई बेचने लगता। उसकी मेहनत रंग लाती और दर्शक मिठाई खरीदने लगते थे। भीड को एकत्र करने के लिये या फिर भीड मे अपना प्रभाव स्थापित करने के लिये इस तरह के उपाय अपनाये जाते है। चमत्कार को नमस्कार है वाली बात इस तरह के लोग अच्छे से जानते है। अब भारतीय योग का ही उदाहरण ले। इसके विषय मे जानकारी देने वाली ढेरो संस्थाए देश मे थी पर नयी पीढी ने इसकी सुध नही ली। जैसे ही एक योगी ने रुचिकर प्रक्रियाओ का सार्वजनिक प्रदर्शन किया झट से देहाती बाजार के मिठाई बेचने वाले की तरह उसके सामने भीड लग गयी और वह स्थापित हो गया।

अन्ध-विश्वास के विरुद्ध अभियानो मे चमत्कारियो से पग-पग मे मुठभेड होती रहती है। बहुत से चमत्कारो का विज्ञान होता है और उनकी वैज्ञानिक व्याख्या होती है। इसी के आधार पर हम जनता के सामने चमत्कार दिखाने का दावा करने वालो की पोल खोलते है। जब आम जनता किसी बाबा द्वारा दिखाये गये चमत्कार का विज्ञान जान लेती है और उन्हे अपने हाथो से कर लेती है तो बाबा का प्रभाव जाता रहता है। फिर ऐसे बाबा अपना बोरिया-बिस्तर उठाकर गायब होने मे देर नही लगाते है। पर हर मामले मे हम चमत्कारो की व्याख्या करने मे सफल नही होते है। बहुत से मामलो मे हम चमत्कार की व्याख्या कर देते है पर आम जनता जब हमसे ऐसा करने को कहती है तो हम निरुत्तर हो जाते है। ऐसी परिस्थितियो मे बाबाओ का पलडा फिर से भारी हो जाता है। मुझे एक अभियान याद आता है जिसमे दूर से आये एक बाबा के विषय मे अखबारो मे प्रकाशित हुआ था कि वे मंत्र पढते है और मंत्रो के प्रभाव से हवन कुंड की अग्नि अपने आप प्रज्जवलित हो जाती है। यह खबर पढते ही हम समझ गये कि आम लोगो को चमत्कार दिखाया जा रहा है। हमे पता था कि कैसे कालेज की प्रयोगशाला से कुछ रसायनो को एकत्र कर ऐसी आग हम भी पैदा कर सकते है। मंत्रो की इसमे कोई भूमिका नही है। हमने आम जनता के सामने इसका प्रदर्शन करने की ठानी। योजना थी कि हम हजारो लोगो के बीच उस बाबा तक जायेंगे और किसी फिल्मी गाने की धुन बजाकर वैसे ही

हवन कुंड मे अग्नि प्रज्जवलित करेंगे जैसे बाबा मंत्रो के उच्चारण से करते है। दूध का दूध और पानी का पानी हो जायेगा। संस्था के सदस्य श्री राजेन्द्र सोनी ने मोर्चा सम्भाला। उन्होने इसका अभ्यास किया ताकि आम जनता के सामने जरा भी गल्ती न हो। गल्ती का अर्थ बिना देरी बेदम पिटाई। खैर, आत्मविश्वास से भरे हम सब इसकी तैयारी करते रहे। ऐन मौके पर हमारे इस अभियान की भनक बाबा के चेलो को लग गयी। उसके बाद तो इतना जोरदार राजनीतिक दबाव आया कि हमारे संस्था प्रमुख के हाथ-पैर फूल गये। आनन-फानन मे अभियान रद्द कर दिया गया। संस्था के ज्यादातर सदस्य यह खतरा मोल लेने को तैयार थे।

आमतौर पर पोटेशियम परमैगनेट जिसे देहाती क्षेत्रो मे लाल दवा के रुप मे भी जाना जाता है, को हवन की लकडियो के ऊपर रख दिया जाता है। यह कार्य चेले करते है फिर बाबा का प्रवेश होता है जोकि हवन के लिये कपिला गाय का शुद्ध घी माँगते है। अब भला ऐसा घी किसके पास मिलेगा। और कोई घी चलेगा महाराज? लोग पूछते है तो बाबा की त्यौरियाँ चढ जाती है। लोग सहम जाते है। तो फिर आप ही कोई उपाय बताये महाराज। वे कहते है। तब बाबा अपनी पोटली से एक शीशी निकालते है जिसमे घी जैसा तरल होता है। यह वास्तव मे ग्लिसरीन होता है। जब वे इस घी को हवन कुंड मे लकडियो के ऊपर रखे पोटेशियम परमेगनेट मे डालते है तो रासायनिक प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। अब स्वत: ही आग जल जाने मे लगने वाले समय मे आप मंत्र पढे या चुप रहे या फिल्मी गाना गाये आग तो लगेगी ही। न केवल देहातो मे बल्कि बडे-बडे आयोजनो मे इस प्रक्रिया से अग्नि प्रज्जवलित की जाती है और चमत्कार के विज्ञान से अपरिचित वाह-वाह कर बैठते है। हमने बहुत से मामलो मे सच को आम जनता को दिखाया और बाबाओ को रंगे हाथो पकडा। यह क्रम अब भी जारी है।

शहर मे विभिन्न जलसो के दौरान टयूब लाइट को तोडकर काँच को चबाने वाले प्रदर्शन अक्सर देखने मे आते है। प्रदर्शनकर्ता खूब ताली बटोरते है। गाँवो मे ऐसे चमत्कार बाबाओ द्वारा दिखाये जाते है। कैसे काँच के टुकडो को चबाया जा सकता है-यह जानने के लिये मै लम्बे समय से प्रयासरत रहा। बहुत से लोगो ने बताया कि प्रदर्शन के पहले और बाद मे केले का सेवन काँच को सुरक्षित तरीके से शरीर के बाहर निकाल देता है। मै बहुत से प्रदर्शनो मे जोखिम उठाने वालो के साथ रहा पर उन्हे कभी केला खाते नही देखा। बाद मे वे मित्र हो गये तो उन्होने केले वाली बात से इंकार कर दिया। काँच खाने के अलावा बाबाओ द्वारा अंगारे खा लेने का प्रदर्शन भी मुझे सदा से आकर्षित करता रहा

है। हम अपने अभियानो मे इन प्रदर्शनो को ढोंग तो कह देते थे पर हमारी हिम्मत नही होती थी कि इसे आम जनता के सामने दिखाये। इससे मन मे खीझ होती थी।

कुछ सालो पहले जंगल की यात्रा के दौरान एक पहाडी पर एक पुराना मन्दिर दिखा। वहाँ पारस पीपल का पेड लगा हुआ था। गाडी रुकवायी और तस्वीर लेने चल पडा। मन्दिर के पास पहुँचा तो एक बाबा से मुलाकात हुयी। बातचीत से पता चला कि लम्बे समय से वे यहाँ रह रहे है। जडी-बूटियो मे मेरी रुचि देखकर वे आस-पास की जडी-बूटियाँ दिखाने लगे। बातचीत के दौरान चमत्कारो पर भी बात हुयी। उन्होने कहा कि वे अंगारा खाने का प्रदर्शन कर चुके है। यह कैसे सम्भव है? मैने पूछा। वे बोले सब मंत्रो का असर है। हम लगातार मंत्र बोलते रहते है जिससे अग्नि का स्तम्भन हो जाता है। और वह कुछ भी बिगाड नही कर पाती है। उन्होने मंत्र भी बता दिये।

कुछ महिनो बाद एक मेले के अवसर पर मै फिर उसी मन्दिर मे गया। बाबा अंगारे खाने का प्रदर्शन कर रहे थे। वही मंत्र उच्चारित किये जा रहे थे। इस बार मैने अंगारे की बात बाबा से न करके चेले से की। उसने मत्र के साथ कुछ वस्तुओ का नाम लिया जिसका सेवन प्रदर्शन के पहले किया जाता है। पहले घी और चीनी का लेप मुँह मे लगाया जाता है। फिर सोंठ को चबाया जाता है। इसके बाद अंगारो का बुरा असर नही होता है। चर्चा आगे बढी तो दूसरे चेले से एक और नुस्खे के विषय मे पता लगा। उसका कहना था कि सोंठ के साथ काली मिर्च और पीपल का सेवन भी ऐसा ही असर करता है। काँच के विषय मे भी उन्होने अदरक की भूमिका बतायी। उनके अनुसार काँच को अदरक के रस मे भिगो लेने से वह नरम पड जाता है और उसे आसानी से शरीर के बाहर निकाला जा सकता है। प्रदर्शन के समय ट्यूबलाइट प्रदर्शनकारी खुद लेकर आते है जो कि उपचारित होती है-ऐसा उनका दावा था। प्रदर्शन के पहले और बाद मे अदरक के रस का सेवन भी लाभकारी है। क्या मै इसे अभी कर सकता हूँ? मैने पूछ ही लिया। उन्होने कहा इतनी जल्दी यह सम्भव नही है। यदि आप इसे करना चाहते है तो आपको तीन चीजे करनी पडेगी। सबसे पहली चीज ‘अभ्यास’। दूसरी चीज पहली से ज्यादा जरुरी है और वह है ‘अभ्यास’। तीसरी और महत्वपूर्ण चीज है ‘अभ्यास’। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव -
पंकज अवधिया

तुम्हारा जीवन खतरे मे है। तुम अभी गाँव छोडकर चले जाओ। तुम्हारी बहू के कारण घर मे कलह हो रही है। बुरी आत्मा से व्यापार मे लगातार घाटा हो रहा है। एक हजार रुपये चढाने पर सभी समस्या का निवारण हो जायेगा। ऐसे सन्देशो से भरी पर्चियाँ जब दूर गाँव से आये एक व्यक्ति ने हमे दिखानी आरम्भ की तो हमारे होश उड गये। ये सन्देश किसी ऐसे-वैसे ने नही लिखा है बल्कि ये देवी के सन्देश है। वही देवी जो चाहे तो पल मे जीवन आनन्दमय बना दे और चाहे तो पल मे विनाश कर दे। यह दावा था गाँव मे पहुँचे एक तांत्रिक था। जब कोई व्यक्ति उसके पास पहुँचता अपनी समस्या लेकर तो वह विशेष तरीका अपनाता था। उसके पास नारियल के बहुत से ढेर लगे होते थे। व्यक्ति की समस्या के अनुसार विशेष ढेर से नारियल उठाने को कहा जाता था। जैसे घर की समस्या है तो दाया वाला ढेर, व्यापार मे परेशानी है तो पीछे वाला ढेर –इस तरह से। फिर व्यक्ति के सामने नारियल फोडा जाता था। उसके अन्दर से एक पर्ची निकलती थी जिसमे सन्देश लिखा होता था। तांत्रिक उसे पढ देता था। ये सन्देश उसी तरह के होते थे जैसे ऊपर दिये गये है। तांत्रिक के पास हजारो की संख्या मे लोग आ रहे थे। जिन पर्चियो मे घर के सदस्यो को घर मे अशांति का दोषी ठहराया जा रहा था उनसे बडी परेशानी हो रही थी। घरो मे इससे झग़डे बढ रहे थे और सिर फुटौव्वल की नौबत आ रही थी। कुछ लोगो ने हमारी संस्था से सम्पर्क किया और इस तांत्रिक पर अंकुश लगाने का अनुरोध किया।

हमने पर्ची को देखा तो यह कालेज कापी के लाइन वाले पन्नो को काट-क़ाट कर बनायी गयी थी। सन्देश स्कैच पेन से लिखे गये थे। यदि तांत्रिक की बात सही थी तो यह साफ था कि ऊपर स्वर्ग मे ऐसे पन्नो और स्कैच पेन का प्रचलन अब बढ गया था। कलम दवात की बात पुरानी हो चुकी थी। तभी तो देवी इनके इस्तमाल से सन्देश भेज रही थी नारियल मे छुपाकर। यह पहली नजर मे ही झूठा लगा रहा था। क्या तांत्रिक के पास जाने वाले इतनी सी बात को नही समझ पा रहे थे? वे चाहते तो सीधे ही यह प्रश्न तांत्रिक से करके मामले का अंत कर देते। पर ऐसे मामलो मे भीड का विश्वास अन्धा हो जाता है। उसके प्रश्नो पर विराम लग जाता है। एक-दूसरे की देखादेखी मन के प्रश्नो को अनदेखा और अनसुना कर वही करने लगते है जो सब कर रहे होते है। यह बडी विचित्र स्थिति होती है।

संस्था के सदस्यो ने वहाँ जाने का मन बनाया और तडके ही तांत्रिक के पास जा पहुँचे। तांत्रिक हमे देखकर परेशान नही हुआ क्योकि उस समय शहर से आने वालो का मजमा भी लगा हुआ था। हममे से कुछ से शेयर मार्केट का रुख जानना चाहा। पर तांत्रिक ने तो ऐसे नारियलो का ढेर बनाया नही था। पर वह लगातार कहे जा रहा था कि यदि कल आयेंगे तो वो यह भी बता देगा। बहरहाल, हमने उससे प्रक्रिया पूछी। उसने सब कुछ बताया और कहा कि जब आप नारियल चुनोगे तो उस फोडने के पहले देवी को अर्पित किया जायेगा। बस वही समय है जब सन्देश पर्ची नारियल के अन्दर आती है। अभी इस नारियल मे कुछ नही है। हमारे सदस्यो ने एक नारियल चुना और आगे कर दिया। गाँव वाले उत्सुकता से हमे देख रहे थे। नारियल देवी के सामने रखा गया और फिर फोडा गया। पर्ची निकली पर तांत्रिक के मुँह से आवाज नही निकली। वह आँखे चौडीकर कभी पर्ची को देखता कभी हमे। आखिर मे गाँव के सरपंच को बुलाकर पर्ची पढने को कहा गया। उसमे लिखा था कि यह तांत्रिक ढोंगी है। इसे तुरंत गाँव से भगाओ और लोगो के पैसे वापस करवाओ। तांत्रिक को काटो तो खून नही। ये कैसा उलटफेर हो गया। गाँव वालो की मुद्रा बदलने लगी। तांत्रिक अपने ही जाल मे फँस गया था। उसने आखिरी दाँव चला। उसने एक और नारियल देने को कहा। हमने फिर वही प्रक्रिया दोहरायी। नारियल के अन्दर से फिर वही पर्ची निकली। अब हमारी बारी थी इस खेल को उजागर करने की।

आमतौर पर नारियल मे दो छेद होते है। काले रंग के। ये अक्सर बन्द होते है पर सीक या हँसिये की सहायता से इन्हे आसानी से खोला जा सकता है। इसमे चूडी, सिन्दूर, रिबन से लेकर पर्चियाँ सब कुछ डाला जा सकता है सावधानी से। इसके बाद छेद को फिर से बन्द किया जा सकता है। आम तौर पर इन छेदो और इनके ऐसे उपयोग पर ध्यान नही जाता है पर चतुर तांत्रिक इसका खूब फायदा उठाते है। उन गाँवो मे जहाँ टीवी और डिस्कवरी जैसे चैनल पहुँच गये है वहाँ भी इस तरीके से ठगी जारी है। अभी कल ही ऐसी एक घटना के बारे मे मुझे एक व्यक्ति बता रहा था। यह घटना रायपुर शहर की थी। उस अभियान मे सदस्यो ने बडी चतुराई से तांत्रिक के ढेरो मे पहले से तैयार नारियल मिला दिये थे। और बाद मे उन्ही को उठाया भी। हम उस समय तो सफल हुये पर इस तरह की घटनाओ पर अंकुश न लगा पाये। संस्था के सदस्य लगातार लेख लिखते है और व्याख्यान देते है पर फिर भी लगता है कि अभी बहुत मेहनत करनी होगी समाज को पूरी तरह से जगाने के लिये। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव
- पंकज अवधिया

एक बार हम शाम के वक्त घने जंगल मे रात को कैप लगाने के उद्देश्य से जगह खोज रहे थे। मै आगे चल रहा था। पारम्परिक चिकित्सक और सहायक पीछे। एक खुली जगह नजर आयी तो मैने वही कैम्प लगाने का निश्चय किया। पारम्परिक चिकित्सको ने निर्णय लेने से पहले कुछ रुकने को कहा। फिर आस-पास घूमने के बाद बोले कि यह जगह खतरो से भरी है। आगे बढना होगा। साथ चल रहे दिल्ली से आये एक मित्र ने असहमति जतायी। वे ट्रेकिंग पर अक्सर जाया करते थे। उन्हे लगा कि समतल और खुली जगह ही उपयुक्त है। हम रुककर बहस करने लगे। पारम्परिक चिकित्सको ने जगह के अनुपयुक्त होने की वजह बतायी। उन्होने काली मूसली नामक वनस्पति की ओर इशारा किया और बोले कि इसके कन्द भालूओ और जंगली सुअरो को बहुत पसन्द है। वे रात को इसे खाने अवश्य आते होंगे। ऐसे मे कैम्प लगाकर जबरदस्ती खतरा मोल लेना ठीक नही है। मित्र ने कहा कि हम आग जलायेंगे। देखते है फिर कौन पास आता है। पारम्परिक चिकित्सको ने कहा कि भालू बहुत ही जिज्ञासु और शरारती होते है। यदि उन्हे कैम्प दिख गया तो पास जरुर आयेंगे। यहाँ रुका जा सकता है पर अनावश्यक खतरा नही मोल लेना चाहिये। हम आगे बढे तो मित्र को भेलवा का एक बडा पेड दिखा। उसके आस-पास काफी जगह थी। उसने यहाँ कैम्प लगाने को कहा। पारम्परिक चिकित्सक फिर अड गये और बोले कि सभी के लिये इस पेड की छाँव ठीक नही है। रात मे इसका बुरा असर बढ जाता है। इसलिये यहाँ रुकना ठीक नही है। मुझे यह तर्क सही लगा क्योकि इमली की छाँव से लेकर पडरी की छाँव के बुरे असर को मैने देखा और सुना था। पारम्परिक चिकित्सक बोले कि भेलवा वाले इलाके मे भालू कम ही आते है इसलिये भालू से बचने के लिये यह स्थान ठीक हो सकता है पर यह भी जानना जरुरी है कि पेड के बुरे असर को जानकर बहुत से जंगली जानवर इससे दूर रहते है। हम फिर आगे बढे। एक स्थान पर बड का पुराना पेड और जामुन के बहुत से पेड मिले। पारम्परिक चिकित्सको ने उस जगह को सही कहा। रात हो रही थी। आस-पास बिना देखे ही उन्होने बता दिया कि इस स्थान मे सेमल, पलाश और सेन्हा के पेड होंगे। सुबह हम जागे तो सचमुच हमने इन पेडो को आस-पास पाया।

रात को भोजन के बाद चर्चा आरम्भ की गयी। मैने पहले भी लिखा है कि बुजुर्गो के जमाने से चली आ रही बहुत सी बातो को हम अन्ध-विश्वास मान लेते है क्योकि हमे

उन बातो के पीछे छुपे विज्ञान का पता नही होता है। अब काली मूसली वाला ही उदाहरण लीजिये। मैने जब इस ज्ञान का संक्षेप मे वर्णन किया अपने शोध पत्र के माध्यम से तो बहुत से लोगो ने इसे कोरा अन्ध-विश्वास कहा फिर जब मैने उन्हे पूरी घटना बतायी तो उन्होने खुलकर पारम्परिक ज्ञान और उसे जानने वालो की प्रशंसा की। मैने बुजुर्गो द्वारा कही गयी बातो की एक लम्बी सूची बनायी है और चार लोग बैठे नही कि मै इस पर चर्चा छेड देता हूँ। चाहे वह ट्रेन हो या घना जंगल। अक्सर मुझ आम लोगो से सटीक व्याख्या मिल जाती है।

उस रात जंगल मे मैने कहा कि किसी यात्रा मे निकलने से पहले छींक आ जाने पर यात्रा क्यो टाल दी जाती थी? सबने अपने-अपने तर्क दिये पर हमारा सामान उठाकर चल रहे एक सहायक का तर्क मुझे जँचा। उसने कहा कि पहले के जमाने मे यात्रा महिनो की होती थी। अस्पतालो का कोई ठिकाना नही था। लम्बी यात्राओ से पहले अच्छा स्वास्थ्य जरुरी था। शायद इसलिये यात्रा के लिये निकलने के समय छींक आ जाने पर रुककर चिकित्सा कराने की सलाह दी जाती हो ताकि रास्ते मे कोई अडचन न आये। मुझे तो आज भी यह बात कुछ मायनो मे उपयोगी लगती है। आज जब हर गली-मोहल्ले मे चिकित्सक है और मोबाइल हमारे हाथो मे है तब भी यदि यात्रा के समय या किसी भी समय छींक आये तो पुरानी बात को सोचकर हमे रुककर इसका कारण खोज लेना चाहिये ताकि आने वाले समय हमारे लिये सुखकर हो।

हमारी बाते चल ही रही थी कि दूर मे कुछ नजर आया। निश्चय ही कोई जंगली जानवर था। आग के बावजूद उसका घूरना हमे सावधान करने के लिये पर्याप्त था। दो आँखो की दूरी से यह अन्दाज लगा कि हो न हो यह तेन्दुआ है। हमारे पास हथियार तो होते नही है। डिस्कवरी वाले फिल्मकारो की तरह लाल मिर्च का स्प्रे भी नही होता है। पारम्परिक चिकित्सको ने कैम्प लगाते समय कुछ पत्तियाँ एकत्र की थी। अब वे अंगार को उन्ही पत्तियो मे लपेटकर उछाल रहे थे। इससे काफी चिंगारियाँ निकल रही थी। ऐसा पत्तियो की सतह मे विशेष रचनाओ के कारण हो रहा था। चिंगारियाँ उपयोगी साबित हुयी और वह वन्य जीव भाग निकला। मुझे अचानक ही वनस्पति प्रेमी (विशेषज्ञ कहे तो ज्यादा ठीक होगा) एक पुलिस अधिकारी डॉ. अत्रे याद आ गये जिन्होने एक बार मुझे ऐसी पत्तियो और इस अनूठे प्रयोग के बारे मे बताया था। दिल्ली वाले मित्र भी पारम्परिक चिकित्सको के ज्ञान से अभिभूत थे।

आज अचानक की इस घटना पर लिखने का मन इसलिये बना क्योकि पिछले कुछ दिनो से इस लेखमाला को पढने भूत-प्रेत और चमत्कार की कहानियाँ दिखाने वाले चैनलो के

लोग बडी संख्या मे आ रहे है। कुछ ने मुझसे सम्पर्क कर कहा कि वे इस लेखमाला पर एक लम्बा कार्यक्रम बनाना चाहते है। उनका अनुरोध है कि मै चमत्कार के बारे मे लिखूँ पर उसकी वैज्ञानिक व्याख्या न करुँ ताकि रहस्य बना रहे और लोग डरे। यह उनका व्यवसायिक नजरिया हो सकता है पर मै तो वैज्ञानिक व्याख्या, समृद्ध पारम्परिक ज्ञान और इसके जानकारो के बारे मे उसी स्वरुप मे लिखता रहूँगा जिस स्वरुप से मैने शुरुआत की थी। गाँवो और जंगली क्षेत्रो मे बसने वाले पारम्परिक ज्ञान विशेषज्ञो की गाथाए आप इसी तरह पढते रहेंगे इस लेखमाला मे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

तो आजकल आप गठिया के लिये क्या उपाय कर रहे है? क्या पर्याप्त जल का सेवन जारी है? योग कैसा चल रहा है? मैने एक साथ कई प्रश्न अपने मित्र के पिताजी से कर दिये। वे काफी दिनो से गठिया के मरीज है। उन्हे जो भी नया उपाय मिलता है बिना देर किये उसे आजमा लेते है। चाहे इसके लिये कितने भी पैसे खर्चने पडे। उन्होने जवाब दिया कि जब से यह चमत्कारी अंगूठी मिली है तब से सभी उपाय बन्द है। अब इसी अंगूठी से गठिया जड से ठीक हो जायेगा। मैने सोचा कि किसी ने रत्नो वाली अंगूठी थमा दी होगी और मोटी रकम वसूल ली होगी पर जब उन्होने अपना हाथ बढाया तो बडी सस्ती सी अंगूठी दिखायी दी जिस पर मटमैली प्लेटनुमा वस्तु लगी हुयी थी। अरे अंकल, ऐसे तो कुछ समझ नही आ रहा है। जरा विस्तार से बताये। मैने कहा। उन्होने बताया कि एक देहाती मेले से यह अंगूठी लाये है ग्यारह हजार रुपये देकर। इसमे डायनोसोर की हड्डी लगी है। मुझसे रहा नही गया। मैने पूछा, डायनोसोर? वह भी इस जमाने मे? क्या अंकल आप भी मजाक करते है? डायनोसोर की हड्डी किसे मिल गयी जो इतनी सारी अंगूठियाँ बनाकर बेच रहा है? उन्होने अंगूठी बेचने वाले का अता-पता बता दिया। अंकल अपने जीवन मे एक सफल व्यापारी है। उन्हे अंगूठी की शक्ति पर इतना अधिक विश्वास करते देखना आश्चर्य का विषय था। उनको ठगना आसान नही है। बातचीत के बाद मै बाहर निकला तो आँटी ने कहा कि इन्हे समझाओ। सब कुछ छोड दिया है इस

चमत्कारिक अंगूठी के चक्कर मे। इस लापरवाही से पुरानी समस्याए फिर से उभर रही है।

अंगूठी वाले की तलाश मे जब मैने उस गाँव का रुख किया तो रास्ते मे रुक-रुक कर चमत्कारिक अंगूठी के बारे मे राह चलते लोगो से पूछताछ करता रहा। न केवल वैसी अंगूठी मिली बल्कि लाकेट भी दिख गये। किसी ने कहा कि इसे पहनने से भूत-प्रेत दूर रहते है। किसी ने कहा कि इससे वात की बीमारी ठीक होती है। बहुत से युवा शरमाकर बोले कि इसे तकिये मे रखकर सोने से स्वप्नदोष दूर होता है। इसे कामोत्तेजक भी बताया गया। इसका कोई एक मूल्य नही था। किसी को कुछ सौ मे बेचा गया था तो किसी ने हजारो लिये गये थे। सब इसका उपयोग कर रहे थे पर इसके असर के बारे मे कोई कुछ नही कह रहा था। जब अंगूठी वाले के पास पहुँचा तो उसके पास भीड लगी थी। वह बाहर से आया था और किराये पर एक झोपडी ले रखी थी। झोपडी के बाहरी हिस्से मे चमत्कारिक अंगूठी मे जडा जाने वाला कच्चा माल पडा था। तेज बदबू आ रही थी और ढेर के रुप मे प्लेटनुमा टुकडे बिखरे थे। लगता था कि किसी जानवर को मारा गया है। क्या यही डायनोसोर था जिसकी बात अंकल कर रहे थे? जानवर के बारे मे अंगूठी बेचने वाले से चर्चा की तो मेरा माथा ठनका। मैने एक अंगूठी ली और पास के पारम्परिक चिकित्सको के पास पहुँचा। मेरा शक सही निकला।

पारम्परिक चिकित्सको के साथ मै क्षेत्र के वन अधिकारी के पास पहुँचा और उन्हे अपना परिचय दिया। फिर उनकी ओर अंगूठी बढायी। उन्हे बताया कि कैसे इसे सभी रोगो की दवा बताकर बेचा रहा है। वन अधिकारी ने ध्यान से अंगूठी को देखा फिर अपनी श्रीमती को आवाज दी। तुम गाडी लेकर गाँव चले जाना और पिताजी के लिये एक अंगूठी खरीद लाना। उन्होने अपनी पत्नी से कहा और फिर मेरी ओर मुखातिब होकर बोले ये आपने अच्छा बताया। दरअसल मेरे पिताजी गठिया के मरीज है। अब मै अपने क्रोध पर काबू नही रखा सका। मैने उनसे अंगूठी मे उपयोग किये जा रहे पशु अंग को उन्हे दिखाया और कहा कि इसका शिकार अवैध है। आप उस व्यक्ति को पकडिये और पता कराइये कि आखिर इतनी बडी मात्रा मे अंगो के लिये कितने पशुओ को कब और कहाँ मारा गया? वन अधिकारी अभी भी असमंजस मे थे। बोले आप पुलिस मे शिकायत दर्ज कराये। यह मेरे क्षेत्र के बाहर है। इसका मतलब वे अभी तक इस अंग को पहचान नही पाये थे। हमने उन्हे बता ही दिया कि यह पैंगोलिन जिसे हिन्दी मे चीटीखोर भी कहा जाता है, के शल्क से तैयार की गयी अंगूठी है। शल्क के लिये बडी मात्रा मे इनका अवैध शिकार किया जाता है। यही कारण है कि पिछले कुछ दशको से इनकी संख्या मे बहुत कमी

आयी है। इसके शल्क और माँस के व्यापार पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिबन्ध लग चुका है। भारत मे भी इसके शिकार और व्यापार पर अंकुश लगाने का दावा सरकारी दस्तावेज करते तो है पर जब अधिकारी यह नही जानते कि इसकी पहचान क्या है तो जमीनी स्तर पर वे क्या कर पाते होंगे, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

जंगली क्षेत्रो मे पैंगोलिन का शिकार पीढीयो से किया जाता रहा है। यह शर्मीला जीव है। दीमक इसका भोजन है। माँ प्रकृति ने दीमक की आबादी पर नियंत्रण के लिये इसे धरती पर भेजा है। इसका माँस बहुत स्वादिष्ट कहा जाता है। यही कारण है कि इसके दिख जाने पर जी-जान लगाकर तुरंत की मार दिया जाता है। माँस खा लिया जाता है। वनवासी जानते है कि इसके शल्क बिकते है। वे इसे एकत्र कर लाते है और औने-पौने दाम पर बेच देते है। ज्यादातर मामलो मे अंगूठी बेचने वाले ही खुद जंगल जाकर पैंगोलिन को मार देते है। यहाँ बाघो की जान नही बच पा रही है तो पैंगोलिन जैसे निरीह प्राणी की कौन सुध लेगा? आम लोग इसके शल्क को भूत-प्रेत से रक्षा के लिये के पहनते है। पर इस शल्क मे इतनी शक्ति होती तो मानव रुपी भूत से पैंगोलिन के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लग ही नही पाता। इस निरीह प्राणी से जुडा अन्ध-विश्वास इसके लिये अभिशाप बन गया है।

अपने व्याख्यानो मे जब मै पैगोलिन पर हो रहे इस अत्याचार पर अपना आक्रोश जताता हूँ तो बहुत से लोग विरोध मे खडे हो जाते है। उनमे से कई लोग आयुर्वेद के जानकार होते है। वे प्राचीन सन्दर्भ ग्रंथो का हवाला देते हुये कहते है कि गठिया मे इसके शल्क के प्रयोग की बात ग्रंथो मे वर्णित है। फिर आप कैसे इसे अन्ध-विश्वास कहते है? मै उन्हे समझाने की कोशिश करता हूँ। शल्क से भूत-प्रेत भगाने का दावा करना अन्ध-विश्वास है पर यह मै भी जानता हूँ कि पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियो मे इसके कई उपयोगो के बारे मे बताया गया है। आज भी देश के बहुत से भागो मे यह उपयोग किया जा रहा है। मैने इसके विषय मे पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण भी किया है। पर इस विषय मे पैंगोलिन पर मंडराते खतरे से दुखी पारम्परिक चिकित्सको का तर्क मुझे सही जान पडता है। वे कहते है कि पहले मानब आबादी कम थी इसलिये पैंगोलिन की आबादी पर खतरा नही था। अब जब खतरा बढ गया है तो इस पर निर्भरता को खत्म करना होगा। आमतौर पर गठिया के लिये ही इसके शल्को का प्रयोग होता है। जितना इसका प्रभाव होता है उससे कही अधिक प्रभाव आस-पास खरपतवार की तरह उग रही वनस्पतियो के विवेकपूर्ण उपयोग से प्राप्त किया जा सकता है। इस बात का प्रचार-प्रसार कर इसका उपयोग कर रहे लोगो को शल्क के प्रयोग से रोका जा सकता है। पारम्परिक चिकित्सको

की बात सही है। इस आधार पर हम मानव बहुत से पशुओ का जीवन बचा सकते है विशेषकर ऐसे पशु जिन्हे औषधी के स्त्रोत के नाम पर मारा जा रहा है।

कानून बनाकर यदि हम निश्चिंत हो जाये कि शिकार और व्यापार पर अन्कुश लग जायेगा तो यह हमारी भूल है। अन्ध-विश्वास, प्रकृति के असंतुलन आदि विषयो पर अलग-अलग काम करने की बजाय एक साथ मिलकर योजनाबद्ध तरीके से समंवित प्रयास आवश्यक है-ऐसा मेरा मानना है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

कुछ वर्षो पहले एक हर्बल कम्पनी मे बतौर सलाहकार सप्ताह मे एक बार जाना होता था। वहाँ एच.आर. नाम से एक मैनेजर थे। उनका पूरा नाम उस कम्पनी मे शायद ही कोई जानता हो। सभी उन्हे एच.आर. कहते थे। मै भी उन्हे इसी नाम से जानता था। एक बार मैने बातो ही बातो मे उनसे पूरा नाम पूछा तो वे टाल गये। उनके टालने के ढंग मे कुछ रहस्य था इसलिये मै समय-समय पर पूछता रहा। इस कम्पनी का काम खत्म होने के आखिरी दिन एच. आर. मुझे छोडने एयरपोर्ट आये। वही प्रश्न मेरे मन मे था। पता नही वो कैसे ताड गये और बोले, सर बडा ही अटपटा नाम है। गाँव से हूँ और वही से यह नाम मिला है। एच. आर. मतलब हगरु राम। इतना बोलने के बाद वे यह सोच कर बचाव की मुद्रा मे आ गये कि मै अब जमकर मजाक उडाऊँगा। पर मुझे हँसी नही आयी। हाँ, बचपन के बहुत से ऐसे मित्रो की याद आ गयी जिनके साथ गाँव मे मै खेला करता था। ये अटपटे नाम वाले सहपाठी थे। ये अटपटे नाम हम लोगो ने नही रखे थे बल्कि उनके आपने पालको ने रखे थे। ऐसे सहपाठियो को बचपन मे बहुत अपमान सहना होता था पर वे कुछ कर नही सकते थे। अब इन सज्जन ने तो शहर आकर एच. आर. की ढाल मे अपने आपको बचा लिया पर बचपन से लेकर बुढापे तक एक ही गाँव मे रहने वाले ऐसे लोग बडे कष्ट सहते है।

हमारे ही परिवार मे दूर के एक चाचा को नाम बडा ही अटपटा था। पिताजी के सब भाइयो के नाम भगवान के नाम पर है पर उस एक चाचा का नाम चमरु रखा गया था।

बचपन मे तो कुछ नही लगा पर जब हम लोग बडे हुये तो यह नाम खटकने लगा। मन मे प्रश्न आने लगे कि ऐसा क्यो किया गया? अपने माता-पिता से पूछा तो उन्होने बडे ही सरल शब्दो मे कारण बता दिया। जब किसी घर मे पैदा होते ही बच्चे मरने लगते है तो नये बच्चे का नाम अटपटा रख दिया जाता है। इसके पीछे सोच यह है कि गन्दा नाम रखने से मौत उस बच्चे को छोड देगी और अच्छे नाम वाले बच्चे के पास चली जायेगी। क्या सचमुच ऐसा होता है? मैने पूछा। घर के एक बुजुर्ग ने विश्वास से कहा बिल्कुल ऐसा ही होता है। तभी तो पीढीयो से लोग इस पर विश्वास करते है और आज भी अटपटे नाम रखे जाते है। वे आगे बोले कि अटपटे नाम वाले इतने सारे लोग हमारे बीच है इसका मतलब यही हुआ न कि इसके कारण ही वे बच पाये? जब और बडे हुये तो यह विश्वास अन्ध-विश्वास लगने लगा। घर मे मै इसके खिलाफ बोलने लगा पर फिर बाद मे मुझे समझाया गया कि चलो माना कि यह अन्ध-विश्वास है पर इसके जारी रहने मे किसका नुकसान है? यदि लगातार बच्चो की मौत का दंश सह रहे माँ-बाप को ऐसा करने से सुरक्षा का अहसास होता है तो हम क्यो रोके उन्हे ऐसा करने से अन्ध-विश्वास की दुहाई देकर? उनकी बात सही भी लगी नही भी। अटपटे नाम से जिन्दगी भर अपमानित होते लोगो का दर्द मुझे ज्यादा दुखदायी लगता है, माँ-बाप के उस क्षणिक सुरक्षात्मक सुकून से।

ग्रामीण भारत के सम्पर्क मे रहने के कारण ऐसे बहुत से विश्वासो के विषय मे पता चलता रहता है। ऐसा नही है कि देश के विशेष हिस्सो मे ऐसा है और दूसरे हिस्सो मे नही। ऐसा भी नही है कि ऐसे विश्वास ग्रामीण भारत तक ही सीमित है। आज के आधुनिक समाज मे ये जगह पा चुके है। आपने भी पढा और सुना होगा कि बहुत से भागो मे रात को छोटे बच्चो का नाम नही लिया जाता है। यदि किसी बच्चे का नाम विश्वनाथ है तो उसे विशू, गुड्डू या इशारे से बुलाया जाता है। सुबह होते ही फिर उसका असली नाम लिया जाने लगता है। आखिर ऐसा क्यो किया जाता है? इसका कारण भी सरल है पर मुश्किल यह है कि कोई खुलकर नही बताना चाहता है। जंगली इलाको मे कुछ लोगो ने बताया कि रात को बच्चो का नाम लेने से उल्लू जैसे चमत्कारिक शक्ति वाले पक्षी इसे सुन लेते है और फिर अनर्थ करने वाली शक्तियो को ये नाम बता देते है। आपने इस लेखमाला मे पहले पढा ही है कि उल्लू एक साधारण जीव है पर उसकी शक्ल और रात्रिचर होने का गुण उसके लिये अभिशाप बन गये है। मुझे याद आता है कि बचपन मे दिन भर का काम निपटा कर जब खेतीहर मजदूर घर लौटते थे तो एक स्थान पर दादाजी का इंतजार करते-करते चर्चा करने लगते थे। अचानक ही सब चुप हो जाते थे। यह चुप्पी किसी उल्लू के आ जाने पर होती थी। उसे कोई भगाता नही था। सब

इंतजार करते कि कब वह जाये और वे चर्चा को आगे बढाये। बचपन मे यह सब बडा ही डरावना लगता था। चलिये वापस रात मे बच्चो के नाम न लेने के विश्वास मे आते है।

बस्तर मे वानस्पतिक सर्वेक्षणो के दौरान मैने इस तरह की बाते सुनी। लोगो ने उल्लू का नाम तो नही लिया पर कहा कि रात मे विनाशकारी शक्तियो के दूत आते है। वे हू-ब-हू बच्चो का नाम बोलते है। इसे शुभ नही माना जाता है। क्या ऐसे जीव है बस्तर के जंगलो मे? इसका जवाब है, हाँ। बस्तर मैना मनुष्य़ की आवाज सुनकर हू-ब-हू आवाज निकालती है। शायद लोग उसकी बात कर रहे हो। बहुत से तोते भी ऐसा करते है पर तोतो से इतनी निपुणता की उम्मीद कम ही है। इस बात की व्याख्या मै अभी तक नही कर पाया हूँ कि पक्षियो द्वारा नाम दोहराने का बच्चो की मौत से क्या सम्बन्ध है? क्या पहले कभी सन्योग से ऐसा हुआ हो और गलत तरीके से इस बात को प्रचारित किया गया। हो सकता है इस तरह लोगो के मन मे डर बैठ गया हो। पर देश के बहुत से भागो मे ऐसा विश्वास है। सबकी अपनी कहानियाँ है। इसलिये किसी निष्कर्ष पर पहुँच पाना सम्भव नही लग रहा है।

रात की हवाई-यात्रा के दौरान परिचायिका ने पास आकर पूछा कि एक महिला आपके बगल मे बैठकर कुछ पूछना चाहती है। वह आपको इंटरनेट मे पढती रहती है। क्या आप उनसे बात करना चाहेंगे? मैने अनुमति दे दी। एक महिला जल्दी ही बगल की सीट पर बैठ गयी और जडी-बूटियो पर चर्चा होने लगी। किसी आईटी कम्पनी मे बडे ओहदे पर थी। इस बीच विमान मे खाना परोसा गया तो हमारी बातचीत मे व्यवधान पडा। दोबारा बातचीत शुरु हुयी तो विषय बदल गया। वे बोली, आप जुजु के लिये कौन सी वनस्पति बताना चाहेंगे? जुजु? यह क्या होता है? मै सोच मे पड गया। सवाल दोहारने का अनुरोध किया तो फिर जुजु शब्द कान मे पडा। मैने कयास लगाया कि शायद यह उनका बच्चा होगा। लेकिन जब वे जुजु को जान से मारने की बात करने लगी तो मै फिर सोच मे पड गया। मैने साफ कहा कि मै समझ नही पा रहा हूँ कि ये जुजु क्या है? उन्होने इशारे से बताया। इशारा भी मुझे समझ नही आया। वे थोडी नाराज हुयी। परिचायिका की मदद ली गयी पर नतीजा सिफर ही रहा। मैने खीझते हुये कहा कि अब आप बता ही दीजिये। वे बोली रात को उसका नाम नही ले सकते। रुकिये मै लिखकर बताती हूँ। उन्होने लिखा जुजु मतलब साँप। हे भगवान! ये किस भाषा का प्रयोग कर रही थी वो? उन्होने आगे लिखा कि रात मे साँप का नाम लेने से साँप आ जाता है इसलिये उसे जुजु या किसी और नाम से पुकारा जाता है। हद हो गयी। आसमान मे इतनी ऊँचाई मे साँप का डर? वह भी उच्च शिक्षा प्राप्त आधुनिक महिला को? मैने हाथ जोडे और उनसे विदा ली।

आज सुबह ही उनका ईमेल आया है। ईमेल मे साँप का नाम लिखा है और उसे भगाने के लिये उपयुक्त वनस्पति के बारे मे जानकारी माँगी गयी है। इस ईमेल से मुझे यह पता लग गया कि इसे दिन मे लिखा गया है। रात होती तो साँप की जगह जुजु के बारे मे पूछा जाता।(क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

अन्ध-विश्वास के खिलाफ जंग पर आधारित यह लेखमाला देश भर मे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से छप रही है। मै खेती-किसानी पर नियमित लिखता हूँ इसलिये कोटा से प्रकाशित होने वाली पाक्षिक पत्रिका कृषि अमृत मे भी इसका नियमित प्रकाशन हो रहा है। ग्रामीण भारत से आ रहे पत्र इस बात का आभास करा रहे है कि इस लेखमाला को मन लगाकर पढा जा रहा है। गुजरात के एक स्कूल से पत्र आया है कि वे हर सप्ताह छात्रो के बीच इस लेखमाला पर आधारित परिचर्चा करवा रहे है। पाठक के पत्रो मे शुभकामनाओ के साथ ढेरो प्रश्न आ रहे है। प्रश्न विस्तार से है। वे मुझसे लिखित उत्तर चाहते है ताकि अपने क्षेत्र मे इसे बतौर सबूत दिखाकर वे अन्ध-विश्वास के खिलाफ लडाई लड सके। उनके प्रश्नो के जवाब मै इंटरनेट पर प्रकाशित हो रही इस लेखमाला मे दे रहा हूँ। पत्र-पत्रिकाए एक-एक करके लेखो को प्रकाशित कर रही है। ऐसे मे नये लेख पाठको तक पहुँचने मे एक-दो साल लग जायेंगे। कल ही राजस्थान से एक विचित्र प्रश्न प्राप्त हुआ। यह किसी तांत्रिक के दावे पर आधारित है। पाठक इस पर मेरे विचार जानना चाहते है।

पत्र के अनुसार एक तांत्रिक शत्रुओ को परास्त करने का दावा कर रहा है। इसके लिये वह मोटी रकम वसूल कर कई प्रकार की विधियाँ बता रहा है। इनमे से एक विधि के अनुसार शत्रु का छिपकर पीछा करना है शनिवार को। जब शाम को वह पेशाब करे तो उसके जाने के बाद वहाँ पहुँचकर पेशाब से गीली मिट्टी को एकत्र कर लेना है। अब एक छछून्दर पकडकर इसके पेट को फाड लेना है। आँत निकालने के बाद उसमे एकत्र की गयी पेशाब युक्त मिट्टी को भरकर सिलाई कर देनी है। फिर मरे हुये छछून्दर को धतूरे के पौधे मे

लटका देना है। यह पौधा श्मशान के पास उग रहा हो तो ज्यादा असर होगा। ऐसा करने से शत्रु का मूत्र रुक जायेगा और उसको बहुत तकलीफ होगी। यह तब तक जारी रहेगी जब तक उस छछून्दर के पेट से मिट्टी बाहर नही निकाल ली जाती। इस उपाय के पाँच हजार एक रुपये लिये जा रहे है।

यह तो एक नजर मे ही ठगी का मामला लगता है। यह उपाय आपको थोडा फेरबदल कर तंत्र से जुडे साहित्यो मे मिल जायेगा। पता नही कैसे आम लोग तांत्रिको की बात मानकर अपनी गाढी कमायी का पैसा बर्बाद कर देते है। ऐसा प्रतीत होता है कि तांत्रिक हाव-भाव बनाकर इस तरह के उपायो को बताते होंगे जिससे शत्रुता की आग मे जल रहा व्यक्ति प्रभावित हो जाता होगा। बहुत से तांत्रिको को पकडने जब नकली ग्राहक बनकर हम होटलो मे जाते थे तो कमरे के माहौल से सिहरन होने लगती थी। बाद मे बाहर खडे साथी अन्दर आ जाते थे और हम उनका भांडाफोड कर देते थे पर अकेला व्यक्ति ऐसे माहौल मे बिना प्रभावित हुये नही रह सकता। पढाई समाप्त करने के बाद ऐसे तांत्रिक उपायो की सत्यता जानने के लिये सहपाठियो के साथ मैने कई प्रयोग किये पर सब बेकार साबित हुये। इससे खुलकर इन उपायो का विरोध करने का साहस जागा। जब हम इस उपाय को आजमा रहे थे तब बेकसूर छछून्दर की जान लेना हम सब को बुरा लग रहा था। मैने पाठक को लिखा है कि आप उस तांत्रिक का खुलकर विरोध करे। आप पूरे विश्वास से उसके विरोध मे खडे होंगे तो दूसरे भी आपके साथ आयेंगे और तांत्रिक के पैर के नीचे से जमीन खिसकने मे देर नही लगेगी।

तांत्रिको को पकडने के सम्बन्ध मे एक रोचक बात याद आती है। जब शहर मे तांत्रिक आते थे तो शुरु मे तो कोई शिकायत नही करता था पर दस से पन्द्रह दिन बाद शिकायते आने लगती थी। लोग पहले विश्वास से तांत्रिको के पास जाते थे पर जब लाभ नही होता था और तांत्रिक के पास पैसे फँस जाते थे तो फिर संस्था से ठगी की शिकायत करने पहुँच जाते थे। संस्था को शिकायत का इंतजार होता था। शिकायत के आधार पर दस्ता शिकायतकर्ताओ को लेकर निकल पडता था। कैसे अन्दर जाना है, कितने लोग होते है, कैसे पैसे की वसूली की जाती है आदि-आदि जानकारियाँ शिकायतकर्ताओ से मिलती थी। सुनियोजित तरीके से हम तांत्रिको का भाण्डाफोड करके शिकायतकर्ताओ को सामने लाने की कोशिश करते तो पता चलता कि कार्यवाही के बीच मे ही पुलिस के लफडे से बचने के लिये वे अपनी फीस (शायद ज्यादा ही) निकालकर रफूचक्कर हो जाते थे। तांत्रिक भी आनन-फानन मे मनचाही रकम दे देते थे। ऐसी घटनाओ से सबक लेकर लिखित शिकायत लेने का प्रावधान किया गया। हमे यह भी सूचना मिली कि बहुत से

शिकायतकर्ता बाद मे उन तांत्रिको के पास जाकर संस्था का भय दिखाकर वसूली करने लगते थे। बहुत से तांत्रिको ने संस्था को इस बाबत सूचना दी। जनसेवा मे ऐसे अनुभव होते ही रहते है क्योकि सभी लोग एक तरह के नही होते है।

तांत्रिक उपायो का भय कैसा होता है- इसका मुझे अनुभव है। मै इस घटना का जिक्र अक्सर करता रहता हूँ। एक बार हास्टल मे मेरा वाकमैन चोरी हो गया। होस्टल मे कुछ ही लोग थे बाकी छुट्टियो मे घर गये हुये थे। वाकमैन नया था। बहुत खोजा पर नही मिला। बाहरी व्यक्ति तो आया नही था। किसी सहपाठी ने ही चुराया था। एक मित्र ने कहा कि मेरे पहचान का एक तांत्रिक है। वह बता सकता है चोर कौन है। तांत्रिक के पास गये तो उसने कहा वह बता देगा कि कौन चोर है पर कुछ दक्षिणा देनी होगी। उसने कहा कि रविवार को वह विशेष अनुष्ठान करेगा और विशेष सामग्री का हवन करेगा। जैसे ही यह सामग्री जलेगी चोर की हालत खराब होने लगेगी। उसे खूनी दस्त होने लगेंगे। वह मर भी सकता है। तांत्रिक ने हमसे कहा कि यह बात हास्टल मे बता दो। हमने वैसे ही शब्दो मे सहपाठियो को यह बात बता दी। एक दिन बीता। शनिवार की शाम को हम फिर तांत्रिक के पास पहुँचे और पूछा कि क्या कल अनुष्ठान के समय आना है? उसने मना कर दिया। हम वापस लौटे तो कमरे के सामने वाकमैन रखा हुआ था। हम एक पल के लिये इस चमत्कार से अभिभूत हो गये। फिर हमने सोचा कि तांत्रिक को तो पता लग ही गया होगा कि वाकमैन मिल गया है। आखिर उसकी ही शक्ति से यह वापस आया था। हम उल्टे पैर उसके पास पहुँचे। हमारे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा जब तांत्रिक ने कहा कि चोर दूर भाग गया। अब वाकमैन मिलना मुश्किल है। कल के अनुष्ठान के लिये और पैसे लगेंगे। हमारी समझ मे सारी बात आ गयी। यह हास्टल मे बतायी गयी बात का असर था जिसके कारण चोर ने वाकमैन लौटाने मे भलाई समझी। हम यदि यह विश्लेषण नही कर पाते तो फिर तांत्रिक के चंगुल से छूटने मे जाने कितने साल लग जाते। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

ढेरो आधुनिक यंत्रो के बावजूद आज का मौसम विभाग मौसम की सही भविष्य़वाणी नही कर पाता है और आम लोगो के मजाक का शिकार होता रहता है। मैने इस लेखमाला मे पहले लिखा है कि कैसे आज भी ग्रामीण भारत अपने पारम्परिक ज्ञान के आधार पर सटीक भविष्यवाणी करता है। इसी क्रम मे मुझे याद आता है कि बचपन मे गाँव के बडे-बुजुर्ग प्रवासी पक्षियो की हलचल को देखकर वर्षा की भविष्यवाणी किया करते थे। वे बाजो के चिल्लाने से भी वर्षा के होने और न होने का अनुमान लगाते थे। हमारे गाँव मे जंगली कबूतर बडी संख्या मे है। लोग इन्हे छेडते नही है और इनकी सुविधा के लिये काली मटकी लटका देते है ताकि वे इसमे अंडे दे सके। बचपन मे पहले दादाजी को और फिर पिताजी को ऐसी मटकी लटकाते मैने देखा है। बचपन मे यह भी सुना था कि जितने तरह के पक्षी गाँव मे रहेंगे उतना ही कम फसलो को नुकसान होगा। बाद मे यही बात कृषि की शिक्षा के दौरान देशी-विदेशी किताबो मे पढी। बचपन से लेकर अब तक देखते ही देखते पक्षियो की विविधता मे कमी दिखने लगी है। वे संख्या मे भी कम होने लगे है। जंगली वनस्पतियो पर आश्रित रहने वाले कीडो को खाने वाले पक्षी बचे है या वे पक्षी बचे है जो कीटनाशक का जहर अपने अन्दर रखे हुये कीडो को भोजन के रुप मे पचा पाने मे सक्षम है। जैसे-जैसे नये कीटनाशक आ रहे है वैसे-वैसे कीडो मे प्रतिरोधक क्षमता बढती जा रही है। इसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पक्षियो पर पड रहा है।

देश के विभिन्न भागो मे किये गये वानस्पतिक सर्वेक्षणो के दौरान मैने बाज की आवाज से वर्षा की भविष्य़वाणी के पारम्परिक ज्ञान के विषय मे बहुत से लोगो से सुना। यह हमारा सौभाग्य है कि आज भी हमारे बीच पारम्परिक मौसम वैज्ञानिको की एक पूरी पीढी मौजूद है पर यह विडम्बना ही है कि उनके ज्ञान की कोई कद्र नही है। मोटे तौर पर सुबह-सुबह बाज की आवाज सुनायी देने पर किसान बिना फिक्र के खेतो मे चले जाते है। यह आवाज बताती है कि पानी गिरने मे विलम्ब है। छत्तीसगढ के मैदानी भागो के बहुत से बुजुर्ग तो बाज की विशेष आवाज निकालकर बताते है कि ऐसी आवाज सुनायी देने पर वर्षा के साथ आसमानी बिजली का डर होता है। ऐसी आवाज से बाज शायद मानव जाति और माँ प्रकृति के दूसरे घटको को सूचित करना चाहता है कि खुले खेतो मे न जाये। पानी गिरने पर भीगे पेडो की शरण न ले। अन्यथा जान जा सकती है। छत्तीसगढ मे आसमानी बिजली से प्रतिवर्ष बहुत से लोगो की अकाल मृत्यु होती है। ज्यादातर मामलो मे खेतो मे काम करने के दौरान ही किसान बिजली की चपेट मे आ जाते है। पिछले हफ्ते ही जंगली इलाके के एक बुजुर्ग बता रहे थे कि इस बरसात मे उन्होने पक्षियो की आवाज के आधार पर गाँव वालो को चेताया था पर किसी ने उनकी नही सुनी। आसमानी बिजली का कहर बरपा उस दिन और खेत मे काम कर रही एक

महिला इसकी चपेट मे आ गयी। मुझे याद आता है कि मैने इस तरह के पारम्परिक ज्ञान के विषय मे एक आधुनिक मौसम विशेषज्ञ से चर्चा की थी। पर उन्होने कहा कि यह सब फालतू बाते है। मेरा सुझाव था कि बुजुर्गो की मदद से आवाज की पहचान करके उन्हे रिकार्ड किया जाये फिर ऐसे सेंसर लगा दिये जाये जो ऐसी आवाजे सुनते ही विभाग को सूचित करे और इस आधार पर भविष्यवाणी हो। पर इन धरती पुत्रो को नीचा दिखाये बिना हमारे वैज्ञानिक, वैज्ञानिक कैसे समझे जायेंगे। इसीलिये इस अमूल्य ज्ञान की कोई कद्र नही है।

रात को बाज की आवाज यदि सुनायी दे तो इसे वर्षा का सूचक माना जाता है। तंत्र से सम्बन्धित साहित्यो मे पक्षियो को अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ मे बाँट दिया गया। इसका कारण नही बताया गया। जंगली कबूतर का ही उदाहरण ले। ज्यादातर साहित्य घर मे या इसके आस-पास रहने को अशुभ कहते है। वे दावा करते है कि इससे घर उजड जाता है। पर इसके पीछे निहित कारण नही बताते है। हमारे गाँव की तरह ही बहुत से गाँव मे पीढीयो से ये रह रहे है पर किसी को उजडते लोगो ने नही देखा। बहुत से साहित्य तो इसके घर मे आने ही को बुरा मानते है। इन बातो मे कोई दम नही है। माँ प्रकृति ने सभी पक्षी विशेष प्रयोजन से बनाये है। प्रत्येक की इस धरती पर विशेष भूमिका है। यह तो मनुष्य की अज्ञानता है कि उसने इन्हे शुभ-अशुभ से जोडकर अपने पैरो मे कुल्हाडी मार ली है।

मेरे भतीजे ने एक दिन पूछा कि बगुला एक पैर पर क्यो खडा होता है? मेरे पास जवाब नही था। मैने प्रश्न टाल दिया और अपने ग्रंथो मे उत्तर की तलाश करने लगा। फिर इंटरनेट को भी खंगाला। शाम को फिर भतीजे से सामना हो गया। मैने हार मान ली तो उसने कहा कि बगुला एक पैर पर इसलिये खडा होता है क्योकि यदि वह दूसरा पैर उठायेगा तो गिर जायेगा। ये लीजिये, कहाँ मै वैज्ञानिक कारणो की तलाश मे भटकता रहा। बगुला बचपन ही से मेरा प्रिय पक्षी रहा है। घर के सामने गंगा इमली (विलायती इमली) का एक बडा पेड था जिसमे इन पक्षियो का डेरा था। शाम को इन्हे देखने मे ही काफी समय बीतता था। बाद मे दूरबीन लेकर इसके पीछे काफी दूरी तय की। यह जानने कि यह किस कीडे को अधिक खाता है? इसे किसानो का मित्र पक्षी कहा जाता है। शोध का उद्देश्य यह पता लगाना था कि कही यह किसानो के लिये उपयोगी कीडो को तो नही खाता है। पर लगातार नजर जमाये रखने से यह स्पष्ट हो गया कि यह हानिकारक कीडो को अधिक खाता है। बगुला को हमारे क्षेत्र के कोकडा कहा जाता है। इसके एक पैर पर खडे होने को गहन लगन के उदाहरण के रुप मे प्रस्तुत किया जाता है। मै अपने शोध से

इसे हीरो के रुप मे देखता हूँ। पर बच्चो की कहानियो से लेकर बहुत से साहित्यो मे इसे कुपात्र के रुप मे प्रस्तुत किया गया है। इससे अन्ध-विश्वास भी जुडे हुये है। इसे एक पैर मे खडा देखना कोई दुर्लभ घटना नही है। बहुत से तांत्रिक साहित्य यह दावा करते है कि यदि एक पैर पर खडा बगुला दिख जाये तो अपार धन की प्राप्ति होती है। काश यह सही होता। कम से कम भारतीय किसानो की हालत आज जैसी नही होती। वे तो दिन मे कई बार बगुले को इस मुद्रा मे देखते है। तांत्रिक यह भी दावा करते है कि यदि बगुला आपको बार-बार देखता है तो इसका मतलब आपका भाग्योदय होने वाला है। और यदि वह आपको देखकर भागता है तो आपका सर्वनाश हो सकता है। किसी भी पक्षी के पास आप जायेंगे तो आपको वह बार-बार देखेगा कि पता नही यह आदमी क्या कर बैठे। हो सकता है जरा सी आहट से उड भी जाये। इस साधारण सी प्रक्रिया को भाग्योदय और सर्वनाश से जोडना उचित नही लगता है। मैने ग्रामीण अंचलो मे तांत्रिको को इस तरह की बातो से लोगो को भ्रमित करते देखा है।

इस लेखमाला मे आगे के लेखो मे भारतीय पक्षियो से जुडे विश्वास और अन्ध-विश्वासो पर चर्चा करेंगे। अब बगुले से जुडी एक याद से इस लेख को समाप्त करता हूँ। गर्मियो मे आँगन मे रात को सोते समय यदि बगुले ऊपर आसमान से गुजरते थे तो हम बच्चे जोर से चिल्लाते थे ‘ कोकडा, कोकडा दूध दे, कोकडा, कोकडा दूध दे।‘ हमारे नाखूनो मे खान-पान की कमी से जो सफेद निशान पड जाते थे वे ऐसे ही चिल्लाने से पडते है-ऐसा हमे बताया गया था। सुबह हम सब अपने नाखून मे निशान देख कर चर्चा करते थे कि बगुला ने दूध दिया कि नही। बचपन की बाते है ही निराली। पर आज बगुले पर चर्चा हुई तो अचानक ही यह सब याद आ गया। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

हमारे एक फिल्मकार मित्र है जो जंगलो मे मोर को देखते ही ग़ाडी रुकवा देते है। तस्वीरे उतारने के लिये नही बल्कि उसकी आवाज सुनने के लिये। साथ मे चल रहा कोई स्थानीय व्यक्ति यदि आवाज लगाकर मोर को आवाज लगाने के लिये उकसाता है तो वे

उसे घूरकर ऐसे देखते है कि उसकी आवाज निकलनी बन्द हो जाती है। मोर की आवाज सुनने के लिये वे घंटो गुजार देते है। कई बार तो उनको गाडी मे ही छोडकर हम लोग पैदल जंगल मे चले जाते है। एक बार मोर बोले तो वे अगली बार का इंतजार करते है। तीन बार उसकी आवाज सुनते ही उस स्थान से तेजी से दूर चले जाते है। तेजी का कारण होता है कि कही चौथी आवाज न सुनायी पड जाये। मै उनके इस मोर प्रेम से काफी समय से अभिभूत था। छत्तीसगढ के बारनवापारा अभ्यारण्य मे जहाँ पर्यटको की निगाहे तेन्दुए और बायसन को खोजती रहती है वहाँ हमे मोर के पास घंटो डटा देखकर दूसरे पर्यटक हमारा मजाक बनाते रहते है। अभ्यारण्य का गाइड भी सिर फोडते बैठा रहता है। फिल्मकार मित्र कैमरा साथ लिये होते है पर मोर की तस्वीरे नही उतारते है। बस आवाज सुनने की जल्दी मे लगे होते है। इस मोर प्रेम के राज से पर्दा उनकी पत्नी ने उठाया।

उनकी पत्नी ने मुझसे शिकायत भरे लहजे मे कहा कि आप लोग हमे भी जंगल ले जाया करे। बस अकेले-अकेले पुण्य कमा लेते है। तब जाकर बात साफ हुयी। मोर जितनी बार आवाज निकालता था उससे ही उनका भविष्य़ तय होता था। एक बार आवाज सुनायी दे मतलब धन प्राप्ति, दो बार मतलब स्त्री सुख और तीन बार मतलब मनचाही मुराद पूरी। यदि चौथी बार सुनायी दे मतलब अनर्थ। इसलिये तीन बार सुनने के बाद मित्र वहाँ से भाग लेते थे। मुझे यह सब सुनकर विचित्र लगा। उन्हे उनके किसी गुरु ने यह बताया था और यह उनका विश्वास (अन्ध कहे तो ज्यादा सही होगा) था। मोर की आवाज से शुभ-अशुभ का अन्दाज लगाना देश के बहुत से भागो मे पहले प्रचलित था। अब यह प्रचलन मे नही है। लोगो मे जागरुकता बढने से ऐसा नही हुआ है बल्कि मोरो के खत्म हो जाने के कारण उनसे जुडे विश्वास और बाते भी बीते दिनो की बात हो गयी है। छत्तीसगढ के सिकासार क्षेत्र मे कुछ दशक पहले तक जंगली मोर बडी मात्रा मे थे। उस क्षेत्र के बुजुर्ग अभी भी मोरो से जुडी बातो को बताते है। अब एक भी मोर उस क्षेत्र मे नही दिखता और बुजुर्ग भी उम्र के अंतिम पडाव मे है।

मोर की आवाज से भविष्य़ तय करना मन को दिलासा देना है। ठीक उसी तरह जिस तरह हम अखबारो मे छपने वाले दैनिक राशिफल को सच मान बैठते है। मुझे याद आता है कि नेट की परीक्षा पास करने लेने के बाद मै दिल्ली के पूसा संस्थान मे ठहरा था। वहाँ तो कैम्पस मे दर्जनो मोर थे जो दिनभर बोलते रहते थे। निश्चित ही सुबह से तीन बार से ज्यादा आवाज कुछ ही मिनटो मे सुनायी दे देती थी। यदि फिल्मकार मित्र उस

समय साथ होते और मै उनके विश्वास को सही मान बैठता तो अनर्थ से डरकर साक्षात्कार के लिये ही नही जाता और कभी इसमे सफल नही हो पाता।

आज भी मेरे मित्र साथ मे जंगल भ्रमण के लिये जाते है। मै खुलकर उनके इस विश्वास का विरोध नही करता पर उनके इसी विश्वास के बल पर उन्हे कहता रहता हूँ कि अब आपकी जिम्मेदारी है कि इस भविष्य़ निर्धारक पक्षी को आप बचाये। जिस तेजी से ये खत्म हो रहे है उससे चिंता होती है कि आप कल कैसे इन्हे जंगलो मे इतनी आसानी से खोज पायेंगे? मेरी बातो का कुछ असर उनपर दिख रहा है। वे अब मोर के चित्र लेकर एक प्रदर्शनी लगाने जा रहे है जिसका उद्देश्य मोर के महत्व को समझाना है और आम लोगो को उसके पंखो आदि के उपयोग को बन्द करने की अपील करना है। वेशायद जान चुके है कि इस प्राणी के भविष्य़ से ही उनका भविष्य़ जुडा है।

इस लेखमाला के पिछले लेख की तरह हम इस बार भी पक्षियो से जुडे अन्ध-विश्वासो की चर्चा कर रहे है। चमगादड और कबूतर के घर पर आ जमने को जिस तरह घर और उसके सदस्यो के विनाश का सूचक माना जाता है उसी तरह समाज मे बहुत से लोग चील के बारे मे भी ऐसी बाते करते है। मुझे याद आता है कि बचपन मे एक बाडी नुमा घर मे ऊँचे पेडो पर चील का बसेरा था। बसेरा कहना ठीक नही होगा क्योकि मैने चील को वहाँ आते-जाते ही देखा था। हम बच्चो को आस-पास के लोग उस उजडे हुये घर को दिखाकर बार-बार उसी बात को दोहराते थे। यदि गल्ती से कोई चील जमीन पर गिर पडती तो लोग पत्थर लेकर उसके पीछे लग जाते। बचने के लिये वह नालियो मे घुस जाती तो वहाँ भी पत्थर मारा जाता था। जब तक उसकी मौत नही हो जाती थी, लोगो का अत्याचार रुकने का नाम नही लेता था। चील को अपशकुन लाने वाला जीव माना जाता था। उस समय अक्ल नही थी पर आज जब उस घटना को मै याद करता हूँ तो आँखे नम हो जाती है और मन क्रोध से भर जाता है कि उस समय किसी ने सही रास्ता क्यो नही दिखाया।

कुछ वर्षो पहले अहमदाबाद से रायपुर आते वक्त अहमदाबाद एयरपोर्ट पर सुबह कुछ जल्दी ही पहुँच गया। एयरपोर्ट खाली था। कर्मचारी सुबह के काम मे लगे थे। तभी किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रखा। कहा, आप पंकज ही हो न, रायपुर वाले। मैने हामी भरी पर उन्हे पहचान नही पाया। वे एयरपोर्ट के सुरक्षा अधिकारी थे। उन्होने बताया कि बचपन मे उन्होने मुझे मोहल्ले मे देखा था। वहाँ उनका भी घर था। जब उन्होने उसी घर का जिक्र किया जिसके बारे मे कहा जाता था कि चील के बसने से घर उजड गया और सदस्यो का सर्वनाश हो गया तो मै चौक पडा। थोडी चर्चा के बाद मै अपने आपको रोक

नही पाया। मैने पूछ ही लिया। वे नाराज नही हुये। उन्होने कहा कि पिताजी और चाचा जी मे जमीन को लेकर झगडा था। इस लिये चाचाजी ने चील वाली बात फैला दी थी। पहले भूत की बात कही गयी। जब हम लोगो ने घर छोडा और मुम्बई मे बस गये तो चील वाली बात भी फैला दी गयी। हम पर किसी भी कीमत मे जमीन बेच देने का दबाव बनाया गया पर घर बरसो तक वैसा ही पडा रहा। अफवाह फैलाने वाले अब इस दुनिया मे नही है पर अफवाह अभी तक जिन्दा है।

आज उस जमीन पर नया घर बन गया है। वहाँ रहने वाले इस बात को नही जानते पर मोहल्ले के एक बुजुर्ग की पुरानी यादो को मैने टटोलना चाहा था तो मुझे उनकी आँखो मे खौफ मे रुप मे अपने बचपन की घटना का आभास हो गया। आपसी झगडे ने चील से जुडे अन्ध-विश्वास को बेमतलब हवा दी और बहुत से मासूम प्राणियो को बेवजह जान गँवानी पडी।

इस लेख को समाप्त करने के पहले उस मजेदार विश्वास के विषय मे बताना चाहूंगा जिसके विषय मे चर्चा कर पिछले सप्ताह जंगल यात्रा की रात्रि मे हम देर तक हँसते रहे। यह टिटहरी पक्षी से जुडे विश्वास की बात थी। साथ चल रहे एक व्यक्ति ने बताया कि यदि बच्चे को जन्म देते समय कोई स्त्री टिटहरी की आवाज सुन ले तो लडका ही पैदा होता है। हमारा एक ही सवाल था कि यदि अजन्मा बच्चा कन्या हो तो भी क्या इस आवाज से वह बालक बन जायेगा। हम जितनी बार यह पूछते, उतनी ही बार वह भोलेपन से जवाब देता, हाँ साहब, ऐसा ही होता है। और हमारी हँसी नही थमती थी। देर रात तक यह सिलसिला जारी रहा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

पिछले सोमवार को पारम्परिक चिकित्सको के साथ घने वनो मे घूमता रहा। दिन मे जंगली जानवर से मुलाकात होने की सम्भावना कम ही रहती है। साथ चल रहे लोग बताते रहे कि यहाँ भालू बहुत है, यह तेन्दुए का रास्ता है आदि-आदि। पर इनसे मुलाकात नही हुयी। मैने पहले भी लिखा है कि मै इनसे मिलना पसन्द नही करता। मेरा

ध्यान वनस्पतियो पर रहता है। शाम तक घने जंगल को पैदल पार करते हुये हम दूसरे छोर तक पहुँच गये। वहाँ गाडी बुलवा ली थी। रात को जब फिर उसी रास्ते से गाडी मे बैठकर निकले तो आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। पहले लोमडियो, फिर वनबिलाव, भालुओ को देखा और दो बार तेंदुआ दिखायी पडा। जंगली सुअर भी दिखायी पडे। हमारे साथ सफर कर रहे एक नये व्यक्ति ने हमे कुछ और ही समझ लिया था। हर जानवर को देखकर वह कहता रहा, साहब, इसका सींग मिल जायेगा मर्दाना शक्ति बढाने के लिये, इसकी पूँछ के बाल मिल जायेंगे भूत भगाने के लिये, इसके सिर की हड्डी मिल जायेगी वशीकरण के लिये, इसके दाँत दिलवा दूँ क्या, आपको नजर नही लगेगी आदि-आदि। मैने उसे शांत करते हुये कहा कि क्यो फालतू की बात कर रहे हो। इस पर उसने अकड कर कहा कि नही सुनना है तो मत सुनो पर आप जैसे बहुत से शहरी लोग इनकी माँग करते है। मुँह-माँगी कीमत देते है। असर नही होता है तो शहर के पढे-लिखे लोग क्यो इतने पैसे देकर इन्हे खरीदते है?

मै पिछले कई वर्षो से वन्य जीवो के अवैध व्यापार से सम्बन्धित अखबारी कतरनो का एकत्रण कर रहा हूँ। हाल के वर्षो मे ऐसी खबरे अखबार मे लगातार आ रही है। कभी तेन्दुए की खाल के साथ कोई पकडाता है तो कभी बाघ और भालू के अंगो के साथ। अखबारो मे जप्त किये गये अंग के साथ तस्करो की तस्वीरे छपती रहती है। तस्करो को इस तरह सतर्कता से पकडना सराहनीय काम है पर मेरा मन इस बात को लेकर अधिक चिंतित है कि आखिर क्यो ऐसी घटनाए बढ रही है? क्या शिकार से पहले ही तस्करो को रोका नही जा सकता? अखबार बताते है कि ऐसे मामलो मे छोटे लोग पकडे जाते है पर असली पहुँच वाले लोग बच जाते है इसीलिये ऐसी घटनाए रुकने का नाम नही लेती है। मैने अपने अनुभव से पाया है कि शहरी लोगो के अन्ध-विश्वास के चलते इस तरह के शिकार बहुत तेजी से बढे है। पैसो की चाह और खरीददारो की कभी न खत्म होने वाली कतार इसको खुलेआम बढावा दे रही है। उस दिन सफर मे चल रहा नया व्यक्ति जिस बेबाकी से अंग उपलब्ध करवाने की बात कह रहा था उससे तो लगता था कि जैसे कानून का डर उसे है ही नही।

पिछले कुछ समय से छत्तीसगढ मे पर्यटन व्यवसाय मे अच्छी-खासी उन्नति हुयी है। देश-विदेश से पर्यटक आ रहे है। अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष दोनो ही रुप से अवैध शिकार के मामले इनसे जुडे नजर आते है। बहुत से पर्यटन स्थलो मे पार्किग स्थल पर बहुत से ऐसे सन्दिग्ध लोग मिल जायेंगे जो इस तरह के अंगो को बेचने के लिये तत्पर दिखेंगे। छापामार तरीके से की गयी कार्यवाहियो से इन पर अंकुश लग सकता है पर मुझे लगता

है कि शहरो मे भी जागरुकता की जरुरत है। बडी मछलियो को पकडने की जरुरत है। राज्य के बुजुर्ग वनो के विनाश और जंगली जानवरो की घटती संख्या से दुखी है। मुँह के कैसर से जूझ रहे एक बुजुर्ग ने बताया कि भगवान मेरे किये की सजा मुझे दे रहा है। अपनी जवानी के दिनो मे वे बाघ को दोनाली से मारकर रातोरात खाल को जावा मोटरसाइकल मे डालकर धमतरी पहुँचा दिया करते थे। उन्हे उस समय अपने पर बडा नाज था पर अब अपने गाँव के बदलते हुये वातावरण को देखकर वे अपने को इसके लिये दोषी मानते है। मुझसे यह सब कहते हुये वे बार-बार अपना सिर पीटते रहे दुख मे। पर अब तो बहुत देर हो चुकी है।

अपनी जंगल यात्रा के दौरान मैने नाना प्रकार के पक्षी देखे पर अच्छा कैमरा नही होने के कारण कम ही तस्वीरे ले पाया। नीलकंठ ने बार-बार ध्यान खीचा। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको ने हाथ जोडने का एक भी मौका नही छोडा जब-जब भी इस पक्षी से हमारी मुलाकात हुयी। वे तांत्रिक साहित्यो मे छपी इस बात को धता बताते रहे कि इस पक्षी के दर्शन माने अनर्थ की आशंका। ये साहित्य दावा करते है कि यदि यात्रा करते समय यह दिख जाये तो यात्रा मे विघ्न आ सकता है। चोरी हो सकती है। यहाँ तक कि जान भी जा सकती है। ये साहित्य ऐसे कपोल-कल्पित दावो का कोई आधार नही बताते है। मैने बचपन से ही आम लोगो को इस पक्षी को विशेष आदरभाव से देखते पाया है। दशहरे के दिन इसका दिख जाना बहुत ही शुभ माना जाता है। नीलकंठ का शिकार भी इसी आस्था के कारण कम किया जाता है। चलिये, हम इस पीढी के लोग सारे पक्षियो के साथ अच्छी बाते जोड दे। साल के 365 दिनो मे अलग-अलग पक्षियो को देखने को शुभ घटना से जोड दे ताकि यही आस्था आने वाली पीढीयो से इनकी रक्षा कर सके। पारम्परिक चिकित्सको की ऐसी सलाहे मुझे जँचती है। पर्यावरण को बचाने के लिये हमे अब किसी भी तरह का विकल्प चुनने मे संकोच नही करना चाहिये। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

यदि मै आपसे सवाल करूँ कि आप कौन-सा चावल खाते है तो आपमे से ज्यादातर लोग कहेंगे बासमती, यदि आप शहरी इलाको से होंगे तो। यदि आप ग्रामीण इलाको से होंगे तो आप अधिक उपज देने वाली नयी किस्मो के नाम गिनाने शुरु कर देंगे। आपमे से बहुत कम पारम्परिक किस्मो की बात कहेंगे। धान की पारम्परिक किस्मे तेजी से खत्म होती जा रही है। हमारी नयी पीढी इनके नाम पुस्तको मे ही पढ पायेगी- ऐसा प्रतीत होता है। मै अपने सर्वेक्षणो के दौरान युवाओ से जब इनके विषय मे पूछता हूँ तो वे बगले झाँकने लगते है। ज्यादातर बुजुर्ग भी बहुत कम जानकारी दे पाते है औषधीय धान के विषय मे। बीज मिल पाना तो दूर की बात है। यह मेरा सौभाग्य है कि मै पिछले डेढ दशक से इसमे अपनी रुचि बनाये हुये हूँ। इसका परिणाम यह हुआ कि मुझे दसो किस्म के औषधीय धान के विषय मे न केवल जानने को मिला बल्कि उनके औषधीय उपयोगो को परखने का भी अवसर मिला। औषधीय धान से सम्बन्धित जानकारियो को मैने अपने तक सीमित नही रखा। सैकडो लेखो के माध्यम से मैने इसके विषय मे दुनिया को बताया, इस उम्मीद मे कि एक बार फिर छत्तीसगढ मे इसके महत्व को समझकर इसकी खेती आरम्भ हो सके और किसानो को पीढीयो तक लाभ मिल सके। औषधीय धान अगली पीढीयो के लिये बच सके क्योकि जिस गति से हम पर्यावरण का नाश कर रहे है उसे देखकर लगता है कि ऐसी ही दिव्य गुणो वाली भेंट उन्हे नये रोगो से मुक्ति दिलवा पायेंगी। सैकडो लेख लिखने के बाद भी जब औषधीय धान से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के विषय मे पूरा नही लिख पाया तो मैने एक वैज्ञानिक रपट बनानी आरम्भ की है। इसका शीर्षक है **‘Medicinal Rice in Traditional Healing in Indian state Chhattisgarh’** । अभी इसका आकार 50 जीबी का हो चुका है। इसमे कितनी जानकारियाँ होंगी, आप सहज अनुमान लगा सकते है। इस रपट मे बहुत कुछ लिखना बाकी है। मधुमेह की वैज्ञानिक रपट अब आकार मे 200 जीबी पार कर चुकी है। इस रपट मे भी औषधीय धान के विषय मे मैने बहुत कुछ लिखा है

छत्तीसगढ को धान का कटोरा कहा जाता है। चावल मुख्य आहार है। साधारण सर्दी-खाँसी से जटिल मधुमेह तक की चिकित्सा मे सक्षम औषधीय धान है छत्तीसगढ मे तो फिर यहाँ रोग क्यो है? आम लोगो के आहार मे इनका प्रवेश कर केवल भोजन से जन-स्वास्थ्य का स्तर सुधारा जा सकता है। फिर धान की खेती से कम लाभ पा रहे किसान इसकी खेती करके अधिक लाभ प्राप्त कर सकते है।

पिछले सप्ताह मै औषधीय धान के विषय मे जानकारी रखने वाले पारम्परिक चिकित्सको से चर्चा कर रहा था। उन्होने बताया कि यदि अलग-अलग आयु वर्ग के लोगो को तीन

साल तक विशेष आहार मे रखा जाये तो उनके शेष जीवन मे उन्हे जटिल रोगो से बचाया जा सकता है। केवल आहार, दवा की आवश्यकता नही। उदाहरण के लिये उन्होने बताया कि 15 से 18 वर्ष मे यदि कोई तीन वर्षो तक उनके अनुसार आहार ले तो ताउम्र वह मधुमेह के दूसरे प्रकार (Type II Diabetes) से बच सकता है। मधुमेह से बचाव?? जी, बिल्कुल सही पढा आपने। जहाँ अमेरिका जैसे विकसित देश मे इस पर अनुसन्धान के लिये अरबो बहाये जा रहे है वही हमारे देश मे पीढीयो से उपयोग किया जा रहा पारम्परिक ज्ञान जनसेवा की बाट जोह रहा है। पारम्परिक चिकित्सक जिस विशेष आहार की सलाह देते है उसमे औषधीय धान मुख्य रुप से शामिल होते है। मधुमेह मे चावल? आपका यह प्रश्न भी सही है। आमतौर पर मधुमेह मे चावल के प्रयोग की मनाही आधुनिक चिकित्सक कर देते है। पर यहाँ औषधीय धान की बात हो रही है। चर्चा मे उन्होने औषधीय धान के विभिन्न प्रकारो को औषधीय गुणो से परिपूर्ण करने के लिये खेती की विशेष विधियाँ भी बतायी। मैने तो ऐसी विधियाँ पहली बार उनसे ही सुनी।

अन्ध-विश्वास से जंग पर लिखी जा रही इस लेखमाला को लगातार पढ रहे पाठक सोच रहे होंगे कि यह औषधीय धान की बात कहाँ से बीच मे आ गयी। दरअसल औषधीय धान के विषय मे शोध करते वक्त मुझे पता चला कि दशको पहले बहुत से किसानो को इसकी खेती से रोकने के लिये डराया गया। उन्हे बताया गया कि इन किस्मो को लगाने से घर का बिगाड हो जायेगा या अनर्थ हो जायेगा। यह सब उन लोगो ने किया जिन पर दबाव था कि वे आधुनिक किस्मो की खेती को बढावा दे। उन्होने अच्छे-बुरे दोनो तरीके अपनाये। उनका काम तो बन गया पर बहुत से किसानो के मन मे ये झूठी बाते अन्ध-विश्वास के रुप मे अभी भी बैठी है। औषधीय धान तेन्दुफूल की खेती के लिये जब मैने एक बुजुर्ग किसान को प्रेरित किया तो उन्होने बडे ही अटपटे अन्दाज मे मुझे देखा। कारण पूछने पर उन्होने अनर्थ वाली बात कह दी। मैने उन्हे लाख समझाने की कोशिश की और यह बताया कि इस धान के उपयोग से घर के सभी सदस्य लाभांवित हो सकते है। डाक्टर का खर्च बच सकता है पर वे तैयार नही हुए। मैने भी हार नही मानी है।

यह लेख इस लेखमाला का पचासवाँ लेख है। आप जैसे पाठको के सन्देश निरंतर आ रहे है कि आप “कुछ अनुभव” मे ही इतना सब कुछ लिख गये, असली जंग की जानकारी कितने विस्तार मे होगी, इसकी कल्पना हम नही कर पा रहे है। पाठको का यह प्रश्न जायज है। आप के ऊर्जावान सन्देशो के कारण ही मै मन की बात विस्तार से इस लेखमाला के माध्यम से लिख पा रहा हूँ। “कुछ अनुभव “ के तहत अभी बहुत कुछ

लिखा जाना बाकी है। उसके बाद निश्चित ही जंग के विषय मे भी लिखने का प्रयास मै करुंगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

यूँ तो लगातार ऐसे दावे सामने आते रहते है कि संजीवनी बूटी खोज ली गयी है पर वास्तव मे क्या रामायण काल मे प्रयोग की गयी संजीवनी बूटी अब भी धरती पर है? क्या यह एक वनस्पति है या वनस्पतियो का मिश्रण? आम लोगो मे इस विषय पर चर्चा होती रहती है। विद्वान भी इसमे सिर खपाते रहते है। हरेक दावे को परखे बिना ही विद्वान उसका विरोध शुरु कर देते है। यदि वे विरोध न करे तो किस काम के विद्वान। वनस्पतियो मे रुचि होने के कारण मै भी इस वनस्पति को तलाशता रहा। विद्वानो ने कह दिया कि आप छत्तीसगढ मे इसे न खोजे क्योकि रामायण काल मे दूसरी जगह से इसे लाने की बात लिखी है। आपको यह मध्य भारत मे नही मिलेगी। और यदि गल्ती से मिल भी गयी तो विद्वान इसे मान्यता नही देंगे। इन सब बातो की परवाह किये बगैर मैने खोज जारी रखी। विद्वान की मान्यता की चिंता नही थी। बस यही तमन्ना थी कि ऐसी वनस्पति को प्राप्त कर मै इससे लोगो का जीवन बचा सकूँ।

कुछ वर्षो पहले एक पारम्परिक चिकित्सक के सामने एक बेबस खडे विदेशी पुरुष को देखा। उसे कैसर था और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने हाथ खडे कर दिये थे। पारम्परिक चिकित्सक ने चिकित्सा आरम्भ की। ढेरो वनस्पतियो की आजमाइश की लेकिन आशानुकूल परिणाम नही मिले। उन दिनो मै पारम्परिक चिकित्सक के घर मे ही रहकर उनकी सहायता कर रहा था। आपस मे चर्चा के दौरान उन्होने मुझे दूर जंगल से एक विशेष वनस्पति लाने की बात कही। दस-बारह लोगो का दल बनाया गया और हम सुबह से निकल पडे। दिन भर मे बहुत सी डोंगरियो को पारकर हम एक दलदली स्थान मे पहुँचे। घना जंगल था। आगे के लिये जिन तीन लोगो को चुना गया उनमे मै भी एक था। फिर कुछ दूरी पर हमे रोककर वे अकेले ही चल पडे। कुछ देर बाद एक वनस्पति ले कर लौटे। मैने वह वनस्पति अपने जीवन मे कभी नही देखी थी। हम वापस आये।

उन्होने उस वनस्पति से लेप तैयार किया और आँतरिक प्रयोग के लिये मिश्रण भी। फिर शुरु हुआ इन्हे रोगी को हर पाँच मिनट मे देने का दौर। बहुत जल्दी ही वनस्पति ने अपना असर दिखाया और रोगी की हालत सुधरने लगी। जल्दी ही वह अपने देश वापस चला गया। पारम्परिक चिकित्सक से गूढ ज्ञान प्राप्त हुआ वनस्पति के विषय मे। क्या यह संजीवनी बूटी थी? हाँ, जो किसी को मौत के मुँह से खीच लाये वह संजीवनी बूटी ही तो होगी-पारम्परिक चिकित्सक ने जवाब दिया।

चालीस वर्ष का एक युवा फिल्मकार रेल मे सफर कर रहा था। किसी ने उसे लूटने के इरादे से जहर खिला दिया। सप्ताह भर बाद जब उसे होश आया तो पता चला कि उसकी दोनो आँखो से कम दिखायी पड रहा है। उसके घर वालो ने जमीन-आसमान एक कर दिया। एक्यूप्रेशर से लेकर झाड-फूँक सभी करवाया। आधुनिक चिकित्सको ने आप्टिकल नर्व की समस्या बतायी और कहा कि वापस रोशनी आने की सम्भावना क्षीण है। किसी मित्र के कहने पर इस युवक को एक पारम्परिक चिकित्सक के पास लाया गया। उन्होने कहा कि फलाँ वनस्पति से बात बन सकती है पर उसके पास यह नही है। यदि आप इस वनस्पति का प्रबन्ध कर दे तो मै चिकित्सा कर दूंगा। वनस्पति के विषय मे विस्तार लेकर युवक के परिजन भटकते रहे। किसी ने मेरा पता दिया। वनस्पति के विषय मे सुनकर मैने अपना डेटाबेस देखा और दस तरह की वनस्पतियाँ चुनी। इनकी तस्वीर जब पारम्परिक चिकित्सक को दिखायी गयी तो वे एक पर हाथ रखकर बोले कि बस यही चाहिये। उन्हे वनस्पति उपलब्ध करा दी गयी और बात बन गयी। मैने उनसे पूछा कि इसे आप किस नाम से जानते है? संजीवनी बूटी-उन्होने बिना देरी के कहा। और साथ ही इसके ढेरो उपयोग बताये। क्या सचमुच यह संजीवनी बूटी थी?

घने जंगल मे एक बार पारम्परिक चिकित्सको के साथ भ्रमण करते हुये हमने एक औधे पडे हिरण को देखा। ताली बजाकर और आवाज लगाकर यह सुनिश्चित किया कि आस-पास कोई शिकारी जानवर तो नही है। फिर हिरण के पास पहुँचे। वह अन्तिम साँसे गिन रहा था। पारम्परिक चिकित्सक बोले, चलो इस पर अपना ज्ञान आजमाते है। उन्होने चार प्रकार की वनस्पतियाँ आस-पास से एकत्र की और मिट्टी मे इन्हे मिलाकर लेप तैयार किया। इस लेप को हिरण के शरीर पर लगाया गया। लेप लगाते समय मन उदास था क्योकि शरीर छूने से यह प्रतीत हो रहा था कि यह जिन्दा नही है और सारी मेहनत बेकार जाने वाली है। लेप सूखने के बाद फिर नया लेप लगाया गया। पाँच घंटे तक यह क्रम चलता रहा। आस-पास बडी संख्या मे मुर्दाखोर जानवर इस प्रतीक्षा मे बेसब्र हो रहे थे कि कब हम हटे और वे हिरन को खाना शुरु करे। शाम होने पर भी पारम्परिक

चिकित्सक ने हौसला नही छोडा। उन्होने दो और वनस्पतियाँ लेप मे मिलायी और हमसे हिरण के चारो ओर लकडियाँ जलाने को कहा। दो वनस्पतियो को मिलाने का उद्देश्य ऐसी दुर्गन्ध पैदा करना था जिससे मुर्दाखोर हिरण से दूर रहे। हम रात भर उस हिरण को उसके हाल पर छोडकर गाँव लौटना चाहते थे। इसलिये चारो ओर आग लगा दी थी। हम बेमन वापस आ गये पर रात भर सोये नही। अलसुबह अनर्थ की आशंका के साथ वापस पहुँचे तो हिरन वैसे ही पडा हुआ था। हम उसके पास पहुँचे तो अनजानो को देखकर उसने उठने की कोशिश की पर उठ नही पाया। सुबह से लेकर शाम तक हम भिडे रहे और अंतत: उसे सामान्य करने मे सफल हुये। पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि ठीक इसी तरह मनुष्य को भी मौत के मुँह से वापस लाया जा सकता है। उन्होने चारो वनस्प्तियो के मिश्रण को संजीवनी कहा। तो क्या यही संजीवनी थी?

पिछ्ले एक दशक से भी अधिक समय मे मैने सैकडो ऐसी वनस्पतियो के विषय मे महत्वपूर्ण जानकारियाँ एकत्र की है। जब मै रामायण काल की संजीवनी या मृत संजीवनी के बारे मे सुनता और पढता हूँ तो मुझे ये वनस्प्तियाँ वही लगती है। पर मै इन्हे संजीवनी कहकर प्रचारित करने की भूल नही करना चाहता हूँ। यदि ऐसा करुँ तो हमारे विद्वान लकीर के फकीर की तरह हाथ-धोकर (या कहे नहा-धोकर) पीछे पड जायेंगे। वे यह नही सोचेंगे कि सुषेन वैद्य भी शायद सैकडो संजीवनी के विषय मे जानते थे पर लक्षमण की अवस्था देखकर उन्होने उनमे से एक उपयोगी संजीवनी को चुना हो उस समय के लिये। हो सकता है कि शेष संजीवनी के विषय मे उनका ज्ञान उनके साथ ही समाप्त हो गया हो। अब उस समय तो पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण की प्रक्रिया शुरु नही हुयी थी। पर चलिये इसे छोडे, विद्वानो को बहस करने दे। संजीवनी की तरह गुण रखने वाली ये वनस्प्तियाँ मानव-कल्याण की बाट जोह रही है। पर आधुनिक मानव को उसकी परवाह ही नही है। इन वनस्प्तियो के विषय मे अब तक एकत्र की गयी जानकारियो को एक स्थान पर संजोने के उद्देश्य से मैने इस पर एक ग्रंथ लिखना शुरु किया था। आज भी इसमे नयी जानकारियाँ जुड रही है। इसका शीर्षक है **Divine medicinal herbs of Indian state Chhattisgarh having Mrita Sanjivani (Sanjeewani) like unique healing properties.** अभी इसका आकार 10 जीबी हो चुका है। यह इंटरनेट पर नही है। ना ही इसे आन-लाइन करने का इरादा है। उम्मीद करता हूँ कि देश के उत्साही युवा शोधकर्ताओ की नजर इस पर पडेगी और वे इस दुर्लभ ज्ञान को समझने मे रुचि दिखायेंगे। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

मुम्बई के एक सज्जन को कही से खबर लगी कि मै मधुमेह पर पिछले चौदह सालो से एक रपट लिख रहा हूँ तो वे अपने बीमार पिता को लेकर बिना किसी सूचना के घर पर आ धमके। उनके पिता को मधुमेह था और उन्हे देखकर लगता था कि रोग बढी हुयी अवस्था मे था। उन्होने मुझसे चिकित्सा करने को कहा। मैने उन्हे बताया कि मै चिकित्सक नही हूँ, महज पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण करता हूँ। इस पर वे किसी अनुभवी पारम्परिक चिकित्सक के पास ले चलने की जिद करने लगे। उनकी हालत देखकर मना करते नही बना। उनके लडके ने बताया कि हालत बहुत बुरी है। आनन-फानन मे गाडी की व्यवस्था की गयी और फिर सैकडो किलोमीटर का लम्बा सफर आरम्भ हुआ।

पारम्परिक चिकित्सक के पास मोबाइल नही होता है इसलिये इस बात की चिंता थी कि कही हमारा जाना व्यर्थ न हो जाये। पर हमारी मेहनत बेकार नही गयी और जब हम पहुँचे तो पारम्परिक चिकित्सक ने बाहर आकर हमारा स्वागत किया। रोगी की जाँच करने के बाद उन्होने चिकित्सा करने की हामी भर दी। पर यह शर्त रखी कि उन्हे रुकना होगा। कब तक? जब तक हालात काबू मे न आ जाये। दूर-दराज का जंगल के अन्दर का गाँव था। ऐसे मे कहाँ रुका जाये? यह समस्या थी। आस-पास बडा शहर नही था जहाँ से रोज आने-जाने की व्यवस्था की जा सके। पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि चिंता न करे। सब इंतजाम हो जायेगा। उनहोने हमारे ठहरने के लिये अपने घर मे ही व्यवस्था कर दी पर रोगी को गाँव से बाहर बनी एक झोपडी मे रहने की सलाह दी। यह झोपडी पुराने पेडो के साये मे थी और बाहर से देखने पर सामान्य झोपडी की तरह दिखती थी। पर अन्दर जाने पर आम झोपडियो से एकदम अलग दिखती थी। अन्दर विशेष गन्ध भरी थी। इसके एक भाग मे रोगी को रहना था। हम लोग उनसे मिलने नही जा सकते थे। पारम्परिक चिकित्सक और उनके सहयोगी ही पूरे समय वहाँ रहने वाले थे। रोगी को बदन खुला रखने को कहा गया जबकि पारम्परिक चिकित्सक सहित हम सब शरीर को पूरी तरह ढके हुये थे। यहाँ रोगी को बीस दिनो तक रहना था और औषधीयो का सेवन करना था। चिकित्सा चौबीसो घंटे चलनी थी। उस समय भी जब रोगी गहरी निद्रा मे रहे। बीस दिनो मे रोगी की दशा के अनुसार झोपडी के विभिन्न

भागो मे उन्हे रखा जाना था। बीस दिन बाद फिर पास ही बनी एक अन्य झोपडी मे जाना था। नयी बनी झोपडी मे जाने के बाद इस झोपडी को तोड देना था।

मुम्बई जैसे महानगर से आये उन सज्जन के पिता अर्थात रोगी दवा लेने को तो तैयार हो गये पर झोपडी मे रहने से मना कर दिया। वे जिद मे अड गये क़ि बस दवा लेकर जाने दिया जाये। पारम्परिक चिकित्सक ने कह दिया कि करेंगे तो पूरी चिकित्सा अन्यथा नही। क्योकि इससे रोगी की हालत मे सुधार शायद ही हो। आखिरकार हम लोग वापस आ गये। रास्ते भर वे सज्जन और उनके पिता झोपडी के बारे मे मजाक उडाते रहे और उसे अन्ध-विश्वास बताते रहे। मै चुपचाप खिडकी से बाहर देखता रहा। मैने छत्तीसगढ के इस अनूठे पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के विषय मे विस्तार से लिखा है। हजारो किस्म की औषधीय झोपडियाँ (Traditional Healing Huts) एक समय राज्य की पारम्परिक चिकित्सा की अहम भाग रही पर आज केवल कुछ ही पारम्परिक चिकित्सक इस ज्ञान का प्रयोग कर रहे है। इस तरह यह अद्भुत ज्ञान इतिहास मे खो जाने की कगार पर खडा है। यह तो हमारा सौभाग्य था कि पारम्परिक चिकित्सक ने रोगी को विशेष झोपडी मे रहने को कहा। पर हमारा शहरी समाज इसके महत्व को नही जानता और न ही जानना चाहता है। इसलिये वह इस पर हँसता है और बुजुर्गो का मजाक उडाता है।

इन दिनो मै मधुमेह की रपट मे इन औषधीय झोपडियो के विषय मे विस्तार से लिख रहा हूँ। कैसर जैसे आधुनिक रोगो से लेकर बुखार जैसे सामान्य रोगो के लिये पारम्परिक चिकित्सा मे ऐसी औषधीय झोपडियो का प्रचलन रहा है। रोग विशेष और रोगी की दशा के अनुसार मिट्टी से लेकर उनमे मिलायी जाने वाली वनौषधियो का चयन किया जाता है फिर औषधीय झोपडियो का निर्माण किया जाता है। रोगी को इन्ही के अन्दर रखकर चिकित्सा की जाती है। ये औषधीय झोपडियाँ विशेष पेडो की छाँव मे बनायी जाती है। इसमे सोने के लिये पलंग विशेष लकडी से बनाये जाते है। खटिया का प्रयोग भी किया जाता है। रोगी को उसमे लिटाकर नीचे से जडी-बूटियो के उबलने से उत्पन्न हुयी भाप को उसके शरीर मे बिखेरा जाता है। रोज अलग-अलग वनस्पतियो से बिछावन तैयार किया जाता है। इस तरह इन औषधीय झोपडियो की हरेक सामग्री रोगी के उपचार के लिये ही बनायी जाती है।

आज वर्तमान पीढी के बहुत कम आमजन इस अनूठे पारम्परिक ज्ञान के विषय मे जानते है। प्राचीन भारतीय ग्रंथो मे इस तरह की औषधीय झोपडियो का वर्णन मिलता है। सोम नामक चमत्कारी औषधी के प्रयोग के दौरान इसी तरह की औषधीय झोपडियो मे उपयोगकर्ता को रखा जाता था। यही शुरु मे उसे दस्त और वमन होते थे और फिर कुछ

दिनो बाद नये दाँत और नये बाल के साथ नयी त्वचा प्राप्त होती थी। इस तरह उसका कायाकल्प हो जाता था। सुश्रुत सन्हिता मे सोम के प्रयोग के विषय मे इस तरह की रोचक बाते विस्तार से मिलती है। आज पूरी दुनिया असली सोमलता की तलाश मे है पर उसके प्रयोग के दौरान उपचार मे सहायक औषधीय झोपडियो को भूलती जा रही है।

आधुनिक शहरो के निर्माण मे यह पारम्परिक ज्ञान बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यदि मकानो और दफ्तरो के निर्माण मे जिस तरह प्राचीन वास्तु शास्त्र का ध्यान रखा जाता है उसी तरह औषधीय झोपडियो से जुडे पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का उपयोग भी किया जाये तो रोगो के घर हमारे शहर रोगमुक्त हो सकेंगे। मच्छर जैसे कीटो से रक्षा हो पायेगी। मै तो इस ज्ञान के उपयोग से ऐसा शहर बसाने की परिकल्पना करता हूँ जहाँ रोग विशेष के रोगियो को बसाया जाये। जैसे मधुमेह के रोगियो के लिये एक छोटा सा शहर। इस शहर मे रहकर वे काम भी करे और रोग से मुक्त भी होते रहे। ऐसे भी शहर जो इन रोगो से हमारी रक्षा कर सके। शायद इस तरह हम इस पारम्परिक ज्ञान को बचा पायेंगे और मानव-कल्याण मे पीढीयो तक उपयोग कर पायेंगे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

पिछले कुछ महिनो से आफ्रीकी देश तंजानिया से आ रही खबरे मन को विचलित किये हुये है। वहाँ एल्बीनिज्म रोग से प्रभावित लोगो को चुन-चुन कर मारा जा रहा है। मारने का ढंग बडा ही घिनौना है। रात को सोते हुये अचानक ही इन पर अज्ञात लोग आक्रमण करते है और फिर शरीर का कोई हिस्सा काट कर ले जाते है। प्रभावित लोग तक जब तक मदद पहुँचे तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। आपको यह जानकर आश्चर्य और दुख होगा कि शरीर के काटे गये हिस्सो को अमीर लोग बडी कीमत देकर खरीद लेते है। अमीर इसे लेकर ओझाओ के पास जाते है जहाँ उन्हे ताजे खून को पिलाया जाता है। आपके मन मे चीनी बाजार की बात आ रही होगी जहाँ बाघ के लिंग का सूप केवल इसलिये पीया जाता है ऊँचे दाम देकर कि इससे मर्दाना शक्ति बढती है। इस गलतफहमी ने न जाने कितने बाघो को मौत के घाट उतार दिया है। पर यहाँ हम मनुष्यो के खून

की बात कर रहे है। ओझाओ ने यह बात फैला रखी है कि इस खून को पीने से अमीरी बढती है, धन की प्राप्ति होती है। कल मैने रात को बीबीसी पर इसके विषय मे एक और समाचार सुना तो मुझे इस अन्ध-विश्वास के बारे मे आप पाठको को बताने का मन हुआ।

एल्बीनिज्म एक तरह का अनुवाँशिक रोग है जिसमे त्वचा मे मिलेनिन न होने के कारण प्रभावित लोग पूरे सफेद रंग के दिखते है। त्वचा मे मिलेनिन के कारण ही हमारा रंग तय होता है। यही मिलेनिन हमे सूर्य की पराबैगनी (अल्ट्रा-वायलेट) किरणो से बचाता है। एल्बीनिज्म बहुत कम लोगो को होता है। त्वचा सफेद और आँखे लाल होने से ये भीड मे अलग से दिख जाते है। इन्हे सूर्य से बचने की सलाह दी जाती है क्योकि मिलेनिन न होने के कारण इन्हे त्वचा के कैसर होने की सम्भावना होती है। एल्बीनिज्म केवल मनुष्यो मे नही पाया जाता है। जंतु जगत मे अन्य जीवो पर भी इसे अक्सर देखा जाता है। एल्बीनिज्म से प्रभावित लोग सामान्य लोगो की तरह जीते है पर उनकी आँखो मे कई तरह की समस्याए होती है। उन्हे भी मानव समाज मे खुलकर जीने का उतना ही हक है जितना हम आप को।

बीबीसी के अनुसार तंजानिया के अलावा केन्या जैसे पडोसी देशो मे भी इस तरह का अन्ध-विश्वास व्याप्त है। हाल ही के दिनो मे अंग-भंग की घटनाए बढी है। एल्बीनिज्म से प्रभावित लोग शिकार की तलाश मे लगे लोगो के लिये चलता-फिरता पैसा है। यही कारण है कि प्रभावित लोग अब सार्वजनिक जीवन से दूर रहने लगे है। ओझा आमतौर पर बाल, पैर, हाथ और ताजे खून की माँग करते है। हाल ही की एक घटना मे तो सोये व्यक्ति के जननाँग काट लिये गये। खबरो के अनुसार पुलिस भी इस धन्धे मे शामिल है। आखिर उन्हे भी तो अमीर बनने का सपना दिखाया गया है।

एल्बीनिज्म से प्रभावित लोग हमारे देश मे भी है। मैने सामान्य लोगो को प्रभावितो को जिज्ञासा से घूरते देखा है अक्सर पर उन्हे चोट पहुँचाने की बात कभी नही सुनी है। जानकारी न होने के कारण अक्सर हमारे देश मे ऐसे लोग त्वचा कैसर के शिकार हो जाते है और अल्पायु मे ही हमारे बीच से चले जाते है। विश्व के बहुत से देशो मे एल्बीनिज्म से प्रभावित लोगो ने अपना संगठन बना लिया है। शायद एकजुटता ही एक कारगर हथियार साबित हो।

एल्बीनिज्म से प्रभावित लोगो पर हो रहे आक्रमण के विषय मे मेरी आफ्रीकी मित्रो से चर्चा होती रहती है। उनमे से ज्यादातर इस अन्ध-विश्वास को जड से समाप्त करने के पक्ष मे है। इसके लिये वे जागरुकता अभियान चलाने पर जोर देते है। आम लोगो को

जगाकर ही उनके बीच रह रहे इन असहाय लोगो की रक्षा के लिये उन्हे प्रेरित किया जा सकता है। कुछ आफ्रीकी मित्र इसे परम्परा बताते हुये जारी रहने देने की वकालत करते है। वे मेरे पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पर आधारित लेख पढते है और फिर प्रश्न करते है कि आखिर मै कैसे किसी देश की परम्परा के खिलाफ बोलने या लिखने की जुर्रत कर सकता हूँ? वे यह भी कहते है कि इस मुद्दे को बढा-चढा कर अंतरराष्ट्रीय मीडिया प्रस्तुत कर रहा है। जमीनी स्तर पर हकीकत कुछ और ही है, आदि-आदि। यह गनीमत है कि ऐसे मित्रो की संख्या कम है। ज्यादातर लोग मानते है कि इस गलत परम्परा पर अंकुश लगाने के लिये ओझाओ को पकडना चाहिये। तंजानिया मे सैकडो ओझाओ को पकडा भी गया है। पर समस्या ज्यो की त्यो बनी हुयी है।

मैने अपने आफ्रीकी मित्रो को आश्वस्त किया है कि मै अपने देश की भाषा मे इस अन्धविश्वास के बारे मे ज्यादा से ज्यादा लोगो को बताऊँगा और एल्बीनिज्म से प्रभावित लोगो की पीडा को सामने रखूँगा ताकि विश्व स्तर पर जनमत बनाने मे जागरुक भारतीय भी अपना अहम योगदान दे सके। यह लेख इसी दिशा मे एक छोटा-सा प्रयास है।
(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

हथियारो से लैस डकैतो ने पास के एक शहर मे किसी बडे आदमी के घर के सभी सदस्यो को बन्धक बना लिया था। आस-पास राजा की फौज मौजूद थी पर वह थोडा भी आगे बढती तो डकैत आक्रामक हो जाते। हमारे दादाजी को बुलाया गया। वे राजवैद्य थे। अब ऐसी विकट स्थिति मे राजवैद्य की भला क्या जरुरत। सैन्य अधिकारियो ने विचार-विमर्श किया। उन्हे रात होने का इंतजार करने के लिये कहा गया। ठंड के दिन थे। आम लोग लकडी जलाकर ठंड से बचने की कोशिश करते थे। शाम को माहौल मे धुए की गन्ध बिखरी रहती थी। इसी समय राजवैद्य ने हवा की दिशा जाँची और फिर कंडे मे कुछ जडी-बूटियाँ डाली। जडी-बूटियाँ जलने लगी और धुआँ उस घर के अन्दर जाने लगा जहाँ डकैत और बन्धक थे। थोडी ही देर मे राजवैद्य ने सैनिको को घोडो को चाबुक मारने को

कहा। घोडे हिनहिनाये। बाहर थोडी सी अफरातफरी मची पर अन्दर से कोई प्रतिक्रिया नही आयी। सैनिक राजवैद्य का इशारा पाते ही घर के अन्दर घुस पडे। अन्दर देखा तो सभी बेहोशी जैसी स्थिति मे थे। धुँए ने कमाल दिखाया था। बन्धको को पानी के छीटो से होश मे लाया गया और फिर ताजा घी पिलाया गया। धुँए का बुरा प्रभाव पल भर मे खत्म हो गया। डकैतो को बिना खून-खराबे के पकड लिया गया। ऐसे सैकडो किस्से मुझे गाँव के बुजुर्गो से सुनने को मिलते थे जब मै प्राचीन युद्ध कला मे वनस्पतियो की भूमिका पर एक रपट तैयार कर रहा था। पिछले दो दिनो से होटल ताज मे हो रही सैन्य कार्यवाही से अचानक ही प्राचीन युद्ध कला वाली रपट का ध्यान आ गया।

पूरी घटना मै टीवी चैनलो के माध्यम से देखता रहा है और बहादुर जवानो के साहस को सलाम करता रहा। ताबडतोड गोलियो ने ही फैसला किया। हमारे बहुत से जवान मारे गये। ताज मे कार्यवाही सचमुच मुश्किल थी। जिसने भी ताज को अन्दर से देखा होगा वह इस बात को समझ सकता है। नरीमन हाउस मे कमांडो कार्यवाही देखते समय मुझे बार-बार बुजुर्गो द्वारा बतायी गयी उपरोक्त घटना याद आ रही थी। टीवी चैनलो ने तो नही बताया पर मुझे लगता है कि जवानो के सामने अन्दर रसायन के माध्यम से लोगो को बेहोश करने का विकल्प रहा होगा पर जरुर कुछ पेच के कारण उन्होने सीधी लडाई का विकल्प चुना होगा। हमारे देश मे बहुत से शोध संस्थान है जो सेना के लिये शोध करते है। निश्चित ही उनके पास प्राचीन युद्ध कला मे उपयोग की जाने वाली वनस्सियो की जानकारी होगी। अपने अध्ययन के दौरान मै हजारो लोगो से मिला। पर सभी ने यही कहा कि उनसे पहले किसी ने इस बारे मे नही जानना चाहा। मैने रपट मे सारे विस्तार को लिखने की कोशिश की पर इसे सही हाथो तक पहुँचाने की कोशिश अभी भी जारी है। कुछ वर्षो पहले मुझसे एक रक्षा शोधकर्ता मिलने आये थे। उन्हे एलो वेरा की खेती देखनी थी। हम लोग पास के फार्म मे गये। उन्होने ये तो नही बताया कि एलो का वे क्या करेंगे पर उन्होने बहुत से पौधे एकत्र किये। उन्होने बातो-बातो मे बताया कि वनस्पतियो के सेना मे उपयोग की दिशा मे गहन शोध हो रहे है। मैने अपने कार्य के बारे मे उन्हे बताया तो उन्होने अनिभिज्ञता जतायी। उन्होने कहा कि मै विज्ञान पत्रिकाओ मे इसे शोध-पत्र के रुप मे प्रकाशित करवाऊँ तब दुनिया मानेगी। मुझे दुनिया को नही मनवाना था इसलिये मैने इसे अपने पास ही रखना ज्यादा उचित समझा। देश के विभिन्न भागो मे सफर के दौरान मै बहुत से ऐसे विशेषज्ञो से मिला पर उनकी बातो से लगा कि इस रपट की उन्हे आवश्यकत्ता है।

मैने नेशनल ज्योग्राफी पर रुस मे हुयी एक आतंकवादी घटना पर केन्द्रित फिल्म देखी थी। उसमे बेहोश करने वाली गैस का प्रयोग किया गया था उस हाल मे जहाँ आतंकवादियो ने बन्धको को रखा था। पर गन्ध के कारण आतंकवादियो को इसका पता लग गया था और सब गुड-गोबर हो गया था। इसके उलट वनस्पतियो को बडे ही सरल ढंग से आस-पास की गन्ध मिला-जुला कर ग्रेनेड के माध्यम या दूसरे विकल्पो के माध्यम से उन भागो मे प्रवेश कर आतंकियो को शक्तिहीन किया जा सकता है। सैकडो वनस्पतियो मे दिमाग को कुन्द करने से लेकर अस्थायी पक्षाघात पैदा करने वाली वनस्पतियाँ है। इसकी काट भी है जिससे बन्धको को बिना किसी देरी के होश मे लाया जा सकता है। मै इस संवेदनशील मुद्दे पर ज्यादा खुलासा नही करना चाहूंगा।

एक चैनल मे बताया गया कि नरीमन हाउस के घटनाक्रम के दौरान जब जवान खाना खाने मे जुटे तो आतंकवादियो ने इसका लाभ उठाया। मोर्चे पर खाना? फिर मुझे पारम्परिक युद्ध कला का ध्यान आ गया जहाँ सैनिक एक बार भोजन करते थे और जरुरत पडने पर हफ्तो तक बिना भोजन के लडते रहते थे उसी ताकत के साथ। भूख कम करने वाली और ताकत बनाये रखने वाली औषधीयो को आधुनिक विज्ञान ASH (Appetite Suppressant Herbs) के रुप मे जानता है। मोटापा कम करने के लिये इसका प्रयोग होता है। इस पर ढेरो पेटेंट लिये गये है पर अभी तक विदेशियो को इस बात की भनक भी नही पडी है कि भारत मे कैसे वनस्पतियाँ और उनसे तैयार मिश्रण उपयोग किये जाते थे। सस्ते मे प्रभावी ढंग से तैयार हो जाने वाले इन पारम्परिक मिश्रणो का प्रयोग भारतीय सेना मे होने लगे तो निश्चित ही उन्हे ऐसे अभियानो मे सफलता मिलेगी। मै एक बार फिर कहना चाहूंगा कि मै केवल चैनलो मे दिखायी गयी कार्यवाही के आधार यह कह रहा हूँ। मुझे पूरी उम्मीद है कि हमारे सैन्य शोध संस्थान पहले से इस विषय मे जानते होंगे।

हाल मे विदेशो मे किये गये एक शोध से पता चला है कि उन स्थानो मे जहाँ बारुदी सुरंग बिछी है वहाँ विशेष प्रकार की वनस्पति लगाकर इनका पता कुछ ही समय मे लगाया जा सकता है। हमारे देश मे आतंकवादी बारुदी सुरंगो का प्रयोग अक्सर करते है। मुझे लगता है कि इसी तर्ज पर भारत मे भी शोध होने चाहिये। हमारे जंगलो मे बहुत सी ऐसी वनस्पतियाँ है जिनमे उस वनस्सि से अधिक गुण है जिसके बारे मे विदेशियो ने शोध किया है।

यह कडी शहीदो और उनके योगदान को समर्पित है। मेरा ज्ञान किसी भी तरह से भारतीय सेना के उपयोग मे आ सके तो मै अपने को धन्य समझूंगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव
- पंकज अवधिया

पहाडो की गोद मे बसे एक सुदूर गाँव की ओर जाते वक्त ऊबड-खाबड सडक से हटकर मेरा ध्यान बाहर जंगलो मे लगा था। सडक देखने की सारी मशक्कत ड्रायवर के जिम्मे थी। एक छोटे से गाँव को पार करते समय अंतिम छोर पर एक महंगी विदेशी कार देखकर मन खटका। गाडी रुकवाई। गाँव के लोगो ने बताया कि ये ओझा का घर है और यहाँ दूर-दूर से लोग झाड-फूँक करवाने आते है। उत्सुकता जागी और हम लोग ओझा के घर तक पहुँच गये। ड्रायवर को पता था कि उसे क्या करना है। अन्दर जाकर उसने अपना नाम मरीज के रुप मे बता दिया और इस तरह हमे बाहर बैठे लोगो के बीच बैठने का लाइसेंस मिल गया। विदेशी कार मे एक परिवार आया था। माता-पिता और एक किशोर। पिता बैचैनी से बाहर मोबाइल का सिग्नल तलाशते घूम रहे थे। माता किशोर के पास बैठकर नसीहते दे रही थी। बीच-बीच मे हाथ जोडकर प्रार्थना भी करने लगती थी। इंतजार मे बैठे बाकी मरीज जैसे अपना मर्ज भूल गये थे। वे शहरी मेहमानो को देख रहे थे। मुझे देखकर इन शहरियो को लगा कि चलो कोई और भी है शहर से।

किशोर मरीज के रुप मे आया था। समस्या थी कि उसका मन पढने-लिखने मे लगता नही था। किशोरवय की तथाकथित बुरी बातो मे लगा रहता था। माँ का मानना था किसी की नजर लग गयी है। इसलिये इस ओझा का नाम सुनकर इतनी दूर आये थे। किशोर हमारे कैमरे और दूसरी चीजो को देखकर जल्दी ही घुलमिल गया। बातो ही बातो मे मैने उसकी माँ से किशोर की दिनचर्या पूछी। खान-पान के बारे मे पूछा। आज के किशोरो जैसा ही खान-पान था। साफ्ट ड्रिंक और फास्ट-फुड का उपयोग रोज होता था। रात को दूध पीता है और उसके साथ दवाई खाता है-उसकी माँ ने बताया। कौन सी दवाई? मैने पूछा। स्मरण शक्ति बढाने वाली-उन्होने कहा। शंखपुष्पी? मैने विस्तार से जानना चाहा। नही जी, वह तो अब असर नही करती हम ये वाली आयुर्वेदिक दवा देते है रोज दिन मे दो बार, यदि यह तैयार हो तो दिन मे तीन बार भी। ऐसा बताते हुये उन्होने बैग से एक डिब्बा निकालकर दिखा दिया। डिब्बा जाना पहचाना था। मैने कहा, यह तो बच्चो और

किशोरो के लिये नही है। यह तो काम शक्ति बढाने की दवा है। उन्होने ऐसे देखा जैसे कि मै अनपढ हूँ और कहा कि डिब्बे मे जो लिखा है उसे पढिये। मैने डिब्बा लिया। सामने लिखा था बौद्धिक दुर्बलतानाशक और बलवर्धक। किनारे मे लिखा था, शक्तिवर्धक और बाजीकरण है। मैने उनसे कहा, यह तो लिखा है कि यह बाजीकारक है। वे बोली, पर सामने तो बौद्धिक दुर्बलतानाशक लिखा है इसलिये हमने इसे किशोर को दिया। बाजीकरण का अर्थ मुझे नही पता। मैने पूछा, आप इस दवा को कैसे देती है? वे बोली, घी के साथ कहा है पर मै दूध के साथ देती हूँ। क्या आपने किसी चिकित्सक से परामर्श लेना ठीक नही समझा? इस पर वे बोली कि ये आयुर्वेदिक दवा है, इससे फायदा ही होगा, नुकसान हो ही नही सकता। फिर क्यो चिकित्सक से पूछना?

इस घटना के बाद मै बहुत-सी दवा दुकानो मे गया और बच्चो के लिये मेमोरी टानिक माँगा। ज्यादातर दुकानो मे इसी दवा को दिया गया। इसमे असगन्ध और विधारा है। इन दोनो को बराबर मात्रा मे मिलाया गया है। यह कामशक्तिवर्धक है और बच्चो के लिये नही है। यह सभी के लिये उपयोगी भी नही है। रोगी की प्रकृति के अनुसार इसे दूध, घी, पानी या तिल के तेल के साथ लेने की सलाह दी जाती है। कब तक लेना है और कितनी मात्रा मे लेना है ये चिकित्सक फैसला करते है। पर यह उत्पाद धडल्ले से मेमोरी टानिक के नाम पर बेचा जा रहा है। एक परिचित दुकानदार ने बताया कि इसमे कमीशन ज्यादा है। फिर लोग भी चिकित्सक के पास जाने की बजाय दुकानदारो की सलाह पर ऐसे उत्पाद ले लेते है। आयुर्वेद से नुकसान नही होता है- ऐसा शहरी अन्ध-विश्वास आज जाने-अनजाने कितने लोगो को रोगग्रस्त कर रहा है। सभी दवाए सभी के लिये नही है। चाहे वे आयुर्वेदिक दवाए ही क्यो न हो। गलत दवा के सेवन से नुकसान हो सकता है, चाहे वे आयुर्वेदिक दवाए ही क्यो न हो।

आँवला सभी के लिये हितकर माना जाता है। पर ह्रदय रोगो की चिकित्सा मे महारत रखने वाले बहुत से प्रतिष्ठित चिकित्सक और विद्वानो ने अपने अनुभव से पाया है कि ह्रदय रोगियो को आँवले का प्रयोग सम्भल के करना चाहिये। इसका गलत उपयोग अहितकर भी हो सकता है। आज च्यवनप्राश घर-घर मे पहुँच गया है। छोटे से लेकर बडे तक सभी इसका सेवन बिना चिकित्सकीय परामर्श से कर रहे है। इस उत्पाद मे यह कही नही लिखा होता कि किस अवस्था मे इसका प्रयोग करना चाहिये और किसमे नही? आपको याद होगा कि पहले इसे ठंड के लिये उपयोगी उत्पाद के रुप मे बेचा जाता था। धीरे-धीरे इसे साल भर बेचा जाने लगा। अभी देखियेगा आपके कुत्ते और पालतू जानवरो के लिये भी इसे उपयोगी बताया जाने लगेगा। यह व्यवसायिक आयुर्वेद है। इसका हमारे

विशुद्ध आयुर्वेद से कुछ लेना-देना नही है। यह व्यवसायिक आयुर्वेद बस किसी भी तरह से आम लोगो से घन उगाही करना चाहता है। हमारा देश बुरी तरह इसके गिफ्त मे आ चुका है।

आँवले की तरह ही अदरक को भी सभी के उपयोगी मान लिया जाता है। पर श्वेत कुष्ठ (ल्यूकोडर्मा) जैसे रोगो से प्रभावित रोगियो को इसके किसी भी रुप मे उपयोग की मनाही है। कुछ महिनो पहले ही मेरा ड्रायवर बता रहा था कि कैसे उसके बच्चे च्यवनप्राश खाते है और कैसे इससे घर का बजट बिगड जाता है। मैने उससे पूछा कि च्यवनप्राश क्यो खिला रहे हो? वो बोला, पढाई लिखाई मे बच्चो को तेज बनाने के लिये। मैने पूछा कि यदि मै कोई सस्ता विकल्प बताऊँ तो आजमाओगे। उसने हामी भरी। शायद इसलिये उसने यह बात बतायी थी। घी मिलेगा? उसने कहा, हाँ, गाँव से मिल जायेगा। घी, शक्कर और कालीमिर्च, इन तीनो को मिलाकर एक चम्मच रोज बच्चो को सुबह दे देना। न केवल दिमागी शक्ति बढेगी बल्कि पूरे शरीर पर सकारात्मक प्रभाव होगा। बचपन मे हमारी माताजी हमे यही देती थी। उसने आजमाया और जल्दी ही उसका असर भी देखा। इसी नुस्खे की सलाह मै उस किशोर के माता-पिता को भी देता जो कामशक्तिवर्धक दवा अपने किशोर को खिला रहे थे, वह भी दिन मे तीन बार, पर उस दिन वे अपनी गल्ती मानने को तैयार नही थे। इसलिये मैने उन्हे यह नही बताया। उस दिन किशोर को झाडा और फूँका गया। किसी अज्ञात पिशाच को दोषी ठहराया गया। फिर उसे भगाने का प्रपंच किया गया। वे वापस लौट गये ये मानकर कि पिशाच से छुटकारा मिल गया पर असली पिशाच तो अभी भी बैग मे डिब्बे के अन्दर दवा के रुप मे उनके साथ था। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

'बघवा हावे जंगल मा'- घने जंगल से गुजरते हुये एक छोटे से गाँव मे रुककर यूँ ही मैने गाँव वालो से पूछ लिया। यह छत्तीसगढ-उडीसा की सीमा पर बसा गाँव था जहाँ पहुँचने के लिये हमे बडी मशक्कत करनी पडी। सडक नही थी। जंगल से होते हुये हम लोग वहाँ पहुँचे थे। जंगल इतना घना था कि शायद अकेला होता तो बीच से नही गुजरता, दिन मे

भी। यह परसो अर्थात रविवार की बात है। मुझे पक्का यकीन था कि इस जंगल मे अब भी खूंखार जानवर होंगे। मै औषधीय धान और पारम्परिक फसलो पर जानकारी एकत्र करने गया था पर ऐसे दौरो मे बहुत सी दूसरी जानकारियाँ भी मिल जाती है। बाघ तो अब नही मिलते (या कहे दिखते) पर इस क्षेत्र मे बून्दी बाघ अक्सर दिख जाता है। तेन्दुए को बून्दी बाघ कहा जाता है। गाँव के एक बुजुर्ग किसान शोभाराम से मैने देर तक बात की।

मैने फिर पूछा, बघवा हावे जंगल मा। उन्होने पास की पहाडी की ओर इशारा किया और कहा कि वहाँ रहता है। क्या गाँव मे आता है? हाँ, कभी-कभी जब गाँव बिगड जाता है। और पाप बहुत बढ जाता है। अभी कुछ दिनो पहले गाँव के मवेशियो को उसने मार डाला। यह कहते हुये उन्होने हमे वह जगह भी दिखाने की बात की जहाँ यह घटना हुयी थी। कुछ देर चलने के बाद हम लोग वहाँ पहुँच गये। दृश्य भयावह था। गाँव के किशोरो ने बताया कि हम लोग अक्सर जंगल मे तेन्दुए को देखते है पर वह हमे नुकसान नही पहुँचाता है। जब हमने पाप ही नही किया तो वह हमे क्यो पकडेगा? तेन्दुए से जुडे इस विश्वास को बार-बार अलग-अलग लोगो से सुनकर मै अभिभूत हो गया। भले बाकी जानवरो का शिकार होता हो पर गाँव वाले इस जानवर को भगवान के दूत के रुप मे देखते है और पापियो को सजा देने की उसकी ताकत के कारण उसे आदर देते है। बुजुर्ग शोभाराम ने बताया कि पास के गाँव मे अचानक बहुत से मवेशियो को दीपावली के दिन तेन्दुए ने मार दिया। वह गाँव के अन्दर घुस गया था। तुरंत ही पूजा-पाठ करवाया गया। फिर उसके बाद से वह नही आया। हमने रात रुककर इसके दर्शन करने का मन बनाया। हमे बताया गया कि रात को वह एक निश्चित स्थान पर आता ही है। वहाँ एक किसान का खेत था और एक झोपडी भी बनी थी। रात उसमे गुजारी जा सकती थी।

शोभाराम जी के साथ हम लोग आस-पास घूमते रहे। उन्होने बताया कि पहले और अधिक घना जंगल था। जानवर बहुत सारे थे। उस समय कडाके की ठंड पडती थी। सुबह बर्फ की सी मोटी चादर जमीन पर जम जाती थी। ऐसा लगता था जैसे पसिया (चावल का माढ) फैला हुआ है। जब उसमे नंगे पैर जाते थे तो तलवे फट जाते थे। सुबह-सुबह खेत पर जाना सम्भव नही होता था। अब तो न ठंड है और न ही वर्षा। लोग बढ रहे है। जंगल मे खेत मे बढ रहे है। मानव और जानवरो मे मुठभेड भी। इस विनाश से पारम्परिक फसलो से स्वाद छिनता जा रहा है और जडी-बूटियो का चमत्कारी प्रभाव घटता जा रहा है। बाजार और विकास ने गाँव और जंगल से हर वो चीज छीन ली है जिसकी शहरो मे कीमत है। शोभाराम हमे बताते जा रहे थे और हम सुन रहे थे। गाँव

वालो ने पारम्परिक धान के विषय मे खुलकर बताया। इनमे औषधीय धान भी थे। पर मुश्किल ये थी कि इनमे से एक की भी खेती नही की जा रही है। ये नाम के रुप मे बुजुर्गो के दिमाग मे है। बीज का अता-पता नही है। युवा किसान तो बीच चर्चा मे ही बोर होकर उठ कर चले गये।

इस गाँव और आस-पास के क्षेत्रो मे कोदो की खेती इन दिनो बडे जोर-शोर से हो रही है। उन्हे पता है कि मधुमेह की चिकित्सा मे कोदो को आहार के रुप मे खाने से लाभ मिलता है। शहर के लोग हाथो-हाथ इसे खरीद लेते है। यही कारण है कि इस पारम्परिक फसल को किसान फिर से लगा रहे है। मैने नयी फसल का कोदो खरीदने की इच्छा जाहिर की। पर यह जानकर बडा आश्चर्य लगा कि बहुत से लोगो ने इसे बेचने से मना कर दिया। वे बोले कि यह गुणकारक है इसलिये हम पहले इसे खायेंगे और यदि बचेगा तभी इसे बेचेंगे। आखिर हमे भी तो रोगो से बचना है। कोदो और अन्य लघु धान्यो से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के विषय मे मैने बहुत लिखा है और अभी भी लिख रहा हूँ। मुझे अक्सर मधुमेह के रोगियो से प्रश्न आते है कि कोदो को हम अपना रहे है पर उतना फायदा नही हो रहा है जितना हमसे कहा गया। इन रोगियो की बात सही है। आप तो वनस्पतियो और मधुमेह के रोगियो के बारे मे तो जानते ही है। रोगी जिस वनस्पति का नाम सुनते है बस बिना किसी से कुछ पूछे खाने लगते है। करेला से शुरुआत होती है फिर नीम, गिलोय, गुडमार से होते हुये व्यवसायिक मिश्रणो मे उतर आते है। किसी ने कोदो कहा तो कोदो को भी खाने लगते है। किसी भी वनस्सि से सही लाभ पाने के लिये उसका विधिपूर्ण प्रयोग जरुरी है। कोदो को चावल की तरह ही पका लिया जाता है। पर आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि औषधी के रुप मे इसके प्रयोग के लिये इसे 50 से अधिक अलग-अलग विधियो से पकाया जाता है। मधुमेह के लिये 18,000 से अधिक फार्मूलो मे कोदो का उपयोग होता है। मैने इस विषय मे हिन्दी मे लिखने का मन बनाया है ताकि आम लोग कोदो जैसी वनस्पतियो का सही उपयोग कर सके और मधुमेह जैसे जटिल रोगो से मुक्ति पा सके। पर मेरी चिंता यही है कि क्या आज का हडबडी पसन्द रोगी शांति से यह सब पढेगा या उसका अन्ध-प्रयोग यूँ ही चलता रहेगा।

कोदो की माँग बढी है इसलिये अब ज्यादा उत्पादन आवश्यक है। किसानो से रासायनिक खेती आरम्भ कर दी है। कोदो की परम्परागत खेती मे तो जैविक आदानो का ही प्रयोग होता है। आफ्रीका मे धान के खेतो मे कोदो खरपतवार की तरह उगता है। किसान वैज्ञानिको के लाख कहने पर भी इसे नही उखाडते। जब सूखा पडता है और धान की

फसल नही होती है तो खरपतवार की तरह उग रहा यही कोदो उनके जीवन की रक्षा करता है। छत्तीसगढ और उडीसा मे कोदो की रासायनिक खेती बढने से आम लोग आने वाले दिनो मे औषधीय गुण युक्त कोदो शायद ही पा सके। गाँव वालो से बातचीत के दौरान मैने अपनी ये चिंता जाहिर की। वे बोले कि वे जैविक खेती करना चाहते है पर कीडो से कैसे निपटे? मैने अपना वैज्ञानिक धर्म निभाया और आस-पास के उपयोगी पेडो से प्राकृतिक कीटनाशक बनाने की छोटी-सी ट्रेनिंग उन्हे दे दी। कर्रा नामक पेड की तलाश मे हम कुछ दूर निकल गये। गाँव वालो ने हमे रोका और दूर पेड की ओट मे खडे देवदूत तेन्दुए की ओर इशारा किया। दर्शन हो गये। उसकी अच्छी सेहत देखकर मुझे अच्छा लगा। लोगो के विश्वास को याद कर तसल्ली हुयी कि जब तक ये देवदूत के रुप मे स्थापित रहेगा तब तक कोई भी इसका बाल-बाँका नही कर सकता। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

कैसर की चिकित्सा मे माहिर एक पारम्परिक चिकित्सक के साथ पास की एक पहाडी मे जाने की योजना थी। मैने कुछ बूटियाँ उन्हे भेंट स्वरुप दी थी। इसके बदले वे एक विशेष बूटी मुझे भेट स्वरुप देना चाहते थे। बूटी डोंगर (छोटा पहाड) पर थी। सुबह-सुबह हमे चढाई शुरु करनी थी और फिर दोपहर तक नीचे आ जाना था। रायपुर से कुछ घंटो का सफर तय करके अल सुबह ही पारम्परिक चिकित्सक के पास पहुँचने की योजना थी पर उस दिन सुबह-सुबह एक प्रशासनिक अधिकारी का फोन आ गया। उन्होने कहा कि उनकी माता को हिपेटाइटिस सी है और वे दिल्ली मे है। आपको सुबह वाली फ्लाइट से दिल्ली जाना है। टिकट हो जायेगी। मैने उनसे कहा कि मै चिकित्सक नही हूँ। मै केवल पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण कर रहा हूँ। इस पर वे बिफर पडे और पैसो की बात करने लगे। फिर उन्होने और भी कई तरीको से धौंस जमायी। वे मुझे दिल्ली भेज कर एक बडे चिकित्सा संस्थान के चिकित्सको से मेरी चर्चा करवाना चाहते थे। मुझे मालूम है कि मेरी बात वहाँ के चिकित्सक मानने से रहे। मान भी गये तो मेरे रिस्क पर दवा देने की बात करेंगे। अच्छा हुआ तो शायद धन्यवाद कहे पर केस बिगड

गया तो मुझ पर जिम्मेदारी डाली जायेगी। अपने पहले के कडवे अनुभव से मै पहले ही मना कर देता हूँ पर जिस तरह से ऐसे फोन कालो की संख्या बढ रही है उससे तो लगता है कि मै चार साल की पढाई ही कर लूँ ताकि दवा देने का अधिकार मुझे मिल सके।

इस फोन से देर हो गयी गाँव के लिये निकलने मे। गाँव पहुँचते तक ग्यारह बज गये। एक छोटे दल के रुप मे जब हमने चढाई शुरु की तो बारह बज रहे थे। मन अच्छा नही थी क्योकि मुझे पता था कि नीचे आते तक रात हो सकती है। हमारे पास सुरक्षा उपकरण नही थे। डोंगर मे घना जंगल था। ऊपर सपाट भाग था। थोडी ही ऊँचाई पर बूटी मिलने की बात बतायी गयी थी। हम बतियाते हुये चढने लगे। हमारे साथ चल रहे स्थानीय लोग बार-बार रुककर कुछ बाते करते थे। उनकी बातो पर ध्यान दिया तो पता चला कि उन्होने अभी-अभी भालू देखा था। अब जंगल मे तो यह बात सभी जानते है कि आप किसी को नही देखते पर हजारो आँखे आपको देखती रहती है। पर कुछ दूर चलने पर हमारी आँखो मे जानवरो की झलक दिखने लगी। पहले तेन्दुए के पैरो के निशान दिखे फिर सामने से एक सोन कुत्ता निकला। सोन कुत्ता माने साक्षात मौत। इनके बारे मे सुना गया है कि बाघ भी इनसे भय खाते है। यदि आपने जंगल मे इसे देख लिया तो उल्टे पैर लौटने मे ही समझदारी है। हमारे साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक ने आधे घंटे तक उसी स्थान मे रुककर जोर-जोर से बाते करने को कहा। सोन कुते तो नही आये पर दूसरे जीव दिखायी दिये। दिन मे इतने सारे जीव देखना किसी आश्चर्य से कम नही था। स्थानीय लोगो ने इसका राज खोला।

जंगलो पर मानव जाति का प्रभाव बढने से जंगली जानवरो को रहने मे समस्या पेश आ रही है। यही कारण है कि जंगल के अन्दर के खेतो को जंगली सुअरो से लेकर बन्दरो तक से नुकसान होता रहता है। तेन्दुए और बाघ आये दिन किसानो के मवेशियो का शिकार करते रहते है। वनोपज की तलाश मे भटकते वनवासियो की अनचाही मुलाकात भालुओ से होती रहती है। इस मुलाकात का नतीजा अक्सर खूनी संघर्ष के रुप मे सामने आता है। भालू मर गया तो वनवासी को सजा होती है और यदि वनवासी मर गया तो कुछ नही होता। सिकुडते जंगलो के कारण अब डोंगरो पर जंगली जानवरो ने शरण ली है। वहाँ उनकी आबादी मे इतनी सघनता है कि सारा संतुलन बिगड गया है। यही कारण था कि हमे उस डोंगर मे दिन मे इतने सारे जंगली जानवर नजर आ रहे थे।

जिस ऊँचाई पर बूटी मिलनी चाहिये थी वहाँ कुछ खास नही मिला और हम लगातार ऊपर चढते रहे। चोटी पर हमे बूटी मिल गयी। हमने पूजा की। बूटी का एक भाग अपने

पास रखा और शेष भाग वही छोड दिया ताकि वह फिर से फल-फूल सके। मैने इस अनुपम भेंट के लिये पारम्परिक चिकित्सक के पैर छुए तो उन्होने हाथ पकडकर रोक दिया। चोटी पर हमने फैसला किया कि वापसी दूसरी ओर से की जाये जहाँ पेड कम थे। इससे जंगली जानवरो से सामना होने की सम्भावना नही रहेगी। बीच रास्ते मे अन्धेरा घिरने लगा। अचानक कुछ नीचे एक घर दिखायी दिया जहाँ से तेज रोशनी आ रही थी। हमे आश्चर्य हुआ क्योकि वहाँ तो बिजली थी नही फिर कैसे इतना प्रकाश आ रहा है! साथ चल रहे लोगो ने बताया कि किसी अघोरी बाबा का मठ है। जनरेटर से बिजली जल रही है। हमारे पास खाने के लिये कुछ पूरीयाँ थी और अचार भी। हमने सोचा कि इस मठ मे जाकर इन्हे खा लिया जाये और फिर नीचे उतरा जाये।

हम मठ तक पहुँचे तो एक छोटा-सा लडका बाहर आया। उसके चेहरे मे आश्चर्य का भाव था। हमने उसे आने का कारण बताया। उसने कठोर स्वर मे कहा कि चुपचाप आगे बढ जाओ। यहाँ कोई नही आ सकता। फिर वह दौडकर अन्दर चला गया। क्या करे, क्या न करे, इसी उधेडबुन मे कुछ पल बीते कि हमे काले कपडो मे आठ-दस लोग आते दिखे मठ के अन्दर से। पास आये तो हमारा कलेजा मुँह मे आ गया। उनके हाथो मे नंगी तलवारे थी। वे गालियाँ दे रहे थे। हमे देखकर वे कुछ ठिठके फिर मेरी ओर मुखातिब होकर बोले क्या बात है, किसने भेजा है। जी कडा करके मैने आने का प्रयोजन बताया तो उनका सरदार बोला, खामोखाँ हम आ गये। आइये, बैठिये, आराम से भोजन कीजिये। एक आदमी को हमारे पास छोड कर वे जैसे आये थे वैसे ही वापस लौट गये।

धीरे स्वर मे खाना खाते वक्त पारम्परिक चिकित्सक ने बताया कि इस पहाडी पर अवैध कब्जो की होड लगी है। मठ और मन्दिर के नाम पर पहाडी पर कब्जे के लिये खून बह रहा है। हमे दूसरी पार्टी का सदस्य समझा गया इसलिये तलवारे लेकर लोग आ गये। पूरे छत्तीसगढ मे कमोबेश ऐसी ही स्थिति है। बहुत से स्थानो मे एक भी डोंगर ऐसे नही है जिसमे व्यवसायिक धर्म स्थान न हो। ये धर्म स्थान माफिया बडे ही संगठित ढंग से काम कर रहे है।

सबसे पहले पहाडी पर किसी पुराने मन्दिर की खोज की जाती है। अक्सर पहाडियो मे क्षेत्र विशेष के देवी-देवता निवास करते है। लोग साल मे एक या दो बार मेले के दिन वहाँ जाते है फिर साल भर उस स्थान को वैसे ही छोड दिया जाता है। स्थानीय लोग जानते है कि वहाँ बार-बार जाना वहाँ के पर्यावरण के लिये अभिशाप बन सकता है। पर माफिया के लोग चाहते है कि लोग रोज आये ताकि उस स्थान से उन्हे आमदनी हो। पुराने मन्दिर के जीर्णोधार की बात कही जाती है। लोग तैयार हो जाते है तो माफिया के

लोग वहाँ जीर्णोधार करके अपने पुजारियो को बिठा देते है। फिर कुछ ही दिनो मे पहाडी के चारो ओर की जमीन की खरीद शुरु हो जाती है। किसानो से कहा जाता है कि हम खेत तभी लेंगे जब इसमे एक भी पेड नही होगा। फिर पहाडी मे पेडो की अवैध कटाई शुरु हो जाती है। देखते ही देखते पहाडी नगी हो जाती है। फिर ऊपर तक जाने के लिये सडक बनवा दी जाती है। नयी सजावटी वनस्पतियाँ लगा दी जाती है। मन्दिर के साथ एक व्यवसायिक परिसर भी बन जाता है। मनुष्यो के साथ मक्खी, मच्छर और अवारा कुत्ते आ जाते है। उनके मवेशी दूध के लिये ऊपर ले जाये जाते है। वे जंगलो को चरना शुरु कर देते है। जंगली जानवर मवेशियो को खाने लगते है। इसी बीच जंगली जानवरो के अवैध शिकार की खबरे आने लगती है। इस तरह जीता-जागता जंगल मर जाता है और जंगली जानवरो का आखिरी ठिकाना भी खत्म हो जाता है। रही सही कसर मोटर गाडियो मे शोर मचाते हुये साल भर आने वाले भक्तगण पूरी कर देते है। बचे-खुचे जल स्त्रोतो मे वे नित्य कर्म करते है और प्लास्टिक की थैलियाँ, गुटखा पाउच, चिप्स पैकेट आदि बिखेर कर चले जाते है।

कुछ वर्षो पहले मैने एक छोटा सा अध्ययन किया था, यह जानने के लिये कि एक छोटी से पहाडी की मानव समाज के लिये क्या उपयोगिता हो सकती है। मुझे एक पहाडी मे ऐसी सैकडो वनस्पतियाँ इतनी संख्या मे मिली जो पीढीयो तक छत्तीसगढ जैसे राज्य को रोगो से मुक्त रख सकती है बिना किसी व्यय के। हमारा समाज अभी भी माँ प्रकृति को समझ नही पाया है। उनसे प्रेम मे ही स्वस्थ्य और सुखी जीवन का आधार है, यह जानकर भी उन्हे चोट पहुँचाता है और फिर देवालयो मे बैठकर कष्टो से मुक्ति के स्वप्न संजोता है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

जंगली पौधो मे आपस मे गजब की प्रतिस्पर्धा होती है। यह प्रतिस्पर्धा अंकुरण से ही शुरु हो जाती है। एक ही स्थान मे आस-पास उग रहे पौधो मे नमी, प्रकाश और भोजन के लिये प्रतियोगिता होती है। प्रभावी रहने के लिये पौधे कई तरह के रसायन छोडते है। ये

रसायन दूसरे पौधो की बढवार को रोकते है। कभी-कभी उनकी जान भी ले लेते है। विज्ञान की जिस शाखा मे इस रासायनिक प्रतिस्पर्धा के विषय मे शोध होते है उसे एलिलोपैथी के नाम से जाना जाता है। आपने देखा होगा कि किसी स्थान पर एक तरह के पौधे बहुतायत मे होते है तो दूसरे स्थानो पर वे अच्छे से नही उग पाते है। मिट्टी और दूसरे कारक पौधो को इस रासायनिक प्रतिस्पर्धा मे मदद करते है। पौधो को यह ज्ञान रहता है कि कौन से दूसरे पौधे नुकसानदायक है और कौन से लाभकारक है। उनके रसायन मित्र पौधो को नुकसान नही पहुँचाते है बल्कि कई बार उनकी मदद भी करते है। मैने इस विषय मे विस्तार से काम किया है। मेरे पचास से अधिक शोध पत्र और दस हजार से अधिक शोध आलेख केवल एलिलोपैथी पर ही है। अभी भी मै इस पर निरंतर लिख रहा हूँ। यूँ तो हमारे वैज्ञानिक इसे विज्ञान की नयी शाखा बताते है पर चीन और भारत मे लोग पीढीयो से माँ प्रकृति की प्रयोगशाला मे इस विज्ञान को देख और समझ रहे है। पारम्परिक चिकित्सा के महारथी इस ज्ञान की सहायता से वनस्पतियो को औषधीय गुणो से सम्पन्न करते है। एक पौधे के रस से दूसरे पौधे की चिकित्सा भी की जाती है। जैविक खेती मे भी इस ज्ञान का प्रयोग होता है। माँ प्रकृति की प्रयोगशाला मे मै इस विज्ञान का अध्ययन अक्सर करता रहता हूँ। राज्य के अलग-अलग भागो मे एक हजार से अधिक स्थानो को मैने चिन्हाँकित किया है। समय मिलने पर वहाँ जाकर पौधो की रासायनिक प्रतिस्पर्धा को समझने की कोशिश मै करता रहता हूँ। आमतौर पर आम लोगो और गाँवो से ये स्थान दूर रहते है इसलिये किसी भी प्रकार का व्यवधान नही होता है। पिछले एक दशक से भी अधिक समय से ऐसे ही एक स्थान पर मै नजर गडाये था। एक दिन जब मै वहाँ पहुँचा तो उस वीरान जगह मे कई झोपडियाँ देखी जिन पर रंग-बिरंगे ध्वज लगे हुये थे। पौधो को साफ कर दिया गया था। पूछने पर पता चला कि यहाँ शनि मन्दिर बन गया है।

मैने साथ चल रहे लोगो से पूछा कि ये तो वन विभाग की जमीन है फिर यह कैसा मन्दिर? वे बोले कि अवैध कब्जा है। ये महाराज दम-खम से जमे है। मै उनसे मिलने अन्दर पहुँचा। सोचा कि पौधे तो नष्ट हो गये, अब इनसे ही कुछ ज्ञान ले लिया जाये। सामने वाली झोपडी मे मुझे बिठाया गया। चारो ओर तस्वीरे लटकी थी। देश-प्रदेश के सभी बडे नेताओ के साथ महाराज की तस्वीर थी। इतने मे उनके चेले आ गये और उनका गुणगान करने लगे। मुझे बताया गया कि इन्होने ढेरो चमत्कार किये है। तस्वीरो मे आग वाले चमत्कार छाये हुये थे। कही भी, कैसे भी आग लगाने का माद्दा इनमे था। महाराज का इंतजार लम्बा होता गया। जोर देने पर पता चला कि उनके कमर मे दर्द है इसलिये उठ नही पा रहे है। मै झोपडी से बाहर निकला और आस-पास पौधे तलाशने

लगा। काम के पौधे मिल गये। भक्तजनो से कहा कि पानी गरम करे, महाराज को ठीक करना है। वनस्पतियो को उबाला गया फिर भाप से कमर की सिकाई की गयी। कुछ समय मे दर्द जाता रहा। महाराज प्रसन्न हो गये। मुझे अपनी झोपडियाँ दिखाने ले चले। उनके आग वाले चमत्कार की तस्वीरे देखकर मेरे मन मे एक नाम लगातार घूम रहा था। पर उस नाम की वस्तु दिख नही रही थी कही। झोपडियो मे गांजे की बदबू फैली थी। फिर हम एक गुप्त झोपडी के पास से निकले तो मुझे मिट्टी के तेल (कैरोसिन) की गन्ध आयी। उस झोपडी मे सिर्फ महाराज जा सकते थे। पर मेरी जिज्ञासा देखकर वे मुझे अन्दर ले गये। अन्दर गन्ध बहुत तेज थी। मेरे मुँह से निकल ही गया 'सोडियम'??? महाराज ने मेरे मुँह पर हाथ रख दिया और चेलो को चले जाने का इशारा किया। हाँ, सोडियम ही है, कल ही पाँच हजार रुपये मे खरीदा है इतनी अधिक मात्रा मे। मेले मे जाना है जहाँ इसकी आवश्यकत्ता पडेग़ी। महाराज और कुछ चेले ही यह राज जानते थे कि आग की चमत्कारी शक्ति वाले खेल मे मुख्य भूमिका कौन निभाता है? उस दिन के बाद से मैने इस महाराज का नाम 'सोडियम वाले बाबा' रख दिया।

हस्तरेखा विज्ञान मे मेरी सदा से रुचि रही है पर मै इस विषय मे ज्यादा कुछ नही जानता हूँ। रेल्वे स्टेशन से कुछ पुस्तके काफी पहले खरीदी थी पर उसे पूरी कभी नही कर पाया। मेरे एक मित्र जाने-माने हस्तरेखा विशेषज्ञ है। लोग हाथ फैलाये उनके सामने खडे रहते है, अपना भविष्य जानने के लिये। उन्होने कुछ ज्ञान मुझे दिया है ताकि मै भीड मे अपना प्रभाव जमा सकूँ। मैने जब कई घंटे उनके साथ बिताये उनके ग्राहको के बीच तो पाया कि कुछ रटे-रटाये वाक्य वे सब पर आजमाते है। जैसे आप पिछले कुछ समय से परेशान है। अधिकतर लोग इसे सुनकर अभिभूत हो जाते है। मै सोचता हूँ कि कोई महंगी फीस देकर ज्योतिषी के पास पहुँचा है तो जरुर वह परेशान ही होगा तभी तो पहुँचा है। दूसरा वाक्य होता है, आप बचपन मे जोर से बीमार पडे थे। जवाब मे कोई हाँ कहता है तो कोई बचपन की याद करने की कोशिश करता है। फिर थक कर मान लेता है। मेरा सोचना है कि बचपन मे हम सब बीमार पडते ही है। यह कैसा हस्त रेखा वाचन है? पर इस पर मेरे मित्र मुझे घूरकर देखते है और मै सहम जाता हूँ। मैने इन वाक्यो को भीड मे आजमाया है और सदा ही भीड को अपने आगे बिछते देखा है। मित्र मेरा भी हाथ देखते है। फिर कुंडली बनाते है। मै पूछता हूँ कि मधुमेह पर लाखो पन्ने रंगने के बाद भी क्यो मुझे दुनिया सिर-आँखो मे नही चढाती तो वे कहते है कि अभी शनि का प्रकोप चल रहा है सितम्बर 2009 से बात बनेगी। क्या पता इसमे भी कोई राज हो, यह सोचकर मै चुप रह जाता हूँ। शनि की बात से 'सोडियम वाले बाबा' की याद आ गयी। ऐसे बाबाओ से मिलकर मै पहली नजर मे ही उनके बारे मे बता देता हूँ।

‘सोडियम वाले बाबा’ लोगो को भविष्य़ बताते है। मैने उनका हाथ देखना चाहा तो बोले, कुछ जानते हो या बस ऐसे ही। मैने उन्हे कागज पर कुछ लिखकर दिया। पढते ही वे नत-मस्तक हो गये। उसमे लिखा था, आपको परिवार ने सुख नही दिया, आपको साँस की बीमारी है, भविष्य़ अनिश्चित लगता है, रात को नीन्द नही आती है। ये बाते उनके हाथो मे नही लिखी थी। जंगल मे इस तरह अलग रहकर गांजे मे डूबा रहना बताता है कि परिवार वालो ने उन्हे विदा कर दिया है। साँस की बीमारी गाँजे के कारण हो जाती है। ऐसे नशे से रात को नीन्द नही आती है। रही भविष्य़ के अनिश्चित लगने की बात, तो जंगल मे जानबूझकर अवैध कब्जा किया है। कभी भी उसे तोडा जा सकता है, ऐसे मे भविष्य़ का डर तो सतायेगा ही।

एक बार ‘सोडियम वाले बाबा’ के डेरे के पास महुवे के एक पुराने पेड से हमारा एक सहयोगी गिरकर घायल हो गया। अस्पताल दूर था इसलिये हम प्राथमिक उपचार के लिये उसे डेरे पर ले आये। उम्मीद के विपरीत ‘सोडियम वाले बाबा’ सब काम छोड कर आ गये और अपने चेलो को कुछ कहकर अलग-अलग दिशा मे भेज दिया। थोडी ही देर मे जडी-बूटियो के साथ वे वापस लौटे। ‘सोडियम वाले बाबा’ ने पहले दर्द पर काबू किया फिर हड्डी को बिठाया और अस्थायी खपच्ची बाँध दी। हम शहर आये तो जाने-माने अस्थि रोग विशेषज्ञ घायल साथी को देखने के बाद बोल पडे, मेरे पास क्यो लाये हो, उपचार तो हो गया है। एक मेहरबानी करो, मुझे उस देसी विशेषज्ञ के पास ले चलो।

इस घटना के बाद मै अपनी हर मुलाकात मे ‘सोडियम वाले बाबा’ को प्रेरित करता हूँ कि अपने गोरख धन्धे को छोडकर पारम्परिक चिकित्सा का सेवा वाला काम अपनाये और मैने जो भी उनसे उनके बारे मे हाथ देखकर कहा है उसे झुठलाये। देखिये ‘सोडियम वाले बाबा’ कब मानते है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

इस दुनिया मे शायद ही कोई ऐसा हो जो सदा जवान नही रहना चाहता है। बुढापे से मुक्ति सभी चाहते है। हमारे प्राचीन चिकित्सा ग्रंथ ऐसे बहुत सारे उपायो का वर्णन करते है जो हमारा कायाकल्प कर सकते है। पर इन उपायो को उसी स्वरुप मे अपनाना हर किसी के लिये सम्भव नही हो पाता। देश भर मे बहुत से विशेषज्ञ लगातार ऐसे उपायो की खोज मे है। वे निरंतर प्रयोग कर रहे है और परिणामो को अपने तक सीमित रख रहे है। अपने छात्र जीवन मे मै भी ऐसे ही एक प्रयोग का हिस्सा बना था। दस जवानो और दस बुजुर्गो का चयन एक जडी-बूटी विशेषज्ञ ने किया था। हमे उनके आश्रम एक महिने तक रहना था। वे जो कहे उसे मानना था। बुजुर्गो को जवान बनाया जाना था और हम जवानो को आजीवन जवानी कायम रखने के योग्य बनाया जाना था। सब कुछ एक महिने मे ही हो जाना था। वनस्पतियो मे सदा से रुचि थी इसलिये मैने इस प्रयोग मे शामिल होने मे जरा भी देर नही की।

नियत तिथि को हम आश्रम पहुँच गये। हफ्ते भर तो पेट और शरीर की सफाई होती रही। फिर हमे पास के एक जंगल मे ले जाया गया। करीब पचास किस्म के अलग-अलग पुराने पेडो को चुना गया। फिर देखते ही देखते उनकी कटाई आरम्भ हो गयी। जमीन से दो-तीन हाथ छोडकर उन्हे काट दिया गया। दूसरे दिन जब हम वहाँ पहुँचे तो ठूँठो को काटकर उसे खोखला बना दिया था। इसमे कुछ भी रखा जा सकता था। तीस से अधिक प्रकार के जगली फल लाये गये और फिर उन्हे खोखले स्थानो मे भर दिया गया। ऊपर से मिट्टी का लेप कर दिया गया और फिर उसके ऊपर जडी-बूटियो का। फिर कंडे (छेना) से इन्हे ढाँका गया। आग जला दी गयी और हम वापस लौट आये। सुबह तक आग बुझ गयी। फलो को एकत्र किया गया और फिर बचे हुये दिनो मे सिर्फ ये फल ही हमारे आहार रहे। साथ मे दूध दिया जाता रहा। हमे ब्रम्हचर्य का पालन करना था। हमे बताया गया था कि यदि त्वचा मे परिवर्तन हो या केश गिरे या नाखून गिरे तो तुरंत सूचना दी जाये। प्रयोगकर्ताओ को उम्मीद थी कि त्वचा, केश और नाखून गिर जायेंगे और उनकी जगह नये आयेंगे। हमे रात को एक विशेष प्रकार की झोपडी मे रहना होता था जहाँ जडी-बूटियो को जलाया जाता था। नंगे बदन रहना होता था। फूलो की सेज होती थी। रोज अलग किस्म के बिछावन का प्रयोग होता था। चौबीसो घंटे हम पर नजर रखी जाती थी। प्रयोग की अवधि समाप्त होते तक प्रयोगकर्ताओ के चेहरे से निराशा झलकने लगी थी। पर हम सब बडे प्रसन्न थे। हममे नयी स्फूर्ति का संचार हो गया था। ऐसा लगता था कि हम कोई भी काम कर सकते है। बुजुर्गो मे नया जोश देखते बनता था। वे कहते थे कि उन्हे पहले कोई रोग था इसका अहसास भी नही है उन्हे। पर प्रयोगकर्ता हमारे केशो, नखो और त्वचा पर ही नजर गडाये थे। प्रयोग के बाद हम वापस आ गये

और रोजमर्रा के कामो मे जुट गये। जिन लोगो को प्रयोग के लिये चुना गया था उन सबने आपस मे सम्बन्ध बनाये रखे। बुजुर्गो मे से कुछ ही अब हमारे साथ है। वे जब तक जीये मजे से जीये। हम जवानो मे से अधिक्तर ने शादी की और अब सुखी जीवन जी रहे है। वे अपने आप को अपने साथियो की तुलना मे अधिक स्वस्थ्य महसूस कर रहे है जबकि प्रयोग हुये बरसो बीत चुके है। मै अविवाहित रहा इसलिये साथियो के अनुभव से ही प्रसन्न होता रहा। हम सदा जवान नही रहे जैसा कि प्रयोगकर्ताओ का उद्देश्य था।

कृषि विज्ञान की शिक्षा के दौरान ही मुझमे इस चमत्कारिक प्रयोग के बारे मे विस्तार से जानने की इच्छा जाग गयी थी। इसी कारण मै जहाँ भी जाता इसकी चर्चा अवश्य करता। लोग विश्वास नही करते। कुछ अविद्वानो ने बताया कि आँवला का ऐसा प्रयोग ग्रंथो मे वर्णित है वह केवल पलाश के पेड के साथ वर्णित है। दसो किस्म के पेडो और जंगली फलो का उपयोग तो कही उल्लेखित नही है। प्रयोगकर्ताओ के पास गया तो उन्होने कुछ बताने से इंकार कर दिया। सालो तक घूमने के बाद कुछ बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सको से इस विषय मे जानकारी मिलनी शुरु हुयी। एक सिरा पकड मे आया तो धीरे-धीरे सब कुछ पता लग गया। पेडो के नाम भी और प्रयोग किये गये जंगली फल भी। यह प्रयोग असफल क्यो हुआ? पारम्परिक चिकित्सको का कहना था कि अलग-अलग पेडो की कोटरो से आग बुझने के बाद एकत्र किये गये जंगली फलो को अलग-अलग प्रयोग करने की बजाय उन्हे मिलाया जाना चाहिये था। यह बात शायद प्रयोग कर्ताओ को नही मालूम थी। जिन पारम्परिक चिकित्सको से मै मिला वे उम्र के अंतिम पडाव मे थे। उन्होने ऐसा प्रयोग किया नही था पर अपने पिता और दादा को करते देखा था। वे राज परिवारो के लिये ऐसा करते थे। इस प्रयोग के खतरे भी है। यह जानकर मै चौका। मेरे चेहरे मे मुँहासो के निशान देख कर वे बोले कि गलत प्रयोग रक्त की उष्णता को बढा देता है। जवानी मे इसका कम असर दिखता है पर बुढापे मे इससे बहुत नुकसान हो सकता है। उन्होने कहा कि पूरे प्रयोग के दौरान हमारे शरीर पर जडी-बूटियो का एक विशेष लेप लगाया जाना चाहिये था जिससे त्वचा सप्राण रहे। ये सब बाते मैने अपने साथियो को नही बतायी है। इसने मेरे उत्साह को ठंडा कर दिया पर इस बात का संतोष है कि कम से कम कुछ तो लाभ हुआ।

मैने इस प्रयोग को दोबारा करने की सोची। इस बार मेरा उद्देश्य कायाकल्प का न होकर शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढाने का था। मूल प्रयोग मे बीस लोगो के लिये दसो पुराने पेडो को काटे जाने के मै खिलाफ था। हमने दूसरी विधि अपनाने की सोची। जंगल

मे घूम-घूम कर अपने आप मर चुके पेडो की कोटरो की निशानदेही की और फिर उसका उपयोग किया। पारम्परिक चिकित्सको ने सुझाया कि यदि इन पेडो की लकडियो से हंडियाँ बना ली जाये तो इनका बार-बार उपयोग किया जा सकेगा। इससे पेड बचे रहेंगे। यदि यह प्रयोग सफल रहा तो जंगल मे आग लगाने की होड मच जायेगी। हो सकता है लोग पेडो को भी काटने लगे इस कार्य के लिये। इसलिये मुझे पारम्परिक चिकित्सको का उपाय अच्छा लगा। अपने प्रयोग मे मैने इसे भी आजमाया।

आग बुझने के बाद जंगली फलो को हमने एकत्र कर लिया और फिर उसे दूध के साथ चार दिनो तक खाया। न विशेष झोपडियो मे रहे और न ही बाकी सावधानियाँ बरती। सब कुछ पारम्परिक चिकित्सको के मार्ग-दर्शन मे हुआ। जंगली फलो को हमने अलग-अलग अनुपात मे मिलाया और फिर अलग-अलग श्रेणियो मे बाँटा। शरीर की प्रतिरोधक शक्ति बढाने का लिये, कामशक्ति बढाने के लिये, रोग विशेष के लिये आदि-आदि। फिर सबने इसका आवश्यकत्तानुसार सेवन किया। सभी को अच्छे परिणाम मिले। न पेड कटे और न ही किसी को नुकसान हुआ। मैने दुनिया भर के सन्दर्भ ग्रंथो को खंगाला तो पता चला कि हमारी इस विधि को कही और नही आजमाया गया है। हमने सभी ने यह प्रण लिया कि इस नये प्रयोग से हम जितने अधिक लोगो की मदद हो सके, करेंगे। इससे कभी धनार्जन नही करेंगे और लालची लोगो से इसे बचाकर रखेंगे। आधुनिक रोग जिनमे प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है, के लिये इसे आजमायेंगे। जिनकी काम शक्ति क्षीण है उन्हे इससे लाभांवित करेंगे। अच्छी कामशक्ति वाले लोगो को अति के लिये इसे कभी नही देंगे। और जब भी नये प्रयोग करेंगे तो मिल के करेंगे। मुझे छोडकर शेष सभी पारम्परिक चिकित्सक है इसलिये वे इस ज्ञान का उपयोग कर रहे है। क्षीण प्रतिरोधक क्षमता वाले एड्स के रोगी इनके पास आकर लाभांवित हो रहे है। मेरे पास यह ज्ञान इसी रुप मे पडा हुआ है। आज इस लेख के माध्यम से आप इसकी कुछ झलक पा रहे है।

मुझे कुछ वर्षो पूर्व दिल्ली मे आयोजित एक विज्ञान सम्मेलन की याद आती है जिसमे एक युवा शोधकर्ता ने इस पर कुछ बाते कही थी। पर हमारे ही देश के वैज्ञानिको ने उसका माखौल उडाया था वही पर। पूरी दुनिया के सामने इसे शोधकर्ता का अन्ध-विश्वास कह दिया। इस सम्मेलन मे विदेशी भी थे। वे उस समय तो खामोश रहे पर फिर उसे विदेश बुला लिया गया। पिछले माह भेजे गये सन्देश मे उस शोधकर्ता ने बताया कि उसे सभी तरह की स्वतंत्रता मिली है और वह इस कार्य का विस्तार कर रहा है। उसे धन भी काफी मिल रहा है। लगता है उसने हमारी तरह कोई प्रण नही किया है। हम तो प्रण से बन्धे है और जानते है कि हमारे देश मे हम कभी भी सम्मानित नही किये जायेंगे

लेकिन फिर भी यह पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान पीढीयो तक आम भारतीयो के काम आता रहेगा।   (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

आज दुनिया भर मे जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) की चर्चाए हो रही है। वैज्ञानिक रोज ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करने की कोशिश कर रहे है जिससे आम लोगो को विश्वास हो जाये कि हाँ, सचमुच जलवायु परिवर्तन हो रहा है। जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) हो रहा है, ये सभी महसूस करते है। यह अभी कुछ वर्षो से नही बल्कि बहुत पहले से हो रहा है क्योकि लम्बे समय से मनुष्य अपनी गतिविधियो से माँ प्रकृति को नुकसान पहुँचा रहा है। यह अलग बात है कि अचानक से शोर हुआ है जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) पर और यदि यह कुछ समय का शोर है तो जल्दी ही यह थम जायेगा और नये नारो के साथ हमारे वैज्ञानिक सामने आ जायेंगे। यदि जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) पर सचमुच काम करना है तो एक लम्बे समय के लिये योजना बनानी होगी और जमीनी स्तर पर काम करना होगा। जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) से हमारे देश की पारम्परिक चिकित्सा भी अछूती नही है।

कैसे जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) हमारी पारम्परिक चिकित्सा को प्रभावित कर रहा है इस पर मै अंग्रेजी मे एक लेखमाला लिख रहा हूँ। इस लेखमाला की प्रथम कडी मे मैने रेड वेलवेट माइट यानी बीरबहूटी नामक औषधीय मकौडे पर जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) का क्या असर पड रहा है- इस विषय मे लिखा है। इस मकौडे का उपयोग सैकडो पारम्परिक नुस्खो मे बाहरी और आँतरिक तौर पर होता है। यदि इसके उपयोग मे दक्ष पारम्परिक चिकित्सको की माने तो साल दर साल इसकी उपलब्धता घटती जा रही है। यहाँ मै यह बताना चाहूँगा कि यह मकौडा साल मे केवल कुछ दिनो मे ही प्रथम मानसून वर्षा के बाद जमीन के ऊपर आता है। कछारी जमीन मे इसे सुबह-सुबह देखने पर ऐसा लगाता है जैसे लाल मखमल की चादर बिखरी हुयी है। बस इन्ही कुछ दिनो मे इसे एकत्र किया जाता है और साल भर दवा के रुप मे उपयोग किया जाता

है। जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) से न केवल इनकी संख्या मे कमी हुयी है बल्कि इनमे औषधीय गुण भी कम होने लगे है। यही कारण है कि अब पारम्परिक चिकित्सक इसके वानस्पतिक विकल्पो को आजमा रहे है। वे इसके साथ भी बहुत सी वनस्पतियाँ मिलाकर मिश्रण बनाते है ताकि आशानुरुप लाभ मिले। यदि दूसरे नजरिये से देखा जाये तो इस जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) ने इस मकौडे को कुछ राहत दी है। पर सही लाभ के विषय मे तभी पता चलेगा जब इनपर विस्तार से शोध किया जायेगा। मेरी लेखमाला की दूसरी कडी पारम्परिक लघु धान्य फसल कोदो के औषधीय गुण पर जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) से आ रहे परिवर्तन पर केन्द्रित है।

हाल ही मे आस्ट्रेलिया के कृषि वैज्ञानिको की एक रपट आयी है जिसमे कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) पर यदि अंकुश नही लगाया गया तो साइप्रस नामक वनस्पति पर सकारात्मक प्रभाव पडेगा। इसकी आबादी बढेगी और इसे नियंत्रित करना मुश्किल हो जायेगा। आस्ट्रेलिया सहित दुनिया के बहुत से देशो मे इस वनस्पति को खरपतवार अर्थात अवाँछित पौधे का दर्जा प्राप्त है। प्रतिवर्ष खेतो मे इसके नियंत्रण के लिये लाखो डालर खर्च किये जाते है फिर भी इसका समूल नाश नही हो पाता। यदि यह भविष्य मे बढेगा जैसा कि आस्ट्रेलियाई वैज्ञानिक कह रहे है तो खेती का खर्च और बढेगा। यह चिंता का विषय है। यह वनस्पति भारत मे भी खरपतवार के रुप मे जानी जाती है पर देश के बहुत से हिस्सो मे आज भी किसान अपने खेतो मे इसका स्वागत करते है। वे इसके औषधीय उपयोगो को जानते है। इस ज्ञान से वे अपने और अपने परिवार की स्वास्थ्य रक्षा करते है और चिकित्सा व्यय बचाते है। वे इसे अपनी झोपडियो मे आवरण के लिये उपयोग करते है। वे जानते है कि खेतो से निकल रहे रसायन युक्त पानी मे कम ही वनस्पतियाँ जीवित रहती है। यह वनस्पति न केवल जीवित रहती है बल्कि दूषित जल का शोधन भी करती है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जहाँ एक ओर इसे खरपतवार कहकर नष्ट करने की सलाह दी जाती है वही दूसरी ओर प्रतिवर्ष जडी-बूटियो के व्यापारी बडी मात्रा मे इस वनस्पति को किसानो से खरीदते है और फिर देश की दवा कम्पनियो को इसकी आपूर्ति की जाती है। व्यापारियो का कहना है कि इसकी माँग बढती जा रही है पर इस अनुपात मे वनस्पति नही मिलती है। लीजिये, यह तो उल्टी बात हो गयी। जब मैने बातो ही बातो मे व्यापारियो को आस्ट्रेलियाई रपट के बारे मे बताया तो वे बोल पडे कि जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) से तो हमारी चाँदी हो जायेगी। यह वनस्पति जितनी बढेगी, फैलेगी उतना ही हमे लाभ होगा। मुझे यकीन है कि जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) का हल्ला मचाने वाले अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक व्यापारियो की यह बात सुनेगे तो सिर पीट लेगे।

इसी रपट की चर्चा जब मैने पारम्परिक चिकित्सको से की तो उनमे से कुछ तो व्यापारियो की तरह खुश हुये पर कुछ ने चिता जतायी कि धरती का तापक्रम बढने से यदि ये फैलेंगे तो जरुर इनके औषधीय गुणो पर भी विपरीत प्रभाव बढेगा। फिर इनका फैलाव दूसरी वनस्पतियो के लिये अभिशाप भी तो सिद्ध होगा। धरती मे वैसे ही जगह की कमी हो रही है। ऐसे सशक्त विचार तो मैने अंतरराष्ट्रीय मंचो पर भी नही सुने। आज इन बातो को इस लेखमाला के माध्यम से आप तक पहुँचाने का उद्देश्य यह है कि पंच सितारा होटलो मे जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) की बात करने वाले धरती से जुडे किसानो और पारम्परिक चिकित्सको की भी बात सुने। उनके पास पीढीयो का अनुभव है और उन्हे साथ लेकर ही हम सही मायने मे इस धरती की रक्षा के लिये योजना बना सकेंगे। इन धरती पुत्रो को अनपढ और उनके ज्ञान व विश्वास को अन्ध-विश्वास कहना अब बन्द करना होगा।

राजधानी बनने के बाद से रायपुर मे अचानक ही हवाई जहाजो की आवाजाही बढ गयी है। हवाई जहाज काफी दूरी से नीचे आने का क्रम शुरु कर देते है। प्रदेश के सुदूर जंगली इलाको मे ये आम लोगो का ध्यान खीचने लगे है। पिछले हफ्ते मै घने जंगल मे एक पर्वत शिखर पर पारम्परिक चिकित्सको से बतिया रहा था। अचानक ही एक विमान के गुजरने से हमारी चर्चा मे बाधा आयी। एक बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि आसमान के जिस भाग मे ये हवाई जहाज उडते है वही से हमारे जंगलो और आम लोगो के लिये पानी आता है। चन्द लोगो की सुख सुविधा के लिये हम इस अमूल्य पानी को दूषित करने का जोखिम उठा रहे है। कोई इन जहाज वालो को यह बात समझाता क्यो नही? मै उनकी बात सुनकर भौचक्क रह गया। हम सभी ने न जाने कितनी बार हवाई जहाजो को आसमान मे उडते देखा है। उसमे बैठे भी है पर यह छोटी सी पर गम्भीर बात कभी हमारे मन मे नही आयी। यह मेरा सौभाग्य है जो मै इन धरती पुत्रो और आपके बीच संवाद सेतु बन पा रहा हूँ। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

पिछले दिनो एक बडा ही विचित्र ईमेल सन्देश आया। यह सन्देश एक फिल्म निर्माता का था जो डाक्यूमेंट्री फिल्म बनाते है। उन्होने गूगल सर्च मे स्नेक और छत्तीसगढ शब्द खोजे तो मेरे बहुत से लेख उन्हे दिख गये। मुझे सर्प विशेषज्ञ मानकर उन्होने मुझसे अपनी फिल्म मे सहायता की मदद की। मुझे बताया गया कि बस आपको पारम्परिक सर्प विशेषज्ञ से मिलवाना है जिनके पास जहरीले साँप हो। साँपो की तस्वीरे उतारने के बाद फिर उन्हे लेकर जंगल मे भ्रमण करना है। मैने हामी भर दी। ऐसे बहुत से फिल्मकार पहले भी आते रहे है। मै सर्प विशेषज्ञ तो हूँ नही इसलिये कुछ नया सीखने की लालसा मे ऐसे फिल्मकारो के साथ चला जाता हूँ। जब नियत तिथि पर वे आये और हम एक पारम्परिक सर्प विशेषज्ञ के पास पहुँचे तो वहाँ फिल्मकार के असली रंग दिखने लगे।

पारम्परिक सर्प विशेषज्ञ के पास तीन कोबरा थे। उनकी तस्वीरे लेने के बाद हमसे पास के जंगल मे चलने को कहा गया। जैसे ही जंगल शुरु हुआ गाडी रुकवा दी गयी। अब सर्प विशेषज्ञ से कहा गया कि हर पेड के नीचे एक-एक करके साँपो को छोडा जाये और फिर कुछ देर मे वापस पिटारे मे डाल दिया जाये। सर्प विशेषज्ञ ने ऐसा ही किया। एक पेड के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा, घंटो तक यह क्रम चलता रहा। साँप पिटारी से निकलते और फिर जैसे ही आस-पास की झाडियो मे जाते उन्हे वापस पकड लिया जाता। फिल्मकार बडे ध्यान से फिल्माँकन करते रहते। भूख-प्यास से हमारा बुरा हाल हो रहा था। सर्प विशेषज्ञ भी थकने लगे। साँपो का भी इस परेड से बुरा हाल था। सर्प विशेषज्ञ अपने से अधिक साँपो को लेकर चिंतित थे। वे बार-बार सर्प देवता से क्षमा माँग रहे थे। मुझे भी अपनी भूल पर पछतावा हो रहा था। अब तो साँप पिटारे से निकलने को ही तैयार नही होते थे। इन सब से फिल्मकार खुश हो रहे थे। एक पेड के नीचे साँप निढाल से हो गये। फिल्मकार ने उस पेड के बारे मे पूछा और फिर हम वापस चल पडे। रास्ते मे मैने इस विचित्र फिल्म के विषय मे पूछा तो उन्होने कुछ नही कहा। कुछ देर की खामोशी के बाद बोले कि मुझे ऐसे पेड की तलाश थी जिसके नीचे कोबरा जैसे सर्प निढाल हो जाते है। हमने अपना माथा ठोक लिया। जिसे पेड का असर समझा जा रहा था दरअसल वह साँप की थकान का परिणाम था। वह पेड सिरिस का था। इसमे तो साँप मजे से रहते है। उस फिल्मकार ने बताया कि एक विदेशी वैज्ञानिक के लिये यह फिल्म तैयार हो रही है। जिस पेड को लोग अभी तक नही खोज पाये मैने एक दिन मे खोज लिया-उसने घमंड से भरकर कहा। सर्प विशेषज्ञ को अब रहा नही गया। उसने असली बात कह दी। फिल्मकार अपनी बात पर अड गये। लम्बी बहस के बाद यह तय हुआ कि कल सुबह फिर से साँपो को सिरिस के पेड के नीचे रखा जाये।

दूसरे दिन हम वापस उसी स्थान पर पहुँचे। पिटारे मे डाले गये मेढको को खाने और विश्राम के बाद तीनो कोबरा फिर से सक्रिय हो गये। उनके गुस्से को काफी दूर से फुफकार के रुप मे सुना जा सकता था। पेड के नीचे तीनो को एक साथ छोडा गया। पलक झपकते ही एक ऊपर चढा और जब तक हम पकडते आँखो से ओझल हो गया। शेष दो बिना प्रभावित हुये सक्रिय रहे। फिल्मकार समझ गये कि असलियत क्या है। सर्प विशेषज्ञ ने कहा कि बहुत सारे ऐसे पेड है जंगल मे जिसे आप तलाश रहे है। अवधिया जी को हमने इनका असर दिखाया है। यह ज्ञान हमे गुरुओ से मिला है। इसलिये हम यूँ ही किसी को नही बता देते। मैने फिल्मकार से कहा कि यदि आपको सचमुच जानकारी चाहिये तो आप राष्ट्रीय जैव-विविधता बोर्ड के पास सम्पर्क कर उनसे अनुमति प्राप्त करे और फिर यह सुनिश्चित करे कि सर्प विशेषज्ञ के ज्ञान का यदि कभी व्यवसायिक उपयोग करेंगे तो नियमानुसार हर बार सर्प विशेषज्ञ को भी उसका अंश मिलेगा। नियम-कानून की बात सुनकर वे बोले, मै आप दोनो को एक-एक लाख रुपये दूंगा यदि आप वह पेड दिखा दे। इस बार जवाब सर्प विशेषज्ञ ने दिया। उन्होने कहा कि हम अपना ज्ञान बेचते नही। और जो इसे खरीदने का लालच देता है उससे तो बात ही नही करते। चलिये अब वापस चले। सर्प विशेषज्ञ के शब्दो मे कठोरता थी। अपनी दाल न गलते देखकर फिल्मकार ने वापसी मे ही भलाई समझी।

फिल्मकार को विदा करने के बाद सर्प विशेषज्ञ से लम्बी चर्चा हुयी। उन्होने बताया कि आजकल कोलिहा अर्थात लोमडियो का बहुत शिकार हो रहा है। उसकी खाल मुँह माँगे दाम पर खरीदी जा रही है। जंगल मे इनकी संख्या बहुत है और शाम होते ही ये गाँवो के पास दिख जाती है। व्यापारियो के एजेंट घूम रहे है और खाल खरीद रहे है। मैने अखबार मे कभी इस तरह के व्यापार के बारे मे नही सुना था। आखिर क्यो लोमडी के पीछे पडे है ये लोग? मै सोचता रहा। सरकारी विभागो मे पता किया तो उन्हे भी इस बात की खबर नही थी। बाघ या तेन्दुए की खाल की बात होती तो शायद वे सक्रिय होते। मैने सर्प विशेषज्ञ से ही पता लगाने को कहा। व्यापारियो से भी पूछताछ की। अब इंटरनेट मे यह सुविधा तो मिली ही है कि छदम खरीददार बनके व्यापारिक पूछताछ की जा सकती है। जल्दी ही राज खुल गया। देश के महानगरो मे एक विशेष तरह के जूतो का प्रचलन बढ रहा है। इन जूतो मे लोमडी की खाल का प्रयोग होता है। यह दावा किया जाता है कि इस जूते को पहनने से बवासिर (पाइल्स) आराम हो जाता है। मै यह जानकर भौचक्क रह गया। लोग भी क्या-क्या कर बैठते यह जाने बिना कि सचमुच ऐसे जूते उपयोगी है भी कि नही। कुछ व्यापारियो ने दावा किया कि प्राचीन ग्रंथो मे यह लिखा है। कौन-से ग्रंथ मे? यह जानकारी वे नही दे पाये। आजकल तो सभी ग्रंथ और

उनमे लिखी बाते डिजिटल रुप मे हमारे पास है। चुटकियो मे पता लग सकता है जो जानना चाहे। जूते भी नही मिले क्योकि खुले बाजार मे ये बिक नही रहे है।

पारम्परिक चिकित्सको से चर्चा हुयी तो वे बडे नाराज हुये और बोले कि बवासिर जैसे साधारण रोगो के लिये किसी निरीह प्राणी की हत्या क्यो कर रहे है ये व्यापारी? लोमडी को मारना घोर अपराध है। मैने अपने लेखो के माध्यम से बवासिर के हजारो उपयोगी नुस्खो का दस्तावेजीकरण किया है। इन नुस्खो से असंख्य लोग लाभान्वित हो चुके है और होते रहेंगे। इन नुस्खो मे बबूल की कच्ची फलियो के सरलतम प्रयोग से लेकर सौ से अधिक प्रकार की वनस्पतियो से तैयार मिश्रण भी है। इनका प्रयोग खान-पान मे नियंत्रण माँगता है। अब आप मसालेदार और तला-भुंजा खाते रहे, एक जगह बैठे भी रहे तो भला कैसे केवल औषधी इस रोग से छुटकारा दिलवा पायेगी?

लोमडी की खाल से बने जूतो के विषय मे आपके पास कोई जानकारी हो तो बताये। हम आप की जागरुकता ही इस निरीह प्राणी की रक्षा कर सकती है। यदि आप किसी को बवासिर के लिये इसका प्रयोग करते देखे तो इस लेख के विषय मे बताइये। मेरा पता दीजिये और बवासिर से मुफ्त मे छुटकारा पाइये। दूसरे प्राणियो की तरह माँ प्रकृति ने लोमडी की भी एक विशेष भूमिका निर्धारित की है। जंगल के सफाई कर्मचारी के रुप मे इसकी सेवा हमारी धरती के लिये जरुरी है। यदि हम इन जैसे प्राणियो को ऐसे ही खत्म करते गये थे वह दिन दूर नही जब हमे साक्षात मौत का सामना करना पडे। बवासिर तो छोटी-मोटी बात है।

कुछ समय पूर्व मैने अपने एक शोध लेख के माध्यम से भालुओ पर हो रहे अत्याचार के विषय मे पर्यावरणप्रेमियो का ध्यान आकर्षित किया था। इस लेखमाला के माध्यम से मै एक बार फिर इसकी चर्चा करना चाहूंगा। मुझे एक पारम्परिक चिकित्सक से उपहार के तौर पर एक तेल प्राप्त हुआ। मुझे बताया कि नर जननाँग मे इसका बाहरी प्रयोग कामोत्तेजक है। पारम्परिक चिकित्सक ने इसकी कीमत बहुत अधिक बतायी। यह कैसा तेल है? इसे कैसे बनाया गया? जब मुझे इसके बारे मे बताया गया तो मेरे होश उड गये। भालुओ मे समागम बहुत लम्बा चलता है। ऐसे समागमो की प्रतीक्षा की जाती है। और फिर चरम पर भालूओ को मारकर उनके जननाँग को अलग कर लिया जाता है। इससे तेल बनाया जाता है। यह घटना आपको चीन के बाजारो मे बिकने वाले बाघ के लिंग के सूप की याद दिलाती होगी जिसका प्रयोग भी कामोत्तेजना के लिये किया जाता है। दुनिया भर मे इस सूप मे खिलाफ आवाज उठी और इस पर प्रतिबन्ध लगाने की बात की गयी। पर भालुओ के लिंग के ऐसे उपयोग की जानकारी कही नही मिलती है।

एक भालू से एक लिंग यानि अधिक तेल के लिये बडी संख्या मे भालुओ की मौत। मैने तुरंत इस पर लेख लिखा और शाम तक बाटेनिकल डाट काम के माध्यम से यह दुनिया भर मे दिखने लगा। इस पर व्यापक प्रतिक्रिया हुयी। इंटरनेट ने जबरदस्त औजार हमे उपलब्ध करवा दिया है कम समय मे दुनिया तक अपनी बात पहुँचाने का। मैने लेख मे लिखा कि जिन्होने इस तेल को आजमाया उनमे से एक को भी वह असर नही दिखा जिसका दावा किया गया था। यह महज पैसा कमाने के लिये लोगो को बेवकूफ बनाया जा रहा था। लेख लिखने से पहले मैने पारम्परिक चिकित्सक से इसके बारे मे कडे शब्दो मे पूछा तो उन्होने स्वीकारा कि इसे उन्होने नही बनाया है। ये व्यापारियो से उन तक पहुँचा है और अच्छे कमीशन के लालच मे वे आ गये। मैने उन्हे चेताया कि पारम्परिक चिकित्सक का नाम आप खराब न करे और इस तेल की बिक्री को हतोत्साहित करे। जल्दी नही पर देर से ही सही यह तेल बिकना बन्द हो गया। पर तब तक न जाने कितने भालू बेवजह ही अपनी जान गँवा बैठे।

मेरा इतना सब लिखना बहुत बार व्यर्थ लगता है पर भालू वाली घटना से ऐसा लगा कि भले ही देर से परिणाम मिले पर मुझे सतत लिखना चाहिये और इस पीढी के अलावा आगामी पीढी के लिये अपने विचार लेखो के रुप मे सहेजने चाहिये। आशा है आप भी इससे सहमत होंगे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

‘लाख कोशिशे करके मै थक गया पर गाँव वालो को कण्डोम के इस्तमाल के लिये प्रेरित नही कर पाया। ये तो इनकी ‘किस्मत’ है जो अब तक ‘एडस’ से बचे हुये है।‘ गाडी की पिछली सीट पर बैठे एक युवक ने यह कहा। कुछ देर पहले ही उसने अपनी बिगडी बस से उतरकर हमारी गाडी मे लिफ्ट ली थी। वह किसी सरकारी संगठन मे स्वास्थ्य सलाहकार था। वह स्वयम ही गाँव का था पर पढाई के बाद उसे गाँव वाले गँवार और जाहिल लगते थे। इसीलिये तो लाख कोशिशो के बावजूद वे उसकी बात मानने को तैयार नही थे। मैने उससे कहा कि धीरज से अपनी बात कहो और गाँव वालो के तर्को का

जवाब दो। हो सकता है ऐसे मे गाँववाले मान जाये। इस पर युवक कुछ उत्तेजित हो गया और बोला कि मैने सोशल सर्विस की डिग्री ली है। सोशल सर्विस माने समाज सेवा। समाज सेवा की डिग्री!!! मतलब बाजार ने यह भी शुरु कर दिया। पहले धन्ना सेठो के विजीटिंग कार्ड मे समाज सेवक का जिक्र दिखता था अब समाज सेवक का नया रुप मुझे दिखा। समाज सेवा की डिग्री वाला समाज सेवक।

उस दिन सुबह मै एक गाँव से गुजर रहा था तो अचानक ही कुछ बहुत पुराने पेड दिखे। मैने गाडी रुकवायी। पास जाकर देखा कि सेमल के पुराने पेड थे। मैने इतना पुराना सेमल कम ही देखा था इसलिये तस्वीरे लेने लगा। गाँव के एक बुजुर्ग पास आ गये। उन्होने कहा कि यह सौ से भी ज्यादा वर्ष पुराना है। हम गाँव वालो को इसकी महत्ता मालूम है। इसलिये हम इसे नही काटेंगे कभी भी। यह पेड सडक के एकदम किनारे था। गाँव की सडक थी। ऐसे समय मे जब शहर तेजी से भागकर गाँव के पास आ रहा है, मुझे बुजुर्ग के विश्वास पर कुछ सन्देह होता है। मैने ऐसे सैकडो वर्ष पुराने पेडो को अपनी आँखो के सामने कटते देखा है। कभी सडक चौडीकरण के नाम पर तो कभी शहरी विकास के दूसरे नामो पर। फिर भी मैने बुजुर्ग की बात नही काटी। मेरे साथ कुछ पारम्परिक चिकित्सक सफर कर रहे थे। उनमे से एक ने ऊपर की डाल पर लगे मधुमख्खी के एक बडे छत्ते की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया और धीरे से कहा कि “उस” काम के लिये यदि मदरस यानि शहद चाहिये तो एकत्र करवा लीजिये। मुझे “उस” काम के लिये शहद नही चाहिये थी इसलिये मैने उनकी बातो पर ध्यान नही दिया। उस पुराने पेड पर वांडा प्रजाति के दुर्लभ आर्किड लगे हुये थे। बुजुर्ग ने बताया कि यह पुराना पेड असंख्य छोटे-बडे जीवो को आश्रय देता है। पहले यह गाँव जंगल मे था। पर अब तो चारो ओर धान के खेत ही दिखते थे। यह सिरकट्टी आश्रम के मुख्य स्वामी जी का गाँव है। इसीलिये इतने पुराने पेड आज भी हमारे आस-पास बचे हुये है-मुझे बताया गया। छत्तीसगढ का सिरकट्टी आश्रम सभी जानते है। आप इस लेखमाला के पहले के लेखो मे इसका जिक्र पायेंगे। तस्वीरे लेने के बाद हम आगे बढे। काफी दूर चलने के बाद हमे एक बडा पहाड मिला। हमे बताया गया कि ऊपर एक कुंड है जहाँ से साल भर एक धारा के रुप मे जल निकलता रहता है। ऊपर एक गाँव भी है पर वहाँ पैदल ही जाना होगा। गाडी छोडी और चल पडे। गाँव पहुँचने पर एक बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक मिले गये और उनसे चर्चा होने लगी। बात घूमते-घूमते उस शहद पर भी आयी। पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि हम लोग शहद की जगह नीम के तेल का प्रयोग अधिक करते है। इसके अलावा हम लोग डेढ सौ से अधिक ऐसे तेलो के बारे मे जानते है जो इस कार्य के लिये विशेष रुप से प्रभावी है। ये सभी तेल आस-पास उग रही जडी-बूटियो से बनाये जाते है।

अभी हाल ही गाँव मे कुछ शहरी आये थे और उन्होने कण्डोम के इस्तमाल की सलाह दी थी पर जब ये तेल हमारे पास है और सदियो से हम इसका उपयोग कर रहे है तो फिर इस नये प्रबन्ध की क्या जरुरत?

छत्तीसगढ मे पीढीयो से लोग ऐसे तेलो के विषय मे जानते है जिन्हे यदि जननाँगो मे लगाकर मैथुन किया जाये तो गर्भ ठहरने की सम्भावना नही रहती है। 'सम्भावना नही रहती है' की जगह मुझे 'गर्भ नही ठहरता है' इस वाक्य का प्रयोग करना चाहिये। भले ही कण्डोम के प्रयोग मे गल्ती की कुछ सम्भावना हो पर इन तेलो के प्रभाव से शुक्राणुओ पूरी तरह से मर जाते है और किसी भी तरह से खतरा नही होता। राज्य के पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के दस्तावेजीकरण के दौरान मैने नीम के तेल के प्रयोग के बारे मे विस्तार से लिखा। बहुत से वैज्ञानिको ने इसे बिना बहस के खारिज कर दिया। पर मै तो जानता था कि आम लोग इसका इस्तमाल कर रहे है। मै शांत रहा। फिर किसी ने इस प्रयोग को अपनी प्रयोगशाला मे दोहराया और एक शोध-पत्र प्रकाशित किया। इस शोध-पत्र की बडी प्रशंसा की गयी। पर जैसा कि अक्सर होता आया है इसमे कही भी यह उल्लेख नही किया गया कि यह छत्तीसगढ का पारम्परिक ज्ञान है। इसे विदेशी पत्रिका मे प्रकाशित करवाया गया अंग्रेजी मे। आम भारतीय जो इस सरल प्रयोग से अनजान थे, वे अनजान ही बने रहे। नियमानुसार पारम्परिक चिकित्सको के विषय मे इस शोध-पत्र मे उल्लेख करना चाहिये था। इससे शोधकर्ता का कद घट नही जाता। इस शोध परिणाम को हिन्दी मे प्रकाशित करना था या फिर इसे सरल भाषा मे आम लोगो को बताना था। पर ऐसा करने से शोधकर्ता को वो नाम और सम्मान नही मिलता जो विदेशी पत्रिका मे पत्र छपवाने पर मिला। दूसरे को दोष क्यो दे, यह हमारी ही मानसिकता है कि विदेश का ठप्पा ही हमारे ज्ञान को प्रमाणिक घोषित करता है।

ग्रामीण भारत ने इस तरह के तेलो का उपयोग अब कम हो रहा है। इन तेलो के साथ कुछ मूलभूत समस्याए है। जैसे नीम का तेल ले। इसमे इतनी अधिक दुर्गन्ध आती है कि नयी पीढी के लोग इससे दूर भागते है। गाँव के बुजुर्ग कहते है कि हमे तो कोई बास नही आती है। उनका कहना सही है। वे बचपन से नीम के तेल का प्रयोग रोजमर्रा के जीवन मे कर रहे है। इसलिये उन्हे इसकी आदत हो गयी है। गन्ध की समस्या ज्यादातर तेलो के साथ है। इनमे जो वनस्पतियाँ डाली जाती है यह गन्ध उन्ही की होती है। पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि शहद के साथ विभिन्न जडी-बूटियो को मिलाकर भी इसी तरह उपयोग किया जा सकता है। इस कार्य के लिये उपयोग होने वाले सभी चीजे अच्छी स्नेहक (लुब्रीकेंट) है। यह इसका सकारात्मक पहलू है। गुप्त रोगो की चिकित्सा मे

माहिर पारम्परिक चिकित्सक कहते है कि इन तेलो का प्रयोग यौन रोगो से रक्षा करता है। अर्थात कण्डोम के जो लाभ है वे इनके प्रयोग से भी मिल जाते है। फिर क्यो वे शहरियो की बातो मे आये और कण्डोम का इस्तमाल करे? उनका तर्क सही है।

जब मै इस विषय मे गहराई से सोचता हूँ तो मुझे देश के युवा वैज्ञानिको की याद आती है जो कुछ नया करने के लिये मुझसे सम्पर्क करते रहते है। वे नये प्रयोग से इन तेलो से गन्ध को समाप्त कर सकते है। उन्हे ध्यान रखना होगा कि प्रभाव बिल्कुल न प्रभावित हो। इन तेलो को नयी पीढी मे लोकप्रिय करने के लिये मै कुछ नये प्रयोग करना चाहता हूँ। मुझे लगता है कि इसमे कुछ ऐसी वनस्पतियाँ मिला दी जाये जो जननाँगो (नर और मादा दोनो) के लिये हितकर हो और मैथुन की प्रक्रिया मे सकारात्मक प्रभाव डाले तो लोग इसे सहजता से आजमा लेंगे। फिर क्यो न एक प्रकोष्ठ बनाकर इस दिशा के काम शुरु किया जाये। पारम्परिक चिकित्सक इसके साथ जुडे और बेरोजगार घूम रहे शिक्षित मिलकर शोध करे और फिर ग्रामीण बेरोजगार इन तेलो का निर्माण करे। राज्य के साथ मिलकर इन्हे बेचे और लाभ को सभी को बाँटे। यह सब दिखता सरल है पर आप भी जानते है कि कई तरह की बाधाए है। सबसे पहली तो हमारे पारम्परिक चिकित्सको की सुनेगा कौन। फिर कण्डोम का एक अंतरराष्ट्रीय बाजार है। भारत मे लोगो को डराना और फिर भयादोहन करके इसे खपाना बाजार का एक हिस्सा है। तेल जितने भी उपयोगी हो पर बाजार मे उसे स्थापित होने मे न जाने कितने वर्ष लग जाये। एक बार तेल हाथ मे आने पर उसमे एक-दो नयी चीजे मिलाकर कही विदेशी कम्पनियाँ नया उत्पाद न ले आये। और फिर विज्ञापन मे कहे कि भारत का नीम कैसर पैदा कर सकता है, इसलिये विदेश मे फिलटर्ड गंगा जल से सींचे नीम के पेड से रोबोट द्वारा साफ मशीनी हाथो से निकाला गया तेल उपयोग करे। ------ पर मैने उम्मीद नही छोडी है।

गाडी मे बैठे समाज सेवा की डिग्री वाले युवक ने बताया कि पूरे राज्य मे हर गाँव मे कार्यकर्ता नियुक्त किये जा रहे है। ये गाँव वालो को बता रहे है कि आपका ज्ञान बेकार है। उसे भूल जाओ। दातून की जगह ब्रश करो। आयोडीन का नमक खाओ। चोट लगे तो हल्दी नही डेटाल लगाओ, आदि-आदि। मै सब कुछ सुनता रहा। उसने आगे कहा कि हमे दुनिया भर से पुरुस्कारो से नवाजा जा रहा है। अब इस माडल को देश भर मे लागू किया जायेगा। उसकी बात समाप्त होने के बाद मैने उसे अपने कार्यो के बारे मे बताना आरम्भ किया। वह कुछ झेपा। उसने बहुत से प्रश्न किये। एक प्रश्न था कि दिल्ली के वैज्ञानिको ने तीन करोड पन्नो का डेटाबेस बनाने मे करोडो फूँक दिये। आपकी एक करोड पन्नो की मधुमेह की रपट और लगभग इतने ही विस्तार से लिखी गयी दूसरे रपटो के लिये तो

आपको भी जम कर पैसे मिले होंगे। मैने उससे कहा कि मैने अब तक किसी से एक पैसा भी नही लिया है। और जो किया है वह तुम्हारे सामने है। उसे विश्वास नही हुआ। मैने कह ही दिया कि इस देश मे ऊपर बैठे मुठ्ठी भर लोग ही जैव-विविधता और पारम्परिक ज्ञान के नाम पर मौज कर रहे है और जमीनी स्तर पर आर्थिक मदद की बाट जोह रहे हजारो उत्साही एकलव्य की तरह अपने बूते पर काम कर रहे वैज्ञानिको का गला घोट रहे है। बिना आर्थिक मदद लिये मै यह काम इसलिये जारी रखे हुये हूँ कि कम से कम इससे नयी पीढी को कुछ सीखने मिल जाये और वे गाँवो मे बसने वाले असली भारत के लिये कुछ सोच सके।

मैने उसे तेलो के बारे जानकारी दी और कहा कि गाँव वालो की “किस्मत” उन्हे नही बचा रही है एडस से बल्कि यह उनका पारम्परिक ज्ञान है। अब तक वह युवक अपनी खाल उतार चुका था। उसने अपनी माँ के लिये मधुमेह की जडी-बूटी पूछी और पत्नी के लिये सफेद दाग (ल्यूकोडर्मा) के लिये कुछ उपाय। मैने गाडी रुकवायी और उसे औषधीय धान और कोदो दिया। उससे कहा कि अभी तो इसे उपयोग करो फिर अगली बार किसी पारम्परिक चिकित्सक के पास चलेंगे परिवारजनो को लेकर। उसने पूछा, अरे, ये आप कहाँ से लाये? मैने कहा, उसी सुदूर गाँव से जहाँ से तुम लौट रहे हो। तुम सीखाने गये थे इसलिये खाली हाथ लौटे हो, मै सीखने गया था इसलिये मेरी झोली भरी हुयी है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

‘अरे वाह, मुझे मिल गया महुआ का बान्दा। मै अभी उसे तोडता हूँ। उसको छूते ही मुझे दिन मे तारे दिखने लगेंगे।‘ यह कहकर तांत्रिक चिल्लाया और जब तक हम उसे रोकते वह महुए के पुराने और ऊँचे पेड मे चढने लगा। पहले उसकी गति तेज रही फिर ऊपर पहुँचते तक वह थक गया। पर आखिर वह उस डाल पर पहुँच ही गया जहाँ यह बान्दा था। उसने उसे छुआ और आसमान की ओर देखा। उसे सूरज ही नजर आया। वहाँ से चिल्लाकर हमसे बोला कि तारे नही दिख रहे है। अचानक ही उसका पैर थोडा सा फिसला

और वह कुछ नीचे आकर सम्भल गया। उसे सिर मे हल्की सी चोट लगी। सम्भलने के बाद वह बान्दा तोडकर नीचे आ गया। हमने मुस्कुराते हुये पूछा कि जब सिर मे चोट लगी तो कुछ दिखा क्या? तारा-वारा? वह हमारे इशारे को समझ गया और हँस पडा। उत्तर भारत से आया यह तांत्रिक दावा कर रहा था कि उसने जीवन बिता दिया पर महुए का बान्दा नही देखा। उसका यह भी दावा था कि दिन मे उसे छू लेने पर तारे दिखने लगते है। उसे समझाने की बजाय हमने उसे स्वयम यह करके देखने को कहा। यह सब करने के बाद वह बोला कि अब मै सबसे पहले उस गुरु की खबर लूंगा जिसने मुझे गलत बात बतायी। मैने उससे कहा कि यदि हो सके तो उन लोगो से भी माफी माँगना जिन्हे बिना आजमाये यह गलत जानकारी दी और अन्ध-विश्वास फैलाया।

महुए का बान्दा मतलब महुए के ऊपर उगने वाली एक वनस्पति। यह आँशिक परजीवी होती है। अर्थात जमने के लिये महुए के भोजन का उपयोग करती है और फिर पत्तियो के आने के बाद अपना भोजन खुद ही बनाने लगती है। महुए के अलावा इस बान्दा को साजा, चार, बीजा आदि बहुत से जंगली पेडो पर देखा जा सकता है। देश मे बहुत से भागो मे यह आम पर भी उगता दिख जाता है। यह काफी ऊपर होता है इसलिये नीचे से इसे देख पाने मे मुश्किल होती है। महुए का बान्दा तांत्रिको के लिये एक वरदान की तरह है। मै पिछले एक दशक से भी अधिक समय से इसके विभिन्न पहलुओ का अध्ययन कर रहा हूँ। तांत्रिक इसे शुभ मानते है। वे अलग-अलग कार्यो के लिये अपने जातको को इसे नियत तिथि और समय पर एकत्र करने को कहते है। ऐसी मान्यता है कि इस बान्दा को घर मे रखने से बुरी आत्मा का प्रभाव नही होता है। यह भी माना जाता है कि चावल के साथ इसे तिजोरी मे रखने से धन दिन दूनी रात चौगुनी की दर से बढता है। (इस मन्दी के दौर मे यह रामबाण साबित हो सकता है।) इस तरह की बातो ने इस बान्दा की पूछ-परख बढा दी है। सम्पन्न लोग इसे पाने की लिये एडी-चोटी का जोर लगा देते है। वे नंगे पाँव अल सुबह निकल पडते है और फिर ठंडे पानी मे स्नान करके नंगे बदन ही पेड पर चढकर इसे तोड लेते है। इस तरह का एकत्रण सबके बस की बात नही है। इसका लाभ तांत्रिक उठाते है। वे दूसरी वनस्पति ले आते है और उसे असली बताकर बेच देते है। महुआ का बान्दा जंगलो मे मिल जाता है थोडी खोजबीन के बाद पर तांत्रिक कह देते है कि यह तो हिमालय मे ही मिलेगा और वह भी काफी ऊँचाई पर। असली के प्रमाण के लिये इनसे अविश्वसनीय बाते जोड दी जाती है। जैसे दिन मे तारे दिखने की बात। यदि गल्ती से किसी को बिना गुरु के यह बान्दा मिल भी जाता है तो तारे न दिखने के कारण वह समझ बैठता है कि यह नकली है।

पेडो पर शोध कर रहे वैज्ञानिक इसे ट्री पैरासाइट के नाम से जानते है। उन्हे इससे जुडी मान्यताओ की जानकारी कम है। उन्हे लगता है कि इसके कारण पेडो को नुकसान हो रहा है। पिछले कई दशको से वे प्रयोग कर रहे है। उन्होने बहुत से ऐसे रसायन विकसित किये है जो कि इसे पूरी तरह नष्ट कर देते है। वे जंगलो मे इसका छिडकाव करते है और आम लोगो से भी ऐसा करने को कहते है। रसायनो के छिडकाव से निश्चित ही बान्दे मर जाते है पर इससे पर्यावरण पर जो प्रभाव पडता है उसकी वे अनदेखी कर देते है। कभी भी ऐसा नही देखा गया कि इस आंशिक परजीवी के कारण किसी बडे हिस्से का जंगल साफ हुआ हो। पर हमारे वैज्ञानिको ने जिसे एक बार दुश्मन घोषित कर दिया सो कर दिया फिर दशको तक कोल्हू के बैल की तरह उस पर शोध करते रहते है। रसायन बनाने वाली कम्पनियाँ उन्हे शोध के लिये पैसे देती रहती है और इस तरह रिसर्च स्कालर रिटायर होते तक यही करता रहता है।

यदि आप चिकित्सा से सम्बन्धित प्राचीन भारतीय ग्रंथो को पलटेंगे तो आपको इस बान्दा का उल्लेख मिलेगा। बकायदा औषधी के रुप मे। पर व्यवसायिक आयुर्वेद मे जितने भी उत्पाद आज भारत मे बन रहे है उनमे किसी मे भी इसका उपयोग अभी नही हो रहा है। यदि आप परम्परिक चिकित्सा की ओर रुख करे तो इसके बारे मे ज्ञान को जानकर दाँतो तले अंगुली दबा लेंगे। पारम्परिक चिकित्सा मे मैने अब तक 1600 से अधिक ऐसे नुस्खो का दस्तावेजीकरण (डाक्युमेंटेशन) किया है जो कि इस बान्दा के बिना अधूरे है। ये नुस्खे साधारण बुखार से लेकर मधुमेह तक की चिकित्सा मे काम आते है। ये सभी नुस्खे प्रचलन मे है। कारगर है इसीलिये प्रचलन मे है। यदि प्रभावकारी नही होते तो जाने कब से पारम्परिक चिकित्सक इन्हे भुला बैठते। मधुमेह के उपचार मे तो पारम्परिक चिकित्सक औषधीय धान और आर्किड के साथ इसका प्रयोग करते है। वे कहते है कि अपने शुरुआती जीवन मे जब यह बान्दा महुए पर आश्रित रहता है तो वह महुए से भोजन के अलावा औषधीय तत्व भी ले लेता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिन रोगो मे महुए के पौध भागो से लाभ नही मिलता है उनमे पारम्परिक चिकित्सक महुए से एकत्र किये गये इस बान्दे का प्रयोग करते है और सफलता प्राप्त करते है। इस बान्दा मे बडे ही सुन्दर लाल-नारंगी रंग के फूल निकलते है। इन फूलो का उपयोग रक्त सम्बन्धी रोगो की चिकित्सा मे होता है।

पारम्परिक चिकित्सक कहते है कि लगातार इसके एकत्रण से इसके फैलाव पर अंकुश लगा रहता है। बहुत बार तो यह आसानी से मिलता ही नही है। जब मैने उन्हे वैज्ञानिक शोधो की जानकारी दी तो वे बोले इस पर इतना खर्चने से क्या लाभ। इससे किसी प्रकार

की समस्या तो है नही फिर क्यो रसायनो के प्रयोग को बढावा दिया जाये। वे तांत्रिको द्वारा इसके विषय मे फैलाये जा रहे अन्ध-विश्वास के खिलाफ है। इस अन्ध-विश्वास के कारण औषधी के लिये इसका मिलना दुष्क्रर होता जा रहा है।

तांत्रिक, वैज्ञानिक और पारम्परिक चिकित्सक- इन तीनो मे मै पारम्परिक चिकित्सको से सहमत हूँ। तंत्र और इससे जुडे अन्ध-विश्वास की पकड हमारे समाज मे इतनी मजबूत है कि इस लेख के माध्यम से बहुत कम ही लोग जाग पायेंगे और ठगी से बचेंगे।
वैज्ञानिको को भी समझाना मुश्किल है। यदि वे सही दिशा मे सोचने लग जाये तो देश मे बहुत से शोध संस्थानो को बन्द करने की नौबत आ जायेगी। ये शोध संस्थान जनता के पैसे की खुलेआम बरबादी कर रहे है।

ऐसे मे पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण और पारम्परिक चिकित्सको को प्रोत्साहन ही सही कार्य जान पडता है मेरे लिये। (क्रमश☺

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

‘किसान जब खेत मे प्रवेश करे तो उत्तर दिशा से प्रवेश करे। प्रवेश करते ही जोर से हाथो मे पकडी घंटी बजाये। फिर यूकिलिप्टस के पौधे पर वृद्धि हारमोन डाले। उसके बाद एक विशेष टोपी पहनकर खेती का कार्य शुरु करे। यदि किसान हमारे द्वारा बताये उपायो को अपनाता है तो फसल दोगुनी होगी और जो उसने जिन्दगी भर मे नही कमाया होगा वह एक साल मे कमा लेगा।‘ ऐसा दावा करता एक पत्र मुझे एक किसान ने दिखाया। पत्र के नीचे जिन महानुभाव का नाम लिखा था वे मेरे सहपाठी निकले कृषि महाविद्यालय के। मैने झट से उसे फोन लगाया। उसके फोन उठाते ही प्रश्नो की झडी लगा दी। वह बोला कि यह विज्ञान मेरे द्वारा विकसित किया गया है और यदि इसे समझाना है तो मेरी दुकान आना होगा। दुकान? कौन-सी दुकान? उसने कहा, कृषि सेवा केन्द्र खोला है। वही आ जाना। मै दूसरे दिन पहुँच गया। नौकर दुकान मे था। महाश्य नदारद थे। मुझे बताया गया कि बस आते ही है, आप बैठिये। मैने दुकान का मुआयना करना शुरु किया। कृषि

केन्द्र मे तो सबसे पहले एक पुस्तक मिली जिसे सहपाठी ने लिखा था। इसमे उसके तथाकथित विज्ञान को समझाया गया था। फिर एक आलमारी मे घंटियाँ दिखी। उसके बाद साइन बोर्ड मे पढा कि हम यूकिलिप्टस के पौधे बेचते है। नौकर से पूछा तो उसने वृद्धि हारमोन का डिब्बा दिखा दिया। इतने मे सहपाठी आ गया। आरम्भिक बातचीत के बाद उसने आँखे चौडी करके बताया कि यह कृषि वास्तु है। मैने प्राचीन ग्रंथो के हिसाब से इसे आज के किसानो के लिये विकसित किया है। प्राचीन ग्रंथ??? मैने पूछा, यूकिलिप्टस कहाँ से आ गया प्राचीन ग्रंथो मे? यह आस्ट्रेलियाई पौधा है और कुछ दशको पहले भारत आया है। फिर ये बहुराष्ट्रीय कम्पनी का हारमोन? क्या इसके बारे मे भी लिखा है प्राचीन ग्रंथो मे??? वह समझ गया कि उसकी दाल नही गलने वाली। मेरा सहपाठी ही तो था फिर कैसी शर्म। उसने बता दिया कि अपनी दुकान की बिक्री बढाने के लिये उसने यह सब किया है। जो इन सामानो को बेचते है उन्हे मोटा कमीशन देता हूँ। किसान फँस रहे है और पैसे दे रहे है। जैसे वास्तु वाले लोगो को डराकर पैसे लूटते है वैसे ही मै भी कर रहा हूँ। आखिर व्यापार व्यापार है। ईमानदारी से तो पेट भरेगा नही। मै उसके तर्क सुनता रहा। मुझे याद आया कि हास्टल मे पढाई के दौरान वह मेस चलाया करता था। और इतने पैसे बचा लिया करता था कि उसने उस जमाने मे मोटरसाइकिल खरीद ली थी। पूत के पाँव पालने मे दिख जाते है। मैने उसे चेताया कि अन्नदाता को वैसे ही सभी लूट रहे है। तू तो उनको बख्श दे। जिस देश के कर्मठ किसान आत्महत्या करने को विवश हो रहे है, उनसे तू कुछ पैसे लूट भी लेगा तो कौन अमीर हो जायेगा? फिर इसके एवज मे जो “आह” लगेगी वो तो सारा चैन छीन लेगी। उस पर कुछ असर नही दिखा। मैने वापस आकर स्थानीय अखबारो मे एक लेख लिखा पर उसका नाम नही लिखा। किसानो को चेताया कि ऐसी ठगी हो रही है। कुछ दिनो बाद किसान पहुँच गये उसके पास और जब तक उसने पैसे नही लौटाये तब तक उसे घेरे बैठे रहे। यह खरपतवार तो उगने से पहले ही नष्ट कर दिया गया पर अपने देश मे किसानो को छलने वालो की कमी नही है।

कुछ वर्षो पहले आपने पढा होगा कि कोला पेय खेतो मे डालने से फसलो के कीडे मर रहे है। यह खबर मध्यप्रदेश से आयी और बिना किसी जाँच के सुर्खियाँ बन गयी। खबरे अपने आप ही बढने लगी। मूल खबर थी कि कुछ किसान इसे डाल रहे है। फिर खबर बढी कि इससे लाभ हो रहा है। फिर इसमे जुड गया कि उपज बढ रही है, कीडे मर रहे है। अंतरराष्ट्रीय मीडिया भी कूद पडा। मैने बीबीसी हिन्दी मे यह खबर पढी। उसमे तो एक कृषि वैज्ञानिक का बयान भी था। इस खबर मे वैज्ञानिक के हवाले से कहा गया था कि हाँ, कोला पेयो से कीडे मर सकते है। क्योकि इसमे शक्कर की मात्रा होती है और यह

चीटीयो को आकर्षित करती है। ये चीटीयाँ हानिकरक कीडो को नियंत्रित करती है। कितना अच्छा लगता है न यह सब पढने मे। पर हकीकत मे इन तथाकथित प्रबुद्ध लोगो की बातो मे आकर जब किसानो ने इसे आजमाया तो नतीजा सिफर रहा। उन्हे ठगी का अहसास हुआ। कोला पेयो की माँग अचानक से बढ गयी। इस अफवाह, इस अन्ध-विश्वास को फैलाने वाले हमारे ही बीच के पढे-लिखे लोग थे। कोला पेयो से चीटीयो के आकर्षित होने की जो परिकल्पना की गयी थी, उसका कोई वैज्ञानिक आधार नही था। ऐसी अफवाहे समय-समय पर फैलायी जाती है ताकि उत्पादो की बिक्री बढ सके। कुछ दिनो बाद जब हकीकत सामने आने लगी तो उन खबरचियो ने इससे पर्दा कर लिया जिन्होने यह बात फैलायी थी।

हाल ही मे कनाडा से संचालित होने वाले कीट विशेषज्ञो के एक ई-ग्रुप मे अमेरिका से किसी ने प्रश्न रखा कि दाँतो और मसूडो की सफाई के लिये उपयोग होने वाले लिस्टरीन माउथवाश के बारे मे अफवाह फैल रही है। यह प्रचारित किया जा रहा है यदि घर के सामने जमीन पर इसे छिडक दिया जाये तो घर को मच्छरो से मुक्ति मिल सकती है। अफवाह फैलने की देर थी। अचानक ही इसकी बिक्री बढने लगी। ई-ग्रुप मे कीट विशेषज्ञो से सुझाव माँगे गये। विशेषज्ञो ने एक स्वर मे कहा कि यह सरासर ठगी है। इससे मच्छर नही मरते है। वर्ष 2001 मे भी ऐसी अफवाह फैली थी। ई-ग्रुप मे कुछ लोग मानने को तैयार नही थे। वे बार-बार दोहरा रहे थे कि इससे मच्छर मरते है। तब एक वरिष्ठ विशेषज्ञ ने कहा कि हाँ, मरते है पर उसके लिये एक शर्त है। मच्छर को पकडकर उसमे डुबोना होगा, तब निश्चित ही वह मर जायेगा। इस करारे जवाब के बाद फिर अफवाह फैलाने वालो का सन्देश नही आया।

आप यदि क्लबो और सामाजिक व धार्मिक संगठनो से जुडे होंगे तो जरुर आप ‘नोनी’ के चक्कर मे आये होंगे। मोरिंडा सिट्रीफोलिया नामक वनस्पति से बनाया गया उत्पाद नोनी के नाम से बेचा जाता है। पहले इसे टानिक के रुप मे बेचा जाता था पर धीरे-धीरे ज्वर, सर्दी-खाँसी से लेकर लाइलाज समझे जाने वाले रोगो कैसर और सिकल सेल एनीमिया की कारगर दवा के नाम से बेचा जाने लगा। सारा खेल नेटवर्क मार्केटिंग के जरीये होता है। तगडा कमीशन दिया जाता है। लोग पहले नोनी पीते है और ठगी के शिकार होते है फिर दूसरो को बेचकर उन्हे ठगते है। यही तो होता है नेटवर्क मार्केटिंग मे। नोनी रामबाण तो है नही जो अकेले सभी रोगो को ठीक कर दे। पर कमीशन के नाम पर न केवल नीम-हकीम बल्कि आधुनिक चिकित्सक भी इसे लेने की सलाह देते है। मैने अपने लेखो मे लिखा है कि नोनी जैसे महंगे और सन्देहास्पद उत्पादो की बजाय यदि आम आदमी सत्तू

खाना शुरु कर दे तो इससे ज्यादा शक्ति उसे मिल सकती है। छत्तीसगढ मे तो सिकल सेल एनीमिया से प्रभावित बहुत से मरीजो को नोनी दिया जा रहा है। लोग अपनी जमीन-जायदाद गिरवी रखकर नोनी पी रहे है। किसान भी नोनी से नही बच पा रहे है। एक ओर उन्हे नोनी की खेती के लिये दिवास्वप्न दिखाये जा रहे है तो दूसरी ओर कुछ लोग नोनी को कोला पेयो की तरह इस्तमाल करने की सलाह किसानो को दे रहे है। जाहिर है खेती मे इसका उपयोग होगा तो खपत दसो गुना बढ जायेगी। नोनी से खेती मे कोई लाभ होता है-इस पर एक भी प्रयोग नही हुआ है। फिर भी खुलेआम दावे किये जा रहे है।

किसानो की शिकायत मेरे पास आयी तो मैने देश भर की कृषि पत्रिकाओ को सचेत करने वाले लेख भेजे पर विज्ञापन खो देने के डर से केवल राजस्थान की एक किसान पत्रिका 'कृषि अमृत' ने ही इसे छापा। इस पर व्यापक प्रतिक्रिया हुयी। जिसका डर था, वही हुआ। हमारे एक पुराने कुलपति जो जाने-माने कृषि वैज्ञानिक है, का फोन आ गया। उन्होने इन्दौर मे मेरे सम्मान मे एक कार्यक्रम आयोजित करवाने का प्रस्ताव रखा। फिर बताया कि रिटायरमेंट के बाद नोनी वाली कम्पनी ज्वाइन कर ली है। मै ही किसानो से नोनी खेतो मे डालने को कह रहा हूँ। मैने उनसे कहा कि क्या आप किसी शोध के आधार पर यह कह रहे है? तो उन्होने कहा कि जब यह मनुष्य की सब बीमारी ठीक करता है तो पौधे की भी करेगा। लो जी, ये कोई बात हुयी। मैने रुख कडा किया तो वे बोले. बी प्रेक्टिकल, व्यव्हारिक बनो। नही तो जिन्दगी भर ऐसे ही रह जाओगे। मैने उनकी बातो पर आधारित एक और लेख प्रकाशित करवाया। फिर फोन आने बन्द हो गये। सैकडो धन्यवाद पत्र आये किसानो के पर करोडो के इस देश मे इस ठगी को पूरी तरह से रोक पाना मेरे अकेले के बूते से बाहर है।

होम्योपैथी दुनिया भर मे जानी जाती है। मनुष्यो मे इसके प्रभाव पर तो बहुत काम हुआ है पर क्या पौधो मे भी इसका प्रयोग किया जा सकता है? होम्योपैथी दवाओ के कृषि मे उपयोग को एग्रोहोम्योपैथी कहा जाता है। मेरी इस क्षेत्र मे लम्बे समय से रुचि रही है। मैने 20 जीबी की रपट अपने शोध के आधार पर तैयार की है। पर इसे सार्वजनिक नही किया है। बहुत सी बातो पर अभी शोध जारी है। एग्रोहोम्योपैथी पर दुनिया मे मुठ्ठी भर लोग ही काम कर रहे है। यदि आप इंटरनेट पर यह शब्द खोजेंगे तो आपको ज्यादातर मेरे ही शोध कार्यो पर आधारित लिंक मिलेंगे। शोध अभी पूरा नही हुआ है पर किसानो पर गिद्ध दृष्टि गडाये विभिन्न कम्पनियो के लोग सक्रिय हो गये है। पश्चिम बंगाल मे एक विज्ञान सम्मेलन के दौरान कुछ ऐसे ही लोग उपहारो समेत मुझे घेरे रहे। एग्रोहोम्योपैथी

पर बात हुयी तो मैने उनसे धीरज रखने को कहा। इस पर वे बोले, आपका नाम काफी है। आपकी साख है। आप कह बस देंगे तो किसान इसे अपना लेंगे। हम आपको उन दवाओ के नाम बता देते है जो कम बिकती है। आप कहे कि इससे फसलोत्पादन बढता है। हर बोरे पर आपका कमीशन होगा आदि-आदि। उनकी उम्मीद के विरुद्ध मैने इंकार कर दिया। बात नही बनी तो वे आवेश मे बोले कि आप नही कहेंगे तो क्या हुआ। हमको और भी लोग मिल जायेंगे। उनका कहना सही ही है। इस देश मे पैसे के नाम पर अमिताभ और शाहरुख जैसे महानायक कुछ भी बेच देते है, अपनी साख दाँव पर लगा देते है,, तो कम्पनी वालो को तो मुझ जैसे लोग मिल ही जायेंगे।

इस लेखमाला का यह लेख भारतीय किसानो का सब कुछ लूटने की बाट जोह रहे गिद्धो की कुछ झलक दिखाता है पर जमीनी स्तर पर हालत बहुत बुरी है। विदर्भ के किसानो की स्थिति हमेशा से आज की तरह नही थी। वे मजे से गाँधी जी वाली खेती कर रहे थे पर उन्हे बीटी कपास की खेती के लिये वैज्ञानिको ने प्रेरित किया फिर सब्जबाग दिखाकर लोन लेने को मजबूर किया। इस खेल मे वैज्ञानिको, बैको, बीज कम्पनियो, खाद निर्माताओ, कीटनाशक विक्रेताओ सभी ने कमाया। जब फसल बिगड गयी तो सब गायब हो गये। जिन लोगो ने किसानो को इस भ्रमजाल मे उलझाया वे आज बेधडक घूम रहे है। क्यो न किसानो की फसल के आधार पर वैज्ञानिको का वेतन तय हो। यदि फसल और किसान की हालत सुधरे तो वेतन के साथ बोनस मिले पर यदि बेतुकी सलाह से उल्टा हो तो वैज्ञानिक को वेतन कम मिले और गल्ती के लिये सजा भी दी जाये। यदि कुछ सालो के लिये किसानो की सेवा का दावा कर रही कृषि संस्थाए बन्द करके उन पर बहाया जा रहा अरबो रुपये सीधे ही किसानो को दिया जाये और उन्हे अपने मन से खेती करने दी जाये तो मुझे लगता है कि इस देश मे खेती की दशा और दिशा सुधरेगी ही।(क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“ अरे रुकिये, रुक जाइये, ये पानी नही जहर है। अब रुक भी जाइये।“ रायगढ के मुडागाँव के आस-पास एक बोरवेल मे हाथ धोने के लिये जैसे ही मै बढा साथ चल रहे स्थानीय व्यक्ति ने चेतावनी दी। जब हम मुडागाँव पहुँचे तो भयावह वास्तविकता का आभास हुआ। यहाँ बडी संख्या मे लोग पानी के शिकार मिले। किसी की पीठ अकड गयी थी तो किसी ने खाना-पीना छोड दिया था। उन्नीस-बीस साल के युवक बच्चे की तरह दिखते थे। पानी ने उनका शारीरिक विकास रोक दिया था। उनके पैर मुड गये थे। वे लकडी के सहारे के बिना एक कदम भी नही चल सकते थे। पूरे समय शरीर मे असहनीय दर्द होता रहता था। सारा कसूर पानी का था। इसमे फ्लोराइड की अधिक मात्रा थी। लम्बे समय से लोग प्रभावित थे। प्रशासन ने शुद्ध पानी के टैकर खडे करवा दिये थे पर जब हम पहुँचे तो वे सम्पन्न लोगो के इलाके मे थे। गाँव से कुछ दूर दूसरे टोले मे लोग बीमार होने के बावजूद जहरीला पानी पी रहे थे। वे दूर से टैकर का पानी नही ला सकते थे। जहरीले पानी वाले बोरवेलो पर लाल रंग के कट-मट का निशान लगाने के अलावा लिख दिया गया था कि केवल निस्तारी के लिये पानी का प्रयोग करे। पर फिर भी लोग वहाँ से पीने का पानी भर रहे थे।

उनका कोई इलाज तो था नही। जब भी कुछ कमायी होती तो सबसे पहले दर्द नाशक इंजैक्शन लगवाने अस्पताल भागते। सारी जमा पूंजी इसी मे फुँक रही थी। प्रशासन के पास एक ही रटारटाया उपाय था कि गाँव खाली करा दिया जाये। पर गाँव वाले गाँव छोडने को तैयार नही थे। उन्हे कोई अच्छा विकल्प दिया नही गया था। मैने अपने साथियो से पता करके बहुत ही सस्ते “फ्लोराइड मटको” की जानकारी एकत्र की। ये भुवनेश्वर मे बनते थे और आर्डर मिलने पर इसे कही भी पहुँचाया जा सकता था। ये बहुत ही सरल सिद्घांत पर काम करते थे। इसमे फिल्टर लगे हुये थे जो पानी से फ्लोराइड को अलग कर देते थे। इसे बाद मे गाँव के कुम्हार भी बना सकते थे। प्रशासन को इस सरल उपाय के बारे मे एक स्थानीय संस्था के माध्यम से जानकारी दी गयी।

उस समय प्रभावितो से बात करने पर पता चला कि दर्द से मुक्ति के लिये वे ओझाओ की मदद ले रहे थे। मरता क्या नही करता। ओझा लम्बी झाड-फूँक की प्रक्रिया करते और कुछ दान-दक्षिणा ले लेते। यह सुनकर मुझे थोडा-सा गुस्सा आया। जब तकलीफ का कारण मालूम है तो फिर ओझाओ की शरण क्यो? अब भूतो या बुरी आत्माओ ने तो पानी को जहरीला किया नही है? और न ही झाड-फूँक के बाद पानी अपने आप साफ हो जाने वाला है। मेरे आवेश को देखकर साथ चल रहे व्यक्ति ने कहा कि आप चलकर एक बार देख ले फिर कोई राय कायम करे। हम ओझा के पास पहुँचे। देखने मे वह साधारण

इंसान दिखा। वह बहुत से भूतो की खबर ले रहा था। फिर प्रभावित की बारी आयी। ओझा ने कुछ लेप लगाये, धुँआ किया और तेज स्वर पर बुदबुदाता रहा। फिर चीखने-चिल्लाने लगा। हमे तो सब कुछ नाटकीय लग रहा था। पर रोचक भी। यदि यह रंगमंच पर होता तो हम टिकट लेकर जरुर जाते। उसकी भाव-भंगिमाए देखने लायक थी। सारा कुछ आधे घंटे तक चला। प्रभावित ने अपने घर के पेड से अमरुद (जाम) लाये थे। ओझा ने इसे सहर्ष 'फीस' के रुप मे स्वीकार लिया। प्रभावित इस सब से खुश दिखा। उसने कहा कि जब तक झाड-फूँक चलती रही अच्छा लगा पर अब फिर दर्द शुरु हो रहा है। पर मै फिर आऊँगा। ओझा से गहरायी मे जाकर बात की तो उसने कहा कि मुझे भी मालूम है कि मेरे उपाय इसका कुछ भला नही कर सकते। पानी जहरीला है और उसी के कारण इसकी हालत ऐसी हुयी है। मै तो बस कुछ समय तक उछल-कूद मचाकर इनका ध्यान बँटा देता हूँ और इसी के चलते वे अपने दर्द को भूल जाते है। वे उम्मीद लेकर आते है। मै उन्हे निराश नही कर सकता। उनसे कुछ नही लूंगा तो वे समझेंगे की मन से उपचार नही किया जा रहा है। इसलिये जो भी देते है मै स्वीकार कर लेता हूँ। मेरे टोला का पानी जहरीला नही है इसलिये मै बच गया पर ये इतने सौभाग्यशाली नही रहे। मै स्तब्ध होकर ओझा की बाते सुनता रहा। हम तो सारे ओझाओ को एक तराजू मे तौलते है। या कहे ओझा का नाम सुनते ही हमारी भृकटियाँ तन जाती है। ओझा मे भी अच्छा इंसान हो सकता है। यह विश्वास इस घटना के बाद और गहरा हो गया।

जब उस ओझा को पता चला कि मै जडी-बूटी का वैज्ञानिक हूँ तो उसने हाथ जोड लिये और बोला, साहब, आप क्यो नही इन लोगो को दर्द से मुक्ति का कुछ उपाय बताते। मैने उसे आश्वस्त किया कि मै अपना योगदान दिये बगैर नही जाऊँगा। आस-पास घूमने पर चिरपरिचित वनस्पतियाँ दिख गयी है। इनमे से फुडकर (आक) को मैने चुना। कुछ दूर चलने पर अंडी (कैस्टर) के कुछ पौधे मिल गये। फिर बेल और कोहा के पेड भी दिखे। उनसे मैने छाल एकत्र कर ली। इन सब को लेकर ओझा के पास पहुँचा और कहा कि आक की पत्ती को तवे पर थोडे से तेल के साथ गरम करके दर्द वाले स्थान की सिकाई करना। यदि यह कम असर वाला लगे तो अंडी की पत्तियो का प्रयोग करना। इसके बाद दोनो तरह की छालो को अलग-अलग अनुपात मे मिलाकर उपयोग करना। तीसरे उपाय के विषय मे ओझा को कुछ जानकारी थी। उसने कहा कि साहब, यहाँ वरुण के पेड भी है। मुझे एकाएक विश्वास नही हुआ। मैने कहा, फिर तो बेल की जगह वरुण की छाल का प्रयोग करना ताकि अधिक लाभ मिले। मै अपने ज्ञान से इतना ही कर पाया क्योकि फ्लोराइड विषाक्तता पर हमारे प्राचीन ग्रंथ कुछ ज्यादा नही कहते। आधुनिक ग्रंथ भी बचाव पर जोर देते दिखते है। वापस लौट कर मैने राज्य के जाने-माने होम्योपैथी

विशेषज्ञो को वहाँ ले जाने की योजना बनायी ताकि वे इसे चैलेंज के रुप मे लेकर कुछ राहत दिलवा सके। दिल्ली के एक मित्र ने देश के दो जाने-माने आयुर्वेदिक और एलोपैथ चिकित्सको को अपने बूते पर रायपुर तक लाने की पेशकश कर दी। जब इतने सारे विशेषज्ञो को वहाँ ले जाने की योजना बनी तो सभी की सहमति नही बन पायी। फिर फीस इतनी थी कि मै पूरा खर्च वहन नही कर सकता था। मित्रो ने सलाह दी कि प्रभावितो को रायपुर ले आया जाये। इससे राजधानी के लोगो का ध्यान आकर्षित होगा और हो सकता है कुछ पैसो की व्यवस्था हो जाये। वहाँ की एक संस्था से यह अनुरोध किया तो वह तैयार हो गयी। फिर नयी परेशानी आ गयी। प्रभावितो के जोड इतने कडे हो गये थे कि शरीर मुड नही सकता था। ट्रेन मे वो आ नही सकते थे। एम्बुलेंस तलाशी गयी पर फिर भी बिना तकलीफ उन्हे लाना सम्भव नही था। इस तरह सारी योजना धरी की धरी रह गयी। अंतिम विकल्प के रुप मे कलम की ताकत को आजमाया तो वह काम आ गयी। मैने बहुत से लेख लिखे जिन्हे स्थानीय समाचारो ने प्रकाशित किया। वहाँ की संस्था ने बताया कि इससे प्रशासन की नीन्द खुली और देर से ही सही पर कुछ प्रयास हुये। प्रभावितो के लिये उपयुक्त औषधीय वनस्पतियो के मेरी तलाश अभी भी जारी है।

इसके बाद वानस्पतिक सर्वेक्षणो के सिलसिले मे राज्य के उस हिस्से मे भी जाना हुआ जहाँ आर्सेनिक (सीसा) की समस्या है भूमिगत जल मे। वहाँ भी कमोबेश ऐसे ही हालात है। वहाँ दरियादिल ओझा तो नही मिला पर अपनी समस्याओ के लिये अज्ञात बुरी शक्तियो को जिम्मेदार मानकर प्रभावित जी रहे है। उन्हे लगता है कि जब इनका बुरा प्रभाव कम हो जायेगा, सारी तकलीफे अपने आप खत्म हो जायेंगी। उनके दर्द भरे जीवन को देखकर मेरी हिम्मत नही हुयी कि मै उनके इस विश्वास को अन्ध-विश्वास ठहराऊँ। वे इस घोर कष्ट भरे जीवन मे भी आशा की ज्योत जगाये हुये है। काश! मेरा ज्ञान कुछ कर पाता। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

मेरा ड्रायवर जैसे ही एक तालाब मे नहाने के लिये बढा स्थानीय लोगो ने उसे रोक दिया और कहा कि इस तालाब मे मत नहाओ, नही तो पागल हो जाओगे। यह बात मुझे खटकी। मैने इस बारे मे विस्तार से जानना चाहा तो लोगो ने जानकारी होने से मना कर दिया। बस इतना ही कहा कि बुजुर्गो ने हमे चेताया है इसलिये हम इसका पालन करते है और निस्तारी के लिये इसका प्रयोग करते है। हम अपने जानवरो को भी इसमे नही जाने देते है। क्या कभी कोई सचमुच पागल हुआ है? इंसान न सही कोई जानवर ही? मैने पूछा पर लोगो के चेहरे मे आ रहे भावो से समझ गया कि पुरानी मान्यताओ के आधार पर ऐसा माना जा रहा है। एक बार तो मन हुआ कि पानी मे कूद पडूँ और इस मान्यता को झुठला दूँ पर दूसरे ही पल सोचा कि लोगो की भावनाओ को आहत करना ठीक नही है। ड्रायवर भी कुछ सहमा-सा दिखा। हम फिर से आने की बात कहकर आगे बढ गये। मैने अपने डेटाबेस मे एक और तालाब का नाम जोड लिया। पिछले एक दशक से भी अधिक समय से मै छत्तीसगढ के ऐसे तालाबो और पोखरो की सूची तैयार कर रहा हूँ जिनसे इस तरह की बाते जुडी हुयी है। छत्तीसगढ के इतिहासकारो ने भी ऐसे तालाबो के विषय मे लिखा है पर मुश्किल यह है कि इस जानकारी को अपडेट नही किया गया है। इतिहासकारो द्वारा प्रकाशित ग्रंथो के आधार पर उनके बताये स्थानो मे मै अक्सर जाता रहता हूँ पर ज्यादातर निराशा ही हाथ लगती है। मसलन दुर्ग जिले मे एक तालाब का जिक्र मिलता है जिसमे नहाने से लोग पागल हो जाते थे। इसे "बहया तालाब" अर्थात पागलो का तालाब कहा जाता था। कोई इसमे नहाता नही था। मैने जब उस स्थान पर जाकर तालाब की पूछ-परख की तो वह तालाब नही मिला। लोग मेरी बातो को सुनकर हँसने लगे। कुछ जानकारी नही मिली पर यह भी एक जानकारी थी। मैने इसे अपने डेटाबेस मे दर्ज कर लिया।

मेरे एक पत्रकार मित्र ने एक खबर प्रकाशित की थी कि राजधानी से सौ-सवा सौ किमी की दूरी पर एक तालाब है जिसमे नहाने से श्वेत कुष्ठ (ल्यूकोडर्मा) के रोगियो को लाभ होता है। गाँव के लोग जल का प्रयोग नियमित करते है पर शहर के लोग पीपो मे जल भरकर ले जाते है। मै खोजता-खोजता उस तालाब के पास पहुँच ही गया। पुरानी पीढी के लोगो ने इस बात की पुष्टि की। उन्होने कहा कि आँतरिक दवाओ के साथ इस जल का उपयोग उपचार मे मदद करता है। पर केवल इस जल के प्रयोग से रोगी को लाभ नही मिलता है। उन्होने यह भी कहा कि धीरे-धीरे इसका असर कम होता जा रहा है। उनके बचपन मे इसका असर अधिक था। आमतौर पर ऐसा माना जाता है कि जिन जल स्त्रोतो मे त्वचा रोग को ठीक करने की क्षमता होती है, उसमे गन्धक (सल्फर) की मात्रा होती

है। यही मात्रा उपचार मे अहम भूमिका निभाता है। मुझसे भी जब लोग इसका वैज्ञानिक कारण पूछते थे तो मै यही रटारटाया जवाब दे देता था।

छात्र जीवन मे जब मैने इन्द्रावती नदी के किनारे लम्बी यात्रा की तो साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक ने निर्मली के पुराने पेड दिखाये और बताया कि माँ प्रकृति ने अनोखी व्यवस्था कर रखी है। इसके फल गिरते है और पानी को साफ करते जाते है। इस तरह सदियो से नदी साफ है। कुछ वर्षो पहले मै फिर उसी भाग मे गया तो मुझे निर्मली के पेड नही दिखे। विकास के नाम पर इन्हे काट दिया गया था। बहुत से पेड जलाऊ लकडी के रुप मे उपयोग कर लिये गये। बचे हुये पेड फल तो पैदा कर रहे थे पर उन्हे एकत्र कर लिया जा रहा था क्योकि औषधी के रुप मे उसकी माँग बढती जा रही है। अब नदी साफ कैसे हो? जो लोग इस नदी को दशको से देख रहे है वे इसकी स्वच्छता मे आये अंतर को साफ देख पा रहे है। आज बस्तर मे इस नदी के पास एक बडा भारी स्टील प्लांट लगने वाला है। नदी का दूषित होना तय है। ऐसे मे निर्मली की कमी बहुत खल रही है। अब तो बचे हुये भाग मे निर्मली के व्यापक रोपण की जरुरत है ताकि भावी पीढी को थोडा साफ ही सही पर पीने लायक पानी तो मिल सके। औद्योगिक इकाईयाँ लगाने वाले तो खानापूर्ति के लिये यूकिलिप्टस जैसे विदेशी पेडो को रोप देंगे। नदी साफ रहे या नही, इससे उन्हे क्या?

मधुमेह के पारम्परिक ज्ञान के विषय मे पारम्परिक चिकित्सको से चर्चा करते समय मुझे रोग की अन्तिम व्यवस्था मे प्रयोग की जाने वाली वनस्पतियो के साथ नदियो के जल के लाभकारी गुणो की जानकारी मिली। मूल पारम्परिक ज्ञान मे सुबह की औषधी लेने के बाद रोगी को पैरी नदी का ताजा जल देने की बात बतायी गयी। दोपहर मे महानदी और शाम को इन्द्रावती नदी का। ये नदियाँ उस स्थान से दूर थी जहाँ के पारम्परिक चिकित्सक इस विषय मे बता रहे थे। उन्होने छत्तीसगढ की 50 से अधिक छोटी-बडी नदियो और तालाबो के जल के औषधीय गुणो को बताया और सलाह दी कि अच्छे वैद्य को इन स्त्रोतो से लाये गये जल को वर्ष भर प्रयोग के लिये सुरक्षित रखना चाहिये। क्या पता कब जरुरत आन पडे। अपने देश मे गंगा जल ही आम तौर पर लोग घरो मे रखते है। जल एक समान दिखे पर इसकी तासीर अलग-अलग होती है। उन्होने बताया कि पैरी नदी मैनपुर के पास से निकलती है तब वहाँ उसके औषधीय गुण अलग होते है। जब वह बारुका के पास आती है तो एकदम अलग हो जाते है और जब राजिम मे महानदी के साथ मिलती है तो फिर बदल जाते है। मैने उन्हे इन्द्रावती और निर्मली के सम्बन्ध मे सुनी गयी बाते बतायी तो वे बोले कि केवल एक वनस्पति का योगदान नही होता। बहुत

सी वनस्पतियाँ और मिट्टीयाँ ये भूमिका निभाती है। फिर भी माँ प्रकृति की व्यवस्था को इतनी आसानी से नही समझा जा सकता। प्राकृतिक व्यवस्था को उजाडकर उसके बदले कुछ पेडो को रोपकर भले ही आधुनिक मानव सोच ले कि उसने उस जगह को फिर आबाद कर दिया पर वास्तव मे ऐसा नही होता। माँ प्रकृति की व्यवस्था को जब फिर से स्थापित नही किया जा सकता तो सही कदम यही है कि उसे छेडा ही न जाये।

ऊपर मैने मूल पारम्परिक ज्ञान मे नदियो के जल के प्रयोग की बात कही है। व्यवहारिक जीवन मे इसका उपयोग नही होता है। आमतौर मे कुए के जल के प्रयोग की सलाह दे दी जाती है। अब सभी रोगियो के बस की बात तो है नही कि वे अलग-अलग नदियो का जल एकत्र करे। कोई सम्पन्न रोगी यह कर भी ले तो जल की घटती गुणवत्ता से पारम्परिक चिकित्सक चिंतित है। लोग बढ रहे है, जंगल कम हो रहे है और बची-खुची कसर औद्यौगिक इकाईयाँ निकाल रही है। मूल पारम्परिक ज्ञान व्यवहार मे नही है। मेरे डेटाबेस मे है पर जब नदियाँ ही नही बचेंगी तो यह ज्ञान आगामी पीढी के लिये भला क्या काम आयेगा?

पागल कर देने वाले तालाबो के विषय मे पारम्परिक चिकित्सको का अपना मत है। वे कहते है कि ऐसे तालाबो के आस-पास उपस्थित पेड जल को प्रभावित करते रहे होंगे। उन्होने बेल का उदाहरण दिया। बेल के सभी फल और सभी पेड एक जैसे नही होते है। कुछ फलो को खाने से दिमागी तौर पर नुकसान हो सकता है। ऐसे फलो को स्थानीय भाषा मे ‘मताये बेल’ कहते है। जब ऐसे पेड किसी तालाब के आस-पास बडी मात्रा मे होते है और उनकी शाखाए, पत्तियाँ, फल आदि तालाब मे साल भर गिरते रहते है तो जल की गुणवत्ता प्रभावित होती है। ऐसे दो सौ से अधिक प्रकार के पेडो के बारे मे जानकारी है उनके पास। आमतौर पर पीपल, डूमर और बरगद को ही तालाबो के पास लगाया जाता है। ये जल को शुद्ध करते है। बहुत से जंगली पेड ऐसे फल पैदा करते है जो मछलियो के लिये अभिशाप बन जाते है। बुजुर्ग कभी भी ऐसे पेडो को तालाबो के आस-पास उगने नही देते है। आजकल वे भी बेबस है क्योकि सरकार तालाबो के किनारे रतनजोत लगा रही है जो जहरीला पौधा है। इसके फल मछलियो और मनुष्यो के लिये अभिशाप है।

पारम्परिक चिकित्सको ने कहा कि जब भी ऐसे तालबो के पास जाओ जिनसे पागल होने की बात जुडी हो, आस-पास घूमकर वनस्पतियो की जानकारी एकत्र करो। जवाब अपने आप मिल जायेगा। बहुत से मामलो मे यह सीख काम आयी पर कुछ मामलो मे कारण समझ नही आया। कल ही मै अपना डेटाबेस देख रहा था। अभी तक राज्य के सैकडो तालाबो और दूसरे जलस्त्रोतो के विषय मे जानकारी एकत्र हो चुकी है जो 40 से अधिक

मानव रोगो और 15 से अधिक पौध रोगो की चिकित्सा मे उपयोगी माने जाते है। बहुत से ऐसे तालाबो की जानकारी है जहाँ रजस्वला महिलाओ का नहाना प्रतिबन्धित है। बहुत से तालाबो के विषय मे यह जानकारी उपलब्ध है कि किस मौसम मे दवा के लिये जल का एकत्रण किया जाना चाहिये और किस मौसम मे नही। इस ज्ञान का कोई अंत नही दिखता है।(क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“अरे! ये रेखा कब बनी? यह तो आपके अन्दर की ऊर्जा की प्रतीक है। जल्दी ही आपको बहुत अर्थ लाभ होने वाला है। कोई बडा पुरुस्कार भी मिल सकता है।“ हस्तरेखा विज्ञान मे रुचि रखने वाले मेरे मित्र दायी हथेली को देख कर जाने क्या बडबडा रहे थे। मुझे इस विज्ञान मे कम ही विश्वास है। पर मीठी-मीठी बाते सुनना किसे पसन्द नही है। इसलिये मै उनकी बाते सुन रहा था। जब उनकी बाते पूरी हुयी तो मैने कहा कि पहले मै कलम से शोध आलेखो को लिखा करता था फिर बाहर से इन्हे टाइप करवाता था। अब तो कम्प्यूटर पर ही सारा काम खुद करता हूँ। अभी मधुमेह की रपट चल रही है। दिन मे बीस घंटो तक माउस पकडने से हथेली मे फोल्डस बनना तो स्वावभाविक है। आप हथेली के जिस भाग को बुध पर्वत कह रहे है और जिस पर बनी तीन गहरी रेखाओ की बात कर रहे है मै उन्हे “माउस रेखा” कहना अधिक पसन्द करुंगा। मेरी उलाहना भरी बातो को सुनकर वे बिफर पडे और बोले कि तुम कहते हो कि दो साल मे मधुमेह की रपट पूरी करोगे और फिर अगले बीस सालो मे ह्रदय और कैसर रोगो पर लिखते रहोगे। यह योजना किस आधार पर बनायी है तुमने? यदि ज्योतिष पर विश्वास नही है तो इतनी लम्बी योजना पर काम कैसे कर रहे हो? हो सकता है कल ही आपको ऊपर बुला लिया जाये, फिर तो सारे किये धरे पर पानी फिर जायेगा। दुनिया रपट देखेगी पर कोड समझ नही पायेगी। क्या मतलब है ये लाखो पन्ने और सैकडो जीबी की रपट तैयार करने का???? मित्र का प्रश्न सही था। ज्योतिषीय भविष्य़वाणी ही आधार है जिसके बूते पर मै आश्वस्त हो जाता हूँ कि अभी कम से कम बीस साल है मेरे पास। सारी कार्य योजना उसी आधार पर बनी है। पर इसका कोई वैज्ञानिक आधार नही है। मित्र ने एक बार फिर

सच से रुबरु कराया है। इस आधार पर सोचे तो मुझे अभी काम फैलाने की बजाय समेटना होगा और हर रपट के रहस्यो को लिख देना होगा ताकि मेरे बाद यह दुनिया के काम आ सके। विषय गंभीर होते देख मैने मित्र से हार मान ली और पूछा कि बोलो, भविष्य बताने के बदले मे क्या चाहिये? वह तपाक से बोला कि इस बार 'परसा यात्रा' मे साथ ले जाना होगा। मैने हामी भर दी। छत्तीसगढ मे परसा पलाश को कहते है। मैने अपने शोध आलेखो मे 'परसा यात्रा' के विषय मे बहुत लिखा है पर आपके लिये एक बार फिर कुछ जानकारियाँ देता हूँ।

होली के आस-पास हर वर्ष 'परसा यात्रा' मे मै निकलता हूँ। इस समय पलाश के फूल से जंगल मे बहार रहती है। यात्रा का उद्देश्य देश के विभिन्न भागो मे घूमकर पलाश से सम्बन्धित जानकारियो का आदान-प्रदान करना होता है। पलाश से जुडे जीवो पर भी चर्चा होती है। सबसे पहले 1994 मे मैने यह यात्रा की थी। उस समय मै कुछ मित्रो के साथ पैदल गया था। दिन मे हम पलाश के बारे मे चर्चा करते हुये आगे बढते और रात मे गाँव मे विश्राम करते। जिससे जो सुनते उसी रुप मे अपने पास दर्ज कर लेते। बाद मे यह यात्रा गाडी पर होने लगी। इससे मै एक दिन मे अधिक दूरी तय कर पाता था। बाद के कई वर्षो मे 'परसा यात्रा' मे मै और मेरा ड्रायवर ही होते थे। तीन वर्षो तक बीस पारम्परिक चिकित्सको के साथ पैदल और गाडियो से भ्रमण किया। जब कैमरा हाथ मे आया तो इस यात्रा की उपयोगिता बढ गयी। सब कुछ रिकार्ड के रुप मे दर्ज होने लगा। पलाश हमारे ग्रामीण जीवन से गहरे जुडा है। इसके सभी भागो के विषय मे जनसाधारण के पास जानकारियो का अम्बार है। न केवल वे इसका औषधीय उपयोग जानते है बल्कि इसके प्रयोग से वे जैविक खेती मे फसलो को कीटो और रोगो से बचाने के लिये कीट नाशक भी बनाते है। जनसाधारण की जानकारियो को एकत्र कर मैने पन्ने रंगने आरम्भ किये। यह क्रम अब तक जारी है। हर यात्रा मे नयी जानकारी मिलती है। हमे भी और जानकारी देने वालो को भी। लोग मुझसे दूसरी जगहो से एकत्र की गयी जानकारियाँ प्राप्त करते है और फिर इन्हे आजमाने का अश्वासन देते है। हाल के वर्षो मे ज्यादा समय लिखने के कार्य मे व्यतीत होने के कारण 'परसा यात्रा' एक औपचारिकता बनती जा रही है। इस वर्ष से मै फिर से इसे अपने मूल स्वरुप मे आरम्भ करने का मन बना रहा हूँ।

अन्य पेडो की तरह पलाश से जुडे बहुत से अन्ध-विश्वासो की जानकारी मुझे इन यात्राओ के दौरान मिली। अक्सर गाँव से दूर उग रहे पलाश को भूतो का अड्डा मान लिया जाता है। लोग वहाँ जाने से डरते है। पुष्पन के समय तो वे शाम को वहाँ जाना ही नही चाहते। एक बार मुझे गाँव से दूर एक ऐसा स्थान दिखाया गया जहाँ केवल पलाश के ही पेड थे।

दिन मे लोग वहाँ चले जाते थे पर शाम होने से पहले लौट आते थे। उनका कहना था कि रात को रुकना मतलब मौत को आमंत्रण। उस वर्ष दो पारम्परिक चिकित्सक इस यात्रा मे साथ मे थे। हम दिन मे उस स्थान पर गये तो हमे कुछ विशेष नही दिखा। हाँ, लंगूर बहुत थे वहाँ। शाम को जब हम वहाँ जाने लगे तो गाँव वालो ने रोक दिया। फिर भी प्रकाश की व्यवस्था करके हम पहुँचे ही गये। रात मे भी कुछ विशेष नही दिखा। पेडो पर जब हमने प्रकाश डाला तो बहुत से कीट-पतंगे दिखे। फूल आने पर उनका वहाँ दिखना स्वावभाविक था। पेडो पर नाना प्रकार की चिडियो का भी डेरा था। उल्लू उस भाग मे सक्रिय थे। अचानक हमारी नजर एक जहरीले साँप पर पडी। लोगो ने इसे “परसा डोमी” अर्थात पलाश मे रहने वाला कोबरा कहा। निश्चित ही यह जहरीला था। कुछ देर रुकने पर हमे कई ऐसे सर्प नजर आये। वे सभी सक्रिय थे। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको ने बताया कि फूल आने के समय इनकी संख्या अचानक से बढ जाती है। मेरा अनुमान था कि सामन्यतया वर्ष के इस भाग मे सर्प नही दिखते है। हम वापस लौट आये पर सर्पो के अलावा हमे कोई ऐसा कारण नही मिला जिससे डरा जाये। हमने गाँव वालो को इसके बारे मे बताया पर उनका डर नही गया।

छत्तीसगढ मे बहुत से गाँवो के नाम पलाश के नाम पर है। जैसे परसाडीह, परसापानी, परसाटोला आदि। इन गाँवो मे पलाश के पेड अधिक रहे होंगे जिसके कारण इनका नाम पलाश पर रखा गया। आज ज्यादातर ऐसे गाँवो के नाम बस रह गये है। जलाऊ लकडी के नाम पर पलाश को अन्य पेडो की तरह काटा जा रहा है। पलाश की संख्या तेजी से कम हो रही है। मैने अपने सर्वेक्षणो के दौरान यह देखा है कि पलाश के नाम वाले गाँवो मे भले ही पलाश कम हो गये हो पर यहाँ इसके विषय मे जानकारी अन्य गाँवो की तुलना मे अधिक होती है। इन गाँवो के पारम्परिक चिकित्सक पलाश का प्रयोग प्रमुखता से करते है। एक बार पलाश के उपयोग मे महारत रखने वाले पारम्परिक चिकित्सको ने बडी ही रोचक बात बतायी। यह बात पलाश के जड के पास की मिट्टी की उपयोगिता के बारे मे थी। उनका कहना था कि बन्दर जब गल्ती से गरम तासीर वाला कोई फल खा जाते है या माँस भक्षण कर लेते है तो पलाश के जड के पास की मिट्टी ले जाते है। पर उसका क्या उपयोग करते है, यह पता नही चलता। इन पारम्परिक चिकित्सको ने कई बार मिट्टी ले जाने वाले बन्दरो का पीछा किया पर सफलता हाथ नही लगी। थकहार कर उन्होने इस मिट्टी को अपने ऊपर आजमाया। पहले इसका लेप शरीर पर लगाया पर विशेष लाभ नही मिला विशेषकर गरम तासीर का भोजन करने के बाद। फिर उन्होने इसे अल्प मात्रा मे खाकर देखा। कुछ लाभ मिलने पर उन्होने इसे वनस्पतियो के साथ उपयोग करके देखा। इस प्रयोगधर्मिता के चलते धीरे-धीरे उन्होने नयी औषधी तैयार कर

ली। यह मेरे लिये सर्वथा नयी जानकारी थी। पारम्परिक चिकित्सक आज भी इसका प्रयोग करते है। बन्दर के ऊपर वैसे ही उनकी आस्था है पर इस घटना के बाद तो वे बन्दरो के लिये जंगली फल रखने लगे है उन्हे धन्यवाद देने के लिये। बन्दर बेझिझक आते है और फल स्वीकार करते है। कुछ पारम्परिक चिकित्सक अनजान फल भी रख देते है फिर बन्दरो की प्रतिक्रिया देखते है, इस आशा मे कि और नयी जानकारी मिल जाये।

'परसा यात्रा' के दौरान कई बार अन्य उपयोगी जानकारियाँ भी मिल जाती है। एक बार पुराने सिक्को के ज्ञाता बुजुर्गजन से मुलाकात हो गयी। वे पास की पहाडी पर पुरातत्व महत्व की वस्तुए और सिक्के दिखाने की जिद करने लगे। मेरी इसमे रुचि नही थी। मैने यह जानकारी लिख ली और उनसे हाथ जोडकर क्षमा माँग ली। 'परसा यात्रा' से मिली जानकारियो ने यह जता दिया कि यदि कोई मनुष्य एक प्रजाति के पेड के ही अलग-अलग पहलुओ पर अध्ययन करने मे जुट जाये तो कई जन्मो मे भी उसे पूरी तरह शायद ही जान पाये। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

मित्र के दादाजी नब्बे साल के हो गये। उनके जन्मदिन के अवसर पर पूजा-पाठ रखा गया। उनके पारिवारिक गुरु आये। मुझे भी इस कार्यक्रम मे आमंत्रित किया गया। मुझे बताया गया था कि पूजा-पाठ के बाद भी उसी स्थान मे बैठे रहना है। लोग उठ कर जाये तो उन्हे जाने दिया जाये। अंत मे जो "अपने" लोग बचेंगे उनके सामने गुरु जी एक तोहफा देंगे। वे हिमालय से लम्बी साधना के बाद इस तोहफे को लाये है। मुझे यह जानकर अच्छा लगा कि मै भी मित्र के "अपनो" मे शामिल था। कार्यक्रम वाले दिन मै जानबूझकर कुछ देर से पहुँचा ताकि ज्यादा देर न बैठना पडे। मित्र मेरे पास आ गया। गुरु जी पर मेरी नजर पडी तो चेहरा जाना-पहचाना लगा। मै किसी निष्कर्ष तक पहुँचता उससे पहले मित्र बोल पडा कि अरे, ये फलाँ बाबा है जो रोज टीवी पर आते है। ओह, तभी यह चेहरा जाना-पहचाना लगा-मै बुदबुदाया। पर टीवी मे तो वे चमत्कारिक पुरुष

लगते है। यहाँ सामने ऐसा लग रहा था जैसे किसी साधारण पुरुष को देख रहा हूँ। जो चीज उन्हे असाधारण बना रही थी वह थी लोगो का उनके पास जाना और चरणो मे गिर जाना। मैने दूर से ही प्रणाम किया। सोचा कि बाद मे अकेले मे जब मिलूंगा तो चरण स्पर्श कर लूंगा। पूजा-पाठ के बाद सब उठने लगे और केवल “अपने” ही बच गये। अब गुरु जी ने दादाजी को पास बुलाया। उनके सिर पर हाथ रखकर कुछ बुदबुदाने लगे। इस बीच एक बडी सी पेटी दादा जी के बगल मे रख दी गयी। पेटी के आते ही गुरु जी की सक्रियता बढ गयी। उनके चेलो ने कैमरे बन्द करवा दिये और मोबाइल से तस्वीरे खीचने पर पाबन्दी लगा दी। गुरु जी ने एक डिबिया निकाली और सबको दिखायी। फिर उसे खोला तो सभी निगाहे उस पर ठहर गयी। डिबिया बन्द कर दी गयी और दादाजी से कहा गया कि इसे ऐसे स्थान मे रखिये जहाँ कोई देख न पाये। दीपावली के दिन इसकी पूजा करिये। यह आपको कभी विपन्न नही होने देगा। आपके पूरे खानदान का पीढीयो तक नाम रहेगा। सभी की आँखो मे आस्था उमड आयी। फिर दादाजी ने पेटी खोली। उसमे लाखो रुपये थे। पेटी गुरुजी को दे दी गयी। अरे, इसकी जरुरत नही है-गुरु जी ने कहा। इस पर दादाजी ने कहा कि ये तो आपके उपहार के सामने कुछ नही है। फिर दादाजी को पास बिठाकर गुरुजी इसे कैसे प्राप्त किया? इस पर किस्से बताते रहे। परिवारजन पास जाकर डिबिया देखना चाह रहे थे। सबसे आखिर मे मित्र डिबिया मेरे पास ले आया और बोला कि बोल तेरा क्या कहना है? दादाजी ने इतने सारे पैसे इस बाबा को दे दिये। यह सही है कि नही? अब मुझे समझ आया कि मित्र ने “अपनो” की सूची मे मुझे क्यो शामिल किया था।

मैने देखते ही कहा, यह तो सियार सिंगी है। आवाज कुछ तेज थी शायद। गुरु जी ने सुन लिया और लगभग चीख कर बोले कि इस मूर्ख इंसान को कौन यहाँ लेकर आया है? यह सियार सिंगी नही, शेर सिंगी है। मेरे चेहरे पर क्रोध के भाव को देखकर मित्र समझ गया। वह मुझे बगल के कमरे मे लेकर गया और विस्तार से सब कुछ जानना चाहा। मैने उसे बताया कि डिबिया मे सिन्दूर भरा है और सींग के टुकडे जैसी कोई चीज है। इसे गुरुजी शेर सिंगी कहकर ठग रहे है। शेर सिंगी मतलब शेर के सींग। हम सभी जानते है कि शेर के सींग नही होते है। पर तांत्रिको की दुनिया मे शेर के सींग होते है। सभी शेरो के नही। केवल बूढे शेरो के वो भी किस्मत से। तांत्रिक दावा करते है कि ये सींग वाले शेर उन्होने देखे है। सींग सिर पर न होकर पीठ पर होती है। यह भी दावा किया जाता है कि ऐसे शेर दिव्य शक्ति के धनी होते है। वे पेड के ऊपर शिकार को जैसे ही देखते है, इस नजर से शिकार अपने आप जमीन पर गिर जाता है। इस तरह उसे शिकार पकडने की जरुरत नही पडती है। मेरा मित्र न केवल ध्यान से यह सब सुन रहा

था बल्कि अपने मोबाइल मे रिकार्ड भी कर रहा था। मुझे वही छोडकर वह अपने पिता के पास गया जो गुरुजी की बात सुन रहे थे। उन्हे मेरी बाते सुनायी तो वे बोल पडे कि यही बात तो गुरुजी भी कह रहे थे। इतना कहकर वे भी बगल के कमरे मे आ गये। मैने कहा, अंकल, यह सरासर ठगी है। पहले तांत्रिक सियार सिंगी बेचा करते थे। जैसी बाते शेर के साथ जोडी गयी है वैसी ही बात सियार के साथ जोडी गयी थी। ये लोग हिरण या बारहसिंगे के सींग के हिस्से को सिन्दूर मे लपेटकर ले आते है और दावा करते है कि सिन्दूर के प्रभाव से यह सींग बढती रहेगी। सींग का बढना धन का बढना है। दरअसल सींग की पहचान छुपाने के लिये उसे सिन्दूर मे लपेटा जाता है। जंगलो के आस-पास सियार सींगी बनाने का कुटिर उद्योग आपको दिख जायेगा। वहाँ अलग-अलग गुणवत्ता के उत्पाद मिल जायेंगे। प्लास्टिक की डब्बी से लेकर सोने की डिबिया तक। जब सियार सिंगी की बाढ आ गयी तो अपने आप को अधिक महत्वपूर्ण बताने के लिये शेर सिंगी का हल्ला मचा। अभी यह अमीरो को ही दिया जा रहा है। माल वही है, नाम नया दिया गया है। ये सीधे-सीधे वन्य प्राणी अधिनियम का उल्लन्घन है। इस तरह की व्यवसायिक होड अधिक संख्या मे अवैध शिकार के लिये उत्तरदायी कारणो मे से एक है। गुरु जी यदि सींग को साफ करने का मौका दे तो मै बताऊँ कि यह किस प्राणी का है और हिमालय मे मिलता है कि नही। दादाजी ने जितने पैसे इस ठग को दिये है उससे तो सैकडो लोगो को एक दिन का भरपेट भोजन मिल जाता। गरीब नारायण का आशीर्वाद सचमुच उनके पूरे खानदान को कई पीढीयो तक सुखी रख सकता है। भले ही आप लोगो को खाना न खिलाये पर कम से कम इस ठग को यह पैसा न दे। बाप-बेटे आपस मे चर्चा करने लगे। घर के कुछ और सदस्यो को बुला लिया गया।

मैने सियार सिंगी बेचने वालो को बहुत बार पकडा है। छत्तीसगढ मे जंगली इलाको से लोग अक्सर ऐसी तांत्रिक महत्व की चीजे ले आते है और किस्से गढकर जितने दाम मिल जाये उसी मे मोल-भाव करके बेच देते है। शहर के पढे-लिखे लोग उनके शिकार होते है। गाँव के लोग तो झट से असलियत जान जाते है। बडी गाडियो को निशाना बनाया जाता है। धन लाभ की बात जैसे ही कही जाती है शहर के पढे-लिखो को पता नही क्या हो जाता है। शार्ट-कट के चक्कर मे वे पैसे गँवा देते है। राज्य के एक पर्यटन स्थल पर ऐसे ही एक तांत्रिक ने मुझसे कहा कि मामा, सियार सिंगी ले बे? मैने मजाक मे कहा, और ऊँचा वाला माल नही है क्या? वो बोला, शेर सिंगी है ना। एक हजार एक मे दूंगा। अब वह हिन्दी मे बोलने लगा। उसने कहा कि अभी गरियाबन्द के पास से एक शेर से ताजा-ताजा सींग लाया हूँ। मुझे हँसी आयी कि लो, छत्तीसगढ मे भी सींग वाला शेर आ गया। मैने पूछा, सिह का सींग है कि बाघ का? उसने कहा कि बब्बर शेर (सिह)

का। वह फँस चुका था। मैने कहा, बब्बर शेर तो यहाँ होता नही है। बाघ होता है। वह समझ गया। खिसियाकर बोला, नही लेना है तो सीधा बोलो ना। क्यो टेम खराब करते हो। फिर वह आगे बढ गया। पर जाते-जाते कह गया कि दो सौ एक मे लेना है तो बोलो। फाइनल। इसी दो सौ मे भी महंगे शेर सिंगी के गुरुजी लाखो ले रहे थे दक्षिणा मे। चलिये अब वापस लौटते है।

घर वालो ने आपस राय बनाकर मुझसे ही कुछ उपाय सुझाने को कहा। हमने गुरुजी को रंगे हाथो पकडने की योजना बनायी। बार-बार सभी सदस्यो ने उनसे पूछा कि क्या यह दुर्लभ है? उन्होने कहा कि बहुत दुर्लभ और मेरे पास ही है। एक मैने अपने लिये रखा है और दूसरा आपको दिया है। इस चर्चा के बाद मेरा नाटकीय प्रवेश हुआ। मै दौडकर आया और गुरुजी के चरणो मे लोट गया। उनसे कहा कि इस मूर्ख को भी कुछ ज्ञान दीजिये। अपने को रत्नो का व्यापारी बताया और अपनी समस्याओ के समाधान के लिये बगल के कमरे मे एकांत मे चर्चा करने के लिये उन्हे तैयार कर लिया। अब कमरे मे चर्चा शुरु हुयी। मैने अपने आप को रत्नो का व्यापारी कह तो दिया था पर मेरे बदन पर एक भी रत्न नही था। अंगूठी तक नही। कपडे भी साधारण थे। सस्ता वाला मोबाइल था। पर गनीमत है इसपर उनका ध्यान नही गया। इधर-उधर की बातो के बाद मैने प्रस्ताव रखा कि 12 लाख प्रति शेर सींगी के हिसाब से यदि वे बीस शेर सींगी दिलवा दे तो मै आपका आभारी रहूंगा। गुरुजी को एकाएक मेरी बातो पर विश्वास नही हुआ। उनका मूर्ख जातक अचानक ही खरीददार बन गया था। मैने कहा कि रुपये पहुँचा दिये जायेंगे पर एक बार माल दिखा दे। उन्होने झट से शिष्य को बुलाया और कान मे कुछ कहा। शिष्य चला गया और एक सन्दूक लेकर लौटा। उस सन्दूक मे बीस क्या पचासो शेर सींगी की डिबिया थी। लालच बुरी बला है। गुरुजी पीछे पड गये कि कम से कम तीस खरीदो।

मुख्य हाल से सभी लोग यह सब सुन रहे थे। दादाजी भी। भांडा फूट चुका था। जब तक गुरुजी मुझसे बात करके निकले परिवारजनो ने लाखो रुपयो से भरी पेटी वापस अपने कब्जे मे ले ली थी। दादाजी ने मोर्चा सम्भाला। आशा के विपरीत वे विनम्र होकर गुरुजी से बोलते रहे। उन्होने शेर सिंगी लौटा दिया। और हाथ जोडकर कहा कि अब प्रस्थान करे। गुरुजी को कुछ समझ नही आया। अभी तक जो शेर सिंगी उन्हे अमीर बना रहा था वह आज कैसे उल्टा काम कर गया। उन्होने मेरे साथ चलने की बात की। मैने उन्हे बता दिया कि असलियत क्या है। वे क्रोधित हो गये। गालियाँ देने लगे। आप माने या न माने पर उस समय मुझे उनके सिर पर दो सींग साफ-साफ दिखायी दे रहे थे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

ॐ नमः सुरभ्यः बलजः उपरि परिमिलि स्वाहा।

इस मंत्र का दस सहस्त्र बार विधिपूर्ण जप करने के बार तांत्रिक ने मुझे फोन किया कि साहब आ जाइये, तैयारी पूरी हो गयी है। उसकी ओर से तो तैयारी पूरी थी पर मुझे एक वनस्पति खोजनी थी। मै निकल पडा जंगल की ओर। साथ मे पारम्परिक चिकित्सक भी हो लिये। हमे ऐसी वनस्पति की तलाश थी जो बहेडे के पेड के ऊपर आंशिक परजीवी की तरह उग रही हो। इसे बहेडे का बान्दा कहा जाता है। आपने महुये के बान्दा के विषय मे पिछले लेख मे पढा है। मुझे इस बान्दे की पहचान थी। मैने झट से गाडी एक पहाडी की तलहटी मे रुकवा दी और साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको को बान्दा दिखा दिया। अब बहुत सारे विशेषज्ञ होंगे तो कुछ समस्या तो होगी ही। पारम्परिक चिकित्सको ने कहा कि यह बहेडे का असली बान्दा नही है। मैने कहा इसे एकत्र कर लिया जाये विधि-विधान से और फिर पारम्परिक चिकित्सको के बान्दे की तलाश मे निकला जाये। शाम तक हम इधर-उधर भटकते रहे। हमे तीन तरह के बान्दे मिले। दूसरी सुबह हमने तांत्रिक के पास जाने का मन बनाया।

तांत्रिक ने मंत्रो के जाप के बाद मौन धारण किया हुआ था। जब हम पहुँचे तो वह कुछ किसानो के साथ खडा था। ये वही किसान थे जिनके खेतो मे प्रयोग होना था। दो तरह की फसले चुनी गयी। एक धान और दूसरी कोदो। एक खेत को दो हिस्सो मे बाँट दिया गया। एक मे तांत्रिक का प्रयोग होना था और दूसरे भाग को ऐसे ही छोड दिया जाना था ताकि परिणामो की तुलना की जा सके। धान और कोदो की पारम्परिक खेती की जानी थी। हमारे द्वारा लाये गये बान्दे को देखकर तांत्रिक ने मेरे द्वारा एकत्र किये गये बान्दे को चुना। हम खेत तक पहुँचे। मंत्रो का जप भी शुरु हो गया। तांत्रिक ने खेत का एक किनारा चुना और उस बान्दे को मिट्टी के भीतर दबा दिया। इस तरह प्रक्रिया सम्पन्न हुयी। तांत्रिक का दावा था कि इस छोटे से प्रयास से दोनो फसलो की उपज मे बढोतरी होगी। यह बान्दे और मंत्र की चमत्कारिक शक्ति के कारण होगा। तांत्रिक ने अपने दावे

की पुष्टि के लिये एक ग्रंथ नुमा पुस्तक दिखायी। मैने ग्रंथ नुमा पुस्तक इसलिये कहा क्योकि इस पुस्तक मे जानबूझकर शब्दो का आकार बडा कर दिया गया था जिससे यह मोटी हो जाये। इस पुस्तक मे भी वही मंत्र लिखा था। सीधे-सीधे ही मै कह सकता था कि ये अन्ध-विश्वास है। भला एक बान्दा कैसे उपज बढायेगा पर मै यह उसके ही मुँह से सुनना चाहता था। इसलिये इस प्रयोग को किया। तांत्रिक के लिये भी यह पहला अनुभव था।

मैने वही बान्दा अपने लिये भी रख लिया। वापस घर लौटकर मै अपनी निजी प्रयोगशाला मे कुछ प्रयोग करना चाहता था। मैने मिट्टी के गमलो मे धान और कोदो के वही बीज लिये और उन्हे बो दिया। बोने से पहले बान्दा के सत्व से मिट्टी को सीचा। फिर जैसे-जैसे पौधे बढते रहे अलग-अलग शक्ति के सत्वो से सिंचाई जारी रही। इस प्रयोग मे कुछ गमलो को उपचार से अलग रखा गया ताकि परिणामो की तुलना की जा सके। गमलो मे मिट्टी उन्ही खेतो की थी जहाँ तांत्रिक का प्रयोग चल रहा था। मुझे इस बात का भान है कि गमले की परिस्थितियाँ खेत से एकदम भिन्न होती है पर इससे थोडी जानकारी और दिशा मिल जाती है फिर उस दिशा मे आगे बढकर बडे खेतो मे प्रयोग किये जा सकते है। साधारण जल से उपचारित बीजो और बान्दा के सत्व से उपचारित बीजो के अंकुरण मे कुछ फर्क नही दिखा। उधर खेत मे प्रयोग चलता रहा और इधर निज प्रयोगशाला मे। फसले पक गयी तो तांत्रिक का फोन आया। आवाज बुझी-बुझी थी। दूसरे दिन हम पहुँच गये। फसल कटकर रखी थी पर किसानो को कुछ अंतर नही दिखता था। उपज न ही बढी थी और न ही कम हुयी थी। घर मे रखे गमलो मे भी यही दिख रहा था। तांत्रिक का प्रयोग असफल रहा। उसने मान लिया कि अब वह किसी को इस तरह की भ्रामक जानकारी नही देगा। साथ आये पारम्परिक चिकित्सको ने सुझाया कि जब ये सब किया है तो कुछ और प्रयोग कर लिये जाये। उनका कहना था कि बान्दा संख्या मे अधिक होना चहिये और गडाने का स्थान भी उनके अनुसार होना चाहिये। इस बार मंत्रो का प्रयोग नही करेंगे सीधे ही बान्दा का उपयोग करके देखेंगे। हम सब तैयार हो गये। नया प्रयोग माने एक साल का लम्बा इंतजार।

लम्बे इंतजार के बाद फिर बरसात का मौसम आया और हम पहुँच गये बान्दा लेकर। इस बार पारम्परिक चिकित्सको ने वह स्थान चुना जहाँ से पानी खेत मे आता था। इसका साफ अर्थ था कि वे बान्दे के सत्व को पानी की सहायता से समय-समय पर फसलीय पौधो तक पहुँचाना चाहते थे। मैने इस लेखमाला मे पहले लिखा है कि कर्रा जैसी वनस्पतियो का प्रयोग बहुत से किसान इस तरह करते है। हर पन्द्रह-बीस दिन के

बाद पारम्परिक चिकित्सक बान्दे को बदलते रहे। पुराने की जगह नया बान्दा खेत मे रखा गया। एक दिन किसानो ने आश्चर्यजनक बात बतायी। उन्होने कहा कि धान की फसल मे एक विषेष कीट का प्रकोप कम हो रहा है। यह कीट आस-पास के खेतो मे तबाही मचाये हुये है पर इस खेत मे इनकी संख्या बहुत कम है। बान्दे के ऊपर सबकी निगाहे टिकी। सत्व का सान्द्रण जब बढाया गया तो तस्वीर साफ हो गयी। आस-पास के किसान हमारे पास आकर मदद की गुहार करने लगे। हमने उन्हे वनस्पति का नाम बता तो दिया पर जंगल मे यह इतनी नही थी कि इतने सारे किसानो की समस्या सुलझ पाती। बात फिर निज प्रयोगशाला तक पहुँच गयी। अधिक किसानो को लाभ पहुँचाने के लिये इसे सत्व के रुप मे विकसित करना था। इसके लिये बडे प्रयोगो की आवश्यकत्ता थी। बडे प्रयोग मायने अच्छा खासा खर्च और लम्बा समय। कृषि शोध संस्थानो से मदद मिल सकती थी पर वे भला अनपढ किसानो की क्यो सुनने लगे। यदि मै जोर लगाता तो शायद शोध संस्थान तैयार हो जाते पर इसके बाद वही होता जो अब तक होता आया है। शोध के परिणाम वापस किसानो तक पहुँचने की बजाय कम्पनियो के हाथो मे पहुँच जाते और किसान राह तकते रह जाते। इसलिये सभी ने तय किया कि अपने स्तर पर प्रयोग जारी रखा जाये। इस पर भी आम राय बनी कि कुछ समय तक इसके प्रयोग के बाद हो सकता है कि कीटो मे प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाये और इसका असर कम हो जाये। इसलिये इस वनस्पति के साथ दूसरी वनस्पतियाँ भी मिलायी जाये और भविष्य़ के लिये मजबूत हथियार तैयार रखा जाये।

हमारे नये प्रयोग से तांत्रिक कन्नी काट रहा था। उसे बुलवाया गया और प्रयोग करने वाले दल मे शामिल किया गया। आखिर उसके दावे (झूठे ही सही) के आधार पर हमने बान्दे को आजमाना शुरु किया था।

पिछले लेख पर आधारित कुछ सन्देशो पर त्वरित प्रतिक्रिया

‘ तुम्हारे लिखने से हमारा कुछ नही उखडने वाला। अरे, तुम जहाँ लिखते हो, वहाँ पढने ही कौन आता है।‘ फोन पर मुझे धमका रहे ये शख्स दिल्ली के थे। यह उनकी प्रतिक्रिया थी सियार सिंगी और शेर सिंगी (सिंगी) पर लिखे लेख पर। (इस लेखमाला की 68 वी कडी देखे) उनका कहना था कि इससे लोगो की आस्था और सियार सिंगी व शेर सिंगी के व्यापार पर जरा भी फर्क नही पडेगा। पर फोन पर उनका चीखना और धमकाना यह स्पष्ट संकेत दे रहा था कि इस लेखमाला से कुछ फर्क तो उन्हे पड रहा था। सियार सिंगी और शेर सिंगी पर केन्द्रित इस लेख पर व्यापक प्रतिक्रियाए आयी फोन और निजी

सन्देशो के द्वारा। हरियाणा से आये एक सन्देश ने मुझे प्रेरित किया कि मै इस पर एक छोटा सा लेख लिखूँ।

यह सन्देश एक गृहणी का था। उन्होने लिखा है कि मेरे पति की फैक्ट्री थी पर पिछले कुछ वर्षो से लगातार घाटा होने के कारण वे घर बैठ गये है। बाबाओ के चक्कर मे आ गये है। आज आपका लेख पढकर मुझे सियार सिंगी और शेर सिंगी के बारे मे पता चला। ये दोनो ही मेरे घर पर है। मेरे पति रोज इनकी पूजा करते है। उन्होने इन्हे बहुत अधिक दाम पर खरीदा है एक बाबा से। वे इनके साथ चावल, लौंग, उरद और दूसरी चीजे रखते है। प्रतिदिन जो कर्ज वसूलने वाले आते है उन पर ये उरद फेंक देते है। मै पूछती हूँ तो कहते है कि इन लोगो का सर्वनाश हो जायेगा। रोज की यही कहानी है। न उनका सर्वनाश होता है और न ही इनका टोटका खत्म होता है। आपसे अनुरोध है कि आप मेरे पति को समझाये। उनका फोन नम्बर है ----। बाबा का भी फोन नम्बर दे रही हूँ। आप हमारे पैसे वापस करवा सके तो हम आजीवन आपके आभारी रहेंगे।

मुझे पहले इस सन्देश पर शक हुआ। फिर दिन मे कई फोन आये। इस महिला ने मेरे एक परिचित के माध्यम से भी सम्पर्क साधा। मैने परिचित से बात की तो उन्होने कहा कि यदि मदद कर सके तो अवश्य करे, यह परिवार मुसीबत मे है।

एक और सन्देश आया जिसमे सियार सिंगी के बारे मे नयी जानकारी थी। राजस्थान से भेजा गया यह सन्देश कहता था कि उनके क्षेत्र के तांत्रिक दावा करते है कि सियार सिंगी दरअसल सियार के सिर की हड्डी है। यह हड्डी तभी दिखती है जब वह हुआ-हुआ करने के लिये सिर उठाता है। इसी समय इसे एकत्र करना चाहिये। जैसे ही हुआ-हुआ बन्द होती है यह हड्डी गायब हो जाती है। सन्देश मे पाठक आशंका जाहिर करते है कि सम्भवत: आम आदमी इसे पाने की कोशिश भी न कर सके इसलिये ऐसी बाते प्रचारित की जाती है। और इसी आड मे तांत्रिक आपने पास रखी वस्तु को असली बताकर बेच देते है।

पहले सन्देश के जवाब के रुप मे मैने फोन काट दिया। गृहणी से बाबा का नाम और इससे सम्बन्धित जानकारियाँ माँगी। उनसे यह भी पूछा कि क्या वे पुलिस मे बाबा के विरुद्ध शिकायत करने के लिये तैयार है? उनके जवाब की प्रतीक्षा है।

राजस्थान के पाठक से मै सहमत हूँ। उनकी जानकारी के लिये उन्हे धन्यवाद करता हूँ। उनसे अनुरोध है कि वे अपना नाम सार्वजनिक करे ताकि मै अपने पाठको से एक

जागरुक नागरिक का परिचय करवा सकूँ।

तंत्र की पुस्तको मे तो सियार सिंगी और शेर सिंगी पर पन्ने रंगे पडे है। इंटरनेट पर शेर सींगी पर कुछ नही है पर सियार सींगी पर जरुर कुछ व्यापारिक वेबसाइटो के पते दिखते है। मेरे लेखो के माध्यम से सियार सिंगी और शेर सिंगी (सींगी), ये दोनो अब गूगल खोज मे मिलने लग जायेंगे। उम्मीद है कि जब बाबाओ के चक्कर मे फँसे लोग इंटरनेट का सहारा लेंगे तो ये लेख उन्हे ठगने से बचा सकेंगे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

‘इसने मीठा खा लिया। देखियेगा साहब, अब ये कौवा संतो की तरह बोलेगा।“ तांत्रिक ने जैसे ही ऐसा कहा हमारे दल ने कैमरा तान लिया। दो वीडियो कैमरे थे दल के सदस्यो के पास। एक कैमरा मै रखे हुये था। पर कौवा कुछ बोले ही न। हमने आधे घंटे तक इंतजार किया फिर एक घंटे भी हुये। तांत्रिक ने फिर से उसे मीठा खिलाया पर नतीजा सिफर रहा। मीठा माने शक्कर और बबूल की गोन्द का मिश्रण। इसे मिलाने के बाद डबलरोटी के टुकडो मे इसे भिगोकर कौवे को खिलाया गया। तांत्रिक यह दावा कर रहा था कि इसे खाने के बाद कौवा प्रसन्न होकर कुछ आवाजे निकालेगा। यदि इस आवाज को ध्यान से सुना और समझा जाये तो इसमे जीवन का फलसफा मिलेगा। कौवा खाता रहा पर उसने आवाज नही निकाली। हमने पूरे नाटक का फिल्माँकन किया और अब जब भी व्याख्यान देने जाते है, सबसे पहले यही दिखाते है। न केवल बच्चो बल्कि बुजुर्गो की हँसी भी नही रुकती है। दल के सदस्यो ने इस एक लघु फिल्म का स्वरुप दे दिया है। इसमे तांत्रिक द्वारा किये गये दावे को पहले दिखाया जाता है फिर पूरी प्रक्रिया उसे करने को कहा जाता है। और जब प्रक्रिया असफल होती है तो तांत्रिक की बहानेबाजी भी दिखायी जाती है। चन्द मिनटो की ऐसी फिल्मो का गहरा असर पडता है और जो बात घंटो के व्याख्यान से नही हो पाती, वह ऐसी फिल्मो से हो जाती है।

पारम्परिक चिकित्सा मे बहुत सी वनस्पतियो को गर्भवती महिलाओ के शरीर के विभिन्न भागो मे बाँध दिया जाता है ताकि प्रसव मे आसानी हो। इस पर प्राचीन भारतीय ग्रंथो मे भी विस्तार से लिखा गया है। मैने इस पर विस्तार से पिछले लेखो मे लिखा है। एक बार उडीसा से किसी का पत्र आया कि वहाँ तांत्रिक यह दावा करता है कि बारहसींगे के सींग को यदि स्तन मे विशेष स्थान पर बाँध दिया जाये तो प्रसव सुगमतापूर्वक हो जाता है। पत्र मे कहा गया था कि आप गाँव आये ताकि दूध का दूध और पानी का पानी हो सके। ऐसे पत्रो को पाकर मन प्रसन्न होता है पर सब जगह तो जाया नही जा सकता। पत्र का जवाब न मिलने पर वहाँ से एक फोन आया। मैने गाँव का पता पूछा तो पता चला कि यह उडीसा-छत्तीसगढ सीमा पर है। कहने को उडीसा है पर गाँव मे ज्यादातर छत्तीसगढिया है। बरसात का दिन था। हमने रसेला-पतोरा वाला रास्ता चुना। एक कैमरामैन हमारे साथ था। एक उसका सहयोगी। मै और मेरा ड्रायवर, कुल चार लोग। हम सुबह से निकले । पिछली रात भारी वर्षा के कारण नदी-नाले उफान पर थे। सूखा नदी पर उस समय पुल नही था। उफनती नदी मे लोग जान-जोखिम मे डालकर डोंगियो की सहायता से नदी पार कर रहे थे। मैने अनावश्यक जोखिम लेने से इंकार कर दिया। मेरे अलावा शेष तीनो नदी पारकर तांत्रिक के पास जाने को बेसब्र थे। काफी विचार-विमर्श के बाद यह तय हुआ कि मै गाडी के पास रुक जाऊँगा और शेष लोग फिल्माँकन करने जायेंगे। वे लोग चले गये। पाँच घंटो बाद लौटे तो उनके चेहरे पर खुशी थी। उन्होने बताया कि तांत्रिक का दावा सही था। उसने यह प्रयोग करके हमे दिखाया और हमने एक-एक पल की तस्वीर ली है। मैने फिल्म देखी तो मुझे विश्वास नही हुआ। हम लोग वापस आ गये। बाद मे पारम्परिक चिकित्सको से मैने इस पर चर्चा की तो कुछ ने इसका समर्थन किया जबकि कुछ ने कहा कि हमने सुना है पर करके नही देखा है।

इस यात्रा के कई महिनो बाद औषधीय धान के विषय मे जानकारी एकत्र करने जब मै उसी क्षेत्र मे पहुँचा तो तांत्रिक की याद आयी। उसके गाँव का रुख किया। हमारे पास भेजरी धान था जो अब मुश्किल से मिलता है। देवी उपासना मे ज्वारा के लिये इसी धान क उपयोग पीढीयो से होता रहा है। पर अब जब इसकी खेती नही होती है और किसान नयी जातियो को बोते है, तो देवी उपासको के लिये धर्मसंकट की घडी आ गयी है। विकल्प के तौर पर नयी जातियो का उपयोग गाँव वाले कर लेते है पर तांत्रिक और दूसरे उपासक भेजरी की तलाश मे होते है। मैने उपहार के तौर पर यह धान तांत्रिक को दिया। वह प्रसन्न हो गया। झट से अन्दर गया और उतनी ही मात्रा मे दूसरा धान हमे दे दिया। उसने बताया कि यह भर्री धान है और अनुष्ठानो मे वो इसका प्रयोग करता है। गाँव मे इसे कोई नही बोता। बस वही इस बीज को बचाये हुये है। बाद मे जब मैने अपने डेटाबेस

मे इस धान के विषय मे जानकारी खोजी तो इसका असली नाम पता चला। यह भी पता चला कि उत्तर छत्तीसगढ के बहुत से पारम्परिक चिकित्सक कैसर के रोगियो को यही धान खाने को देते है। उन पारम्परिक चिकित्सको को धान की कमी हो रही थी। मैने मन ही मन सोच लिया कि तांत्रिक से मिला उपहार मै अकेले नही रखूंगा। उत्तर के पारम्परिक चिकित्सको को भी दूंगा ताकि महत्वपूर्ण पारम्परिक चिकित्सा जारी रह सके। बहरहाल, बारहसींगे के सींग की चर्चा आरम्भ हुयी। तांत्रिक ने याद किया और बताया कि कुछ लोगो ने आकर फिल्माँकन किया था। उसके अनुसार उसने गाँव के एक पारम्परिक चिकित्सक से यह विधा सीखी थी। इसका तंत्र से लेना-देना नही है। उसने यह भी बताया कि तीस प्रकार की वनस्पतियाँ भी यह काम कर सकती है। जरुरी नही कि बारहसींगे का सींग ही काम मे लाया जाये। अब फिल्माँकन के लिये मैने इसका प्रयोग करके दिखा दिया। तांत्रिक से ऐसे जवाब की आशा नही थी। मैने अपना कैमरा निकाला और पूरी बात रिकार्ड की। यह मेरे लिये एक महत्वपूर्ण दस्तावेज हो गया। मै इसे व्याख्यान के दौरान दिखाता हूँ और लोगो से कहता हूँ कि यदि सस्ते विकल्पो का प्रयोग किया जाये तो वन्य प्राणियो की रक्षा हो सकती है। सुदूर गाँव का तांत्रिक यदि यह बात कहता है तो शहर के लोगो को तो जाग जाना ही चाहिये और ऐसी तंत्र की वस्तुओ का प्रयोग बन्द कर देना चाहिये जिनसे बेकसूर वन्य जीवो का जीवन छिन जाता है। उन्हे दूसरे देशो के आदिवासियो का उदाहरण भी देता हूँ जिन्होने हाथी दाँत की जगह जंगली फलो के सफेद बीजो का प्रयोग करके आभूषण बनाने का बीडा उठाया है। देखने मे पारखी भी गच्चा खा जाते है कि ये हाथी दाँत का काम नही बल्कि जंगली फलो के बीजो का काम है। इन्हे 'बायो-ज्वेल' का नाम मिला है। अपने देश मे भी ऐसी पहल की आवश्यकता है।

पहले मधुमेह से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान की वैज्ञानिक रपट और फिर औषधीय धान की रपट मे मै इतना उलझ गया हूँ कि अपने एक छोटे से स्वप्न को मूर्त रुप प्रदान नही कर पा रहा हूँ। यह स्वप्न है एक छोटी-सी आन-लाइन डिजीटल लाइब्रेरी बनाने का जिसमे अन्ध-विश्वास पर मेरी फिल्मो, लेखो और व्याख्यानो को दुनिया मे कही भी देखा, पढा और सुना जा सके। मान लीजिये किसी तांत्रिक ने दावा किया कि उल्लू की खोपडी से पैसे पल मे दुगुने हो जाते है तो लोग सीधे इस डिजीटल लाइबेरी मे आये और इस पर सही दिशा देने वाली फिल्मो और साहित्यो के माध्यम से तुरंत जान जाये कि दाल मे कुछ काला है। वे और लोगो को भी जागरुक करे और इस तरह ठगो के पैर उखड जाये। छोटी फिल्मे बनाना तो आजकल साधारण सी बात हो गयी है। हम लोगो से आग्रह कर सकते है इस डिजीटल लाइबेरी के लिये अपना योगदान दे। हर दावे को सिरे से खारिज करने की बजाय हम वैज्ञानिक विश्लेषण और तथ्यो के साथ प्रस्तुत

होंगे। यदि दावा सही निकलेगा तो इस ज्ञान को देश की धरोहर के रुप मे पारम्परिक ज्ञान कोष मे उसी के नाम से दर्ज कर लेंगे। देखिये, कब यह स्वप्न साकार होता है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

‘अंकल मेरा हाथ देखिये, पहले मेरा हाथ।‘ यह चिल्लपौ मची थी एक बर्थ डे पार्टी मे जहाँ मै अपने एक मित्र के साथ गया हुआ था। किसी ने पार्टी मे लोगो को बता दिया था कि मित्र हस्त-रेखा विशेषज्ञ है। फिर क्या था सभी उस पर झपट पडे। बच्चो को आगे देखकर बडा विस्मय हुआ। मित्र को एक स्थान पर बिठा दिया गया और लोगो ने अपने हाथ फैला दिये। मित्र ज्यादा कुछ जानता नही था। दो-तीन लोग होते तो रटेरटाये कुछ वाक्यो से बात बन जाती पर यहाँ तो दसो लोग थे और भविष्यवाणियाँ सार्वजनिक को जाने वाली थी। बच्चो के हाथ देखने से शुरुआत हुयी। सभी अपने कैरियर के बारे मे जानना चाहते थे। धन कितना रहेगा, इसकी जिज्ञासा भी कुछ के मन मे थी। बहुत से बच्चे अपने कार-प्रेम से प्रभावित होकर पूछ रहे थे कि क्या वे कार डिजाइनर बन पायेंगे? मित्र उनसे निपटता रहा। मै भी सामने फैले हाथो की ओर नजर घुमा लिया करता था। मुझे भी उनके हाथो मे बहुत कुछ दिख रहा था। ज्यादातर हाथो से गुलाबीपन गायब था। हथेली सूखी-सूखी थी। उनके नाखून भी अपनी दुख भरी कहानी कह रहे थे। ये आज के बच्चो के हाथ थे जिनका खान-पान बदला हुआ है। बहुत से ऐसे भी बच्चे मिले जिनकी हालत गंभीर लगती थी, हाथो को देखने से। मुझे पूछने की जरुरत नही पडी। वे आपस मे बतिया रहे थे कि मैने 7 किलो वजन कम किया, मैने पाँच किलो वजन कम किया। एक टाइम का नाश्ता बन्द कर दिया है। आदि-आदि। बिना खाये दुबला होने की होड जो हमारी नयी पौध मे लगी है उससे माता-पिता चिंतित नही है। पालको मे भी आपस मे गजब की प्रतिस्पर्धा है। वे खुशी से दूसरो को बता रहे है कि इस “बिन खाये दुबले हो” अभियान के बारे मे। पार्टी मे बुजुर्ग भी थे पर उनकी बोलती बन्द

थी। यदि वे कहते भी तो बच्चो को यही कहते कि अभी तो खाने-पीने की उम्र है, मजे करो।

मित्र की एक तरह की बातो से थककर मैने घूमने का मन बनाया। उठा ही था कि मेरी नजर दूर बैठे एक बच्चे पर पडी। क्या उसे अपने भविष्य की चिंता नही? क्या उसे अपना हाथ नही दिखाना है? मेरे कदम उसकी ओर बढ चले। मुझे यह लग रहा था कि हो सकता है कि वह कहे, मै इन सब फालतू बातो मे विश्वास नही रखता। केवल कर्म को ही पूजा मानता हूँ। मै नजदीक पहुँचा तो वह बीमार लगा। अपने माँ-बाप के साथ बैठा यह बालक एक इनहेलर रखा हुआ था। बाजू मे दवाओ का बक्सा रखा हुआ था। मै उसके पास जाकर बैठ गया और पूछा कि क्यो क्या हुआ? उसकी माँ ने कहा कि एलर्जी है। जिस शहर मे यह पार्टी हो रही थी वहाँ हर बडे शहर की तरह वे सभी कारण मौजूद थे जिससे किसी को भी एलर्जी हो जाये। धूल थी, कारखानो का धुँआ था और गाजर घास भी थी। पर इस बच्चे के माता-पिता के अनुसार डाक्टर बता नही पा रहे है कि इनमे से किससे एलर्जी है। यह विकट स्थिति थी। विकट इसलिये कि रोग का कारण न पता हो पर फिर भी इलाज चल रहा हो। यानि खालिस प्रयोग पर प्रयोग हो रहे होंगे उस नन्ही सी जान पर। ये कम्बल ओढकर क्यो बैठा है? मैने पूछा। उसके पिता ने कम्बल हटाते हुये हाथ की ओर इशारा किया और कहा कि इसके कारण। ये पूरे शरीर मे है। मैने ध्यान से देखा तो लाल रंग के चकत्ते दिखायी दिये शरीर पर। एलर्जी मे तो ऐसा होता ही है पर चकत्ते कुछ और भी कह रहे थे। पर मैने उस समय चुप ही रहना ठीक समझा।

उनसे बाते चलती रही। खान-पान पर बात पहुँची तो जंक फुड पर भी चर्चा हुयी। बच्चे के माता-पिता ने कहा कि जंक फुड से ये परहेज करता है और आयुर्वेदिक चीजे जैसे च्यवनप्राश खाता है। मेरे शक की पुष्टि हो रही थी पर फिर भी बिना पूरी छानबीन किये मै कुछ कहना नही चाहता था। मैने पूछ ही लिया कि आलू और बैगन कैसे लगते है इसे? जवाब मिला आलू शौक से खाता है पर बैगन कभी-कभी खाता है। मैने हिम्मत करके कह ही दिया कि च्यवनप्राश ही समस्या की जड लगता है। जैसी कि उम्मीद थी, वे बिफर पडे। इसी बीच मेजबान भी आ गये। उन्होने मेरा परिचय कराया। फिर भी बच्चे के पालक सहमत नही दिखे। मैने कहा कि कुछ समय तक च्यवनप्राश न खाये और फर्क अपने आप देख ले। वे इसके लिये तैयार दिखे। हम सब केक काटने और पार्टी मे मशगूल हो गये।

कुछ दिनो बाद उस बच्चे के घर से फोन आया। उन्हे यह महसूस हुआ कि च्यवनप्राश से ही यह गडबड हो रही थी। मैने उनसे कहा कि आप मुझसे मिलने आ जाये। उसी शाम

मेजबान सहित वे आ गये। मैने कहा कि इसमे च्यवनप्राश की भूमिका है पर असली खलनायक इसमे उपस्थित एक वनस्पति है जिससे आपके बच्चे को एलर्जी हो रही है। यह वनस्पति है असगन्ध या अश्वगन्धा। यह निश्चित ही दुनिया की जानी-मानी वनस्पति है और दिव्य गुणो से सम्पन्न है पर कुछ लोगो को इससे समस्या भी हो सकती है। जिस भी दवा या टानिक मे इसकी थोडी भी मात्रा होगी, बच्चे पर इसका बुरा प्रभाव चकत्ते के रुप मे दिखेगा। यह बात आप बच्चे को समझा दे ताकि आजीवन वह इस रोग से बचा रहे। यह भी हो सकता है कि उम्र के साथ यह एलर्जी कम हो जाये और चालीस के बाद फिर से लौट आये। बच्चे को आलू और बैगन से परहेज करने को भी कहा। उन्होने मुझे धन्यवाद किया और वापस चले गये। उनके फोन अब भी आते रहते है। बच्चा एलर्जी से दूर है अब।

आधुनिक शोधकर्ताओ ने असगन्ध से होने वाली इस एलर्जी के विषय मे अपने शोध-पत्रो के माध्यम से बताया है। इसके बहुत कम मामले ही सामने आते है क्योकि औषधीय वनस्पतियो के विषय मे यह अन्ध-विश्वास है कि इनसे केवल लाभ होगा। किसी भी प्रकार से हानि हो ही नही सकती। इस अन्ध-विश्वास के चलते देशी वनस्पतियो पर कभी शक नही किया जाता है। दुर्भाग्य से कहे या सौभाग्य से, मैने असगन्ध से एलर्जी के बहुत से मामले देखे है। मुझे यकीन है कि सही मायने मे औषधीय वनस्पतियो को जानने वाले किसी चिकित्सक के पास यह बच्चा जाता तो उसे इस रोग के कारण का पता लग गया होता। हो सकता है कि उसे च्यवनप्राश खाने की सलाह ही नही दी जाती। पर जैसा कि मैने पहले भी लिखा है, हमारे देश मे आयुर्वेदिक दवाए ऐसे बेची जाती है विज्ञापनो के माध्यम से जैसे वे खाने-पीने की बाजारु चीजे हो। मुझे लोग अक्सर कहते है कि आयुर्वेदिक दवाओ के विरोध मे मत लिखो भले ही तुम्हारी बात सच हो। यह भी कहते है कि क्या इससे होने वाले नुकसानो के विषय मे प्राचीन ग्रंथो मे लिखा है?? मेरा उत्तर सीधा होता है। ज्यादातर बाते प्राचीन ग्रंथो मे लिखी है और कुछ नही भी लिखी है और नये शोधो के माध्यम से सामने आ रही है तो इनसे परहेज कैसा? अब दवा कम्पनी वाले कहाँ प्राचीन ग्रंथो के आधार पर उत्पाद बना रहे है। जिस तेजी से इनका प्रचलन आम लोगो मे बढ रहा है और चिकित्सकीय परामर्श के आधार पर दिये जाने वाले च्यवनप्राश जैसे उत्पाद किराना दुकानो मे बिक रहे है, उसी तेजी से नयी स्वास्थ्य समस्याए सामने आ रही है। जन-स्वास्थ्य से खिलवाड चाहे वह किसी भी तरीके से हो, के बारे मे जानकर भी चुप रहना भला कहाँ तक सही है?

मुझे याद आते है वे दिन जब कुछ बडे किसान मेरे तकनीकी मार्गदर्शन मे असगन्ध की जैविक खेती कर रहे थे। उस समय एक सज्जन बोवाई के समय से ही हमसे विनती करते कि फसल तैयार होने पर उनके लिये असगन्ध रखा जाये। चाहे तो पूरे पैसे अभी से ले लिये जाये। एक बार मैने उनसे इस बेसब्री का कारण पूछा तो वे बोले कि बाजार मे मिलने वाले असगन्ध से उन्हे एलर्जी हो जाती है। इसलिये वे सीधे खेत से ले आते है। यह मेरे लिये आश्चर्य की बात थी क्योकि बाजार का असगन्ध भी किसानो से खरीदा हुआ असगन्ध होता है फिर खेत से ले जाने पर एलर्जी क्यो नही होती? बाद मे जब मै देश के दूसरे हिस्सो मे गया और वहाँ असगन्ध की व्यापक पैमाने पर रासायनिक खेती देखी तो सारा माजरा समझ आया। हम जैविक खेती कर रहे थे। सम्भवत: बडे पैमाने पर उगायी जा रही रसायनयुक्त असगन्ध की फसल से ऐसी एलर्जी हो रही हो। इस पर बिना विल्म्ब शोध होने चाहिये और यदि यह बात प्रमाणित होती है तो किसानो से जैविक खेती अपनाने की गुहार की जा सकती है।

आप पाठको से मै यह आशा रखता हूँ कि आप अपने और अपने परिवार को कभी इस तरह खतरे मे नही डालेंगे और हमेशा विशेषज्ञो से परामर्श के बाद ही किसी भी तरह की औषधी का प्रयोग करेंगे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“काका, मैने आज बवंडर मे बूढी दादी का चेहरा देखा। काका, मुझे बहुत डर लग रहा है। दादी अब नही बचेगी।“ कुछ ऐसे ही शब्द थे बाल-पत्रिका मे छपे एक लेख मे। इस लेख मे दावा किया गया था कि यह सत्य घटना पर आधारित है। इसमे एक ऐसे बालक का वर्णन किया गया था जिसे छोटे-छोटे बवंडरो मे परिचित चेहरे दिखा करते थे। जिसका चेहरा दिखता था वह दूसरे ही दिन परलोक सिधार जाता था। बडा ही लम्बा लेख था और उसमे उत्तर भारत के कुछ स्थानो के नाम भी लिखे थे जिससे जान पडे कि यह सत्य घटना है। बचपन मे पढा यह लेख मन मे गहरे बैठा है। मुझे आज भी यह सोचकर अजीब लगता है कि उस समय बालपत्रिका मे इसे क्यो प्रकाशित किया गया था। घर मे

पराग और नन्दन के अलावा दूसरी पत्रिका नही आती थी। यह लेख मैने स्कूल की लाइब्रेरी मे पढा था। आज भी जब मै ऐसे बवंडरो को देखता हूँ तो सहसा इस लेख का ध्यान आ जाता है। स्कूल के बाद मै अपनी यात्राओ के दौरान जब भी मौका पडता लोगो से इन बवंडरो से जुडे विश्वास के बारे मे पूछ लेता। जितनी मुँह, उतनी बाते। सभी के पास अपनी कहानी होती। बवंडरो का बनना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है और सारा खेल हवा के असमान दबाव का है पर फिर भी क्यो हमारे देश मे इससे जुडे इतने अधिक विश्वास और बाते है, यह समझ मे नही आता है। इस पर गहनता से शोध हो तो शायद इसके कारण सामने आये। हर नयी कहानी सुनने के तुरंत बाद इसकी वैज्ञानिक व्याख्या का मन करता है पर कहानी बताने वाले की आस्था देखकर मै रुक जाता हूँ।

पिछले कुछ सालो से मै अंकोल नामक पेड की घटती संख्या से चिंतित हूँ। पहले ये पेड आसानी से दिख जाते थे और बुजुर्ग नाना प्रकार के रोगो मे इसके विभिन्न पौध भागो क प्रयोग किया करते थे। अंकोल उन्हे अकारण चिकित्सको के पास जाने से रोक लेता था। बुजुर्ग पाताल-यंत्र की सहायता से इसके बीजो का तेल निकालते थे और फिर गठिया से लेकर त्वचा रोगो की चिकित्सा मे इसका प्रयोग करते थे। इसके तेल से फसलीय बीजो को उपचारित किया जाता था जिससे उनमे अच्छा अंकुरण होता था। इस तेल के प्रयोग से आम जैसे पेडो मे स्वादिष्ट फल आते थे। वे कहते थे कि अंकोल के फलो को गिरने से पहले यदि पेड से ही एकत्र कर लिया जाये तो उनके दिव्य गुण बरकरार रहते है। एक-एक फल एकत्र करना मुश्किल काम है पर फिर भी वे धैर्य से यह कार्य करते है। पर अचानक ही अन्य वनस्पतियो की तरह इसके प्रयोग मे भी कमी आयी है। नयी पीढी आधुनिक दवाओ के नियमित सेवन मे अधिक विश्वास करती है। ऐसा करना उनकी मजबूरी भी बनती जा रही है क्योकि वे सीधे-सादे जीवन से दूर होते जा रहे है। अंकोल का उपयोग जलाऊ लकडी के रुप मे होने के कारण इसके पारम्परिक उपयोगो से अंजान नयी पीढी बिना देर किये इन्हे काट रही है। इसके कारण इनकी संख्या मे तेजी से कमी आ रही है। मैने अंकोल के पेडो को चिन्हित करना आरम्भ किया है। जहाँ भी ये पेड दिखते है मै रुककर आस-पास के लोगो को इनके सरल प्रयोगो के बारे मे बता देता हूँ। यदि कोई रोगी होता है तो कुछ प्रयोगो को दिखा भी देता हूँ। इससे इन पेडो का प्रयोग फिर से शुरु हो जाता है और फिर कोई इसे नही काटता। एक बार ऐसे ही मुझे खबर मिली कि एक सुदूर गाँव मे अंकोल के बहुत से पेड है। मै चल पडा। जिस तांत्रिक ने जानकारी दी थी उसे भी साथ मे रख लिया। उस गाँव मे पहुँचकर अंकोल के ढेर सारे पेडो को देखकर मन प्रसन्न हो गया। अचानक ही हमारे सामने कुछ दूरी पर हवा का बवंडर उठा तो सब काम छोडकर तांत्रिक उस ओर भागा। यह मेरे लिये अनोखी बात थी।

क्योकि लोग आमतौर पर इससे दूर ही रहना पसन्द करते है। बवंडर तो कुछ क्षणो का होता है। तांत्रिक वापस लौट आया। उसने बवंडर मे कुछ खोजने की कोशिश की थी पर लौटते वक्त वह निराश था। मेरे मन मे प्रश्न कुलबुला रहे थे। अंकोल का काम एक किनारे पर रह गया और हम इस बवंडर की चर्चा मे जुट गये।

तांत्रिक ने नयी बात बतायी। उसने कहा कि हम लोग इसे भँवर कहते है। इससे जो पत्तियाँ उडती है, उन्हे पकडने की कोशिश हम करते है। किसी भी कीमत मे उडती घूमती पत्तियो को पकडना हमारा उद्देश्य होता है। पत्तियाँ नीचे गिर जाये तो वे किसी काम की नही रहती है। हम सैकडो बार प्रयास करते है तब जाकर पत्तियो को पकड पाते है। उसका कहना सही लगा क्योकि बवंडर तो बता के नही आते और कुछ पलो मे गायब भी हो जाते है। उनके पीछे भागना भी हर बार सम्भव नही हो पाता है। तांत्रिक ने अपनी बात जारी रखी। उसने कहा कि पत्तियो का प्रयोग तंत्र-क्रियाओ मे होता है। इनमे से एक अनोखा प्रयोग यह है कि ऐसी पत्तियो को उलटाकर उस पर बैठकर यदि कोई व्यक्ति किसी के घर खाना खाये तो मेजबान खाना खिलाते-खिलाते थक जायेगा पर मेहमान का पेट नही भरेगा। “कोरा अन्ध-विश्वास। सब फालतू बात है।“ ये मेरे ड्रायवर के शब्द थे। इस पर आस-पास खडे लोगो की त्वरित प्रतिक्रिया हुयी। वे बोले कि हमारी बातो का मजाक नही उडाये। भले विश्वास न करे पर मजाक न करे। मैने ड्रायवर को शांत रहने को कहा और चेहरे मे आश्चर्य के भाव लाकर यह जताने की कोशिश की कि मुझे तांत्रिक की बातो पर विश्वास हो रहा है। यही एक रास्ता था पूरी जानकारी प्राप्त करने का। क्या तुम ऐसा प्रयोग दिखा सकते हो? मैने तांत्रिक से पूछा। हाँ साहब, आप पत्ती दे दो तो मै अभी यह प्रयोग दिखा सकता हूँ। मैने गाँव वालो से कहा कि आप साथ दे तो हम प्रयास कर ऐसी पत्तियो को आज ही एकत्र कर सकते है। उन्होने कहा कि यह इतना आसान नही है। पर हम लोग आज दिन भर यह कोशिश करेंगे। सब लोग बिखर गये और तेज चलती हवा मे बवंडर का इंतजार करने लगे। जैसे ही यह बनता दिखता लोग दौड पडते। जब हवा धीमी होती तो हम बैठकर पारम्परिक ज्ञान पर चर्चा करते। ड्रायवर बैचैन था। मैने उसे बहलाने के लिये कहा कि यदि यह बात सच निकली तो मै उन लोगो को इस पर बैठने की सलाह दे सकूंगा जो पुराने रोगो के कारण रुचि से भोजन नही करते है। शायद यह जादुई पत्ती उन्हे खाने को प्रेरित करे। वैसे यह अन्ध-विश्वास है, यह मै जानता हूँ पर आराम से सोचो कि यह कितना अच्छा मौका है पूरे गाँव के सामने दूध का दूध और पानी का पानी करने का। बातो से जितना भी समझा ले, ये मानने से रहे। एक बार अपनी आँखो से देखेंगे तो खुद भी विश्वास करेंगे और दुनिया को पीढीयो तक बतायेंगे भी। ड्रायवर संतुष्ट हो गया। दिन गुजर गया। शाम हो गयी। गाँव वालो से अनुरोध पर

रात वही गुजारी और सुबह से फिर उसी काम मे जुट गये। दोपहर को कुछ सूखे पत्ते हाथ मे आ गये। यह काम कर दिखाया था तांत्रिक ने। उसकी खुशी का ठिकाना नही था। वह सबको इसे दिखा रहा था। जहाँ सामूहिक रुप से खाना पक रहा था वही उसे बिठाया गया। यदि उसकी बात सच निकलती तो हम सब को भूखा ही रहना पडता। सारा खाना तांत्रिक ही खा जाता। मंत्रो के साथ तांत्रिक का भोजन शुरु हुआ। कुछ ही देर मे उसे अहसास होने लगा कि पत्तियाँ कुछ नही कर पा रही है। यह उसकी इज्जत का सवाल था। उसने खाने के दौरान पानी की मात्रा कम की और डटकर खाना शुरु किया। पर कितना खा पाता। वह उठ गया। लोगो को निराशा ने घेर लिया। वे एक-एक कर पत्तियो मे बैठने लगे और खाना खाने लगे। पर कुछ जादू न हुआ। आखिर मे उन्होने मान लिया कि यह निरा अन्ध-विश्वास है। बच्चो से लेकर बुजुर्गो तक सभी ने यह सब देखा। पीढीयो तक अब यह सन्देश पहुँचता रहेगा-इस आशा मे मैने सभी को धन्यवाद दिया। उन्हे अंकोल के ढेरो प्रयोग बताये और दिखाये। गाँव के भूतो की चर्चा भी हुयी। मैने अपने दूसरे अनुभवो से भी उन्हे परिचित कराया।

कभी-कभी मै सोचता हूँ, ज्ञान-विज्ञान की अलख जगाने के लिये ये जरुरी नही है कि सरकारी सहायता के लिये बैठे रहे। यह कहते रहे है कि हमे गाडी मिलेगी तभी हम जायेंगे। फिर वापस लौटकर अखबारो मे छपवाये कि कैसे हमने वहाँ जाकर अन्ध-विश्वास मिटाया। अन्धकार मिटाने का यह बडा काम छोटे प्रयासो से भी हो सकता है। हमारे आस-पास बहुत अन्धकार है। यदि जो जहाँ है बस वही पर कुछ प्रकाश फैला दे तो अन्ध-विश्वास का अन्धेरा छँटने मे जरा भी देर नही लगेगी। कल ही मै फिर उस गाँव मे गया। अंकोल के पेड मुझे सुरक्षित दिखे। कुछ पुराने पेडो के नीचे देवताओ को स्स्थापित कर दिया गया था। उन्हे जो जल चढाया जा रहा था वह पेडो को नया जीवन दे रहा था। बहुत से बच्चे मुझे देखकर जमा हो गये। कुछ के पास नये प्रश्न थे। उन्होने कुछ दिनो पहले किसी शहरी तांत्रिक से अपने गाँव को बचाया था। यह अच्छी प्रतिक्रिया थी। मैने रुककर चर्चा करने का मन बनाया और इस तरह विचारो के आदान-प्रदान का अनवरत सिलसिला एक बार फिर चल पडा। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

"शनि का दोष है। ग्रह शांति करानी पडेगी और इतने धान से क्या होगा? कुछ और दो। कोदो ही दे दो। ओये बुढिया यदि पति से पहले मरकर पुण्य कमाना है तो आँगन मे रखी बडियाँ दे दो। चाय तो पिला दो। यदि हम नाराज हो जाये तो सर्वनाश हो जायेगा।" स्थानीय भाषा मे दो लोगो को इस तरह बोलते देखकर मै दंग रह गया। मैने अभी ही एक बूढे किसान के झोपडे मे प्रवेश किया था। किसान लेटा हुआ था और ये लोग उसे यह सब सुना रहे थे। बिसाहू की हालत अच्छी नही है यह तो मुझे पता था पर इतनी बिगड जायेगी यह नही सोचा था। बुढापे के कारण गठिया की समस्या हो गयी थी। पहले वह अपने बेटो के साथ खेती किया करता था। बेटो को रात मे घर भेजकर अकेले ही जंगली जानवरो से फसल की रक्षा करने मचान पर पहरा देता रहता। बडा ही जीवट वाला इंसान है वह। पर जैसे ही गठिया की समस्या ने उसे घेरा बेटो ने साथ छोड दिया। कुछ महिनो पहले जब मै उसके पास गया तो छोटा बेटा साथ मे था। पर अब वह, उसकी माँ और पत्नी ही उस झोपडे मे थे। बिसाहू बिस्तर से उठ नही पाता था। पर मुझे देखकर उसने कोशिश की।

झोपडे मे अचानक मेरे प्रवेश से हालात एकदम बदल गये। वे दो लोग सकपका से गये। मैने मामले मे दखल देने की बजाय बिसाहू का हाल-चाल जानने को प्राथमिकता दी। इस बीच लाल चाय बनकर आ गयी। चुस्कियो के बीच मैने इन लोगो से पूछा कि आप लोग कौन है? जैसे ही उन्होने कहा कि हम "भटरी" है तो मुझे एकाएक विश्वास ही नही हुआ। भटरी शब्द सुनते ही अचानक बचपन के दिन याद आ गये जब अपने दादाजी की गोद मे बैठकर इनसे मै अपने और पूरे परिवार के सुनहरे भविष्य की बाते सुना करता था। दादाजी ने ही मुझे बताया था कि भटरी पीढीयो से ग्रामीण ज्योतिषी की भूमिका निभा रहे है। गाँव-गाँव मे इनके जजमान है। फसल कटने के बाद ये जजमानो के पास जाते है। उन्हे समस्याओ के लिये दोषी ग्रहो के बारे मे बताते है और फिर काट भी बताते है। मैने उन्हे हमेशा सुन्दर भविष्य बताते सुना। वे कभी कुछ माँगते नही थे और दादाजी बिना विलम्ब उन्हे धान और दूसरी दक्षिणा दे देते थे। बाद मे जब मैने अंग्रेजी का सूथसेअर शब्द पहली बार जाना तो मुझे भटरी की याद एक बार फिर से आ गयी।

मैने बिसाहू के घर आये भटरी द्वय से बातचीत जारी रखी। अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर उनसे पूछा कि बिसाहू पर कौन से ग्रह का कुप्रभाव है? तो वे तपाक से बोले शनि की साढे साती के कारण यह हालत है। बिसाहू की राशि क्या है? उनका जवाब था,

बिसाहू नाम से वृषभ। अब मुझे थोडा क्रोध आने लगा। मैने कहा, अभी तो ज्योतिष के अनुसार साढे साती कर्क, सिह और कन्या मे है। ये वृषभ मे कब से आ गयी? वे बगले झाँकने लगे। फिर सम्भलकर बोले कि रवि का प्रभाव है। नही, नही सोम का प्रभाव है। उनकी बातो मे आत्म-विश्वास नही था। जब मैने वीडीयो कैमरा निकाला और शूटिंग आरम्भ की तो रही-सही कसर निकल गयी। भटरी से ऐसे आधे-अधूरे ज्ञान की उम्मीद नही थी। ऐसा नही है कि बचपन मे भटरी से साक्षात्कार के बाद मै इनसे नही मिला। प्रदेश भर मे भ्रमण के दौरान अक्सर इनके डेरे गाँव के बाहर दिख जाते है। मैने इनके डेरे मे जाकर तस्वीरे ली है, नयी पीढी को देखा और उनसे बातचीत की है। बरमूडा पहने मोबाइल वाली नयी पीढी को देखकर यह तो प्रतीत हुआ कि इन्हे बुजुर्गो से अभी काफी कुछ सीखना बाकी है पर मैने कभी सपने मे भी नही सोचा था कि भटरी किसी को धमकाकर दक्षिणा लूट लेंगे। मेरे आने से बिसाहू की पत्नी और माँ ने कुछ राहत महसूस की पर आस्था के भय से बन्धे हुये बिसाहू की हिम्मत नही हुयी कि इन पारम्परिक भविष्य़वक्ताओ का विरोध करे। मेरे साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सको ने भी भटरी द्वय के इस व्यव्हार पर आश्चर्य व्यक्त किया पर यह भी कहा कि अच्छे-बुरे दोनो ही प्रकार के इंसान होते है। इन्हे देखकर सभी को ऐसा नही माना जा सकता। मै उनसे सहमत हूँ।

भटरी के पास फसल उत्पादन से लेकर मौसम तक की सभी भविष्य़वाणियाँ होती है। भले ही आज के भटरी रायपुर से पंचांग लाकर भविष्य़वाणी करते है पर उनके पूर्वज खास वनस्पतियो और पक्षियो के व्यवहार से भविष्य़वाणियाँ करते थे। अभी भी प्रदेश के बुजुर्ग बताते है कि उनकी भविष्य़वाणियाँ सटीक होती थी। मैने उनके बहुत से पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया है। पर फिर भी बचपन मे सुनी बहुत सी बातो को अभी तक लिख नही पाया हूँ।

बिसाहू के लिये हमारी गाडी मे कुछ उपहार थे। एक उपहार तो एक विशेष तेल था जो हमने पास के जंगल से एकत्र की गयी जडी-बूटियो से बनाया था। साथ चल रहे एक पारम्परिक चिकित्सक ने जमकर मालिश की और बिसाहू का चेहरा खिल उठा। हमने उसके पास तेल छोडा और इसे नियमित रुप से लगाने को कहा। अब रोज घंटो का सफर करके बिसाहू के पास जाना सम्भव नही है इसलिये उसे ही हमने मालिश का गुर सीखा दिया। भटरी द्वय इस अनोखी “ग्रह शांति” को देखते रहे। इसने कष्ट को हर लिया था। इसमे दक्षिणा का प्रावधान नही था। बिसाहू के चेहरे पर दर्द से मुक्ति के भाव ही हमारी सबसे बडी दक्षिणा थी। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“बिना उसके पेट साफ ही नही होता है। उसे पी लेती हूँ तो दर्द बढता है पर पेट साफ हो जाता है। शुरुआत मे कमर दर्द होता था और बवासिर की समस्या थी। किसी काम मे मन नही लगता था। मानसिक श्रम से तो जैसे शरीर निढाल हो जाता था। पेट मे होने वाला दर्द असहनीय होता गया तो डाक्टरी जाँच करवायी। अन्य लक्षणो मे आँखो मे भारीपन, आँखो के सामने बिजली की तरंगे जैसा दिखना------“ कुछ महिनो पहले मुझे एक ई-मेल मिला। यह ई-मेल था पेट के कैंसर से प्रभावित एक महिला का। अपने लम्बे-चौडे सन्देश मे उन्होने यह बताने की कोशिश की थी कि डाक्टरो ने हाथ खडे कर दिये है और अब वे जडी-बूटियाँ आजमाना चाहती है। मैने हर बार की तरह इस बार भी उन्हे जवाब दे दिया कि मै कृषि वैज्ञानिक हूँ, चिकित्सक नही। बात इतने पर खत्म नही हुयी। उनके पति का फोन आ गया। वे बहुत परेशान थे। पता नही उन्होने मेरा कौन सा शोध आलेख पढ लिया था जिससे उन्हे लगने लगा था कि मै उनकी मदद कर सकता हूँ। मैने उन्हे हकीकत बतायी। पर दूसरी सुबह बच्चो का फोन आ गया। वे कह रहे थे कि मम्मी को बचा लीजिये किसी भी तरीके से। मुझे कुछ सूझ नही रहा था। कुछ दिनो बाद सारा परिवार सुबह-सुबह घर पर आ गया।

महिला की स्थिति बहुत बुरी थी। उनके डाक्टर ने कह दिया कि वे अब कुछ दिनो की मेहमान है। उनके पतिदेव मुझसे उस डाक्टर से बात करने को कहने लगे। मैने अनमने ढंग से फोन लगाया। आरम्भिक चर्चा के बाद जब कारणो पर बात आयी तो दबी जबान मे उन्होने कहा कि उन्हे लगता है कि उस चीज की अति से ही यह सब हुआ है। पर वे श्योर नही थे। मैने उनसे कहा कि महिला का ई-मेल पढने के बाद मुझे भी उसी चीज पर शक हुआ था। महिला के सारे लक्षण चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे कि उस चीज की अति मे ही ऐसा होता है। उस चीज से होम्योपैथी दवा बनती है। अब आप तो जानते ही है कि जो चीज अधिक्ता मे बुरे प्रभाव पैदा करती है उसी की होम्योपैथी दवा के रुप मे अल्प मात्रा उन प्रभावो से मुक्ति दिला देती है। उस चीज की अधिक्ता से होने वाले

दुष्प्रभाव के वर्णन से होम्योपैथी के सन्दर्भ ग्रंथ भरे पडे है। महिला का सन्देश मुझे बार-बार इन्ही सन्दर्भ ग्रंथो की याद दिला रहा था।

डाक्टर से बात खत्म होते ही पतिदेव आग्रह करने लगे कि किसी भी पारम्परिक चिकित्सक के पास ले चलिये। मैने कहा कि रोग की इस अवस्था मे शायद ही कोई कुछ कर सके। आप रुके, कुछ पारम्परिक चिकित्सक दोपहर तक आने वाले है। यदि वे चाहेंगे तो देख लेंगे। दोपहर को महिला से पारम्परिक चिकित्सको की मुलाकात हुयी। शुरु के सात दिनो की राम कहानी सुनने के बाद पारम्परिक चिकित्सको ने महिला को शांत रहने को कहा और फिर शेष कहानी ऐसे सुना दी जैसे कि वे महिला को पहले से जानते हो। यह किसी चमत्कार से कम नही था। पर यह चमत्कार नही था। यह उनका अनुभव था। मुझे कोने मे ले जाकर उन्होने भी उसी चीज पर अंगुली उठायी और कहा कि अब देर हो चुकी है। पति वापस लौटने लगे। मै एयर पोर्ट तक गया। जाते-जाते उन्होने मुझे धन्यवाद कहा और शक जताया कि हो न हो उनकी पत्नी की इस अवस्था के लिये वही चीज जिम्मेदार है। वे चले गये। मन मे बडी खिन्नता रही। रात को इंटरनेट पर बैठ गया और उसी चीज की अति के बारे मे साहित्यो को खंगालता रहा। मुझे ज्यादा देर नही लगी। विश्व साहित्य आधुनिक शोधो के हवाले से बताने लगे कि एक हफ्ते से ज्यादा उसे लेने से कैसे शरीर मे विकार पैदा होने लगते है। कैसे पेट के साधारण रोगो से शुरुआत होकर कैसर की दस्तक होती है। क्यो ह्रदय रोगियो, किडनी रोगो से प्रभावित लोगो और थायराइड की चिकित्सा करवा रहे लोगो को इससे बचना चाहिये। क्यो इसका प्रयोग हमेशा कुशल विशेषज्ञ के माध्यम से करना चाहिये। यह भी बता रहे थे कि क्यो इसके खुले प्रयोग पर विश्व के बहुत से देशो मे प्रतिबन्ध लगा है। मेरा सिर घूम गया।

मुझे पता है कि आप उस जानलेवा चीज के बारे मे अब जान लेना चाहते है। मै यह दावा कर सकता हूँ कि ज्यादातर लोग इस चीज का नाम पढते ही सिर धुन लेंगे। उन्हे विश्वास ही नही होगा। चैनल वाले बाबा लोग इसे पूरे देश को पिला रहे है अमृत बताकर। कुछ दिनो तक विशेष मार्गदर्शन मे लिये जाने वाले इस अमृत को उत्साही देशवासी महिनो तक पी रहे है। बच्चो को पिला रहे है। यह है बाबाओ की अन्ध-भक्ति, उन पर अन्ध विश्वास जो आम लोगो को कुछ नही सूझता। हमारे ग्रंथ इस चीज के बारे मे स्पष्ट लिखते है, पारम्परिक चिकित्सक इस बारे मे जानते है, आधुनिक डाक्टर जानते है, चिकित्सा शोधो के परिणाम सामने है पर फिर भी मौत के फरिश्ते व्यवसायिक आयुर्वेद के नाम पर दीमक की तरह देश को खोखला कर रहे है और देश के मूल आयुर्वेद का नाम खराब कर रहे है।

कैंसर से प्रभावित वह महिला नियमिततौर से एक साल से भी अधिक समय से एलो वेरा जूस पी रही थी जो कि व्यवसायिक उत्पाद के रुप मे बाजार मे मिलता है। इतने लंबे समय तक इसका प्रयोग सख्त मना है। केवल कुछ दिनो तक इसे पीना हितकर कहा गया है। वह भी विशेषज्ञ के मार्गदर्शन मे। आप उत्पाद देखे तो उसमे कुछ भी नही लिखा है। न किसी रोग के उपचार का दावा है और न ही यह लिखा है कि यह किसे लेनी है और किसे नही। यह भी नही लिखा है कि इसे चिकित्सा परामर्श से ले। चैनलो पर बाबा बोलते है और अपनी मर्जी से देशवासी पीते है। यदि देश मे सर्वेक्षण किया जाये जमीनी स्तर पर ऐसे अनगिनत मामले सामने आयेंगे जो इस जूस के मनमाने प्रयोग से जुडे हुये है। यह अन्ध-विश्वास कि हर्बल से कुछ भी नुकसान नही होगा, आधुनिक भारत के लिये अभिशाप बना हुआ है।

कुछ दिनो बाद खबर आयी कि उस महिला की मौत हो गयी। उनके पति का फोन अब भी आता है। उन्होने एक मुहिम छेडी है जिससे ज्यादा से ज्यादा लोगो को वे स्व-चिकित्सा के घातक हथियार के बारे मे बता सके ताकि उनके साथ ऐसा हादसा नही हो। मै भी अपने स्तर पर ऐसे प्रयास करता रहता हूँ। मुझे इस बात का आभास है कि बाबाओ के जंजाल मे फँसा शहरी समाज इतनी जल्दी नही जागेगा पर प्रयास करने मे क्या बुराई है----   (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

मध्यरात्रि एक बुरे स्वप्न ने मुझे नीन्द से जगा दिया। मै उठ बैठा और उस स्वप्न के बारे मे सोचने लगा। ठीक से तो याद नही रहा पर स्वप्न अपने के बिछुडने का था। नीन्द उचट गयी तो कम्प्यूटर पर बैठ गया। मन बदलने के लिये अपने द्वारा खीची गयी तस्वीरो को देखना आरम्भ किया। कुछ देर बाद मै नियमगिरि की यात्रा के दौरान ली गयी तस्वीरो तक पहुँच गया। ध्यान एक पुराने पीपल पर जाकर अटक गया। कहने को वह एक पीपल था पर उसके ऊपर अनगिंत छोटे-बडे पौधे थे। वह पितृ वृक्ष था। चिडियो की चहचाहट ने मुझे बरबस ही इस पेड की ओर खीच लिया था। मैने तस्वीरे लेनी

आरम्भ की तो कुछ समय मे ही दसो प्रकार की दुर्लभ चिडियो की तस्वीरे कैमरे मे कैद हो गयी। एक ही पेड की मैने चार सौ से अधिक तस्वीरे खीच ली। उनमे से एक भी तस्वीर को देख कर ऐसा नही लगता था कि ये एक ही पेड की होंगी। मै तो यूँ ही कैमरे सहित पेड के पास पहुँच गया पर साथ चल रहे अलाबेली गाँव के पारम्परिक चिकित्सक ने पहले हाथ जोडे फिर प्रार्थना की। उसके बाद हाथ जोडे-जोडे ही उस पेड तक आये। उन्होने बताया कि पीढीयो से यह एक पेड असंख्य रोगियो को रोगमुक्त कर रहा है। ये हमे औषधियाँ देता है। मरणासन्न रोगियो को हम इसकी छाँव मे लिटा कर चिकित्सा करते है। जितना काम औषधियाँ नही करती उतना इसकी छाँव कर देती है। सर्प दंश से प्रभावित जाने कितने लोगो को उन्होने इसी पेड के नीचे ठीक किया है। मै उनकी बात सुनता रहा। मै सचमुच सौभाग्यशाली था जो मुझे इस जीवन मे इस पेड के पास जाने का मौका मिला। इसकी तस्वीरे देखते ही मुझे लगा कि बुरा स्वप्न शायद इससे ही जुडा था। जैसे-तैसे रात कटी। सुबह मैने नियमगिरि फोन लगाया।

लगभग दो साल पूर्व मै वानस्पतिक सर्वेक्षण के लिये वहाँ गया था। एक्शन एड नामक संस्था का मानना था कि मेरे जाने और वैज्ञानिक रपट तैयार करने से हो सकता है माननीय सर्वोच्च न्यायालय वहाँ होने वाले बाक्साइट के खनन से पर्यावरण पर पडने वाले बुरे प्रभावो की ओर ध्यान दे। इसके बाद फिर नियमगिरि जाना नही हो पाया। कुछ फोन नम्बर मेरे पास है। बस उन्ही की सहायता से हालचाल पता लगता रहता है। उस सुबह फोन पर मैने पूछा कि जो पीपल का पितृ वृक्ष हमने देखा था उसके क्या हाल है? कल मैने रात को स्वप्न मे उसे देखा। स्वप्न अच्छा नही था। कुछ देर की शांति के बाद उधर से जवाब आया कि वो तो कब से साफ हो गया। वहाँ तो खनन कम्पनी की पूरी आवासीय कालोनी खडी है।

बस्तर के लोहांडीगुडा क्षेत्र मे मै कालेज की पढाई के दौरान अक्सर जाया करता था। वहाँ की एक-एक वनस्पति से पहचान हो गयी थी। इमली के पुराने पेड जैसे मिलने की बाट जोहते थे। पढाई के बाद भी मेरा आना-जाना लगा रहा। जब मैने सुना कि इस क्षेत्र मे टाटा का बडा भारी स्टील प्लांट लग रहा है तो मन भारी हो गया। मन मे इच्छा रही कि कैसे भी वहाँ पहुँच जाऊँ और अपने बाल सखाओ से मिल लूँ। मुझे मालूम है कि जल्दी ही इन बाल सखाओ को जड से काट दिया जायेगा। उनकी उम्र का लिहाज भी नही किया जायेगा। उनका चीखना-चिल्लाना भी काम नही आयेगा। पुणे की एक सस्था को मैने प्रस्ताव रखा कि एक बार उस क्षेत्र मे जाकर वनस्पतियो की तस्वीरे ले ली जाये ताकि आने वाली पीढी के पास यह दस्तावेज के रुप मे रहे। प्रस्ताव मंजूर हो गया। मै

लोहांडीगुडा गया और एक बार फिर पुराने पेडो से मिला। जब मैने विस्तार से वनस्पतियो की तस्वीरे लेनी शुरु की तो कुछ ऐसी वनस्पतियाँ मिली जिनका सन्दर्भ ग्रंथो मे कोई उल्लेख ही नही मिलता था। मै भारी मन से लौटा। फिर दोबारा उस क्षेत्र मे जाने की हिम्मत मै शायद ही जुटा पाऊँ।

अपनी दोनो यात्राओ के बाद मैने संस्थाओ के लिये रपट बनायी और उसमे अनुरोध किया कि यदि सम्भव हो तो वनस्पतियो को बचाकर खनन हो और स्टील प्लांट लगाया जाये। सैकडो वर्ष पुराने पेडो को हम इस जन्म मे फिर से नही पा सकते है। यह भी सुझाव दिया कि थोडे पैसे खर्च करके इन्हे संरक्षित करता एक जैव-विविधता पार्क बना दिया जाये ताकि मेरे बाल सखा इसमे स्थान पा सके। पर जिस तरह से विकास के लिये विनाश जारी है उससे तो मेरे सुझाव पर ध्यान दिये जाने की सम्भावना कम ही है। मुझे भिलाई स्थित स्टील प्लांट का एक सन्दर्भ याद आता है। जब इस प्लांट की स्थापना नही हुयी थी तो यहाँ बडे ही पुराने पेड हुआ करते थे। इन पेडो का वर्णन आज भी पारम्परिक चिकित्सक अपने बुजुर्गो के हवाले से करते है। प्लांट बना तो बिना इनके महत्व को जाने जमीन साफ कर दी गयी। प्लांट बनने के बाद नये पेडो को रोपा गया। भले ही वर्तमान पीढी इतने सारे नये पेड देखकर खुश हो ले पर जितने पेड प्लांट बनते वक्त काटे गये उनकी तुलना मे आज के ये पेड कुछ भी नही है। फिर वे सैकडो वर्ष पुराने पेड थे। आज के ये पेड ठीक से जम भी नही पाते है क्योकि उन्हे सुबह-शाम प्रदूषण की मार झेलनी पडती है। पर्यावरण विभाग और मीडिया को भले ही भिलाई का प्रदूषण न दिखे पर शहर के किसी भी ओवरब्रिज मे शाम और सुबह खडे होकर चारो ओर निहारे, आपको प्रदूषण की घनी चादर मे ढके घर दिखेंगे। ऐसे प्लांट निश्चित ही आपका जीवन स्तर बढाते है पर स्वास्थ्य छीन लेते है। प्लांट बनाते वक्त यदि पुराने पेडो को बचाये रखा जाता तो आज स्थिति उल्टी ही होती।

भले ही यह पढने मे अटपटा लगे पर यदि आप प्रकृति के पास है तो आपको हर एक पेड मे एक व्यक्तित्व नजर आयेगा। पहले जंगल से गुजरते वक्त सारे पेड एक से दिखते थे पर जब से मैने उन्हे जाना तब से जंगल मुझे एक जन-समुदाय सा लगाता है। पीपल, पलाश, पाकर क्या किसी भी दो पेड मे आप समानता नही पायेंगे। हर पेड के नीचे खडा होना एक अलग अनुभव देता है। यकीन न हो तो आप किन्ही दो पेडो की तस्वीरे खीच लीजिये। वे कभी भी एक समान नही होंगे। जैसे हम मनुष्यो मे भिन्नता है, हमारे रंग-रुप अलग है, खान-पान अलग है, स्वास्थ्य समस्याए अलग है वैसे ही पेडो के साथ भी है। वे मनुष्य़ या इस धरती के दूसरे प्राणियो से अलग नही है। ये हमारा देश केवल

मनुष्य़ॉ का देश नही है। असंख्य वनस्पतियाँ और जंतु भी भारत है। फिर क्यो वनस्पतियो की ओर से आवाज उठाने कोई पहल नही करता। क्यो वनस्पतियो के पक्ष मे आवाज बुलन्द करने वाले विकास विरोधी और इनका विनाश करने वाले विकासशील कहे जाते है। जिस तरह भारत के हर मनुष्य़ के लिये पहचान पत्र की बात हो रही है,क्यो न हर पेड, हर वनस्पति के लिये भी पहचान पत्र बने। उन पर अत्यचार हो तो व्यक्तिगत स्तर पर कानून हो जिससे उनकी रक्षा हो सके। लोहांडीगुडा वाली रपट मे मैने साफ शब्दो मे लिखा कि स्थानीय लोगो की अनुमति की बात तो प्रशासन करता है पर क्या वनस्पतियो से किसी ने अनुमति ली है? आखिर उनका आशियाना भी तो उजडेगा। जगदलपुर के एक वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस कथन को न्यायालय, मनुष्यो के न्यायालय कहना ज्यादा सही होगा, के सामने भी रखा। विकास का अन्ध-विश्वास पर्यावरण के विनाश को अनदेखा करता है। विकास जरुरी है पर संतुलित। जिन स्थानो मे औद्योगिक इकाईयाँ लगानी हो वहाँ वनस्पतियो को बचाते हुये भी यह किया जा सकता है। हरे-भरे स्थान को उजाडकर फिर नाम के लिये पेड रोप कर हम अपनी ही आने वाली पीढी के लिये विनाश का मार्ग प्रशस्त कर रहे है।

कभी-कभी मुझे लगता है कि वनस्पतियो के लिये अपना जीवन समर्पित कर मैने भूल की है। रोज असहाय सा उन्हे बरबाद होता देखता रहता हूँ। बर्बादी मे मेरी ही बिरादरी अर्थात मनुष्यो का हाथ होता है। कलम का हथियार एक समय ताकतवर हुआ करता था पर विकास के बढते अन्ध-विश्वास ने इसकी धार को भी भोथरा कर दिया है। पर्यावरण की बात तो जमकर होती है पर अपने ही पिछवाडे मे कट रहे पेड को बचाने कोई नही आता। पेडो को रक्षा सूत्र बाँधकर अखबारो मे तस्वीरे छपवायी जाती है पर वन-सन्हार पर मुँह से विरोध के स्वर नही फूटते। पता नही कब तक चलता रहेगा यह सब? (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

गर्भावस्था की शुरुआत मे लाइचा के प्रयोग से शुरु होकर फिर प्रसूति के बाद महाराजी, पाँचवे वर्ष मे कंठी बाँको और जवानी मे तेन्दुफूल, ऐसे 60 से अधिक किस्म के औषधीय धान के उपयोग बताता पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान हमारे देश मे है। इस प्रकार यदि किसी बालक को शुरु से ही 60 की उम्र तक नियमित रुप से औषधीय धान खिलाया जाये तो वह ताउम्र रोगो से बचा रह सकता है। क्या आधुनिक रोगो से भी? सौभाग्य से इसका जवाब सकारात्मक है। पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि यदि शुरु के पाँच वर्ष तक औषधीय धानो को निश्चित क्रम मे दे तो बालक बीस वर्षो तक रोगो से बचा रह सकता है। इसी प्रकार उम्र के हर पडाव के लिये अलग-अलग औषधीय धान निश्चित है। इनका उपयोग चावल के रुप मे पकाकर खाने तक ही सीमित नही है। चावल के धोवन से स्नान करने से लेकर गर्म चावल की पोटली से शरीर की मालिश और सिकाई भी शामिल है। औषधीय धान के पौधे इतने गुणकारी होते है कि इनकी जड के पास से एकत्र की गयी मिट्टीयो मे भी औषधीय गुण होते है। और तो और, जो कीडे इन पर पोषण करते है उनका उपयोग भी औषधी के रुप मे होता है। कहाँ हम-आप रोगो से मुक्ति पाने के लिये नित नये नुस्खे आजमा रहे है और हमारे देश का बहुमूल्य पारम्परिक ज्ञान अपने माध्यम से हमारी सेवा की बाट जोह रहा है। उस दिन की कल्पना कीजिये जब महिलाए औषधीय धान के सेवन के बाद ऐसे स्वस्थ्य शिशुओ को जन्म देंगी जिन्हे आजीवन मधुमेह, उच्च रक्तचाप और यहाँ तक की कैसर भी नही छू पायेगा।

आज एक बार फिर औषधीय धान पर लिखने का मन इसलिये हुआ क्योकि मै इन दिनो औषधीय धान के माध्यम से कैसर जैसे जटिल रोगो से सुरक्षा पर एक विशेष अध्याय अपनी रपट मे लिख रहा हूँ। "मेडीसीनल राइस इन ट्रेडीशनल हीलिंग" नामक यह रपट छत्तीसगढ की सैकडो औषधीय धान किस्मो और उनके पारम्परिक ज्ञान पर है। काफी दिनो से इस विषय पर लिखने का मन था और जब रपट आरम्भ हुयी तो गति धीमी थी। मुझे लग रहा था कि कुछ जीबी की रपट होगी पर दिमाग मे अंकित जानकारियाँ कम्प्यूटर के माध्यम से पन्नो पर आने लगी तो अब इसका अंत नही दिखता है। आज ही मैने जब इस रपट का आकार मापा तो पता चला कि इसने 90 जीबी का आँकडा पार कर लिया है। जबकि अभी तो शुरुआत ही है। मुझे लगता है कि पूरी रपट 350 जीबी से अधिक की होगी। प्राचीन भारतीय चिकित्सा ग्रंथ औषधीय धान के विषय मे बताते तो है विस्तार से नही। यदि कम्प्यूटर की भाषा मे कहा जाये तो इन ग्रंथो मे वर्णित जानकारी केवल कुछ केबी की ही है। आजादी के बाद से हमारे देश मे धान पर अनुसन्धान के लिये अरबो रुपये बहाये गये। अभी भी धान पर ढेरो शोध संस्थान काम कर रहे है। पर यह आश्चर्य का विषय है कि किसी ने भी औषधीय धान के विषय मे उपलब्ध पारम्परिक

ज्ञान का दस्तावेजीकरण नही किया। यदि आप गूगल और दूसरे खोजी इंजनो मे "मेडीसिनल राइस" शब्द खोजे तो आपको तीन हजार के आस-पास साइट मिलेंगी। हमारे ग्रंथालय भी औषधीय धान के विषय मे जानकारी देने वाले ग्रंथो का इंतजार कर रहे है। जब छत्तीसगढ मे व्यक्तिगत स्तर पर किये गये प्रयास से इतनी सारी जानकारी एकत्र हो सकती है तो आप कल्पना नही कर सकते कि पूरे देश मे औषधीय धान के विषय मे जानकारी का कितना बडा भंडार होगा। मैने जन्म लेने मे थोडी देर कर दी। जब मै पारम्परिक ज्ञान विशेषज्ञो तक पहुँचा तो बहुत देर हो चुकी थी। ज्यादातर औषधीय धान की खेती बन्द हो चुकी थी। औषधीय धान बुजुर्ग पीढी की यादो मे ही थे। जो बीज उपलब्ध थे वे शुद्ध नही थे। बिखरी जानकारियो को एक सूत्र मे पिरोने मे ही मेरा ज्यादातर समय लग गया। यदि आजादी के बाद से ही अपनी विरासत को सम्भालने मे हमारे शोध संस्थान जुट जाते तो आज इतनी अधिक तादाद मे बीमार इस देश मे नही होते। आप तो जानते ही है कि भारतीय शोध संस्थानो ने विरासत को बचाने से ज्यादा उन्हे खत्म करने मे अधिक रुचि दिखायी। जैविक खेती का समूल नाश कर रासायनिक खेती को स्थापित किया और पुरानी किस्मो को बेकार बताकर नयी नाजुक किस्मो का जाल फैला दिया। देखते ही देखते औषधीय धान की खेती खत्म हो गयी। और साथ ही उनसे सम्बन्धित हमारा पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान भी। शोध संस्थान विदेशो पर धन के लिये आश्रित रहे। उन्हे ही अपने शोध परिणाम बताते रहे। दुर्भाग्य से यह सब आज भी जारी है।

लम्बे समय तक औषधीय धान भेजरी और रसश्री पशु चिकित्सा मे उपयोग होते रहे। भेजरी प्रसूति के बाद गाय को अलसी के बीजो के साथ खिलाया जाता था ताकि किसी तरह का संक्रमण न हो। रसश्री टानिक के रुप मे दिया जाता था। भारतीय शोध संस्थानो ने जब से ऐसे पशु चिकित्सक बनाने शुरु किये जिन्हे पारम्परिक औषधीयो से सख्त नफरत थी तब से भेजरी और रसश्री जैसी असंख्य पारम्परिक औषधियो का प्रयोग बन्द हो गया। अब तो इंजैक्शन लगते है। ऐसी दवाओ वाले जिनका असर स्थायी होता है। आपने आक्सीटोसिन के इंजैक्शन के असर के बारे मे पढा ही होगा। इतना असरकारक होता है कि उसका जहर पशुओ के मरने के बाद भी शरीर मे रहता है। जब गिद्ध इन पशुओ को खाते है तो उनकी किडनी इस रसायन के कारण खत्म हो जाती है। देश मे गिद्धो की घटती संख्या के लिये ये भी एक प्रमुख कारण है। कोई दूसरा देश होता तो ऐसे विनाश को बढावा देने वाले संस्थानो मे ताला लग जाता और इस दवा को बनाने वालो पर प्रतिबन्ध पर यह भारत है। यहाँ ऐसे लोगो की सजा का कोई प्रावधान नही है-ऐसा प्रतीत होता है। देशी औषधीयाँ सस्ती होती थी। प्रभावी भी। इनसे पर्यावरण पर बुरा

प्रभाव नही पडता था। पर पशु चिकित्सको से लेकर वैज्ञानिको और योजनाकर्ताओ सभी ने किसानो को अपनी परम्परा से दूर करने मे कोई कसर नही छोडी।

औषधीय धान के विषय मे चर्चा हो रही है तो लाल बैगा नामक व्यक्ति के विषय मे भी मै बताना चाहूंगा। सारा इलाका इस व्यक्ति को भूत भगाने वाले के नाम से जानता था। प्रेत बाधा के शिकार दूर-दूर से रोगी उसके पास इलाज के लिये आते थे। आधुनिक समाज उसे अन्ध-विश्वास फैलाने वाले के रुप मे चिन्हाँकित करता रहा। पर मै लाल बैगा को पारम्परिक धान की किस्मो के जानकार के रुप मे जानता था। उसके पास इनके बीज थे पर उससे भी बडी बात यह थी कि उसे पता था, कैसे औषधीय धान के प्रयोग से जटिल रोगो से मुकाबला किया जाये। मैने उसके ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया। मै हमेशा यही सोचता रहा कि जिस दिन दुनिया मेरे योगदान को समझेगी उस दिन मै लाल बैगा जैसे हजारो धरती पुत्रो को समाज की मुख्य धारा मे लाकर आधुनिक समाज से सम्मान दिलवा पाऊँगा पर यह इंतजार इंतजार ही रह गया। हाल ही मे जब मै उसके गाँव पहुँचा तो पता चला कि लाल बैगा अब हमारे बीच नही है। मुझे बिना बताये ही वह चला गया। उसकी पत्नी ही गाँव मे है। पर औषधीय धान का सारा ज्ञान लाल बैगा के साथ ही चला गया। काश! मै जीविकोपार्जन के प्रयासो को शहर मे छोडकर कुछ और समय उसके साथ बिता पाता।

इसमे कोई दो राय नही कि बहुत देर हो चुकी है। पर फिर भी आशा की किरण अभी शेष है। औषधीय धान जैसी पारम्परिक वनस्पतियो के संरक्षण और संवर्धन से आत्महत्या के लिये मजबूर देश भर के किसानो को हमारे योजनाकर्ता नयी राह दिखा सकते है। केरल मे ऐसे प्रयास हो रहे है। पारम्परिक औषधीय धान निवारा की खेती को वहाँ बढावा दिया जा रहा है। इस पर नये शोध हो रहे है। हाल ही मे इस धान मे कैंसर की चिकित्सा मे उपयोगी तत्व खोजा गया है। हालाँकि केरल के वैज्ञानिक दावा कर रहे है कि इस औषधीय धान के विषय मे जानकारी केरल तक ही सीमित है पर ऐसा नही है। हमारा देश भले ही बडा है पर आम लोग आपस मे जुडे है। किसान भी आपस मे जुडे है। पता नही कैसे और कब छत्तीसगढ के पारम्परिक चिकित्सको के पास औषधीय धान नवारा के विषय मे जानकारी पहुँची पर सर्वेक्षणो के दौरान न केवल उन्होने मुझे इसके ऐसे उपयोगो की जानकारी दी जिसका वर्णन आयुर्वेद मे नही मिलता है बल्कि राज्य के औषधीय धान के साथ इसके प्रयोग के विषय मे भी बताया। मेरा मानना है कि औषधीय धान को फिर से लोकप्रिय बनाने के लिये क्षेत्रीयतावाद से ऊपर उठाकर राष्ट्रीय स्तर पर समंवित प्रयास करने की आवश्यकता है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“विनम्र निवेदन है कि मुझे मेरे गाँव के एक बुजुर्ग आदमी ने गाँव की एक बहुत पुरानी घटना के बारे मे बताया था। गाँव के एक परिवार मे मुखिया (मालिक) पुरुष खेत जोत रहा था। वहाँ उसने कौआ और कौव्वी (नर+मादा) को जोडा खाते (सम्भोग करते) हुये देख लिया था तो उसने सोने का कौवा और कौव्वी बनवाकर उसी स्थान पर रख दिया। उसके बाद उसकी पत्नी ने सोने के कौवा और कौव्वी को लालच मे आकर चुरा लिया। इससे उसका पूरा परिवार नष्ट हो गया। इसी तरह की घटना मेरे साथ भी सन 2007 मे हुयी कि मेरी पुत्री बीमार थी जो लखनऊ अस्पताल मे भर्ती थी। मै घर रुपया लेने आया तो प्रात: दस बजे कौवा-कौव्वी को वही सब करते देखा। पर मुझे यह निश्चित नही है कि वे नर और मादा ही थे। मै अस्पताल चला गया। मेरी पुत्री का इलाज चलता रहा। इस बीच मेरी पत्नी घर आयी तो एक पंडित ने विचार करके बताया कि आप चाहे तो बिटिया के बराबर रुपये लगा दे पर वह ठीक नही होगी। वही हुआ और पुत्री की मौत हो गयी। मेरी एक पुत्री थी और दो पुत्र है। जो कष्ट मुझे इस बिटिया की मृत्यु से हुआ वह कहाँ तक लिखूँ------ उस घटना के बाद से अब मेरे मन मे शंका बनी रहती है कि गाँव के बुजुर्ग ने जो घटना बतायी थी, क्या वह सत्य थी? मेरे परिवार को कुछ न कुछ समस्या बनी रहती है। अत: श्रीमान उपरोक्त सत्य घटना को पढकर मुझे इस संकट से बचाये। मेरे परिवार को कुछ भी हो सकता है।

साथ मे टिकट लगा लिफाफ संलग्न है।“

2 जनवरी, 2009 को उन्नाव के एक गाँव से लिखी गयी यह चिठ्ठी मुझे कल ही प्राप्त हुयी। राजस्थान से छपने वाली पाक्षिक पत्रिका ‘कृषि अमृत’ मे “अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग” की यह लेखमाला छप रही है। इसी लेखमाला को पढकर यह पत्र लिखा गया है। सरसरी निगाह से इसे पढे तो पत्र के माध्यम से एक बार फिर कौव्वे से जुडे अन्ध-विश्वासो की समाज मे गहरी उपस्थिति दिखायी पडती है। इसी तरह के अन्ध-विश्वासो ने प्रकृति के सफाई कर्मी इस मासूम जीव को हमारे आस-पास से खत्म कर दिया है। आज

के युग मे जब आम घर पूरी दुनिया से जुडे है और ज्ञान-विज्ञान की बाते सीधे पहुँच रही है, उसके बाद भी इस तरह के अन्ध-विश्वासो की उपस्थिति यह इशारा करती है कि जन-जागर्ण के लिये और सशक्त प्रयासो की जरुरत है। यह पत्र एक दुखी पिता का पत्र भी है। ऐसा पिता का जो पुत्री की मौत का जिम्मेदार अपने द्वारा देखे गये एक दृश्य को मानता है, जो महज एक इत्तेफाक है। कौव्वो पर अनुसन्धान करने वाले वैज्ञानिक और इन पर फिल्म बनाने वाले फिल्मकार ऐसे दृश्यो को अनगिनत बार देखते है। प्रकृतिप्रेमी और यहाँ तक कि आम आदमी भी ये सब देखते रहते है। फिर इस तरह की बुरी घटनाए सभी के साथ क्यो नही होती? गाँव के जिस बुजुर्ग ने यह बात बतायी उसी ने मन मे अनावश्यक ही शक के बीज बो दिये थे। मैने उन्हे लिखा है कि आत्मग्लानि से मुक्त होकर इसे विधि का विधान माने और नये उत्साह से इस तरह के अन्ध-विश्वासो को भुला कर परिवार के साथ अधिक समय बिताये। उन्हे कौव्वे की भूमिका और उनकी हमारे आस-पास उपस्थिति व पर्यावरण के सम्बन्ध पर एक लेख भी भेजा है। वे जब चाहेंगे स्वयम ही इस छदम संकट से निकल सकते है। आशा है मेरा पत्र उनका आत्मबल बढायेगा। मैने उन्हे पत्र के माध्यम से अपनी मन की बाते कहने के लिये धन्यवाद दिया है। सबके पास खुलकर लिखने या कहने की हिम्मत नही होती। इस तरह अपनी बातो को किसी जानकार के सामने रखना सार्थक चर्चा के नये द्वार खोलता है। जाने कितने अन्ध-विश्वास हम अपने मन मे झिझक के कारण दबाये बैठे होते है और उन घटनाओ के लिये स्वयम को दोषी मानते रहते है जिन पर हमारा कोई नियंत्रण नही है।

जैसा कि मैने पहले भी लिखा है, इस लेखमाला से सम्बन्धित ढेरो पत्र मुझे मिल रहे है। ज्यादातर धन्यवाद पत्र है पर बहुत से ऐसे भी पत्र है जो सीधे पाठको के निजी जीवन से जुडे हुये है। कुछ माता-पिता चाहते है कि मै उनके बच्चो से सीधी बात करूँ जो सफलता के लिये मेहनत का रास्ता छोडकर अन्ध-विश्वास के फेर मे पडे है। कुछ पाठको को लेखो का मूल उद्देश्य समझ नही आ रहा है। मसलन, मैने पीले पलाश से सोना बनाने से जुडे अन्ध-विश्वास की पोल एक लेख मे खोली थी। इसके जवाब मे एक पाठक लिखते है कि “ आपके लेखो से पता नही क्यो ऐसा लगता है कि आपके पास पीले पलाश से सोना बनाने की विधि है। आप यह विधि हमे भेजने का कष्ट करे। आवश्यक डाक व्यय हम भेज देंगे।“

इस लेखमाला के पूरे होने के बाद मै पाठको के प्रश्नो का जवाब दूंगा पर बीच-बीच मे महत्वपूर्ण प्रश्नो पर चर्चा जारी रहेगी। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“जिन लोगो की अनामिका, कनिष्ठा से बडी होती है वे लोग उनकी तुलना मे अधिक आक्रामक होते है और अधिक धनार्जन करते है जिनकी कनिष्ठा, अनामिका से बडी होती है।“ आप सोच रहे होंगे कि मै किसी देशी हस्त-रेखा विशेषज्ञ से सुनकर यह बता रहा हूँ। पर इस शोध निष्कर्ष तक पहुँचे है कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक। दुनिया भर मे इस शोध के विषय मे विस्तार से लिखा गया है। मुझे यह खबर मेरे हस्त-रेखा विशेषज्ञ मित्र से मिली जो गुस्से से भरकर कल मिलने आये। वे “अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग” की यह लेखमाला बडे ध्यान से लगातार पढ रहे है। उनके मन मे ढेरो प्रश्न है पर मै उन्हे समय नही दे पा रहा हूँ। जब उन्होने बीबीसी की वेबसाइट पर यह समाचार पढा तो उनसे रहा नही गया और ढेरो अखबारी कतरनो के साथ आ धमके। उनका कहना था कि भारतीय ज्योतिष के आधार पर उन्होने कई बार अपने लेखो मे इस तथ्य को लिखा पर हर बार इसे अन्ध-विश्वास बताकर इसका माखौल उडाया गया। अब जब यही बात विदेशी वैज्ञानिक कह रहे है तो कोई विरोध नही कर रहा है। वैज्ञानिक इसकी व्याख्या कर रहे है। इस शोध की शुरुआत से पहले उन्होने निश्चित ही भारतीय ज्योतिष का सहारा लिया होगा। मित्र का कहना था कि मै इस लेखमाला मे इस तरह से प्राचीन भारतीय ज्ञान की भारतीयो द्वारा की जा रही उपेक्षा और विदेशियो द्वारा किये जा रहे उपयोग पर भी लिखूँ। मेरे पास मित्र के सवालो का कोई ठोस जवाब नही है। ‘घर का जोगी जोगडा और आन गाँव का सिद्ध” वाली कहावत एक बार फिर चरितार्थ हो रही है- ऐसा प्रतीत होता है।

कुछ वर्षो पहले प्रो.अनिल गुप्ता के आमंत्रण पर मै अहमदाबाद स्थित नेशनल इनोवेशन फाउंडेशन गया। उन्होने मुझे रिसर्च एडवायसरी कमेटी का सदस्य बनाया। वहाँ पारम्परिक ज्ञान पर काम कर रहे बहुत से महानुभावो से चर्चा हुयी। वे भारतीय पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के दस्तावेजीकरण के पक्ष मे तो थे पर इसके सीधे उपयोग के पक्ष मे नही थे। वे कहते थे कि इस ज्ञान को ‘वेलिडेट’ करने की आवश्यकता है। अर्थात इसे

सीधे उपयोग से पहले आधुनिक चिकित्सा पद्धतियो की कसौटी पर परखना जरुरी है। पीढीयो से मनुष्यो पर सफलतापूर्वक उपयोग हो रहे पारम्परिक ज्ञान को फिर से प्रयोगशाला जीवो पर परखा जायेगा और फिर काफी समय बाद मनुष्यो पर परीक्षण होगा। मैने प्रश्न रखा कि यह "वेलिडेशन" की प्रक्रिया किसके दिमाग की उपज है? कुछ ने कहा कि यह देश के विशेषज्ञो ने विचार करके सुझाया है। क्या उन विशेषज्ञो मे पारम्परिक चिकित्सको को भी शामिल किया गया था जो इस ज्ञान को उपयोग कर रहे है? मैने पूछा। उनके पास कोई जवाब नही था। जो तथाकथित विशेषज्ञो ने तय कर दिया सो तय कर दिया। लकीर के फकीर की तरह सभी को उस पर चलना होगा। हमारे देश की यही रीत है। पर जिसने भी इस "वेलिडेशन" का रोडा खडा किया है उसने दूर की गोटी खेली है। यह कही से भी भारतीयो के हक मे नही है।

धवई का ही उदाहरण ले। वुडफोर्डिया फ्रुटीकोसा वैज्ञानिक नाम वाली इस वनस्पति के फूलो का औषधीय उपयोग सदियो से भारत मे हो रहा है। प्राचीन ग्रंथो मे इसके बारे मे विस्तार से लिखा है। वर्तमान पीढी के पारम्परिक चिकित्सक इस ज्ञान का उपयोग कर रहे है। मैने इस ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया है। जहाँ एक ओर पारम्परिक चिकित्सको को इस ज्ञान से रोगियो की चिकित्सा करने की छूट नही है, उन्हे नीम-हकीम का दर्जा देकर उनके विरुद्ध कानून बना दिया गया है और उनके ज्ञान को बेकार कह दिया गया है वही दूसरी ओर जादवपुर के वैज्ञानिको ने धवई के फूलो पर पारम्परिक ज्ञान के आधार पर शोध किया और घोषित कर दिया कि यह पेप्टिक अल्सर मे उपयोगी है। इसके बाद उन्होने अमेरीकी पेटेंट आफिस मे अर्जी दी और आवेदन दाखिल कर दिया। आवेदनकर्ताओ मे गिने-चुने चार-पाँच नाम है। इस आवेदन पत्र मे साफ लिखा है कि धवई का प्रयोग पीढीयो से भारत मे हो रहा है। पारम्परिक चिकित्सको की बात भी लिखी है। मेरे शोध लेख का भी उल्लेख है पर पेटेंट मिलेगा सिर्फ उन वैज्ञानिको को जिन्होने इसे अपने रंग मे रंगा। पारम्परिक चिकित्सको को कुछ नही मिलेगा। यह तो एक छोटा सा उदाहरण है। पारम्परिक चिकित्सको के ज्ञान से लाभ उठाने के सैकडो उदाहरण हमारे सामने है। भारतीय शोध संस्थानो से सेवानिवृत्त होकर वैज्ञानिक निजी कम्पनियो मे जा रहे है और जिन्दगी भर वैज्ञानिक के रुप मे एकत्र की गयी जानकारियो को अपने नाम से पेटेंट करवा रहे है। तकनीकी मामला होने के कारण आम जनता इस गोरखधन्धे को समझ नही पा रही है।

नीम, हल्दी और बासमती के पेटेंट पर बवाल मचाने वाले खुलेआम हो रहे इन पेटेंटो पर एकदम खामोश है। कोई तो उनसे पूछे इस चुप्पी का राज? कहाँ है पारम्परिक

चिकित्सको के हित की बात करने वाले? कहाँ है वे लोग और संस्थान जिन्हे देश से अरबो रुपये पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के संरक्षण के नाम पर मिल रहे है? कूट भाषा मे लिखी जा रही लाखो पन्नो की मधुमेह की रपट को सार्वजनिक करने के लिये क्यो मुझ जैसे स्वतंत्र शोधकर्ता पर दबाव बनाया जा रहा है? एक बार इस रपट के सार्वजनिक होने से स्वार्थी वैज्ञानिक अपने नाम से इस ज्ञान को पेटेंट कराने के लिये टूट पडेगे और हर बार की तरह पारम्परिक चिकित्सको के साथ छलावा को जायेगा। क्यो नही पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान को भारत मे वैध करार देते हुये पारम्परिक चिकित्सको को चिकित्सा की छूट दे दी जाती? क्यो नही पारम्परिक चिकित्सको को देश की स्वास्थ्य योजनाए बनाने की जिम्मेदारी दी जाती? क्यो नही जमीनी हकीकत से अंजान आज के योजनाकारो को दस-बीस साल तक जंगलो मे रहने को कहा जाता? जिनसे भारत की आन, बान और शान है, जिनके ज्ञान के आधार पर दुनिया भर मे सैकडो पेटेंट हुये है और हो रहे है, क्यो नही उन्हे अब मुख्य धारा मे ले आया जाये? जरा देखे, जरा सोचे, कौन है जो पारम्परिक चिकित्सको और पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के विकास के मार्ग मे रोडे अटका रहा है।

प्रस्तुत है कुछ पेटेंटो की जानकारी जो भारतीय पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के आधार पर किये गये शोध कार्यो पर आधारित है और जिन पर चन्द वैज्ञानिको ने पेटेंट ले लिया है या इस प्रक्रिया मे है।

नीम
http://www.google.com/patents?q=neem+india&btnG=Search+Patents

तुलसी

http://www.google.com/patents?q=tulsi&btnG=Search+Patents

जामुन

http://www.google.com/patents?q=Jamun&btnG=Search+Patents

सफेद मूसली

http://www.google.com/patents?q=Safed+Musli&btnG=Search+Patents

असगन्ध

http://www.google.com/patents?q=ashwagandha&btnG=Search+Patents

धवई

http://www.google.com/patents?spell=1&q=Woodfordia+fruticosa&btnG=Search+Patents

हल्दी

http://www.google.com/patents?spell=1&q=curcuma+longa&btnG=Search+Patents

सर्पगन्धा

http://www.google.com/patents?spell=1&q=rauvolfia+serpentina&btnG=Search+Patents

करेला

http://www.google.com/patents?spell=1&q=Momordica+charantia&btnG=Search+Patents

बेल

http://www.google.com/patents?spell=1&q=Aegle+marmelos&btnG=Search+Patents

हडजोड

http://www.google.com/patents?spell=1&q=Cissus+quadrangularis&btnG=Search+Patents

मेथी

http://www.google.com/patents?spell=1&q=trigonella&btnG=Search+Patents

कुछ और कडियाँ

http://www.google.com/patents?id=Q8GcAAAAEBAJ&dq=pushpangadan

http://www.google.com/patents?id=Bot3AAAAEBAJ&dq=pushpangadan

http://www.google.com/patents?id=2A2jAAAAEBAJ&dq=pushpangadan

हस्त-रेखा विशेषज्ञ मित्र से मैने कहा कि आपका विरोध सही जान पडता है। यदि एक ही बात कहने पर एक को अन्ध-विश्वासी और दूसरे को सम्मानो से नवाजा जाये तो यह विरोधाभास है। ऐसी मानसिकता कि भारतीय ज्योतिष तभी वैध माना जायेगा जब कोई विदेशी वैज्ञानिक इस पर शोध करेगा और इसे अपने नाम से प्रकाशित करेगा, सरासर गलत है। समर्पित भारतीय वैज्ञानिको को सामने आकर यह बीडा उठाना चाहिये और ज्योतिष के जानकारो के साथ मिलकर इसे मानव-कल्याण के लिये उपयोग करना चाहिये। यहाँ यह भी जोडना चाहूंगा कि ज्योतिष के सतही ज्ञान से जो भयादोहन कर आम लोगो का छलने का रिवाज चल पडा है उस पर अन्कुश लगना चाहिये।

मित्र आज जब यह लेख पढेंगे तो उन्हे कुछ राहत मिलेगी। आप भी इस लेख को पढकर मनन करे, चिंतन करे और फिर अपने विचारो से मुझे परिचित कराये। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

पिछले दिनो दूर कस्बे से कुछ रिश्तेदारो का आना हुआ। उनकी गाडी सुबह-सुबह आयी। यह मेरे सोने जाने का समय था। उनसे मुलाकात नही हो पायी। उन दिनो मधुमेह की वैज्ञानिक रपट पर जोर-शोर से काम चल रहा था। कुछ घंटो की नीन्द के बाद मै फिर से कम्प्यूटर पर पिल पडा। वही ब्रश किया, फिर नाश्ता और भोजन भी वही आ गया। रिश्तेदार एक सप्ताह तक रुकने वाले थे। इसलिये सोचा कि उनसे कल मिल लूंगा। घर के बाकी सदस्य आवभगत मे लगे रहे। रपट का फेर ऐसा रहा कि मै 22 घंटे से अधिक इसी मे फँसा रह गया। अब रिश्तेदारो से रहा नही गया। मेरी मामी ने कमरे मे प्रवेश किया। उनके हाथ मे एक कपडा था। मैने उठकर अभिवादन किया तो उन्होने चुप रहने का इशारा किया। उन्होने कपडे को सात बार सिर पर घुमाया और फिर जैसे आयी थी वैसे ही चली गयी। मुझे यह सब अटपटा लगा। मैने काम समेटना ही उचित समझा।

तभी बाहर किसी चीज के जलने की बास आयी। मै बाहर भागा तो देखा कि मामी उसी कपडे को जला रही थी। घर वालो की तरफ देखा तो उन्होने शांत रहने को कहा। मै वापस अपने कमरे मे आ गया। मामी का कमरे मे एक बार फिर प्रवेश हुआ। इस बार कपडे की जगह उनके हाथो मे लाल मिर्च थी। उन्होने फिर उसे सिर पर घुमाना चाहा तो मेरे सब्र का बाँध टूट पडा। ये सब क्या हो रहा है? मैने क्षणिक आवेश मे कहा। माताजी ने मुझे शांत करते हुये कहा कि तुम इतना काम कर रहे हो तो मामी को लगता है कि किसी की “बुरी नजर” लग गयी है। ऐसी नजर जो घर वालो से दूरी बढा रही है। इसलिये उस “बुरी नजर” को उतारने के लिये यह सब किया जा रहा है। लीजिये, यहाँ मै अन्ध-विश्वास के साथ जंग पर लेखमाला लिख रहा हूँ उधर मेरे ऊपर ही यह सब आजमाया जा रहा है। यह तो दिया तले अन्धेरा वाली बात हुयी। मुझे इस प्रक्रिया के बारे मे जानकारी नही थी इसलिये मैने क्रोध पर काबू रखने का निर्णय लिया।

मामी ने मिर्च को सिर पर घुमाया। सात बार नही बल्कि ग्यारह बार। फिर कुछ देर बाद मिर्च के जलने से गले मे खराश होने लगी। बाहर जाकर देखा तो मामी ने मिर्च को भी जला दिया था। मामी से जब मैने यह सब विस्तार से पूछा तो वे बोली ”कोई इस उम्र मे घर-बार छोडकर कम्प्यूटर पर यूँ थोडे ही लगा रहता है। जरुर किसी की नजर लग गयी होगी।“ मै चुपचाप सुनता रहा। अब नजर लगी है या नही- यह जानने का उनका तरीका सरल था। कपडे को सिर पर घुमाने के बाद जलाया जाता है। कपडे के जलने से बास आती है। यदि बास आये तो सब कुछ सही है। पर यदि बास नही आये तो यह मान लिया जाता है कि नजर लगी है। इस पर भी संतुष्टि न हो तो लाल मिर्च का सहारा लिया जाता है। लाल मिर्च को जलाने पर खराश हुयी तो सब ठीक और नही हुयी तो मामला गडबड है। मेरे मामले मे सब कुछ सही निकला था पर फिर भी मामी परेशान थी। उन्हे समझ नही आ रहा था 22 घंटो तक काम करने के पीछे का सन्देहास्पद कारण।

“बुरी नजर” का भय और इसे उतारने की सैकडो विधियाँ हमारे देश मे है। चूँकि इन विधियो मे वनस्पतियो का भी उपयोग होता है इसलिये मैने पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण के दौरान इसे भी दर्ज कर लिया। पर क्या सचमुच “बुरी नजर” जैसी कोई चीज होती है। विज्ञान का छात्र होने के नाते मै इसे सिरे से नकार देता हूँ पर “बुरी नजर” का भय आम लोगो मे इस कदर व्याप्त है कि घोर आश्चर्य होता है। जिन मामी की मै बात कर रहा हूँ उनके चार बच्चे है। दो विदेश मे ऊँचे ओहदे पर है जबकि दो भारत मे कम्प्यूटर इंजीनियर है। ऐसे सुशिक्षित और सस्कारी घर से इस अन्ध-विश्वास की आशा मुझे नही थी। मामी का कहना था कि अमेरिका मे भी उनके बच्चे नजर

उतारने के लिये यह उपाय करते है। उनका कहना सही हो सकता है क्योकि मैने मुम्बई के होटल ताज मे एक होटल कर्मचारी को प्याज से नजर उतारने की विधि बताते सुना था। वहाँ विदेशी मेहमान बडे ध्यान से इसे सुन रहे थे। बहुत सी वैज्ञानिक संगोष्ठियो के दौरान इस बात पर जानबूझकर चर्चा छेड देने पर आँखे चौडी कर कपोल-कल्पित बाते कहने वालो के बीच होड लग जाती है। ट्रक वालो को तो बुरी नजर का भय खुलेआम लगता है।"बुरी नजर वाले तेरा मुँह काला" और साथ मे लटकता हुआ एक गन्दा जूता देखते-देखते हमने उमर गुजार दी। पीढीयो से चला आ रहा यह अन्ध-विश्वास नयी पीढी तक भी पहुँच रहा है। मै इस अन्ध-विश्वास की शक्ति को मापने का प्रयास करता हूँ तो मुझे आम जनमानस से इसे हटाना मुश्किल लगता है। मै अपने व्याख्यानो मे जब इस पर मजाकिये लहजे मे बोलता हूँ तो कुछ लोग आपत्ति करते है। वे कहते है कि इस अन्ध-विश्वास से किसी का बुरा नही हो रहा है तो फिर इसे जारी रहने दिया जाये। मै उनसे सहमत नही होता। यह अन्ध-विश्वास डर पैदा करता है। इसी डर का लाभ उठाकर बाजार बहुत सी ऐसी चीजो को मुँहमाँगे दामो पर बेचता है जिसका इस डर से कोई वास्ता नही होता। ऐसे डर से क्या लाभ? वैसे ही दर्जनो परेशानियो से घिरे आम मनुष्य् को यह नयी परेशानी देता है। बुरी नजर के लिये किसी को भी बिना वजह बलि का बकरा बना देने की कुप्रथा भी समाज मे है। महिलाए इस षडयंत्र का शिकार होती है। इसलिये इस कुप्रथा पर खुलकर चर्चा होने के बाद इसे समाप्त करने की पहल अब हो ही जानी चाहिये।

मामी को मैने अपने कार्य के बारे मे बताया। मधुमेह पर विस्तार से लिखने से कैसे यह दस्तावेज पीढीयो तक लोगो की जान बचा पायेगा-यह जानकर उन्हे लगा कि यह सब व्यर्थ नही है। मैने मजाक मे उनसे कहा कि यदि सर्दी के कारण किसी दिन आपको कपडे जलने की गन्ध न आये तो आप पता नही किसी के बारे मे क्या छवि बना लेंगी। वे सहमत लगी पर मुझे नही लगता कि वे इतनी आसानी से यह सब भूल पायेंगी।

इस लेखमाला मे मैने पहले लिखा है कि कैसे अन्ध-विश्वास के कारण बारहसिंघो का अवैध शिकार हो रहा है। उनके सींग और खाल के लिये उन्हे मारा जा रहा है। सींग से ताबीज और अंगूठियाँ बनायी जा रही है। कल के दैनिक नवभारत, रायपुर मे छपी खबर के अनुसार वन विभाग ने एक क्विंटल सींग के साथ दो शिकारियो को पकडा। साथ मे दूसरे जंगली जानवरो के अंग भी मिले है जिनकी कीमत अंतराष्ट्रीय बाजर मे बीस लाख आँकी गयी है। यह वन विभाग का सराहनीय काम है पर मुझे लगता है बडी मछलियाँ अभी भी पकड के बाहर है। इन सींगो को अंगूठी और ताबीज बनाने के लिये थोक मे

खरीदने वालो की पतासाजी कर उन्हे पकडना जरुरी है। हमारे देश के अखबारो मे पर्यावरण प्रेमी पत्रकार कम ही मिलते है। इस खबर के साथ बारहसींगे के महत्व और इसके सींग से जुडे अन्ध-विश्वास का उल्लेख भी यदि आ जाता तो आम जनता तक सीधे ही सन्देश पहुँच जाता। यदि आम जनता जाग गयी तो फिर इन अंगूठियो और ताबीजो को खरीदेगा कौन?

500 जीबी की बाहरी हार्ड डिस्क अब पूरी तरह भर चुकी है। पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजो के अलावा यह लेखमाला भी इसी मे सहेज कर रखी गयी है। जल्दी ही नयी हार्ड डिस्क के साथ मै इस लेखमाला को जारी रख सकूँगा-ऐसी आशा है। मै अपने लेखो के माध्यम से आपसे जो जुड पा रहा हूँ उसमे कम्प्यूटर की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसी ने राह आसान की है और यही महत्वपूर्ण दस्तावेजो को सहेजे हुये है। 500 जीबी की सामग्री को छपे हुये पन्नो के रुप मे रख पाना सम्भव नही जान पडता है। 200 जीबी की सामग्री ही एक करोड पन्नो से अधिक की हो जाती है। मै यदि कुछ समय पहले पैदा हुआ होता तो शायद ही विस्तार से ऐसे भारी दस्तावेज तैयार कर पाता। अभी तो शुरुआत है। देखिये बात कितनी दूर तक जाती है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

कुछ दिनो पहले मेरे एक परिचित बडी ही विचित्र समस्या लेकर आये। उन्होने अपना मकान किसी को किराये पर दे रखा था। वे खुद बाहर रहते थे इसलिये तीन-चार सालो के अंतराल मे उनका आना होता था। इस बार वे किरायेदार से मिलने गये तो उन्हे मकान की बाहरी दीवार पर बरगद का एक छोटा सा पेड नजर आया। जैसा कि अक्सर होता है पक्षी बरगद के फल खाते है और बीज बिना पचे शरीर से बाहर बीट के साथ निकल जाते है। जहाँ भी बीट गिरती है अनुकूल वातावरण मिलते ही बीज का अंकुरण हो जाता है। और देखते ही देखते नया पौधा तैयार हो जाता है। आमतौर पर लोग ऐसे पौधो से घर को होने वाले नुकसान को देखते हुये उखाड देते है। कई बार जब ऐसे पौधे बडे हो जाते है तो यूरिया या नमक की अधिक मात्रा जडो मे डालकर पौधो को जला दिया जाता

है। यहाँ रिश्तेदार ने जैसे ही बरगद को उखाडना चाहा किरायेदार ने कह दिया कि बरगद को उखाडना माने परिवार का समूल नाश। वह न तो खुद इसे उखाडेगा और न ही इसे उखाडने देगा। किरायेदार की इस निज आस्था से बवाल खडा हो गया। तू-तू मै-मै से जब कोई नतीजा नही निकला तो रिश्तेदार किरायेदार को लेकर मेरे पास आ गये।

उनकी समस्या सुनकर मै भी असमंजस मे था। एक ओर मुझे मन ही मन किरायेदार के वनस्पति प्रेम पर खुशी हो रही थी दूसरी ओर रिश्तेदार की समस्या भी जायज लग रही थी। काफी विचारने के बाद मैने उन दोनो को अपना एक हिन्दी लेख पढने को दिया। यह लेख उस अभियान से सम्बन्धित था जिसमे सडक के किनारे उग रहे पुराने पेडो को पारम्परिक विधियो से एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानांतरित किया जाना था। मैने उन्हे सुझाया कि यदि वे चाहे तो इस पौधे की पूजा-अर्चना कर पारम्परिक विधियो की सहायता से उसे कम से कम नुकसान पहुँचाये पास के बागीचे मे स्थानांतरित कर दिया जाये। किरायेदार सहमत दिखे तो मैने उपचार शुरु किया। सात दिनो तक विभिन्न वनस्पतियो के सत्व से बरगद को सीचा जाता रहा फिर सावधानी से उसे उखाडा गया। नये स्थान मे रोपने के बाद फिर सत्वो से उसकी सिंचाई की गयी। जैसी कि उम्मीद थी, नये स्थान पर वह ऐसे जम गया जैसे महिनो से वही था। मैने किरायेदार से अनुरोध किया कि बागीचे मे इसकी देखभाल का जिम्मा आपका है। इसके अधिक जगह घेरने के कारण शायद माली मौका मिलते ही इसे उखाड फेके और सजावटी पौधे लगा दे। उन्होने सहमति मे सिर हिला दिया।

पीपल और बरगद के प्रति ऐसी आस्था देश भर मे है। पर फिर भी विकास के नाम पर जब इन्हे काटा जाता है तो कोई सडको मे उतरकर विरोध नही जताता है। मै हमेशा इस बात पर जोर देता हूँ कि किसी पुराने पेड को काटने से पहले यह आँक लेना चाहिये कि उसने अब तक कितने रुपयो का योगदान दिया है और जब तक इसकी आयु रहेगी कितने और रुपयो का योगदान देगा। फिर इसे काटकर बनायी जाने वाली सडक से मिलने वाले लाभ को आँक लेना चाहिये। फर्क अपने आप दिख जायेगा। जहाँ पुराने पेड की कीमत करोडो मे होती है वही सडको से इतना लाभ नही हो पाता है। लाभ का सौदा यह हो सकता है कि पेड को बचाते हुये सडक बने ताकि दोनो से लाभ हो। इस तरह आर्थिक योगदान की तुलना करके हम बहुत से मामलो मे प्रशासन और नेताओ को विकास के नाम पर मनमानी करने से रोक सकते है। आपने लन्दन के हीथ्रो हवाई अड्डे का नाम तो सुना होगा। यहाँ दो हवाई पट्टियाँ है पर जिस हिसाब से हवाई यातायात बढ रहा है उसे देखते हुये वहाँ की सरकार को तीसरी हवाई पट्टी की जरुरत महसूस हो रही

है। तीसरी हवाई पट्टी बनाने के लिये बडे भाग की वनस्पतियाँ साफ करनी पडेगी। बस इसी बात को लेकर बवाल मचा हुआ है। वहाँ आम लोग सरकार से वनस्पतियो के आर्थिक योगदान और हवाई पट्टी से होने वाले लाभ की तुलना करने को कह रहे है। उनका कहना है कि वनस्पतियो से तो कभी नुकसान नही हुआ है और न होगा। हवाई पट्टी से कुछ लाभ होगा पर जो प्रदूषण बढेगा उससे पीढीयो तक नुकसान होगा। निश्चित ही इस मामले मे आम लोगो का पक्ष मजबूत लगता है। भारत मे भी ऐसी पहल होनी चाहिये। यहाँ तो लगता है कि जैसे शहरियो की संवेदनाए मर चुकी है। यही कारण है कि पेड कटते जा रहे है।

बरगद को स्थानांतरित करने के दौरान किरायेदार के साथ मै जब बागीचे गया तो मैने माली को कीटनाशक का छिडकाव करते देखा। किसी भी कृषि रसायन के छिडकाव के समय विशेष प्रकार के कपडे पहनने की हिदायत दी जाती है। शरीर को ढँका जाता है। नाक-मुँह को बन्द रखा जाता है। पर हमारे देश मे इन नियमो का पालन कम ही किया जाता है। सुरक्षा वस्त्र तो दिखते नही। उल्टे किसान अपने कपडो को इस डर से उतार लेते है कि वे रसायनो से खराब न हो जाये। केवल गमझा और बनियान पहन के रसायनो का छिडकाव करते है। इसी स्थिति मे बागीचे का माली भी नजर आ रहा था। मैने कीटनाशक का नाम पूछा तो मेरे होश उड गये। “इसका प्रयोग तो तब करते है जब दूसरे कीटनाशक असर करना बन्द कर देते है। फिर क्यो इसे डाल रहे हो?” मैने पूछा। माली बोला, अधिकारी जो बोलते है वही मै करता हूँ। अभी तो कीडे आये ही नही है फिर भी इसे डाला जा रहा है। जितना अधिक डालेंगे उतना अधिक कीटनाशक खपेगा और नयी खरीद पर अधिकारी को कमीशन के पैसे मिलेंगे। यह तो देश का दस्तूर बन गया है। मेरी आपत्ति सार्वजनिक बागीचे जहाँ बच्चे और बुजुर्ग आते है, मे किसी भी तरह के रसायनो के प्रयोग को लेकर थी। आम लोगो मे जागरुकता का अभाव है अन्यथा वे एकजुट हो तो देश भर के बागीचो मे इस तरह के जहरीले छिडकाव बन्द हो जायेंगे। बागीचे मे तो रोग और कीट जैविक विधियो से नियंत्रित किये जा सकते है। फिर जहरीले रसायन का छिडकाव क्यो? यूरोपीय देशो मे सरकारे 20 से अधिक कृषि रसायनो पर प्रतिबन्ध लगाने जा रही है। वे एक ऐसा अधिनियम ला रही है जिससे सार्वजनिक स्थानो पर इन रसायनो के प्रयोग पर अन्कुश लग जायेगा। कृषि रसायनो पर प्रतिबन्ध से वहाँ के किसान सहमत है पर इन्हे बनाने वाली कम्पनियो की जान पे बन आयी है। वे डरा रही है कि इस प्रतिबन्ध से खाद्य उत्पादन पर असर पडेगा। उनके इशारो पर कृषि वैज्ञानिक भी यही राग अलाप रहे है। पर इस प्रतिबन्ध को आम जनता का समर्थन मिला हुआ है। हमारे देश मे तो कृषि रसायनो के प्रतिबन्ध की बात दूर दुनिया भर मे

प्रतिबन्धित कृषि रसायनो का प्रयोग होता है। हमारे शोध संस्थान बकायदा किसानो को ऐसे कृषि रसायनो के प्रयोग की अनुशंसा करते है। परिणाम सामने है। आज हमारे भोजन मे एक भी ऐसी चीज नही है जिसमे इन कृषि रसायनो की घातक मात्रा नही है। भोजन ही औषधी है-यह हमारे ऋषि-मुनियो ने बताया था पर अब यह बदलकर भोजन ही जहर है, हो गया है। पता नही कब हम जागेंगे? (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

मध्य रात्रि अचानक अजीब सी आवाज से मेरी नीन्द खुल गयी। चारो ओर घुप्प अन्धेरा था। मै उठ बैठा। आवाज ऊपर से आ रही थी। सिर उठाया तो कुछ दिखा नही। कुछ देर बैठने के बाद मुझे याद आया कि यह मेरा घर नही था। मै तो घास-फूस से बनी एक झोपडी मे सो रहा था। यह बुधराम की झोपडी थी। कुछ दूरी पर वह सोया हुआ था। रात का सन्नाटा था। जंगली जानवरो को दूर रखने के लिये जलायी गयी आग ठंडी हो चुकी थी। झोपडी के बाहर गाडी थी जिसमे ड्रायवर सो रहा था। यह मेरी ही जिद थी झोपडी के अन्दर सोने की। नही तो ड्रायवर तो पास के शहर के किसी लाज मे ठहरने की जिद करके थक चुका था। बुधराम के लिये ऐसी जगह पर सोना रोज की बात थी। पर मेरे लिये यह अजीब अनुभव था। झोपडी गाँव के बाहर थी और आस-पास खेत थे। कुछ दूर पर जंगल था। जंगली जानवर अक्सर गाँव मे आ जाया करते थे पर डरने की कोई बात नही है, ऐसा कहकर बुधराम ने मुझे आश्वस्त करने की कोशिश की थी। जंगल के देवता पर उसे बहुत विश्वास था। वे अकारण की किसी को सजा नही देते, उसने यह भी कहा था। सोने से पहले हम लोगो ने उन्हे याद कर लिया था और फिर आश्वस्त होकर सो गये थे।

बचपन मे जंगल के देवता का जिक्र पंचतंत्र की कहानियो मे आता था। वे हमेशा सही न्याय करते थे। बडे होने पर उनके विषय मे और जानकारी मिली। बहुत सी जगहो मे रात को कीटो की तलाश मे जाना चाहा तो स्थानीय लोगो ने यह कहकर रोक दिया कि यह जंगल के देवता का शयन का समय है। इस समय अन्दर जाना ठीक नही होगा।

कई बार यह भी सुनने को मिला कि जंगल के देवता दिन मे मनुष्यो की सुध लेते है जबकि रात का समय वे वन्य प्राणियो के लिये रखते है। स्थानीय लोगो विशेषकर जंगल मे या उनके करीब रहने वालो मे आज भी यह विश्वास है कि जंगल के देवता संकट आने पर उनकी रक्षा करेंगे। मुझे याद आता है कि एक बार सर्वेक्षण से वापस लौटते हुये मुझे देर हो गयी और रात्रि को एक जंगल से गुजरना पडा। हमारी गाडी पंचर हो गयी। हम रुक गये और ड्रायवर स्टेपनी लगाने लगा। हम सतर्क थे। जंगली जानवरो विशेषकर भालुओ का भय था। रात के सन्नाटे मे कही दूर हमे खडाखडाहट सुनायी दी। हमने इसे साइकिल की आवाज के रुप मे पहचाना। घाटी थी। ऐसा लगता था जैसे कई साइकिले ऊपर आने वाले रास्ते से आ रही है। इतनी रात भला कौन जंगल से गुजरने का जोखिम लेगा? हमे कुछ डर भी महसूस हुआ। आवाज पास आती गयी। हमने टार्च की रौशनी उस ओर फेकी तो तीन-चार साइकिल सवार आते दिखे। वे मस्ती मे थे। कुछ पल के लिये हमारे पास रुके और फिर ड्रायवर को चक्का बदलते देखकर आगे बढ गये। मै कुछ पूछ ही नही पाया। यह अजीब अनुभव था। कुछ पल की शांति के बाद फिर से साइकिल की आवाज आयी। नीचे रोशनी फेकी तो देखा की एक और साइकिल आ रही है। पर सवार पैदल चल रहा है। जंगल मे साइकिल के होते हुये पैदल? कुछ पास आने के बाद वह साइकिल मे सवार हुआ और हमारे पास से गुजर गया। बिना कुछ बोले।

चक्का बदलने के बाद हम आगे बढे। कुछ दूर पर हम उनसे फिर मिलेंगे-ऐसी उम्मीद थी पर वे काफी दूर तक नही मिले। आस-पास कोई दूसरा रास्ता भी नही था। तभी हमारी निगाह एक तेन्दुए पर पडी जो गाडी की रोशनी से बचने की कोशिश कर रहा था। जंगल खतरनाक था-इसकी पुष्टि तो हो गयी। “वो देखिये साहब, उधर।“ ड्रायवर ने एक स्थान की ओर इशारा किया जहाँ आग जल रही थी। हम पास पहुँचे तो गाडी की रोशनी मे फिर से वे ही साइकिल सवार दिखे। हम रुक गये। आग तापी और फिर पहल कर उनसे बाते शुरु की। उन्हे बताया कि थोडी ही दूर पहले हमने तेन्दुआ देखा है। वे बोले, हमने भी देखा है। ओह! वे जानते है। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होने बताया कि वे दूर गाँव से निकले है एक तीर्थ स्थान के लिये। कल सुबह तक वहाँ पहुँच जायेंगे। रात मे भोजन किया है और फिर सफर पर निकले है। “रात को डर नही लगता?” मैने पूछ ही लिया। “अरे, साहब डर किस बात का। जंगल के देवता है न। वे हमारी रक्षा करते है।“ इतना विश्वास? मैने पूछा, क्या आपको पक्का यकीन है कि वे आपकी रक्षा करेंगे? वे बोले, हमने कभी जंगल को उज़ाडा नही, जानवरो को मारा नही तो क्यो नही जंगल के देवता हमारी रक्षा करेंगे? वे तो हमारी रक्षा कर ही रहे है। अभी आपने तेन्दुआ देखा। हमने दो भालुओ को पीछे देखा। वे अपने रास्ते निकल गये और हम अपने। लो जी कर

लो बात। यहाँ हम गाडी के शीशे चढाकर बैठे थे और ये लोग है कि मजे से जंगल मे घूम रहे है। चाय का ग्लास मेरी ओर बढाते हुये वे बोले कि बस चाय के लिये वे रास्ते मे रुकते है। जंगल के देवता न केवल हमे जंगली जानवरो से बचा रहे है बल्कि भूतो से भी बचा रहे है। अभी थोडी दूर पहले ही एक भूत ने इस साथी की साइकिल को पीछे से पकड लिया था। जैसे ही यह आगे बढता भूत साइकिल को हिलाकर गिराने की कोशिश करता था। भूत की जिद से तंग आकर इसने पैदल चलने का मन मनाया। फिर इसे जंगल के देवता की याद आयी। उनका नाम लिया और साइकिल मे सवार हो गया। बस फिर क्या था, सीधे यहाँ आकर रुका। मै समझ गया यह वही साथी था जिसे हमने बाद मे देखा था। चाय के बाद चिलम निकल पडी। गांजे की गन्ध फैलने लगी। उनकी आँखे चढ गयी और वे कुछ असामान्य से लगने लगे। वे शायद ऐसी अवस्था मे पहुँच गये जहाँ उन्हे देवता और भूत दोनो दिख सकते थे। हमने उनसे विदा ली। रास्ते मे ड्रायवर से रहा नही गया। बोला, साहब, देवता-वेवता कुछ नही गांजे की शक्ति के कारण यह दुस्साहस कर रहे है। ड्रायवर कुछ हद तक सही कह रहा था पर यह भी सच था कि देवता की उपस्थिति का विश्वास उनके आत्म-विश्वास को बनाये हुये था। भले ही हम इसे उनका अन्ध-विश्वास मान ले पर यह उनका जागृत विश्वास था जो उनकी राह आसान कर रहा था।

रायपुर के आस-पास के जंगलो मे लकडी की अवैध कटाई जोरो पर है। जंगल तेजी से साफ हो रहे है। आप खुलेआम गाँव के चाय़-नाश्ते वाले छोटे होटलो की भट्टी मे पुराने पेडो की लाश जलती देख सकते है। कुछ कप चाय और भजियो के लिये करोडो के पेड शाम तक खाक कर दिये जा रहे है। रोज अल सुबह ही लोग लकडी काटने निकल पडते है। कोई उन्हे नही रोकता है। यदि रोके तो कह देते है हमने लकडी नही काटी यह तो वैसे ही जंगल मे गिरी हुयी थी। वनो की रक्षा का जिम्मा सम्भालने वाला अमला बडे अधिकारियो की सेवा मे लगा रहता है। यदि वह इन सब छोटे-मोटे कार्यो की सुध ले तो उसे “काला पानी” की सजा के रुप मे राज्य के सुदूर दक्षिणी कोने मे ढकेल दिया जायेगा।

एक बार चमकने वाले मशरुम की तलाश मे मध्य रात्रि ही जंगल जाने का अवसर प्राप्त हुआ। पारम्परिक चिकित्सको को साथ लेकर जंगल की ओर कूच किया। अनावश्यक खतरा न मोल लेने की योजना थी। गाडी मे बैठे-बैठे ही टार्च से रोशनी फेककर मशरुम को देखना था। अब चूँकि खोज चमकने वाले मशरुम की थी इसलिये नियमानुसार तो उन्हे ही चमक कर अपनी उपस्थिति का अहसास कराना था। रात के एक बजे गये। दो

भी बज गये। हमे कुछ नही मिला। हम गाडी रोककर जंगल की शांति का आनन्द लेने लगे। गाडी का शोर बद हुआ तो ठक-ठक की आवाजे आने लगी। पारम्परिक चिकित्सको ने राज खोला कि ये लकडी की कटाई वाले लोग है। सुबह तक होटल खुलने से पहले या व्यापारियो के आने से पहले ये लकडी लेकर गाँव पहुँच जायेंगे। मैने सोचा कि जरुर ये भी जंगल के देवता का नाम लेकर लकडी काटते होंगे वर्ना रात को कोई जोखिम कैसे उठायेगा? पारम्परिक चिकित्सक बोले "जंगल के देवता पर इनकी आस्था होती तो वे कभी जंगल मे इस तरह लकडी नही काटते। यदि ले जाते भी तो उतनी ही जितनी घर के लिये चाहिये। ये वे लोग है जिनके मन ने देवता को बाहर निकाल फेका है। अब उनके मन मे लालच रहता है। ऐसा लालच जो बस निज स्वार्थ को देखता और सोचता है। लगता है आज के मनुष्य के इस "लालच देवता" के आगे "जंगल के देवता" ने भी हार मान ली है। तभी तो सिवाय खून के आँसू बहाने वे कुछ नही कर पाते है।

पारम्परिक चिकित्सको की बाते सुनकर मै स्तब्ध रह गया। मुझे लगा कि चीखता हुआ मै उन लोगो की ओर जाऊँ और जंगल के देवता का स्वांग रचकर उन्हे जी भरकर डराऊँ ताकि वे भाग कर गाँव मे जाये और इस बात को फैलाये। इससे अन्ध-विश्वास तो फैलेगा पर कम से कम जंगल तो बचे रहेंगे। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

"चावल खा सकते है पर एक हजार दस से परहेज करे। इससे समस्या बढ सकती है। नही खाये तो अच्छा है।" पारम्परिक चिकित्सक खूनी बवासिर (अर्श या पाइल्स) से परेशान एक रोगी को दवा के साथ परहेज के विषय मे बता रहे थे। "एक हजार दस" का नाम सुनते ही मै चौक पडा। शायद मैने गलत सुना हो इसलिये मैने रोगी के जाने के बाद फिर से पूछा। "हाँ, खूनी बवासिर के रोगी को हम यह चावल नही खाने की सलाह देते है।" इसका मतलब मैने सही सुना था। एक हजार दस धान की नयी किस्म है जो छत्तीसगढ मे किसानो के बीच बहुत लोकप्रिय है। बडे क्षेत्र मे इसकी खेती होती है। इसे किसान बेचते भी है और अपने खाने के काम मे भी लाते है। मैने पहले लिखा है कि

राज्य मे पारम्परिक धान विशेषकर औषधीय धान के विषय मे समृद्ध पारम्परिक ज्ञान है। पारम्परिक चिकित्सक एक-एक किस्मो की औषधीय विशेषताओ को जानते है। पर एक हजार दस तो नयी किस्म है। इससे होने वाले नुकसान की जानकारी उनका पारम्परिक ज्ञान नही हो सकता है। यह तो उन्होने अपने अनुभव से जाना होगा। यह मेरे लिये सर्वथा नयी जानकारी थी।

मैने अपने एक मित्र से सम्पर्क किया जो स्थानीय विश्वविद्यालय मे वैज्ञानिक है। उसने धान की बहुत सी नयी किस्मो के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। मैने उसे विस्तार से यह सब बताया तो वह झट से बोला कि कहाँ गँवारो की बात मे पड गये भाई। उनके इस दावे का कोई वैज्ञानिक आधार है जो हम मान ले। मैने कहा कि जब तुम लोग कोई नयी किस्म का विकास करते हो तो क्या यह भी देखते हो कि यह किस रोग के लिये लाभदायक है और किस के लिये हानिकारक? उसने कहा कि हमारा काम नयी किस्म का विकास होता है। बहुत से पोषण विशेषज्ञ इसके कुछ गिने-चुने रासायनिक तत्वो की जाँच कर लेते है। बस पर रोगियो पर इसके प्रभाव को नही जाँचा जाता है। मित्र की बत सुनकर मै अवाक रह गया। उसने कहा कि भारत ही नही पूरी दुनिया मे यही होता है। इसका मतलब दुनिया की आधी जनसंख्या के आहार चावल को बिना किसी जाँच परख के किसानो को दे दिया जाता है? फिर किसानो से यह आम लोगो तक पहुँच जाता है? मित्र ने कहा, हाँ, ऐसा ही होता है। मैने प्रश्न दागा कि एक हजार दस के उपयोग से बवासिर वाले रोगियो को कोई नुकसान नही होता है, इसके पक्ष मे कोई वैज्ञानिक प्रमाण है। उसने कहा, नही। "तो फिर पारम्परिक चिकित्सक और तुम एक ही स्तर पर हो, दोनो ही के पास वैज्ञानिक प्रमाण नही है। इसलिये यदि वे गँवार कहलायेंगे तो फिर----।" मित्र ने इशारा समझ लिया। पर उसने इसे बुरे से नही लिया। " मै निश्चित ही अलग-अलग मंच से यह बात उठाऊँगा।" उसने मुझे आश्वस्त करना चाहा।

मै फिर से पारम्परिक चिकित्सक से मिलने गया। मेरे मन मे कुछ शंकाए थी। मुझे लगा कि कही पारम्परिक चिकित्सक रासायनिक खेती से उपजाये गये एक हजार दस के लिये मना तो नही कर रहे थे। हो सकता है कि जैविक विधि से उगाये गये एक हजार दस के साथ कोई समस्या न हो पर पारम्परिक चिकित्सक ने दो टूक कह दिया कि कैसे भी उगाओ, एक हजार दस बवासिर के रोगियो के लिये ठीक नही है। मै समझ गया और मैने अपने लेखो के माध्यम से पारम्परिक चिकित्सक की इस बात को अपने पाठको तक पहुँचाने का मन बना लिया।

दुनिया भर मे जीएम (जैनेटिकली माडीफाइड) फसलो का विरोध हो रहा है। विरोध करने वाले लगातार तर्क दे रहे है कि इससे जैव-विविधता को खतरा पैदा हो जायेगा। पारम्परिक किस्मे विलुप्त हो जायेंगी। रासायनिक आदानो का उपयोग बढेगा। सुपर कीट और रोगाणु पैदा हो जायेंगे। यह भी कहा जा रहा है कि इन फसलो से स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड सकता है। पर उनकी आवाज नक्कारखाने मे तूती की आवाज साबित हो रही है। भले ही इनमे से कुछ लोग बहुराष्ट्रीय कम्पनियो से पैसे उगाहने के लिये विरोध करे और पैसे मिलने पर शांत हो जाये पर बहुत सारे लोग ऐसे भी है जिन्हे इनसे होने वाले नुकसान का अन्दाज है। अब देखिये, एक हजार दस से ही नुकसान की बात सन्योग से पता चल गयी। धान की सैकडो नयी किस्मे किसानो तक बिना जाँच के पहुँच रही है। यदि पारम्परिक चिकित्सक का अनुभव सही साबित होता है तो सोचिये कितने बरसो से हम भोजन के रुप मे हानिकारक खाद्य पदार्थ खा रहे थे। पता नही इससे कितनी बडी आबादी को स्थायी नुकसान हो चुका होगा? कौन इसके लिये दोषी ठहराया जायेगा? ठहराया जायेगा भी कि नही? इन अनगिनत सिर उठाये खडे प्रश्नो का उत्तर देने वाला कोई नही है। जीएम फसलो के साथ भी यही है। विरोध करने वालो को विकास विरोधी माना जाता है। जीएम फसलो के समर्थक यह दावा करते है कि अन्न की कमी को देखते हुये नयी तकनीकी जरुरी है। पर यदि आप अन्न की जगह विष परोसने जा रहे है तो इस कार्य को शुरुआत से पहले ही रोक देना समझदारी है।

एक हजार दस के बारे मे चौकाने वाली जानकारी मिलने के बाद मैने अब अपने सर्वेक्षणो के दौरान विभिन्न फसलो की प्रचलित किस्मो से होने वाले फायदे और नुकसान दोनो के विषय मे आम लोगो से चर्चा करना शुरु कर दिया है। जिनसे जो जानकारी मिली उनके नाम सहित उसी रुप मे डेटाबेस मे जोडने का प्रयास मै करता हूँ। मुझे प्रतीक्षा है आम लोगो के जागने की। वे जब भोजन की जगह विष युक्त भोजन परोसने वालो को आँखे दिखायेंगे तभी उन्हे शुद्ध भोजन मिलेगा। अन्यथा तथाकथित वैज्ञानिक विकास की बलिवेदी पर पूरा मानव समाज यूँ ही चढता रहेगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

इस लेखमाला की 81 वी कडी मे मै बुधराम की झोपडी मे गुजारी एक रात के विषय मे आपको बता रहा था। रात के सन्नाटे मे जिस आवाज से मेरी नीन्द खुल गयी थी वह छत से आ रही थी। छत जामुन और पलाश की सूखी शाखाओ से बनी थी जिसमे छोटे-छोटे निशाचर कीटो का बसेरा था। रात मे वे शोर कर रहे थे और मुझे नीन्द नही आ रही थी। मेरी हलचल से बुधराम की नीन्द भी खुल गयी। उसने बाहर बुझ चुकी आग को फिर से जलाया और मुझसे बाते करने लगा। पिछले लेख मे मैने आम लोगो के मन मे बसे जंगल के देवता की चर्चा की थी। बुधराम ने बताया कि पास की पहाडी मे जंगल के देवता मूर्त रुप मे भी विद्यमान है। यदि इच्छा हो तो कल सुबह चल सकते है। लम्बा चलना होगा इसलिये अच्छी नीन्द जरुरी है। मैने बुधराम की बात मानकर सोने का मन बनाया। उसने बाहर जल रही लकडियो की राख मे महुये की शराब मिलायी और फिर उस लेप को मेरे तलवो पर लगा दिया। कुछ ही पलो मे मुझे नीन्द आ गयी। सुबह कुछ देर से उठा। नीन्द नशीली थी। शायद यह महुये का असर था।

ड्रायवर को गाडी के पास रुकने को कहकर हम लोग जंगल के देवता से मिलने चल पडे। बुधराम के दो साथी थे हमारे साथ। उन्होने तीर-धनुष रख लिया था। तीर दो प्रकार के थे। एक तो नुकीला और दूसरा भोथरे सिरे वाला। उन्होने मुझे बताया कि भोथरे सिरे वाले तीर से वे पक्षियो का शिकार करते है। उन्होने कुछ ऐसे तीर भी दिखाये जो कि विष-बुझे थे। उनकी विशेष तैयारियो से यह लग रहा था कि हम जंगली जानवरो से भरे जंगल मे जा रहे थे। थोडी दूर चलने पर पीछे देखा तो ड्रायवर आ रहा था। उसने भी हमारे साथ चलने का मन बना लिया था। हमने सुबह से कुछ खाया-पिया नही था। सबने नीम की दातौन रखी थी। बुधराम के पास एक लोटा था जबकि हमने उसके विकल्प मे तौर पर पानी की खाली बोतल रखी थी। हम चलते गये और दातौन को चबाते रहे है। बीच मे जिसे "प्रेशर" आया है उसे झाडियो मे भेज दिया। इस प्रक्रिया मे मेरा पेट इतना अधिक साफ हुआ जितना शायद पहले कभी नही हुआ था। पेट साफ होना माने उत्साह मे वृद्धि। आखिर हमारी बहुत सी बीमारियो की जड पेट की गन्दगी ही तो है। और इस गन्दगी की सफायी के नाम पर हमारे देश मे व्यवसायिक आयुर्वेद की दुकाने चल रही है।

अभी हाल ही मे एक सज्जन मेरे पास आये। उन्हे लगता था कि उनकी किडनी मे कुछ समस्या है। मैने उनसे उनकी दिनचर्या पूछी तो बात सुबह पर ही अटक गयी। महाशय खाली पेट एक-डेढ घंटे मे बारह ग्लास पानी पीते थे। मैने उनसे पूछा कि इतना सारा

पानी इतनी जल्दी पीने को किसने कहा? उन्होने जवाब दिया कि आप चैनल वाले बाबाओ को नही देखते? वे कहते है सुबह छह ग्लास पानी पीना चाहिये। इससे बहुत से फायदे होते है। मोटापा भी कम होता है। मैने पूछा कि ये आप छै ग्लास से बारह ग्लास मे कैसे पहुँच गये? उन्होने जवाब दिया कि जल औषधी है इसलिये जितना ज्यादा पीओ उतना लाभ होगा। मैने उन्हे याद दिलाया कि यह भी सत्य है, अति सर्वत्र वर्जयेते। आप विशेषज्ञ से पूछिये कि आपके लिये कितना ग्लास पानी सही रहेगा। पानी स्वाद से पीना चाहिये न कि गटागट, एक साँस मे, कैसे भी लक्ष्य को पूरा करने के उद्देश्य से। प्राचीन चिकित्सा ग्रंथो मे लिखा है कि जब प्यास लगे तो भोजन न करे और जब भूख लगे तो पानी न पीये। पानी निश्चित ही औषधी है पर औषधी को लेने के नियम होते है। आप पानी की मात्रा कम करे और मजे लेकर इसे पीये, मुझे लगता है कि इससे आपकी समस्या कम होगी। वे मान गये। उन्होने एक डिब्बा निकाला और मुझे देते हुये इस बारे मे अपनी राय पूछी। डिब्बे मे कोई चिर-परिचित औषधी थी। लेबल मे लिखा था सभी तरह के रोगो के लिये उपयोगी। दमा, ब्लड-प्रेशर, कैसर, डायबीटीज, ल्यूकोडर्मा, खून की कमी, गठिया, बाल गिरना, नीन्द न आना, नपुंसकता आदि सभी तरह के रोगो मे इसे ले। पहले ही दिन से शरीर की गन्दगी बाहर निकलेगी। लेबल को यदि सही माने तो यह रामबाण थी। महाश्य ने बताया कि यह भी चैनल वाले बाबाओ की खोज है। एक दवा से सारे मर्ज का कारगर इलाज? मैने पूछा कि ये बाबा क्या और भी दवाए बेचते है? उन्होने कहा कि हाँ, दो सौ से अधिक दवाए, यहाँ तक कि साबुन और अगरबत्ती भी बेचते है। मैने फिर प्रश्न दागा कि जब इस दवा से सारे रोग ठीक हो जाते है तो फिर बाकी दवाओ को बनाने और बेचने की क्या जरुरत? उनके पास जवाब नही था।

डिब्बे मे जब दवा के मुख्य घटको को पढा तो पता चला कि सोनामाखी सबसे अधिक मात्रा मे था। सोनामाखी मायने सनाय। कभी मै मध्य भारत के किसानो के साथ इसकी व्यवसायिक खेती के प्रयास करता था। यह पारम्परिक रेचक है। दुनिया भर मे इसकी रेचक के रुप मे माँग है। बडे पैमाने पर इसकी खेती की जाती है और फिर इसका निर्यात किया जाता है। सोनामुखी बडा ही कारगर रेचक है। बहुत से बुजुर्गो से मुझे जानकारी मिली कि पहले सोने की ठगी करने वाले बडी दुकानो मे चले जाते थे और मौका पाते ही सोने का टुकडा निगल लेते थे। वापस जाकर सोनामुखी खाते थे और सुबह जब सोना शरीर से बाहर आ जाता था तो उसे मल से अलग कर लेते थे।

अब तो आप जान ही चुके है सोनामुखी के रेचक गुणो की महिमा। पर याद रहे कि यह मात्र रेचक है सभी प्रकार के रोगो की दवा नही जैसा कि उस डिब्बे मे दावा किया गया

था। यह सरासर धोखा है। पता नही कैसे ऐसा खोखला दावा करने वाले उत्पादो को बाजार मे खुलेआम बिकने की छूट मिल जाती है? पहले आपने नोनी और एलो वेरा जूस के नाम पर किये जा रहे खोखले दावो की सच्चाई के बारे मे पढा ही है। बहरहाल, मैने उन महाश्य से पूछा कि क्या आपको कब्ज है? उन्होने जवाब दिया कि हाँ इसीलिये तो मै इसे खाता हूँ। साल मे कितनी बार? मैने फिर पूछा। उन्होने कहा कि रोज। यह उत्तर चौकाने वाला था पर मै नही चौका क्योकि हमारे देश मे रेचक का प्रयोग कभी-कभी न कर रोज किया जाता है। मै अपने लेखो मे बार-बार लिखता हूँ कि हमारे शरीर मे गन्दगी को बाहर निकालने की प्रकृति प्रदत्त व्यवस्था है। उसे बरकरार रखने की जरुरत है। हाँ, कभी-कभार उसकी सहायता के लिये प्राकृतिक रेचको का प्रयोग किया जा सकता है पर इनपर निर्भरता किसी भी हालत मे सही नही है। आधुनिक मनुष्य़ माने आप-हम की दिनचर्या जग जाहिर है। न रेशे वाले खाद्य खाते है, न ठीक से पानी पीते है, न ही शारीरिक श्रम करते है, दिन भर तनाव से ग्रस्त होते है, ऐसे मे चाहकर भी हम कब्ज से बच नही पाते है। मै आपसे सीधे पूछता हूँ कि साल मे कितने दिन आप दवा नही खाते है? जरा इस पर गौर तो करे। पहले दवा जरुरत पडने पर ही खायी जाती थी और भोजन नियमित किया जाता था। आज स्थिति उल्टी है। भोजन भले ही चूक जाये पर दवा खाना हम चूकना नही चाहते है। केवल कुछ ही दशको मे कैसे सब उल्टा-पुल्टा हो गया? भोजन को भोजन और दवा को दवा के रुप मे खाने वाली स्वस्थ्य पीढी के लोग आज भी हमारे बीच है। भले ही वे उम्र के अंतिम पडाव पर है पर ज्यादातर मामलो मे हमसे ज्यादा भले-चंगे है।

(क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“अरे, यह तो भ्रमरमार है। एक नही दो-दो है।“ मै लगभग चीख पडा। मेरी खुशी का ठिकाना नही रहा। ऐसा लगा जैसे मुझे अनमोल रत्न मिल गये हो। बुधराम और उसके साथियो के साथ मै जब जंगल के देवता के घर पहुँचा (सन्दर्भ के लिये पिछले लेख पढे)

तो एक से बढकर एक दुर्लभ वनस्पतियो को देखकर मै आश्चर्यचकित रह गया। भ्रमरमार का पौधा ब्लड कैसर मे दशको से सफलतापूर्वक प्रयोग हो रहा है। सबसे पहले मैने इसे पढाई के दौरान देखा था। मुझे इसके दिव्य औषधीय गुणो के विषय मे बताया गया था। मैने सन्दर्भ ग्रंथो को पढा तो मुझे इसके विषय मे कोई जानकारी नही मिली। हमारे प्राचीन ग्रंथ भी इसके विषय मे कुछ नही बताते है। जब मैने कैंसर की पारम्परिक चिकित्सा से समबन्धित ज्ञान का दस्तावेजीकरण आरम्भ किया तो इस वनस्पति का नाम मैने बहुत बार सुना। पर हर बार पारम्परिक चिकित्सको की टिप्पणी मिलती थी कि अब यह नही मिलता है इसलिये हम इसके स्थान पर दूसरी वनस्पतियो का प्रयोग करते है। दूसरी वनस्पतियाँ उतनी कारगर नही होती है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कैसर के आठ हजार से अधिक पारम्परिक नुस्खो मे इस वनस्पति का प्रयोग किया जाता है। यह मेरा सौभाग्य है कि मैने बहुत बार इसे जंगलो मे देखा। हर बार पारम्परिक चिकित्सको के साथ। और हर बार इसके पौध भागो को एकत्र करने के बाद पारम्परिक चिकित्सको ने इस स्थान को ऐसा बना दिया जिससे दूसरे लोग इस तक न पहुँच पाये। मुझसे भी वचन लिया कि मै इस स्थान की जानकारी किसी को न दूँ। मैने इसके प्रवर्धन की बहुत कोशिश की पर सफल नही हो पाया। किसी विशेष वनस्पति को आप देख ले तो फिर दिमाग उसे भूल नही पाता है। जंगल की यात्रा के दौरान मुझे कई बार यह दिख जाती है पर मै इसकी चर्चा करने से बचता रहता हूँ। इसके कई कारण है।

कैसर के लिये उपयोगी वनस्पति का नाम सुनते ही बिना कुछ जाने–बूझे ऐसी वनस्पतियो का एकत्रण आरम्भ हो जाता है। इन वनस्पतियो से बडे चमत्कार की उम्मीद की जाती है। मसलन भ्रमरमार को खाने के बाद ब्लड कैसर के रोगी एक ही खुराक मे रोग के खात्मे की उम्मीद करते है। उन्हे तो यह भी नही पता होता कि इसका कौन सा भाग कैसे उपयोग करना है। कोई पत्तियो का काढा बना लेता है तो कोई रस निकाल के पी जाता है। आधुनिक शोधकर्ता ऐसी वनस्पतियो को एकत्र करते ही इसके रासायनिक तत्वो की खोज मे लग जाते है। बहुत से मामलो मे जब इसका चमत्कारी असर नही दिखता है तो इसे भुला दिया जाता है और लोग नयी वनस्पतियो की खोज मे निकल जाते है। इस तमाशे से दुर्लभ वनस्पतियो का बहुत नुकसान होता है। पारम्परिक चिकित्सको को जो कि इनका सही उपयोग जानते है, जरुरत के समय ये नही मिल पाती है और वे चाहकर भी उम्मीद लेकर आये रोगियो के लिये कुछ नही कर पाते है। भ्रमरमार का प्रयोग अलग-अलग वनस्पतियो के साथ विशेष विधियो से होता है। पारम्परिक चिकित्सक जानते है कि रोग की किस अवस्था मे इसका प्रयोग करना है। इसके असर को बढाने के लिये वे दूसरी वनस्पतियो का सहारा भी लेते है। बिन ज्ञानी के

इस प्रयोग से लाभ की उम्मीद करना बेमानी है। आधुनिक शोधकर्ता रासायनिक तत्वो को अलग कर उनसे असर की उम्मीद करते है पर पारम्परिक चिकित्सक मूल रुप मे इनका प्रयोग करते है। मूल रुप मे वनस्पतियाँ बहुत कारगर होती है। पर लगातार असफलता के बाद भी आधुनिक शोधकर्ता इस बात को नही मानते है।

मुझे याद आता है कि दस-बारह साल पहले एक विज्ञान सम्मेलन मे एक विदेशी उद्योगपति से मुलाकात हुयी थी। उन्होने जानबूझकर होटल मे मेरे बगल वाला कमरा लिया था। उनके अनुसार वे मुझसे मिलने ही इस सम्मेलन मे सात समुन्दर पार से आये थे। उन्होने मुझे अपने साथ लायी महंगी शराब दी और कहा कि इसे पीये, फिर चर्चा करेंगे। मैने कहा कि मै तो शराब पीता नही। उनके दुभाषिये जो कि भारतीय था, ने कहा कि इस शराब के लिये लोग तरस जाते है। आपको तो पूरी बोतल दे रहे है। मना मत करिये। फिर मेरे कठोर रुख को देखकर बिना विलम्ब कहा कि उन्हे भ्रमरमार चाहिये। चाहे कितनी भी कीमत ले लो पर चाहिये। मैने उन्हे भारत सरकार द्वारा तय की गयी प्रक्रिया बतायी और उसी रास्ते से सम्पर्क करने को कहा। वे जोर देने लगे कि एक बार उसकी झलक दिखा दो, दूर से ही सही, उनके वैज्ञानिक उसे पहचान लेंगे। बात न बनती देखकर उन्होने और जोर नही दिया।

मेरे व्याख्यान के बाद जब प्रश्नोत्तर की बारी आयी है तो सभागृह के अलग-अलग कोनो से बहुत से हाथ उठे। आमतौर पर दो या तीन प्रश्नो को इजाजत दी जाती है पर सभापति ने प्रश्नोत्तर के लिये आधे घंटे का समय रख दिया। पहला प्रश्न सुनते ही मेरा माथा ठनका। “भ्रमरमार कहाँ मिलेगा। पता बताये।“ भ्रमरमार कहाँ मिलेगा? अरे, मैने तो अपने व्याख्यान मे इस पर कुछ कहा ही नही फिर यह प्रश्न कहाँ से आ गया? मैने सभापति से कहा कि व्याख्यान से सम्बन्धित प्रश्न किये जाये। दूसरा प्रश्न पूछा गया। यह भी वही प्रश्न था। तीसरा, चौथा, पाँचवा कुल बीस से अधिक ऐसे प्रश्न पूछे गये जिसमे इस वनस्पति का अता-पता बताना था। अब सभापति ने मोर्चा सम्भाला और मुझसे कहा कि अब आप बता ही दीजिये ना। इतने लोग पूछ रहे है। मै अवाक रह गया। इसका मतलब, ये सभापति भी षडयंत्र के हिस्सा थे। मैने कठिन निर्णय लिया और बिना जवाब दिये मंच से नीचे आ गया। सभापति ने बडा मुँह बिचकाया। मैने सुना कि वे इस जवाब न देने को देश का विश्व समुदाय के सामने अपमान कह रहे थे। खैर, यह सब तो होता ही रहता है। मै सम्मेलन को बीच मे ही छोडकर वापस आ गया। उसके बाद भी पीछा जारी रहा। बडी विज्ञान पत्रिकाओ ने इस वनस्पति पर शोध लेख लिखने को कहा। इस

पर व्याख्यान के लिये विदेशो से निमंत्रण आने लगे और सम्मान की बात होने लगी। पर उन्हे निराशा ही हाथ लगी।

किसी वनस्पति का एक बार नाम चल निकला तो हजार डुप्लीकेट बाजार मे आ जाते है। भ्रमरमार के साथ भी ऐसा है। देश भर से विभिन्न वनस्पतियो के नमूने पहचान के लिये आते रहते है। भ्रमरमार जैसी वनस्पतियो के नाम पर ढेरो नमूने आते है। मैने पाँच सौ से ज्यादा नमूनो की जाँच की है पर एक भी सही नही निकला। बहुत से लोग नमूने के साथ यह लालच देते है कि उन्हे पता है, ये सही नही है पर फिर भी यदि आप सही है - ऐसा कह दे तो बात बन जायेगी। आपको मुँहमाँगी फीस दी जायेगी। सम्मेलन मे मिलने आये विदेशी कुछ महिनो बाद घर मे बिना सूचना के आ गये। उन्होने उडीसा के जंगलो से कुछ वनस्पतियाँ एकत्र की थी। उनका कहना था कि उनमे से भ्रमरमार भी है। वे मुझसे इसकी पुष्टि करवाना चाहते थे। मैने साफ इन्कार कर दिया और उनसे सरकारी अनुमति लेकर आने को कहा। सीधे रास्ते से तो वे आ नही सकते थे वर्ना कब के आ चुके होते थे। उस समय ये बडा ही अटपटा अनुभव लगा पर अब तो आदत हो गयी है। जब आप लाखो पन्ने लिख चुके होते है और यह बात सार्वजनिक हो जाती है तो येन-केन-प्रकारेण जानकारी निकलवाने वाले तो आते ही रहते है।

बुधराम हमे जिस स्थान पर लेकर गया वह पहाडी पर था। उस स्थान मे जंगल अन्य स्थानो की तुलना मे अधिक घना था। यहाँ विविधता भी थी। कारण यह था कि स्थानीय निवासी इस भाग से कभी वनस्पतियो को नही ले जाते है। न ही पेडो की कटाई की जाती है। सरकारी विभाग भी आस्था के कारण यहाँ दखल नही देते है। एक और अच्छी बात पता चली और वो यह कि इस स्थान मे पारम्परिक चिकित्सक चढावे के नाम पर दूर-दूर से एकत्र की गयी जडी-बूटियाँ लाकर लगा देते है। इससे यह वनस्पति प्रेमियो के लिये स्वर्ग के समान हो जाता है। बुधराम ने बताया कि लाइलाज रोगो से ग्रस्त रोगियो को यहाँ आने और यहाँ के झरनो से पानी पीने को कहा जाता है। इन वनस्पतियो की जडो से एकत्र की गयी मिट्टी से शरीर को साफ करने को कहा जाता है। यहाँ से एकत्र की गयी शहद का प्रयोग पारम्परिक चिकित्सक विशेष औषधीयो के साथ करते है।

मुझे याद आता है, ऐसे ही पवित्र स्थान पर मुझे नियमगिरि यात्रा के दौरान जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। जब हम पैदल चलकर उस स्थान तक पहुँचे तो हमे आम के पुराने पेड मिले। मुझे बताया गया कि जंगली पेडो को बचाये रखने के साथ ही यहाँ के राजा ने फलदार पेडो को भी रोपा। ये पेड आज तक फल दे रहे है। वहाँ मुझे कई दुर्लभ वनस्पतियाँ मिली। उनमे से एक भंडारी थी। हम चर्चा कर ही रहे थे कि एक भालू दौडता

हुआ सामने से निकला। साथ चल रहे पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि डरने की कोई बात नही है। ये देव स्थली है यहाँ जानवर नुकसान नही पहुँचाते है। मेरा ध्यान भालू की ओर था। मैने इस यात्रा के दौरान बहुत से जंगली जानवर देखे थे और स्थानीय लोगो से जंगली हाथियो के विषय मे रोचक जानकारियाँ एकत्र की थी। मुझे बताया गया था कि बीती रात को ही हाथी आये थे। मैने उनके वजन के कारण धँसी जमीन और उनके पैरो के निशान देखे। मैने इंटरनेट पर पढा था कि कुछ सप्ताह पहले देहरादून से वन्य विशेषज्ञो का एक दल आया था नियमगिरि। उसने अपनी रपट मे लिख दिया कि यहाँ जंगली जानवर है ही नही। यह रपट सर्वोच्च न्यायालय मे प्रस्तुत की गयी। इससे यह सन्देश गया कि जब जंगली जानवर है ही नही तो बाक्साइट खनन से भला नियमगिरि को क्या नुकसान होगा? मै अपने आपको भाग्यशाली मानता हूँ जो चन्द पैसो के लिये मैने दबाव मे आकर कभी झूठी रपट नही तैयार की। मैने नही की तो इससे क्या फर्क पडता है। हमारे देश मे ऐसे विशेषज्ञो की कमी नही है जो दिन को रात कह दे और रात को दिन तो उनकी बात मान ली जायेगी।

बहरहाल, भालू के दूर चले जाने के बाद मैने पारम्परिक चिकित्सक से पूछा कि क्या केवल इसी भाग मे जंगली जानवर मनुष्यों पर हमला नही करते? क्या इसी देव-स्थल मे? उसने विनम्रता से कहा कि इस पूरे नियमगिरि मे ऐसा ही होता है। यह पूरा पहाड हमारा नियम राजा है। हमे पूरे पहाड को पूजते है। उसका कहना सही था। यही कारण था कि पूरा नियमगिरि जैव-विविधता का गढ था। “था” इसलिये कह रहा हूँ क्योकि अब खबरे आ रही है कि बुलडोजर वहाँ अपना काम शुरु कर चुके है। पेड अन्धाधुन्ध कट रहे है और नीचे होटल की भठ्ठियो मे खाक हो रहे है। वहाँ लोग जानवरो की तरह हाँके जा रहे है। ऐसे मे जानवरो और वनस्पतियो की भला कौन पूछेगा? (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

मुझे याद आता है, बचपन मे जब भी हमारी रेलगाडी किसी नदी के ऊपर से गुजरती थी तो कोई नदी को नमन कर मंत्रोप्चार शुरु कर देता था तो कोई नीचे सिक्के फेक देता

था। बडी नदी नही बल्कि छोटी नदियो के प्रति भी लोगो का झुकाव देखा जा सकता था। बहुत बार नदी मे नहाते समय रेल्वे ब्रिज से रेलगाडी गुजरने पर हम लोग सिक्के या फूल माला फेके जाने की प्रतीक्षा करते थे। सभी दर्जे मे सफर करने वालो के मन मे नदियो के प्रति आस्था होती थी। एसी मे सफर करने वाले नदी के पास आते ही लपककर दरवाजे पर पहुँच जाते थे। कालेज टूर के दौरान दक्षिण मे भी मैने यह सब देखा। पर पता नही पिछले दस सालो मे ऐसा क्या हो गया कि लोगो की आस्था घट गयी। ऐसा नही है कि इन सालो मे नदी का महत्व कुछ घट गया है बल्कि जनसंख्या मे बढोतरी होने के कारण नदियो का महत्व और उनकी आवश्यकत्ता और बढ गयी है। कुछ महिनो पहले एक रेलयात्रा के दौरान मैने एसी के डिब्बे मे इस तरह की प्रतिक्रिया नही देखी तो पीछे के डिब्बो मे जाने का मन बनाया। वहाँ भी कमोबेश यही स्थिति थी। एक सहयात्री से पूछा तो उसने मजाक मे कहा कि अब लोगो का जीवन स्तर बढ गया है। उनके पास चिल्हर पैसे नही है यूँ फेकने के लिये। इस पर दूसरे ने कहा कि छोटी नदियो मे नही गंगा जैसी नदियो पर ही आजकल सिक्के फेके जाते है। इस पर यात्रियो मे चर्चा होने लगी। जितनी मुँह उतनी बाते। कुछ का मानना था कि ऐसे फेके गये पैसे किसी के काम नही आते इसलिये आज की पीढी समझदार हो गयी है, पैसे अपने जेब मे ही रखना पसन्द करती है। लोगो ने इसे अन्ध-विश्वास भी कहा। मै चुपचाप सुनता रहा।

नदियो को देखकर उन्हे नमन करने वाले एक बुजुर्ग से बहुत पहले मैने इस पर बात की तो वे बोले कि ये नदियाँ हमे जीवन देती है। हम चाहकर भी इनके कर्ज को उतार नही सकते है। बस नमन कर और कुछ सिक्के अर्पण कर एक छोटी सी कोशिश करते है। उन्होने यह भी कहा कि पहले के जमाने मे ताम्बे के सिक्के हुआ करते थे। शायद उन्हे फेकने से जल कुछ शुद्ध हुआ करता होगा पर उस समय तो शुद्धता की उतनी जरुरत नही थी जितनी कि अब है। पर अब तो ताम्बे के सिक्के कोई नही फेकता।

बुधराम के साथ जब मै जंगल के देवता (सन्दर्भ के लिये पिछले लेख देखे) के घर पहुँचा तो मैने देखा कि उसके साथी कुछ छोटे पौधो की जडे एकत्र कर रहे है। जडो को एकत्र करने के बाद उन्होने कुछ बडे पेडो की पत्तियाँ एकत्र की। फिर बीजो का बारी आयी। मुझे लगा कि यह सब किसी औषधी के निर्माण की प्रक्रिया है। पर सभी पौध भागो को मिलाने के बाद जब उन्होने मिश्रण को पास के झरने मे फेक दिया तो मेरे आश्चर्य की सीमा नही रही। बुधराम ने कहा कि पारम्परिक चिकित्सको कहने पर हम यह करते है। यह मिश्रण जल की सफाई करता है। अब यहाँ ऊपर तो पानी साफ है पर नीचे बस्ती के पास यह गन्दा हो जायेगा। लाख मना करने के बावजूद लोग साबुन का प्रयोग करेंगे।

गुटखा के पाउच डालेंगे और नाना प्रकार की शहरी गन्दगियाँ फेकेंगे। इस मिश्रण से जल साफ रहेगा और गन्दगी दूर होगी। साथ ही मछलियो और दूसरे जीवो को जीवन जीने मे मदद मिलेगी। जब वे सक्रिय रहेंगे तभी जल मे भी जान रहेगी। ये ही झरने तो नीचे जाकर बहुत सी बडी नदियो को बनाते है। बुधराम की बात सही थी। मैने इस सरल प्रक्रिया मे प्रयोग होने वाली वनस्पतियो के विषय मे जानना चाहा तो उसने बिना किसी विलम्ब के सारी जानकारी दे दी पर यह भी कहा कि एक नही ढेरो मिश्रण इस कार्य के लिये प्रयोग किये जा सकते है। किसी झरने या जल स्त्रोत के लिये कौन सा मिश्रण उपयोगी है, ये तो पारम्परिक चिकित्सक बतायेंगे। यह कठिन नही है। झरने के आस-पास प्राकृतिक रुप से उग रही वनस्पतियाँ ही प्रयोग की जाती है पर उनके उपयोग के सरल नियम है जो सीखने होंगे। मैने पारम्परिक चिकित्सक से मिलने का मन बनाया।

सहजन या मुनगा और निर्मली के बीजो से जल को शुद्ध करने का पारम्परिक ज्ञान तो अब लोकप्रिय ज्ञान बन गया है। यदि आप पेटेंटो की सूची देखेंगे तो आपको भारतीय शोध संस्थानो द्वारा इन पर लिये गये ढेरो पेटेंट मिलेंगे। पता नही ये पेटेंट क्यो लिये जाते है? यह प्रश्न इसलिये क्योकि ये सस्थान पेटेंट के बाद इस ज्ञान का भारतीय जनता के लिये उपयोग करते नही दिखते। बस उनके बायोडेटा मे यह लिखा होता है कि उन्होने इतने पेटेंट करवाये है। इस आधार पर शायद उनकी पदोन्नति हो जाती है। पर उनका यह उपक्रम देश के कुछ काम नही आता। ग्रामीण भारत मे इन दो वनस्पतियो के अलावा ढेरो वनस्पतियो की जल शुद्धिकरण क्षमता के विषय मे जानकारी है। सबसे अच्छी बात यह है कि वे अभी भी इस ज्ञान का उपयोग कर रहे है। जल की दशा को देखकर कैसे आसानी से इसे शुद्ध रखा जाता है यह आप गाँवो मे बसने वाले भारत से जानिये।

धार्मिक मेलो मे जडी-बूटियो की खोज मे अक्सर मेरा जाना होता है। फूलो से लेकर दूसरी पूजन सामग्रियाँ हर साल बडी मात्रा मे नदियो मे बहा दी जाती है। इससे बडा प्रदूषण भी होता है, यह सब जानते है। पर चूँकि यह धार्मिक आस्था का प्रश्न है इसलिये इसपर खुलकर नही बोला जाता। पर मुझे लगता है कि मेरे पास कुछ ठोस उपाय है। मै यहाँ पारम्परिक ज्ञान के उपयोग की बात करने वाला हूँ। यदि हर पूजा सामग्री बेचने वाले के पास मुफ्त मे एक छोटी-सी पुडियाँ इस अनुरोध के साथ दे दी जाये कि इसे पूजन सामग्री बेचते समय किसी भी तरह भक्तो को दे देना तो बात बन सकती है। आप तो समझ ही गये होंगे कि इस पुडियाँ मे क्या होगा? इसमे वनस्पतियो का वही मिश्रण होगा जो जल को शुद्ध करने का माद्दा रखता है। कल्पना कीजिये, गंगा के किनारे पर

बडा मेला। असंख्य श्रद्धालुगण। जल के दूषित होने की अपार सम्भावना पर भी जल दूषित नही हो रहा है बल्कि अभी भी निर्मल है। सभी भक्त गण जाने-अनजाने ही सही गंगा को साफ करने मे अपना योगदान दे रहे है। यदि भक्त पुडियाँ के बारे मे जान भी जाये तो मुझे नही लगता कि पवित्र उद्देश्य्यो को जानकर कोई बखेडा खडा करेगा। एक बार यह सब सफलतापूर्वक चल निकला तो इस आहुति मे पूरा देश मदद करेगा-ऐसा मुझे लगता है। गंगा जैसी नदियो की सफाई मे अब सरकारी मशीनरी से उम्मीद रखना बेकार जान पडता है।

इस दिशा मे बढने के लिये पारम्परिक चिकित्सको और उनके पारम्परिक ज्ञान की मदद ली जानी चाहिये। मै यह साफ कर दूँ कि यह “देशी आइडिया” अंतिम सोपान तक देशी रहना चाहिये। ऐसा नही कि इस ज्ञान के सामने आते ही हमारे सरकारी वैज्ञानिक शोध के नाम पर इसे हडप ले फिर दुनिया के दूसरे देशो मे इसके विषय मे बताकर वाह-वाही लूटे। ऐसा भी न हो कि बडी कम्पनियाँ इस तरह की पुडियाँ बनाने लगे और मुफ्त की बजाय देश के पारम्परिक ज्ञान के लिये देश के ही लोगो को पैसे खर्चने पडे। डेढ हजार से भी ज्यादा उपयोगी मिश्रणो के बारे मे जानकारी सार्वजनिक करने से पहले मै यह भी सुनिश्चित करना चाहूँगा कि किसी भी कीमत पर इसकी लोकप्रियता का असर उन वनस्पतियो के अस्तित्व पर न पडे जिनका प्रयोग इन मिश्रणो मे होने जा रहा है। अन्यथा नदियाँ तो साफ हो जायेंगी पर इन वनस्पतियो का अस्तित्व सदा के लिये खो जायेगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

बस्तर के ग्राम मधोता के नन्हे चरवाहे ने जब एक जंगली जानवर को अपने पशुओ के आस-पास घूमते देखा तो उसने उसे जंगली कुत्ता समझ पत्थर मारकर भगाने की कोशिश की। इससे जंगली जानवर क्रोधित हो गया और उसने बिना देर उस पर आक्रमण कर घायल कर दिया। यह जंगली कुत्ता नही बल्कि तेन्दुआ था। इसके बाद जो भी दिखा उस पर इसने आक्रमण किया और चार ग्रामीण घायल हो गये। यह खबर आग की तरह फैली

और कुछ ही देर लाठियो से लैस ग्रामीणो ने तेन्दुए को घेर लिया और उसे पीट-पीट कर मारा डाला। खून का बदला खून। इतना ही नही तेन्दुए के मरने के बाद इसके अंगो को लूटने की होड मँच गयी। किसी ने बीर नख की तलाश मे इसका पेट चीर डाला तो किसी ने दांत और नाखून निकाल लिये। जब तक वन-अधिकारी पहुँचे तब तक इसका एक-एक रोम ग्रामीणो ने निकालकर अपने पास सुरक्षित रख लिया था- यह दिल दहला देने वाला समाचार आज ही मै दैनिक नवभारत मे पड रहा था। ऐसी खबरे छत्तीसगढ मे नयी नही है। हम लगातार तेन्दुओ के मारे जाने की खबरे पढते रहते है। कभी कोई तस्कर पकडाता है तो कभी ग्रामीण के आक्रोश का शिकार हो जाते है ये तेन्दुए। पर इस ताजी घटना ने जता दिया कि अन्ध-विश्वास कितने चरम पर है राज्य मे। पशु अंगो से जुडा अन्ध-विश्वास। जिस पशु को इतनी बर्बरता से मार डाला गया उसके अंगो को बहादुरी का प्रतीक बनाकर गले मे टाँगना कायरता का प्रतीक है। पेट से प्राप्त बीर नख को पास रखकर यह दावा करना कि इसमे जादुई शक्ति है जो किसी को भी वश मे कर सकती है, महज एक धोखा है। तेन्दुए के पास ऐसी कोई जादुई शक्ति होती तो उसे मानव आबादी के पास आने की जरुरत ही नही पडती। और जरुरत पड भी जाती तो इस तरह वह मारा नही जाता।

खबर के अनुसार बीर नख किसी अज्ञात ग्रामीण ने पेट चीरकर निकाल लिया है। यह अज्ञात ग्रामीण कभी नही पकडा जायेगा, भले ही वन अधिकारी जितना दावा कर ले। हाँ, यदि वे चाहे तो पास के शहर से बीर नख और ग्रामीण दोनो को पकड सकते है। लेकिन इसमे जल्दी दिखनी होगी। देर की तो यह कुछ ही समय मे किसी धन्ना सेठ की तिजोरी की शोभा बढाता दिखेगा।

छत्तीसगढ मे जितने भी जानवर होते है उन सब के सभी अंगो के विषय मे घोर अन्ध-विश्वास है। चाहे वह हिरन हो या बाघ। यह अन्ध-विश्वास लालच पैदा करता है। यह अन्ध-विश्वास एक तरह का बाजार पैदा भी करता है। यह बाजार ग्रामीणो को प्रेरित करता है कि वे इन पशुओ का शिकार करे और तुरंत पैसे कमा ले। जब डर न हो, जंगली जानवर आसपास हो और अंगो के खरीददार घर आकर पैसे दे रहे हो तो ऐसे मे भला कौन इस सब पर अंकुश लगा सकता है? जानवर को जंगल से गुजरता देखकर लोग अनुमान लगाने लगते है कि इसके मरने पर कितना मिल सकता है? ऐसी लालच भरी निगाहो से भला जंगली जानवर कब तक बच सकते है? आज नही तो कल इन्हे धरती के इस भाग से साफ कर दिया जाने वाला है। शायद वे अपनी नियति जानते है।

पहले दुनिया भर मे चीते हुआ करते थे। जंगल के खत्म होने पर जब इन्होने गाँवो के आस-पास पशुओ की तलाश मे चक्कर लगाना शुरु किया तो पशुपालक इनका शिकार करने लगे। यह शिकार एक तरह का शौक बन गया और देखते ही देखते चीते दुनिया के कुछ भागो मे सिमट कर रह गये। अब धरती पर कुछ हजार चीते ही बचे है। अभी भी उनका शिकार जारी है। यही हाल अब भारत मे तेन्दुओ के साथ हो रहा है। लगातार ग्रामीणो द्वारा इन्हे मार दिये जाने के समाचार अखबारो मे आ रहे है। आप तो जानते ही है कि कुल घटना का केवल दस प्रतिशत भाग ही समाचार-पत्रो तक पहुँच पाता है। पता नही कितने तेन्दुए मारे जा चुके है वास्तव मे। उस जमीनी हकीकत का किसी को पता नही है। वन विभाग की तो बात ही न करे। वे हर साल एक ही गिनती को दोहरा देते है। उन्हे लगता है कि संख्या कम दर्ज करायी तो जाँच बैठ जायेगी और संख्या बढ गयी तो भी कारण देने होंगे। ग्रामीण पशुपालको के अलावा भारत मे तेन्दुए लोगो के अन्ध-विश्वास का शिकार भी हो रहे है। अंगो का व्यापार दिन दूनी रात चौगुनी की दर से बढ रहा है। शासन कितना सक्रिय है इसका अन्दाज आप इसी से लगा सकते है कि राजधानी के मुख्य बाजार मे पशु अन्ध-विश्वास से जुडी वस्तुए खुलेआम बिक रही है। उनकी पहचान छुपाने के लिये कुछ लोग ही इसे हर्बल का नाम दे रहे है बाकी सब “सैया भये कोतवाल तो काहे का डर”, की तर्ज पर काम कर रहे है। हाल ही मे अपनी जंगल यात्रा के दौरान मैने एक व्यक्ति को यह दावा करते सुना कि सत्तर रुपये मे भालू का बच्चा मिल सकता है। जिस ग्रामीण के माध्यम से मुझे इस बारे मे पता चला वह इससे आक्रोशित था और मुझे सूचित कर इस बात को वन अधिकारियो तक पहुँचाना चाहता था। उसने स्थानीय कर्मचारी से बात की थी पर कुछ नही हुआ। पुलिस ने भी उसे घुडकी देकर भगा दिया। वह करता भी तो क्या। मै भी मजबूर हूँ। मै भी उसी की तरह असहाय महसूस करता हूँ। यदि अखबार मे मैने यह खबर पहुँचायी तो राजनीति शुरु हो जायेगी। आरोप-प्रत्यारोप का दौर शुरु हो जायेगा। मीडिया कुछ पलो के लिये सक्रिय हो भी गया तो एक जाँच कमेटी बन जायेगी जिसकी रपट कभी नही आयेगी। भालू का बच्चा बेचने वालो पर आँच नही आयेगी। हाँ, शिकायतकर्ता कमेटी की बैठक मे जाते-जाते थक जायेगा। इतना कि सात पुश्तो तक उसके परिवार मे कोई भी फिर शिकायत करने की हिम्मत नही जुग़ाड पायेगा। मैने सुना है कि भारत सरकार बहुत से एनजीओ को वन्य प्राणी सुरक्षा के नाम पर करोडो रुपये देती है। मैने यह भी सुना है कि इन संस्थाओ के सदस्य देश भर मे छापा मारकर अवैध तस्करी मे लिप्त व्यापारियो को पकडते है। पर लगता है कि अभी इनका पेट भरा हुआ है। तभी तो इतना सब खुलेआम होने पर भी वे मौन धारण किये हुये है।

बस्तर की घटना पर कार्यवाही की बात वन अधिकारी कर रहे है पर मै इसे समस्या का स्थायी हल नही मानता हूँ। शहरो मे बैठकर अन्धविश्वास उन्मूलन का अभियान चला रहे और सरकार से पैसा उगाह रहे लोगो को ऐसे स्थानो मे जाकर यह जन-जागरण अभियान चलाना चाहिये। उन्हे एक बार फिर से बताना चाहिये कि जंगल और वन्य प्राणी हमारे लिये कितने जरुरी है। उनसे तेन्दुए के बाल लेकर यह दिखा देना चाहिये कि ये महज बाल है कोई चमत्कारिक चीज नही है। फिर भी वे चमत्कार का दावा करे तो उन्हे इसे दिखाने को कहना चाहिये फिर इसकी वैज्ञानिक व्याख्या करनी चाहिये ताकि पीढीयो तक वैज्ञानिक चेतना उनके मन मे घर कर जाये। उनके बीच जाने से उन चन्द लोगो की शिनाख्त होगी जो इस तरह का अन्ध-विश्वास फैला रहे है। ऐसे लोगो को बिना विल्म्ब उनके ही चमत्कारो का राज खोलकर ग्रामीणो के सामने उनका भांडाफोड जरुरी है। बस इतना सा प्रयास ही इस अवैध व्यापार मे जुडे लोगो को चौकन्ना कर देगा और वे इससे दूर रहने लगेंगे। यहाँ पर जरुरत पडने पर कानूनी कार्यवाही भी की जा सकती है। जन जागरण का यह अभियान रेडियो और अखबारो के माध्यम से भी किया जा सकता है। आज तक कभी भी जंगली जानवरो को बचाने वालो को समाज ने सम्मानित नही किया है। मै राजधानी मे बैठे लोगो की बात नही कर रहा हूँ। मै उन लोगो की बात कर रहा हूँ जो जंगली जानवरो के बीच रहकर उनके बचे रहने की पैरवी करते है। गाँव के ऐसे बुजुर्गो को सम्मानित करने की जरुरत है जो जंगलो के महत्व को समझते है। पुरुस्कारो मे राजनीति सब गुड-गोबर कर देती है। अतः इसे राजनीति से दूर रखा जाना चाहिये। (जो कि आज की परिस्थितियो मे सम्भव नही जान पडता है)

मुझे पता है कि कुछ समय बाद अखबारो मे तेन्दुए के इस तरह मारे जाने की खबरे कम हो जायेगी। हो सकता है कि एक भी खबर छपे ही न। ऐसा शासन के प्रयासो से नही होगा और न ही मीडिया के प्रयासो से। और यह खुशी की बात भी नही होगी। तब तेन्दुए धरती के इस भाग मे बचेंगे ही नही तो भला कैसे ऐसी खबरे आप अखबारो मे पढ पायेंगे? (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

जंगल से दूर एक सितारा होटल मे वातानूकुलित सभागार मे जंगल की बाते हो रही थी। देश के बडे-बडे वन विशेषज्ञ मिनरल वाटर पीते हुये गम्भीर विषयो पर चर्चा कर रहे थे। राष्ट्रीय अभ्यारण्यो की तारीफो के पुल बाँधे जा रहे थे। कान्हा के बारे मे एक विशेषज्ञ ने कहा कि वहाँ सब कुछ बढिया है। सैकडो पर्यटक आ रहे है। अच्छी आमदनी हो रही है फिर भी वन्य प्राणियो पर इसका कोई असर नही हो रहा है। कोई हमसे पूछे कैसे मनुष्य और जानवर एक साथ मजे से रह सकते है? देश के सारे जंगलो को अभ्यारण्य बना देना चाहिये। और भी बडी-बडी बाते। उस दिन की सभा समाप्त हुयी। दो दिनो तक अभी और जंगलो पर चर्चा होनी थी। चर्चा मे बहुत से ऐसे लोग थे जो उन महाश्य से सहमत नही थे। अब सीधे बोलने पर तो वे सुनने से रहे इसलिये सबने कुछ और उपाय खोजना ठीक समझा।

वे वन्य विशेषज्ञ मेरे ही कमरे मे ठहरे थे। मैने हवा के लिये खिडकी खोल दी। यह खिडकी गलियारे की ओर थी। विशेषज्ञ महाश्य कुछ किताबे लेकर बैठ गये। अचानक कुछ लोग आये और खिडकी से उन्हे निहारने लगे। फिर थोडी देर बाद बिना बोले चले गये। फिर क्या था एक-एक, दो-दो करके और लोग आये उन्होने भी ऐसा ही किया। वे बस एकटक कौतुहल से विशेषज्ञ महाश्य को देखते बस थे। विशेषज्ञ महाश्य असमंजस मे थे कि आखिर माजरा क्या है? रात को चैन रहा पर सुबह से फिर वही दौर शुरु हो गया। उनसे रहा नही गया तो मुझसे उन्होने खिडकी बन्द करने को कहा। मैने कहा कि लोगो को देखने दे, आप अपना काम करे। इसमे क्या दिक्कत है? वे मान गये पर शाम तक उनका सब्र टूट गया। बोले इस सब के कारण दिन भर मन उचटा-उचटा रहा। ठीक से कोई काम नही हो पाया। उनकी बात सुनकर मैने सभी को कमरे मे बुला लिया। फिर नम्र स्वर मे विशेषज्ञ महाश्य से कहा कि जब आपकी हालत एक दिन मे ऐसी हो गयी वो भी सिर्फ आपको देखने से तो सोचिये कान्हा के वन्य प्राणियो की क्या हालत हो रही होगी बरसो से। रोज दिन मे कई बार उन्हे देखा जाता है। कोई कुछ करता नही। सिर्फ देखता है। बाघ की हालत तो सबसे खतरनाक है। यदि वह एक दिन लोगो की नजरो से दूर रहना चाहे तो आप हाथियो के माध्यम से उसे घेर लेते हो। उसकी प्राइवेसी की चिंता नही करते। यहाँ तक कि जब वह अपनी प्रेमिका से साथ एकांत का आनन्द ले रहा होता है तो वाइल्ड लाइफ फोटोग्राफर जिनमे से अधिक्तर विदेशी ही होते है, कैमरा तान लेते है। आप देखने से इतने परेशान है वहाँ तो फ्लैश चमक रहे है। गाडियो का शोर है।

प्रदूषण है। खुले मे घूमने वाले वन्य प्राणियो को अभ्यारण्य के नाम पर घेरे मे बन्द कर दिया और फिर जब चाहे तब उन्हे देखते रहते है। यह कैसा संरक्षण है? विशेषज्ञ महाश्य को काटो तो खून नही। वे शायद सब कुछ समझ गये थे। सुबह हमे धन्यवाद दिया और कहा कि उन्होने जानवरो के दृष्टिकोण से कभी नही देखा। वे अपने व्याख्यान मे भी इस पर बोले और एक बार फिर हमे धन्यवाद दिया। उनका अन्ध-विश्वास अब खत्म होता दिख रहा था।

मध्यप्रदेश के कान्हा वन्य अभ्यारण्य मे बहुत बार जाना चाहा पर मन तैयार नही हुआ। पहले ही वहाँ बहुत भीड थी। कुछ साल पहले अभ्यारण्य़ के आस-पास काम करने वाले एक गैर-सरकारी संगठन के पदाधिकारी ने मुझे बताया कि सीजन मे गाडियो की डेढ-दो किमी लम्बी कतार लगती है। पर्यटको का जबरदस्त दबाव है। सभी को बाघ देखना है। विदेशी मेहमान खाली नही लौटाये जाते है। मैने उनसे कहा कि कान्हा की हालत देखते हुये उसे कम से कम पाँच सालो के लिये बन्द कर दिना चाहिये। ताकि वन्य प्राणियो को वास्तविक जंगल अर्थात मानवीय गतिविधियो से मुक्त वातावरण मे साँस लेने का मौका मिल सके। साल के कुछ महिनो मे इस अभ्यारण्य को बन्द कर औपचारिकता पूरी कर दी जाती है। पर्यटको के बढते दबाव को देखकर लम्बे समय तक इसे बन्द रखना और जंगल को पनपने देना निहायत जरुरी है।

कुछ वर्षो पहले मै कान्हा क्षेत्र के कुछ वनवासियो से इस विषय पर चर्चा कर रहा था। वे भी पर्यटको के इस दबाव से चिंतित दिखे। चर्चा मे इस बात पर सहमति हुयी कि चुनिन्दा लोगो को बार-बार आने की अनुमति देने की बजाय नये लोगो को मौका दिया जाना चाहिये। कान्हा मे नियम कडे है पर फिर भी पर्यटको को भला कौन रोक सकता है? चर्चा मे यह भी बताया गया कि केवल बाघ की बजाय दूसरे वन्य जीवो के महत्व पर भी जोर दिया जाना चाहिये ताकि बाघ और दूसरे मांसाहारी प्राणियो पर दबाव कम हो। मध्यप्रदेश मे बान्धवगढ अभ्यारण्य के आस-पास कुछ वनस्पति विशेषज्ञ मित्र है। वे भी पर्यटको की अनियंत्रित भीड से परेशान है। उन्होने बताया कि वाहनो की लम्बी कतार से जानवरो के स्वभाव मे मूलभूत परिवर्तन आ रहे है। पता नही क्यो शोधकर्ता इस पर काम नही करते? यदि इस पर शोध हो तो योजनाकर्ताओ पर दबाव बनाने मे सहायता मिलेगी। तेज रफ्तार गाडियो से सबसे ज्यादा नुकसान चिडि़यो को हुआ है। न केवल इनसे टकराकर वे मर रही है बल्कि तेज हार्न और प्रकाश से अपना घर छोडकर भाग भी रही है। उल्लूओ की आबादी मे तेजी से कमी आयी है। पर्यटको की गाडियाँ अवाँछित वनस्पतियो के बीजो को फैलाने मे मदद कर रही है। गाजर घास जैसे हानिकारक

खरपतवार क्षेत्र मे बढते जा रहे है जो जैव-विविधता के लिये अभिशाप है। आपने पहले पढा है कि कैसे छत्तीसगढ मे मैकल पर्वत पर बने टूरिस्ट रिसोर्ट मे आने वाले विदेशी पर्यटक दुर्लभ वनस्पतियो की तलाश मे शिखर तक जाते है तो उनके सामानो के साथ गाजर घास के बीज भी शिखर तक पहुँच जाते है। पर्यटक तो लौट आते है पर बीज वही रह जाते है और फिर दुर्लभ वनस्पतियो के लिये अभिशाप बन जाते है। पेंच टाइगर रिजर्व मे भी कमोबेश यही स्थिति है। मैने अपनी यात्रा के दौरान पेंच नदी के किनारे गाजर घास की घनी आबादी देखी थी। यह बहुत पुरानी बात है। मैने इस पर एक चेतावनी भरा लेख भी लिखा था। पर अब लोग बताते है कि यह विदेशी खरपतवार अभ्यारण्य के लिये सिरदर्द बन चुका है। पता नही हर दिन कितने जंगली जानवरो के स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचा रहा होगा यह खरपतवार।

वन्य विशेषज्ञो ने अपना एक गुट बना रखा है-ऐसा लगता है। वे अपनी कहते है और अपनी ही सुनते है। वन-प्रबन्धन का ज्यादातर तरीका अंग्रेजो से उधार लिया गया है। अंग्रेज इस देश को पराया देश समझ कर काम करते थे। उन्हे जंगलो के चुक जाने की कोई चिंता नही थी। अब जब भारतीय विशेषज्ञ उसी डगर पर अब भी चल रहे है तो जंगलो का हाल समझा जा सकता है। वन-प्रबन्धन मे स्थानीय लोगो की भूमिका पर कहा तो बहुत कुछ जाता है पर उनसे सीखने की जगह उन्हे सीखाने पर ज्यादा जोर रहता है।

कोटमसर की प्रसिद्ध गुफा हो या पातालकोट जहाँ भी आधुनिक मानव के कदम पडे बरबादी के भी कदम पडे। वन अभ्यारण्यो के खस्ता हाल और वन्य विशेषज्ञो के अन्ध-विश्वास ने इस लेख को लिखने के लिये प्रेरित किया। मैने सब कुछ लिख तो दिया है। अब देखते है कि बात कहाँ तक जाती है? (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“इसका फूल जानवर यदि खा ले तो वे मर जाते है।“ बेशरम के पौधो के बारे मे ऐसी बाते मै अक्सर सुना करता था। कृषि की शिक्षा के दौरान मुझे लगा कि अपने ज्ञान से सबसे पहले अपने गाँव का ही भला किया जाये। इसलिये पिताजी की अनुमति मिलते ही घर की बैठक मे नि:शुल्क कृषि परामर्श केन्द्र खोल लिया। रोज तो यहाँ बैठा नही जा सकता था। कालेज जो जाना होता था। इसलिये रविवार का दिन चुन लिया था। अपने विश्वविद्यालय से मिले जानकारी पत्रको को केन्द्र मे सजा दिया था ताकि किसान वहाँ आकर आराम से पढ सके। कालेज मे इस केन्द्र के बारे मे जानकारी मिलने पर गुरुजन बहुत प्रसन्न हुये। हर बार एक विशेषज्ञ इस केन्द्र मे अपनी सेवाए देने आने लगे। वे जानते थे कि सब कुछ निज व्यय से चल रहा है इसलिये वे अपने खर्च पर आ जाते थे और शाम तक रुकते थे।

उस समय मेरी रुचि खरपतवारो मे थी। मै सभी खरपतवारो के उपयोग खोजा करता था। बेशरम पर मेरी विशेष नजर थी क्योकि पूरी पढाई के दौरान इसके विरुद्ध हमारे कान भरे गये थे। अब जब किसान भी कहने लगे कि इसके फूल को खाने से जानवर मर जाते है तो उन पर यकीन होने लगा। फूलो को देखकर तो बिल्कुल नही लगता था कि ये जहरीले है। एक बार जोश मे मैने फूलो को खा भी लिया। पहले डर लगा पर बाद मे जब कुछ असर नही हुआ तो हौसला बढा। मैने पुस्तकालय मे घंटो बिताये पर फूलो के जहरीलेपन पर कोई जानकारी नही मिली। गुरुजनो से पूछा तो उन्होने भी वही किया जो मैने किया। जब उन्हे पुस्तकालय मे कुछ नही मिला तो उन्होने किसानो की बात को अनसुना करने को कह दिया। कुछ ने तो उन्हे अन्ध-विश्वासी भी कहा कि वे जो मन मे आया, कह देते है। पर किसानो के साथ उठने बैठने और बचपन से ही घर मे खेती-किसानी देखते-देखते मै हकीकत से वाकिफ था। मैने किसी जानवर को बेशरम के फूल खाते हुये देखा नही था। शायद वे अनुभव से जानते थे। अब किसी किसान को जबरदस्ती अपने जानवर को इसे खिलाने तो नही कह सकता था। कुछ उल्टा-पुल्टा हो गया तो पैसे कौन भरता? बडे ही असमंजस की स्थिति थी।

कृषि की शिक्षा मै एग्रोनामी (सस्य विज्ञान) विषय मे ले रहा था पर मेरे शोध-पत्र कीटो पर छप रहे थे। कीटो के लिये कीट शास्त्र (एंटोमोलाजी) पढना चाहिये था। विभागो की आपसी तकरार तो जग-जाहिर है। कीट शास्त्र के लोग मेरी इस अटपटी अकादमिक उपलब्धि से हैरान भी थे और नाराज भी। ब्लूमिया लीफ बीटल अर्थात ब्लूमिया नामक खरपतवार को खाने वाले कीट पर मैने शोध किया। यह शोध-पत्र छप भी गया। पता चला कि दुनिया मे पहली बार इस पर ऐसे शोध-पत्र का प्रकाशन हुआ है तो आग और भडक

गयी। कल का छोकरा और शोध-पत्र छपवाता है। इस तरह कीट शास्त्र विभाग मे आना-जाना बन्द करवा दिया गया। यह मेरे लिये अच्छा ही हुआ। इससे मै अपने घर मे छोटी सी प्रयोगशाला खोलने मे सफल रहा। इसी प्रयोगशाला मे मैने पालीथीन को खाने वाले कीट की खोज की और पूर्ण सूर्य ग्रहण के कीटो पर पडने वाले प्रभावो को देखा। यदि यह कीट शास्त्र विभाग मे होता तो गुरुजन ही सारा श्रेय ले जाते। घर मे प्रयोगशाला आरम्भ करने पर परिवारजनो की ओर से कोई बाधा पैदा नही की गयी। एक लडका रख लिया जो सुबह कीटो को खाना खिला देता था। बहुत से कीडे रात को सक्रिय होते थे। उनके लिये मुझे कई बार देर रात तक जागना पडता था। सुबह लडके के साथ आस-पास चले जाते थे और जो भी कीडा मिलता पकड लाते थे। कीडे की पहचान करना मुश्किल होता था। कीट शास्त्र विभाग के अलावा और कही नही जाया जा सकता था। पर मैने पुस्तकालय की शरण लेना ठीक समझा।

एक सुबह हम बेशरम के पौधे के पास पहुँचे। हमे बडे-बडे कीडे दिखाई दिये। बडे सुन्दर थे। ऐसा लगता था कि नरम प्लास्टिक से बने हो। जब हम उन्हे प्लास्टिक के डब्बो मे रखने लगे तो कीडो से निकला कुछ तरल त्वचा पर लगा। त्वचा जल गयी। हम घबरा गये। जल्दी-जल्दी कीडो को अन्दर किया और भाग चले डाक्टर के पास। वापस लौटकर सोचा कि कीडो को छोड दिया जाये पर फिर यह भी लगा कि इसे जानने के बाद छोडा जाये। बेशरम के फूलो पर से इन्हे एकत्र किया था। मैने प्रयोगशाला मे इन्हे बेशरम के सभी भाग खिलाये पर उन्होने फूल को ही खाया। फिर जासौन से लेकर गुलाब तक दसो किस्म के फूलो को खिलाया तो उन्होने कुछ फूलो को चाव से खाया और शेष को देखा तक नही। इस फूल प्रेमी जहरीले कीडे की पहचान ब्लिस्टर बीटल के रुप मे हुयी। हमने जिस कीडे को पकडा था उसका वैज्ञानिक नाम जोनाब्रिस पस्चुलेटा था। जब इंटरनेट को खंगाला तो इसके बारे मे ढेरो जानकारी मिली। इंटरनेट को उन दिनो ज्यादा नही खंगाला जा सकता था क्योकि एक घंटे के सौ रुपये लगते थे। और फिर कनेक्शन चले जाने पर एक बार डायल करने के दो रुपये लिये जाते थे। बहरहाल, विदेशो मे किये गये शोधो से पता चला है कि ये कीडे न केवल जहर छोडते है बल्कि खुद भी जहरीले होते है। ऐसे कुछ कीडो को चारे के साथ गल्ती से खा लेने से व्यस्क घोडे की कुछ समय मे ही मौत हो जाती है। अब जाकर मुझे समझ आया कि क्यो किसानो के पशु बेशरम के फूलो को खाने से मर रहे थे। दरअसल यह दोष बेशरम का नही था बल्कि उस पर डेरा जमाये बैठे रहने वाले इन कीडो का था। मैने इस पर हिन्दी और अंग्रेजी मे काफी लिखा। एक बार फिर यह सिद्ध हो गया कि किसानो की बाते गलत नही होती है। भले ही वे कारण नही बता पाये पर मिथ्या से वे कोसो दूर होते है।

आप बडी देर से बेशरम शब्द सुन रहे है। आपमे से बहुत से लोग इस नाम से परिचित होंगे। आइपोमिया कार्निया नामक यह वनस्पति विदेश से भारत लायी गयी हरी खाद के रुप मे प्रयोग के लिये। जब भारत मे इसे आजमाया गया तो यह असफल रही। किसानो ने इसे खेतो से बाहर फेक दिया। बस फिर क्या था, इसे जहाँ जगह मिली वही पसर गयी। लोगो ने इसके रवैये को देखकर इसका नाम ही बेशरम रख दिया। कही-कही इसे बेहया भी कहा जाता है। लोगो ने इसका और कोई उपयोग नही किया और जानवरो ने खाया नही। विदेश से अकेले आयी थी। अपने प्राकृतिक दुश्मनो को साथ नही लायी थी इसलिये मजे से उगती रही और पूरे देश मे फैल गयी। बेकार जमीन से सरकारे कचरा नही साफ करती इसलिये भी इस पर किसी ने ध्यान नही दिया। मै इसके उपयोग के लिये इस पर नजर गडाये रहा। मेरा मानना था कि यदि इसके सरल उपयोग विकसित हो जाये तो अपने आप लोग इसे समाप्त कर देंगे। देश भर मे घूमकर इसके बारे मे जानने की कोशिश की। यह कोशिश रंग लायी और इसके ढेरो उपयोगो के बारे मे जानकारी मिल गयी। इस लेखमाला मे इस पर विस्तार से चर्चा करुंगा और इस विदेशी वनस्पति से जुडे नाना प्रकार के अन्ध-विश्वासो की पोल खोलने की कोशिश करुंगा।

आमतौर पर बेशरम पर कीडे नही दिखते। कारण मैने पहले बताया है। लम्बे समय तक भारत मे रहने के कारण जिस तरह से मनुष्यो ने इसके उपयोग खोज लिये इसी तरह देशी कीडो ने भी इसे चखना आरम्भ कर दिया। किसी वनस्पति पर कीडे का प्रकोप हर समय बुरा नही होता। बेशरम पर कीडे का मतलब बेशरम के दुश्मन का प्रकोप और दुश्मन का दुश्मन तो दोस्त होता है। इसी तर्ज पर कीडो की सहायता से हानिकारक वनस्पतियो को नियंत्रित करने का प्रयास मानव करता रहा है। ब्लिस्टर बीटल को बेशरम पर देखने के बाद कुछ उम्मीद बन्धी थी पर यह फूलो को खाता है, यह जानकर निराशा हुयी। बेशरम के पौधे बीजो से नही बढते है। इसलिये फूलो को नुकसान होने से भी उनपर कोई बुरा प्रभाव नही पडता और वानस्पतिक प्रवर्धन द्वारा उनका फैलाव होता रहता है।

यह “बेशरम-पुराण” जारी रहेगा। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“हमारा सोना हमे वापस कर दो। कहाँ गया हमारा सोना?” कुछ लोग तांत्रिक के आगे गिडगिडा रहे थे। तांत्रिक उनकी बातो पर जरा भी ध्यान नही दे रहा था।वे लोग वापस गये और कुछ और लोगो को लेकर आ गये। अब तांत्रिक को जवाब देना ही पडा। उसने कहा कि तुमने ही गाँव का बिगाड किया है। तुम्हारे कारण ही गाँव मे अजीबोगरीब घटनाए हो रही है। कही अपने आप आग लग रही है तो कही आसमान से पत्थर बरस रहे है। मैने तुम्हारा सोना कीडो मे बदल दिया है। यकीन न हो तो श्मशान चले जाओ और वहाँ उग रहे बेशरम के पौधो को ध्यान से देखो। वहाँ तुम्हे सोने के कीडे दिख जायेंगे। तांत्रिक की बात सुनकर लोग श्मशान की ओर भागे। बेशरम के पौधो को ध्यान से देखा तो सचमुच सुनहरे कीडे नजर आये। कीडे सुनहरे थे पर उनसे सोना वापस नही मिल सकता था। वे बडे निराश हुये। तांत्रिक की जादुई शक्ति का डर ऐसा था कि वे कुछ बोल भी नही पाये। कही उन्हे भी कीडा न बना दिया जाये। तांत्रिक ने तो पूजा के लिये सोना मँगाया था। उन्हे कीडो मे बदल देगा, ये तो किसी ने नही सोचा था।

अम्बिकापुर की यह घटना उन दिनो की है जब मै अपनी ट्रेनिग के दौरान वहाँ था। हमे कुछ किसान दिये गये थे जिन्हे खेती की तकनीक सीखानी थी। रोज आस-पास के गाँवो मे जाना होता था। उसी दौरान इस घटना का पता चला। सुनहरे कीडे की बात सुनकर इच्छा हुयी कि जाकर देखे। प्रभावित परिवार के सदस्य उस स्थान की ओर ले चले। बेशरम के पौधो पर कुछ कीडे दिखायी दिये जो पत्तियो को खा रहे थे। सूर्य की रौशनी मे वे सचमुच सोने की तरह चमक रहे थे। वे कछुए की तरह भी दिख रहे थे। मैने कुछ कीडे अपने साथ रखे और वापस लौट आया। कीट विज्ञान मे दक्ष गुरुजनो को यह दिखाया तो वे झट से बोले, ये तो टारटाइज बीटल है। मैने उन्हे सारा किस्सा एक साँस मे सुना दिया। वे तांत्रिक की चतुराई पर खूब हँसे। सारा राज जानकर मै अपने साथियो के साथ वापस प्रभावित परिवार के पास पहुँचा। फिर तांत्रिक के पास। उसे इस कीडे के बारे मे बताया और कहा कि ये अंडे से पैदा हुये है। न कि सोने से हाल ही मे बने है। मैने बेशरम के पौधो से कुछ अंडे एकत्र किये और फिर उन्हे गाँव वालो की निगरानी मे छोड दिया। अंडो से जल्दी ही ग्रब निकल आये। वे सुनहरे नही थे पर जब व्यस्क हुये तो वे सोने की तरह हो गये। मैने पूरी प्रक्रिया गाँव वालो को दिखायी पर तांत्रिक ने पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया और सोना वापस लौटा दिया।

इस घटना ने मेरे मन मे इस विशेष कीट के लिये मोह पैदा कर दिया। मैने इस पर विस्तार से शोध किया। आपने पिछले लेख मे पढा ही है कि बेशरम को नष्ट करने की क्षमता रखने वाले कीडे मनुष्य़ के लिये कितने महत्वपूर्ण है। टारटाइज बीटल पत्तियो को खा रहे थे इसलिये उम्मीद थी कि इसकी संख्या बढाकर बेशरम के नियंत्रण के लिये इन्हे प्रयोग किया जा सकता है। टारटाइज बीटल अपने कछुए जैसे आकार के लिये तो जाने ही जाते है। साथ ही इसके सुनहरे रंग के लिये इसे "फूल्स गोल्ड बीटल" अर्थात "मूर्खो का स्वर्ण भृंग" नाम भी मिला है। मैने जिस टारटाइज बीटल पर काम किया उसका वैज्ञानिक नाम एस्पीडोमोर्फा मिलियेरिस है। किसी भी वनस्पति का कीट द्वारा जैविक नियंत्रण के लिये यह जानना जरुरी है कि वह केवल उसी वनस्पति को ही खाता है किसी भी हालत मे। इसके लिये शोधकर्ता प्रकृति मे उसकी आबादी पर नजर रखते है और प्रयोगशाला मे नियंत्रित परिस्थितियो मे अलग-अलग किस्म की पत्तियाँ खिलाकर परीक्षण करते है। जब मैने अपनी प्रयोगशाला मे सैकडो की संख्या मे इस कीट को रखा तो समय का बडा अभाव था। मै विश्वविद्यालय मे संकर धान (हाइब्रिड धान) के एक प्रोजेक्ट मे रिसर्च एसोसियेट का काम कर रहा था। दिन भर का समय धान के खेतो मे गुजर जाता था। टारटाइज बीटल पर काम करे तो कैसे? मैने मुख्य काम पर अधिक ध्यान देने का मन बनाया और संकर धान के कार्य मे जुट गया। बस यही लगन मेरे लिये आफत बन गयी। संकर धान मे कीटो और रोगो का जबरदस्त आक्रमण हुआ। पूरे प्रयोग चौपट हो गये। मैने जैसा देखा वैसा लिखा। पर जब प्रोजेक्ट के मुखिया के हवाले से रपट बनी तो उसमे कुछ और ही लिखा था। उसमे दावा किया गया था कि फसल अच्छी हुयी और उत्पादन के आँकडे बढा-चढा कर प्रस्तुत किये गये थे। यह बात पची नही। यह साफ था कि आँकडो से छेडछाड की गयी थी। दो साल के इस प्रोजेक्ट के आधार पर छत्तीसगढ मे संकर धान की खेती के सलाह किसानो को दी जानी थी। वास्तव यह धान फेल था पर रपट कहती थी कि सब अच्छा है। मै मुखिया से भिड गया। मैने कहा कि यदि कमरे मे बैठकर की आँकडे बनाने है तो प्रयोग पर देश का पैसा बहाने की क्या जरुरत? मुखिया सहम गये और समझ गये कि मेरे रहते उनकी दाल नही गलने वाली। सो उन्होने मुझे सबसे पहले अपने कमरे से बाहर रहने का फरमान जारी किया फिर दूसरे कमरे मे दी गयी कुर्सी भी छिन ली। इरादा अपमानित करने का था ताकि मै खुद ही इस्तीफा दे दूँ। फिर उन्होने घर के काम करवाने आरम्भ किये। सिलेंडर से लेकर बच्चो की फीस तक का जिम्मा। मैने इंकार किया तो मुझे मेरे हाल पर छोड दिया। बस फिर क्या था मुझे टारटाइज बीटल पर काम करने का मौका मिल गया। मुखिया भी खुश थे। अब उन्हे डर नही था और वे धडल्ले से आँकडो मे फेरबदल करने लगे। इस प्रोजेक्ट की समाप्ति के बाद जैसी उम्मीद थी संकर धान की अंतिम रपट मे इसे किसानोपयोगी बताया गया।

किसानो ने रपट पर विश्वास कर इसे अपनाया और आज तक रो रहे है। मुखिया को झट से दूसरा प्रोजेक्ट मिल गया और वे नये झूठ को गढने मे जुट गये। हमारे देश मे बडी विचित्र बात यह है कि वैज्ञानिक सलाह देते है पर जोखिम किसान उठाता है। मामला बिग़डा तो किसान सब कुछ झेलता है। वैज्ञानिको को आँच तक नही आती। जवाबदारी तय न होने के कारण पूरे देश मे किसानो के साथ यह छल जारी है।

जब मैने टारटाइज बीटल को अलग-अलग वनस्पतियाँ खिलानी आरम्भ की तो जल्दी ही पता चल गया कि यह शकरकन्द की पत्तियो को भी मजे से खाता है। जब बेशरम और शकरकन्द की पत्तियाँ एक साथ दी गयी तो उन्होने शकरकन्द को खाना पसन्द किया। यह तो सब गडबड हो गया। शकरकन्द तो आर्थिक महत्व की वनस्पति है। यदि बेशरम के नियंत्रण के लिये बडी तादाद मे इस कीट को छोडा जाता तो वे शकरकन्द की फसल को नुकसान पहुँचाते। भले ही यह परीक्षण असफल रहा पर इस असफलता से भी बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिली। अपने पूर्ण सूर्य ग्रहण के प्रयोग मे मैने टारटाइज बीटल पर भी इसके प्रभाव का अध्ययन किया। प्लास्टिक बग प्रयोग मे भी इसे आजमाया पर सफलता हाथ नही लगी। बाद मे जब मैने पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण आरम्भ किया तो मुझे इसके औषधीय गुणो के बारे मे पता चला। मेरा ज्यादातर काम इंटरनेट पर नही दिखता। फिर भी आज गूगल खोजी इंजन 200 से अधिक परिणामो मे आधार पर मेरे इस कीट पर किये गये काम को दिखा रहा है। पिछ्ले हफ्ते ही मैने इस पर एक छोटी सी फिल्म तैयार की है। आज अचानक ही तांत्रिक वाली घटना की याद आ गयी तो मैने इसे इस लेखमाला मे शामिल करने का मन बना लिया। आशा है एक नये कीट का परिचय और उससे जुडे अन्ध-विश्वास का भांडा-फोड आप पाठको को भी पसन्द आया होगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

जंगल मे काफी भीतर जाने के बाद हमे आखिर वह दुर्लभ आर्किड दिख ही गया जिसके बारे मे मै पारम्परिक चिकित्सको से अक्सर सुना करता था पर अचानक ही सामने चल

रहे स्थानीय मार्गदर्शक रुक गया और आगे जाने से इंकार कर दिया। हो सकता है कोई जंगली जानवर- ये सोचकर मैने आस-पास देखने की कोशिश की पर कुछ दिखायी नही दिया। मार्गदर्शक ने कहा कि जानवरो का यहाँ कोई डर नही है। तो फिर? मैने सोचा हो सकता है कि यह आर्किड को एकत्र करने का उचित समय न हो। आर्किड वैसे ही धार्मिक आस्था से जुडे होते है। पर मार्गदर्शक ने कहा कि इस रास्ते से बुरी आत्माए गयी है। इसलिये हमे रास्ता बदलना होगा। उसके चेहरे पर डर के भाव थे। अब कौन बहस मे पडे? यह सोचकर मैने हामी भर दी। दूसरे रास्ते से आर्किड के पास पहुँचे और उसे विधि-विधान से एकत्र कर लिया। लौटते वक्त मैने पूछा कि तुमने कैसे पता किया कि पहले वाले रास्ते से बुरी आत्माए गुजरी है। उसने बताया कि आत्माओ ने गुजरते वक्त पौधो पर थूका है। यह कहकर उसने एक पौधे की ओर इशारा कर दिया। मैने ध्यान से देखा तो सचमुच किसी ने अभी-अभी पौधे पर थूका था। सब कुछ ताजा-ताजा था। पर पौधे पर ऐसी थूक कोई नयी बात नही थी, कम से कम मेरे लिये। उस थूक को देखते ही मुझे अपना बचपन याद आ गया।

बचपन मे हम पास के इंजीनियरिंग कालेज मे बैडमिंटन खेलने जाया करते थे। जब चिडिया (शटल काक) झाडियो मे चली जाती थी तो कुछ साथी वहाँ से इसे उठा लाने से साफ इंकार कर देते थे। मै सोचता था कि साँप-बिच्छू का डर होगा। पर एक दिन उन लोगो ने मुझे कुछ पौधे दिखाये जिस पर थूक मौजूद थी और आँखे चौडी करके बोले कि ये भूत की थूक है। यदि शरीर से लग गयी तो कोढ हो जायेगा। उस समय साथियो की ऐसी बाते सुन मन घबरा जाता था। अचानक ही पूरा कालेज परिसर भुतहा लगने लगता था। चाहकर भी इसका मजाक उडाने की हिम्मत नही होती थी। कृषि की पढाई के दौरान जब मै खरपतवारो को एकत्र करता भटकता था तो ग्रामीण अंचलो से आये साथी पौधो पर उसी थूक को दिखाकर डरावने किस्से सुनाते।

बाद मे जब मैने घर मे निजी प्रयोगशाला आरम्भ की तो एक दिन कीडो को खिलाने के लिये लायी गयी वनस्पतियो के साथ थूक लगी वनस्पति आ गयी। सहायक ने इसे देखा तो अपनी गल्ती के लिये क्षमा माँगने लगा। इसका मतलब उसने भी इसके बारे मे सुन रखा था। मैने हिम्मत करके माचिस की तीली की सहायता से जब थूक को हटाने की कोशिश की तो सहायक ने अपने बाल पकड लिये। शायद बाल पकडने से भूत उसे न पकडे। थूक को हटाने पर कुछ काली सी चीज दिखी। हौसला बढा तो इसे ध्यान से देखा। पैर गिने तो छै थे। इसका मतलब यह कीट था। थूक को अंगुलियो से छुआ तो किसी तरह की जलन नही हुयी। स्थानीय कीट विशेषज्ञो से इस बारे मे पूछा तो उन्होने कहा

कि कोर्स मे केवल फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीटो के बारे मे पढाया जाता है। इसके अलावा वे किसी और कीट के बारे मे नही जानते। गनीमत है उस समय इंटरनेट आ चुका था। पर समस्या यह थी इसे खोजा कैसे जाये? थूक के लिये स्पिट शब्द मिला। “स्पिट इंसेक्ट” और “स्पिट बग” खोजते ही इस कीट के बारे मे जानकारी मिल गयी। इसका वास्तविक नाम स्पीटल बग निकला। गर्मी से बचने के लिये ये महाश्य झाग या थूक जैसा तरल अपने शरीर के आस-पास फैला लेते है। नमी की क्षति नही हो पाती है और वे मजे से पौधो का रस चूसते रहते है। यदि दुश्मन आता है तो थूक के स्वाद से चिढकर कीट तक पहुँचने से पहले ही भाग जाता है। फिर यह बिना थूक को साफ किये देखा भी नही जा सकता। इस तरह थूकने वाले कीडे के बारे मे जानकारी मिल गयी। एक बार फिर मै माँ प्रकृति की सृजनशीलता के आगे नतमस्तक हो गया।

आर्किड दिखाने के लिये निकले मार्गदर्शक पर फिर से लौटते है। जब मैने थूक को आगे बढकर साफ करने की कोशिश की तो मार्गदर्शक ने मना किया। जब मै इसमे भिड गया तो वह पीछे हटा और जब मै कीडे को दिखाने पीछे मुडा तो देखा कि वह पेड पर चढ चुका था। वह पास आकर असलियत जानने को तैयार नही था। वापस लौटते वक्त वह बार-बार पीछे देख लेता था। उसे डर था कि बुरी आत्माओ की थूक से छेडछाड से कही नाराज होकर वे हमारा पीछा तो नही कर रही है। गाँव पहुँचकर उसने चैन की साँस ली। जब इस बारे मे उसने गाँव वालो को बताया तो यह बात आग की तरह फैल गयी। वे जमा होने लगे। सभी के पास कुछ न कुछ था उपहार के रुप मे देने के लिये। वे मेरी जादुई शक्ति से अभिभूत थे। यदि मै कोई तांत्रिक होता तो यह अपना धन्धा शुरु करने का एकदम सही समय होता। पर मैने इस भीड का लाभ इस राज का पर्दाफाश कर उठाया। काफी समझाने के बाद वे माने फिर भी वे गाँव के बैगा की ओर बीच-बीच मे देखते रहे। बैगा मुझसे नजर चुराता रहा। हो सकता है उसने इस थूक से किसी का भयादोहन किया हो और आज राज खुलने पर कन्नी काट रहा हो।

ऐसे बहुत से राज है जिन्हे विज्ञान के इस युग मे राज नही रहना चाहिये पर शहर के मोह को छोडकर अलख जगाने गाँव जाये कौन? यदि एक अभियान चलाकर ऐसे राजो के विषय मे जानकारी एकत्र कर ली जाये तो पाठ्य़ पुस्तको मे एक अलग विषय बनाकर इन्हे बच्चो को बताया जा सकता है। वैसे इस लेखमाला को चित्र सहित पाठ्य पुस्तको मे शामिल कर दिया जाये तो भी बात बन सकती है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“जरा मुँह खोलना। थोडा और। बस। अब कीडा लगा दाँत दिख रहा है। यही वाला है ना? ये निकला। अबे निकल कहाँ घुस रहा है? – ये निकल गया। एक नही दो-दो है। बाप रे बाप, तू तो बच गया नही तो ये बाकी दाँतो को भी खा जाते।“ सडक किनारे बैठे एक तथाकथित दंतविशेषज्ञ के ये बोल थे। उसका दावा था कि उसने औजार और दवा डालकर अभी-अभी दाँतो से दो जिन्दा कीडे निकाले है जो दाँतो को सडा रहे थे। मरीज था गाँव से शहर आया एक ग्रामीण जो महंगी डाक्टरी फीस से बचने के लिये नीम-हकीम के पास आ पहुँचा था। मै अपना कैमरा लिये इस पूरी प्रक्रिया की तस्वीरे ले रहा था। जब मैने नीम-हकीम के हाथ मे कीडा देखा तो हँसी छूट पडी। मैने उससे कहा कि इन्हे मेरे हाथ मे देना तो। उसने कहा कि ये खतरनाक है आपको काट खायेंगे। मै अभी इन्हे मार देता हूँ। यह कहकर उसने कीडो को एक डब्बे मे डाला और अगले मरीज से बात करने लगा। उसके दाँत मे भी कुछ शिकायत थी। नीम-हकीम कीडो को ही सारे मर्ज का कारण मानता था। मुझे नजर अन्दाज करते हुये उसने फिर उसी डब्बे से कीडे निकाले और दाँतो से उन्हे निकालने का प्रपंच करने लगा। इसका साफ मतलब था कि कीडे दाँतो से नही निकल रहे थे। वे दाँतो मे रह भी नही सकते थे। दरअसल वे इल्लियाँ थी जो वनस्पतियो की पत्तियो को खाती है। मरीज से पचास रुपये वसूले गये और कहा गया कि फिर से दर्द हो तो यही आ जाना। मरीज के चेहरे मे संतोष के भाव थे। उसे इस ठगी का पता नही था।

भीड छँटने के बाद मैने नीम-हकीम से कहा कि ये वाली तो चने की इल्लियाँ है और वो वाली सागौन की पत्तियो को खाती है। तुम तो यार खुलेआम लोगो को बेवकूफ बना रहे हो। “चाय पीयेंगे साहब या फिर कोई सेक्स बढाने वाली दवा दूँ।“ ये शायद उसका आफर था ताकि कुछ ले देकर बात यही पर खतम हो जाये। पर मै इतनी जल्दी नही मानने वाला था। मैने उससे कहा कि मै जो प्रश्न करूँ उसका सही जवाब दो। मै फिल्म बनाऊँगा। डरना नही मै इसे तुम्हारे खिलाफ उपयोग नही करुंगा। थोडे अविश्वास के साथ वह तैयार हो गया। उसने बताया कि शहरी मरीज भी उसके पास आते है। उनके लिये वह चने की

इल्ली रखता है। चूँकि गाँव वाले इसे पहचानते है इसलिये सागौन या दूसरी कम पहचानी जाने वाली वनस्पतियो से एकत्र की गयी इल्लियाँ रखता है। वह अब खुलकर कहने लगा “कई बार पकडा भी जाता हूँ। ऐसे मे मै उन लोगो से पैसा लेने की बजाय वही दे देता हूँ जो आपको देने वाला था।“

ये नीम-हकीम कानून की नाक के नीचे खुलेआम यह ठगी करते है। हमने अपने अभियानो मे इन्हे बहुत बार पकडा पर बहुत से मामलो मे पुलिस वाले ही कह देते है कि छोटे आदमी है, क्यो इनके पेट मे लात मारते हो? पकडना है तो शहर के सफेदपोशो को पकडो जो लाखो की ठगी करते है। कई बार उन्हे थाने मे रोक लिया जाता है। दूसरे दिन फिर वे उसी स्थान पर दुकान लगाये दिखते है। मैने लोगो को इस बारे मे जगाने का रास्ता चुना है। जो फिल्म मैने तैयार की है उसमे नीम-हकीमो से लिये गये साक्षात्कार तो है ही, साथ मे उस इल्ली के प्यूपा बनने और फिर तितली बनने की प्रक्रिया भी दिखायी गयी है। साथ ही इसे पत्तियो को प्राकृतिक अवस्था मे खाते हुये भी दिखाया गया है। इससे अपने आप दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता है। जो फिल्म देखते है वे उत्साह से दूसरो को इस बारे मे बताते है और इस तरह मुझे लगता है कि कुछ लोग तो अवश्य ही ठगी से बच जाते होंगे।

क़ीडे-मकौडो से जुडे अन्ध-विश्वास के मूल को समझने के लिये मैने बहुत भाग-दौड की। यह भाग-दौड व्यर्थ नही गयी। इससे बहुत सारे अन्ध-विश्वासो का पर्दाफाश करने मे मदद तो मिली ही, साथ ही इनके बारे मे गूढ बातो का पता चला। इसी भाग-दौड के कारण मै कीडे-मकौडे के पारम्परिक औषधीय उपयोग के बारे मे विस्तार से जान पाया। मैने इस ज्ञान का दस्तावेजीकरण भी किया अपने शोध आलेखो के माध्यम से। कीडो को भोज्य सामग्री के रुप मे खाने का प्रचलन दूसरे देशो मे ज्यादा है पर इनके औषधीय उपयोगो की जितनी जानकारी भारत मे है उतनी शायद कही नही। इस बारे मे हमारे प्राचीन ग्रंथो मे ज्यादा नही लिखा गया। यही कारण है कि कीडे-मकौडो मे अद्भुत औषधीय गुण होने के बावजूद हमारे देश की मूल चिकित्सा पद्धतियो मे इनका कम ही प्रयोग होता है। कीडे-मकोडे के प्रयोग की बात चलती है तो बरबस ही होम्योपैथी का नाम याद आ जाता है। साँस की बीमारी के लिये जिस ब्लाट्टा नामक होम्यो-औषधी का प्रयोग होता है उसका निर्माण काकरोच से होता है। प्राचीन ग्रंथो मे रानी कीडे (बीरबहूटी) जैसे चुने हुये जीवो के औषधीय गुणो का बखान ही मिलता है। यह हमारा सौभाग्य है कि आज भी हमारे देश मे ऐसे पारम्परिक चिकित्सक है जो न केवल कीडे-मकौडे के औषधीय गुण जानते है बल्कि इस ज्ञान के बूते पर लोगो को रोगो से राहत भी दिलवा

रहे है। पर कीडे-मकौडो का औषधीय उपयोग सरल नही है। यह वनस्पतियो के प्रयोग से भी अधिक जटिल है। सदियो से वनस्पतियो और कीडो के साथ रहते हुये पारम्परिक चिकित्सको ने माँ प्रकृति से बहुत कुछ सीखा है।

जब मै बागबहरा नामक स्थान मे वानस्पतिक सर्वेक्षण मे जुटा हुआ था तब मुझे बहुत से दक्ष पारम्परिक चिकित्सको से मिलने का अवसर मिला। आप तो जानते ही है कि धतूरा कितना जहरीला होता है। पारम्परिक चिकित्सक इस पर एक विशेष कीडे के आक्रमण की प्रतीक्षा करते है। जैसे ही बादल छाते है व्यस्क कीट पत्तियो पर अंडे देते है और कुछ समय बाद ही इनसे बच्चे निकलकर धतूरे की नयी पत्तियो को खाने लगते है। पारम्परिक चिकित्सक पूरी प्रक्रिया पर नजर रखते है। जब कीडे मल त्यागते है तो उस मल को एकत्र कर लिया जाता है। इस मल को दवा के रुप मे प्रयोग किया जाता है। पारम्परिक चिकित्सक कहते है कि इस मल मे धतूरे के लाभदायक गुण तो होते है पर हानिकारक तत्व नही होते है। तंत्रिका तंत्र की बहुत सी लाइलाज समझी जाने वाली बीमारियो की सफल चिकित्सा मे इस मल का प्रयोग होता है। मल को गुड या केले के साथ लपेट कर दिया जाता है ताकि रोगी को बिल्कुल भी पता न लगे। यह अटपटा लगे पर बहुत के कीडे-मकौडो के मल का इस तरह उपयोग होता है। इस अद्भुत ज्ञान की मिसाल पूरी दुनिया मे नही मिलती है।

और कुछ नही मिला लिखने को जो कीडों के मल के औषधीय गुणो का बखान कर रहे हो?- बहुत से पाठको की ऐसी ही प्रतिक्रिया होती है जब वे इस विषय पर लिखे गये सैकडो शोध आलेखो को पढते है। मुझे तो यह ज्ञान अदभुत लगता है। रोगो से जो भी मुक्ति दिला दे वह तो “अमृत” ही कहलायेगा। फिर यह तो लाइलाज रोगो की दवा है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

छत्तीसगढ अपने तालाबो के लिये पूरी दुनिया मे जाना जाता है। मुझे याद आता है कि जब मैने वनस्पतियो से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय़ ज्ञान का दस्तावेजीकरण आरम्भ किया था तब से ही मै प्रदेश के अलग-अलग तालाबो के जल और उनके औषधीय गुणो के बारे मे जानकारी एकत्र करता रहा। मैने प्रदेश के जल स्त्रोतो से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय़ ज्ञान पर काफी कुछ लिखा है। मुझे याद आता है कि कुछ वर्ष पहले राजधानी रायपुर के समीप स्थित आरंग नगर के पास रसनी के दो तालाबो से मैने बडी मात्रा मे जल एकत्र किया था और वहाँ से सैकडो किलोमीटर दूर पारम्परिक चिकित्सको के पास बतौर उपहार पहुँचाया था। रसनी के तालाब सडक के बायी और दायी ओर है। इन तालाबो के विषय मे बताया जाता है कि ये कभी नही सूखते। मैने हमेशा इनमे पानी देखा है। यहाँ के लोग भले ही इसे साधारण तालाब माने पर दूर-दूर के पारम्परिक चिकित्सक इसके जल को रोग विशेष मे उपयोगी मानते रहे है। वे रोगियो को न केवल इसमे स्नान करने को कहते है बल्कि जल के प्रयोग से दवाए भी बनाते है। और तो और, इस जल से नाना प्रकार की वनस्पतियो को सीचा जाता है ताकि वे औषधीय गुणो से परिपूर्ण हो जाये। पारम्परिक चिकित्सको के लिये ये गंगा जल से कम नही है। इन तालाबो के आस-पास उग रही वनस्पतियाँ विशेष औषधीय गुणो से परिपूर्ण मानी जाती है। मैने यहाँ मन्दिर के पास स्थित बेल और पुराने पीपल के बारे मे बहुत लिखा है। उडीसा के पारम्परिक चिकित्सक जब इस मार्ग से गुजरते है तो इन तालाबो का जल पीने और पीपल की छाँव सुस्ताने का मौका नही छोडते। इन तालाबो की इतनी अधिक महिमा होने के बावजूद कभी प्रशासन की ओर से इनके लिये कुछ नही किया गया। कल इन तालाबो के पास से एक बार फिर गुजरा तो मै रो पडा।

फोर लेन सडक का निर्माण होने के कारण तालाबो को पाटा जा रहा है। तालाब अब अपनी अंतिम साँसे गिन रहे है। मै यह सब देखकर हतप्रभ रह गया। पास ही पीपल के पेड की लाश पडी हुयी थी। किसी शक्तिशाली आधुनिक मशीन ने उसे बेरहमी और बेशरमी से उखाड दिया था। मै लाश तक पहुँचा तो उसमे जान नही थी। यह वही पीपल था जिसने असंख्य मनुष्यो की जान बचायी थी। आज जब मनुष्य़ की बारी आयी तो उसने इसे नेस्तनाबूत करने मे जरा भी देर नही लगायी। मै अनगिनत बार इस पीपल के साये मे बैठा चुका हूँ। इस बार मेरी हिम्मत उससे नजरे मिलाने की नही हुयी। सडक बनाने वालो ने तो ग्राम देवता को नही बख्शा था तो भला इन पेडो की क्या बिसात? बेल का महान पेड भी मुझे नही दिखा। पल भर मे ही माँ प्रकृति की इस अनुपम भेट को बरबाद कर दिया गया। मै तस्वीरे लेने लगा तो कुछ गाँव वाले एकत्र हो गये। उन्होने मुझे पत्रकार समझा और शिकायत भरे लहजे मे कहा कि हमे मुआवजा नही मिला है। यह

केन्द्र सरकार की सडक है। मैने रुन्धे गले से पूछा कि इस पीपल को बचाने कोई सामने नही आया? तो वे बोले, हमारी एक भी नही सुनी गयी।

मैने इस लेखमाला मे पहले लिखा है कि रायपुर से आरंग के बीच के सैकडो पेड फोर लेन की भेट चढ गये। इनमे से बहुत से कैसर जैसे जटिल रोगो की चिकित्सा मे प्रयोग हो रहे थे। माँ प्रकृति ने खुले मन से छत्तीसगढ को सौगाते दी है पर यहाँ के योजनाकार और राजनेता इसकी कद्र नही जानते। यहाँ के राजनेता राजिम मे कुम्भ का आयोजन करवा कर अपनी भक्ति का सबूत दे सकते है पर सैक़डो पेडो को कटवाते वक्त उनके मुँह से उफ तक नही निकलती। वे इस बात से अनिभिज्ञ है शायद कि इस तरह की हत्याओ से उनका बरसो का कमाया पुण्य एक झटके मे ही बेकार हो जाता है। हमारे मुख्यमंत्री आयुर्वेद के चिकित्सक है। मै उनसे आमने-सामने कभी नही मिला पर यह दुख होता है कि दिव्य औषधीय गुणो से युक्त रसनी की वनस्पतियाँ व तालाब के जल और प्रदेश भर मे हो रही पेडो की अन्धाधुन्ध कटायी पर वे मौन धारण किये हुये है। उन्हे इस सब की जानकारी नही है या सब जानकर ऐसा कर रहे है, इनमे से कोई भी बात होने पर वे जिम्मेदारी से नही बच सकते है। प्रकृति प्रेमी उस दिन की प्रतीक्षा मे है जब वे अपने चाटुकारो के छदम घेरे से निकल कर बाहर आयेंगे। फोर लेन सडके और बाजार तो कही और भी बन सकते है पर माँ प्रकृति द्वारा सदियो मे बानाये गये उपहारो को फिर से बना पाना मनुष्य़ के बस मे नही है।

सर्वेक्षण के लिये हाल ही मे बागबहरा, पिथौरा और सिरपुर क्षेत्रो मे जाना हुआ है। मैने इन क्षेत्रो मे लम्बे समय तक काम किया है। बहुत सी वनस्पतियो से गहरे सम्बन्ध हो गये है। जब इन वनस्पतियो के पास से मै गुजरता हूँ तो गाडी रुकवाकर एक बार “समधी भेट” की तर्ज पर गले मिल लेता हूँ। मुझे तो असीम संतोष होता है। आते-जाते लोग बडी हैरत भरी निगाह से यह सब देखते रहते है। इस बार इन क्षेत्रो मे बहुत से परिजन नही मिले। कुछ तो ठूँठ की शक्ल मे थे जबकि बाकी पूरी तरह से गायब थे। रास्ते मे बहुत सी महिलाओ को पेडो की लाशे ढोते देखा। वे बिना किसी डर के मुख्य मार्ग मे लाशो सहित जा रही थी। पूरे प्रदेश मे पेडो का इस तरह कटना जारी है। बिना किसी रोक-टोक। पेडो को जलाउ लकडी के रुप मे इस्तमाल किया जाता है। माँ प्रकृति की बरसो की मेहनत पल भर मे जल कर खाक हो जाती है। जनसंख्या बढती जा रही है इसलिये जंगलो पर दबाव भी। बगारपाली गाँव के एक बुजुर्ग से मैने पूछा कि एक दशक पहले मै यहाँ आया था तो इतने जंगल थे कि दिन मे अन्धेरा हो जाता था। दस साल के अन्दर इतनी भयावह स्थिति कैसे हो गयी? वे बोले, यह जनता की करामत है। सबको

जला दिया। हमारे गाँव के लिये अब लकडी नही बची है। जितने पेड है उनकी रक्षा हम करते है ताकि आने वाले दिनो मे लकडी मिलती रहे। पास के गाँव वालो ने अपना जंगल खत्म कर दिया है। अब वे चोरी-छिपे हमारे जंगल से लकडी ले जाते है। ऐसा ही चलता रहा तो अब लकडी के लिये खून-खराबा होगा। मै बुजुर्ग की बाते सुन रहा था। यह भी सोच रहा था कि आगे पाँच-दस सालो मे क्या होगा? इनके पास जलाउ लकडी का कोई विकल्प नही है। जंगल खत्म हो गये तो ये खाना कैसे पकायेंगे? मै तो दस साल आगे की चिंता कर रहा हूँ। पर राजनेता इससे दूर है। जब आग लगेगी तब ही वे कुँआ खोदेंगे। स्थिति बहुत ही भयावह है।

लीजिये मै अपने दम पर बिना किसी आर्थिक सहायता के देश के पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण करता रहा और दिल्ली मे बैठे 200 से अधिक वैज्ञानिको ने देश के पारम्परिक चिकित्सकीय़ ज्ञान का एक डेटाबेस बना लिया। यह डेटाबेस यूरोप के पेटेंट कार्यालय को दे दिया है। डेटाबेस बनाने वाली सरकारी संस्था का कहना है कि अब कोई भी यूरोपीय देशो मे भारतीय ज्ञान पर आधारित पेटेंट लेगा तो यह डेटाबेस उस पेटेण्ट को वही रोक देगा। इससे देश के ज्ञान का दुरुपयोग रुकेगा। इस डेटाबेस से सम्बन्धित समाचार दुनिया भर मे छप रहे है। इन समाचारो के अनुसार इसमे दो लाख से अधिक पारम्परिक नुस्खे है और तीन करोड से अधिक पन्ने है। यह बात कुछ अटपटी लगती है। केवल दो लाख नुस्खे? जो विज्ञानी देश के समृद्ध पारम्परिक ज्ञान से परिचित है वे निश्चित ही इन नुस्खो को ज्ञान सागर मे एक बून्द के समान कहेंगे। समाचार बताते है कि इस डेटाबेस मे केवल उन नुस्खो को शामिल किया गया है जो पब्लिक डोमेन मे थे। अर्थात ग्रंथो के रुप मे प्रकाशित थे। तभी इतने कम नुस्खे है इसमे। जितना ज्ञान हमारे पारम्परिक चिकित्सको के पास अलिखित रुप मे है, उसकी तुलना मे पुस्तक मे प्रकाशित ज्ञान न के बराबर है और ऐसा लगता है कि डेटाबेस बनाने वाले इस अल्प ज्ञान को ही दुनिया मान बैठे है। इस समाचार मे यह नही लिखा है कि इस कार्य मे कितने पैसे खर्च हुये? निश्चित ही करोडो हुये होंगे। बडे लोगो की बडी बात। मै तो अपने डेटाबेस की बात कर सकता हूँ जिसमे दो लाख से अधिक ऐसे नुस्खे है जिनका वर्णन भारतीय ग्रंथो मे नही है। इनमे 35,000 से अधिक नुस्खे तो केवल कैंसर के है। डेटाबेस का वर्तमान आकार 1000 जीबी है या कहे 1 टीबी। और ये दिनोदिन बढ रहा है। यह निज डेटाबेस उस सरकारी डेटाबेस से कई गुना बडा है। समाचार मे यह भी कहा गया है कि इसे आम लोग नही देख पायेंगे। क्या आम भारतीय भी नही? यदि इसका जवाब हाँ है तो यह ठीक नही है। देश का पारम्परिक चिकित्सकीय़ ज्ञान आम भारतीयो का ज्ञान भी है। यूरोप को देने से पहले इसे भारतीयो के लिये उपलब्ध कराया जाना चाहिये ताकि भारतीय इसके

उपयोग से रोगो से मुक्त हो सके। समाचार के अनुसार इस डेटाबेस को अमेरिकी पेटेण्ट कार्यालय को भी दिया जाना है। भले ही इससे हमारे वैज्ञानिक देश के पारम्परिक ज्ञान की रक्षा की बात कर रहे हो पर मुझे तो लन्दन के एक जाने-माने वनस्पति विशेषज्ञ का व्याख्यान याद आता है। वे कहते है कि नया नुस्खा बनाने वालो को आधारभूत नुस्खा चाहिये होता। इसे पाते ही वे ऐसा परिवर्तन करते है आधारभूत नुस्खा गायब हो जाता है। जैसे मान लीजिये तुलसी और गुड का कोई आधारभूत नुस्खा है। दवा कम्पनियाँ इनमे से तुलसी से रासायनिक तत्व निकालेंगी और उनके प्रयोग का दावा पेश करेंगी। अव आधारभूत नुस्खे मे तो ताजी पत्तियो का प्रयोग बताया गया है। रसायन का नामोनिशान नही है। फिर गुड की जगह स्टीविया डाल दिया जायेगा। हो सकता है भारतीय़ स्टीविया डाल दिया जाये। इस तरह आधारभूत नुस्खे के आधार पर नया नुस्खा आ जाता है और उसका आसानी से पेटेंट हो जाता है। सरकारी डेटाबेस यदि गलत हाथो मे पहुँच गया तो दवा कम्पनियो को पका पकाया (रेडीमेड) माल मिल जायेगा। तब ज्ञान भारतीयो का रहेगा, मेहनत भी हमारी रहेगी पर पीढीयो तक सक्षम विदेशी दवा कम्पनियाँ मजा करती रहेंगी। ऐसा होने की उम्मीद ज्यादा दिखती है।

मैने इस लेखमाला मे वन्य प्राणियो के अंगो से जुडे अन्ध-विश्वास पर खुलकर लिखा है। परसो सिरपुर के मेले मे साही (Hystrix indica) के सभी अंगो को खुलेआम बिकता देख मै सकते मे आ गया। सभी अंगो को तांत्रिक शक्तियो के लिये बेचे जा रहे थे। ऊँचे दामो पर। उडीसा से आये तांत्रिको के पास और भी दुर्लभ वन्य प्राणियो के अंग थे। पता नही देश मे वन्य प्राणी संरक्षण की दुहायी देने वाले कहाँ सो रहे है? (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

हवलदार ने आते ही पूछा कि किससे इलाज करवाया था? रोगी ने कहा कि पहले एक पारम्परिक चिकित्सक के पास गया था और फिर एक एलोपैथ के पास। यह कहकर वह बेहोश हो गया। हवलदार ने पारम्परिक चिकित्सक के घर का रुख किया और रोगियो की भीड की परवाह न करते हुये उसे थाने मे बिठा दिया। वह एलोपैथ के पास भी गया पर

डाक्टर ने रोगियो का हवाला देते हुये बाद मे आने को कहा। पारम्परिक चिकित्सक से थाने मे पूछा गया कि क्या जहर दिये हो रोगी को? पारम्परिक चिकित्सक ने कहा कि मैने तो नाडी देखते ही कह दिया था कि यह मेरे बस का नही है। मैने कोई दवा नही दी। पारम्परिक चिकित्सक की बात अनसुनी कर दी गयी। दिन गुजर गया। रोगी को फिर होश आया तो उससे पूछा गया। उसने कहा कि पारम्परिक चिकित्सक का कोई कुसूर नही है। उन्होने तो केवल नब्ज देखी थी। दवा तो मैने डाक्टर से ली थी। उसे खाते ही मेरी हालत खराब हो गयी। डाक्टर को लाया गया। उसे भी अचरज हो रहा था। काफी देर बाद पता चला कि रोगी ने जल्द आराम की आशा मे दोहरी खुराक ले ली थी। पारम्परिक चिकित्सक को घर जाने की अनुमति मिल गयी। देश भर के लाखो पारम्परिक चिकित्सको के प्रति सरकार का यही रवैया है। जब चाहे उठाकर थाने मे बिठा दिया जाता है। एक देहाती मेले मे बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक अपना दर्द बता रहे थे। यह रोजमर्रा की बात होने के बाद भी वे बिना किसी शिकायत के जनसेवा मे लगे रहते है।

मै जब भी पारम्परिक चिकित्सको से मिलता हूँ तो यह पूछ लेता हूँ कि पुलिस परेशान तो नही कर रही है? ज्यादातर मामलो मे सुकून भरा जवाब मिलता है कि थानेदार और सिपाही न केवल अपने लिये दवा ले जाते है बल्कि रिश्तेदारो को भी लाते है। सरायपाली के एक पारम्परिक चिकित्सक ने तो थानेदार द्वारा खुश होकर लिखा गया प्रमाण-पत्र भी सजा रखा है। जिस तरह आधुनिक चिकित्सा प्रणाली आम रोगो से लोगो को मुक्त नही करवा पा रही है, उससे पारम्परिक चिकित्सको के पास रोगियो की संख्या बढती जा रही है। बहुत से जाने-माने पारम्परिक चिकित्सको के घर के सामने लाल और पीली बत्ती गाडियाँ खडी दिख जाती है। हाल ही मे मेरे एक परिचित के बच्चे का पैर टूट गया। वे मंत्रालय मे उच्च पद पर है। उन्होने डाक्टर की शरण लेने की बजाय सीधे खैरागढ का रुख किया और पारम्परिक चिकित्सक से ही जडी-बूटियो का प्लास्टर लगवाया। फिर हर हफ्ते बच्चे को लेकर गाडी जाती रही। वे चाहते तो आधुनिक डाक्टरो की कतार लग जाती पर उन्होने पारम्परिक चिकित्सक को ही चुना। शहरी मानसिकता मे तेजी से आ रहा यह परिवर्तन गौर करने योग्य है।

छत्तीसगढ के पारम्परिक चिकित्सको पर मै लगातार लिख रहा हूँ। हिन्दी मे भी और अंग्रेजी मे भी। मेरे लेख देश भर मे छपते है जिससे लोगो को लगता है कि एक बार छत्तीसगढ जाकर वहाँ के पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का लाभ उठाया जाये। हाल ही मे राजस्थान से किसी सज्जन का फोन आया कि हम रायपुर स्टेशन आ गये है और अब

गंतव्य की ओर रवाना हो रहे है। आपका धन्यवाद जो आपने अपने लेख मे यहाँ के पारम्परिक चिकित्सको के बारे मे लिखा। आपके दर्शन करना है। मैने उनसे कहा कि आप यदि घर आना चाहे तो आ सकते है। उन्होने रहस्य खोला कि मै अकेला लौटते मे आ जाऊँगा। अभी तो हम लोग 70 से अधिक के समूह मे आये। इतना बडा समूह? उन्होने कहा कि सब के सब इलाज करवाने आये है। साथ मे राजस्थान से उपहार भी लेकर आये है। एक रेल के डिब्बे मे भरकर लोग पारम्परिक चिकित्सको के पास आ रहे है, इससे बढकर क्या खुशखबरी हो सकती है। पूरा देश पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान से लाभांवित हो रहा है और अब पारम्परिक चिकित्सको के पास जा रहा है तो फिर क्यो नही इन पारम्परिक चिकित्सको की सेवाओ को अवैध करार देने वाले काले कानून को समाप्त किया जाये?

“लाइसेंस मिलेगा तो ठीक रहेगा न?” यह प्रश्न भी मै पारम्परिक चिकित्सको से अक्सर पूछ लेता हूँ। हालाँकि मुझे मालूम है कि यह एक कठिन प्रक्रिया है। पारम्परिक चिकित्सक प्रसन्न हो जाते है पर रविवार को बागबहरा के एक पारम्परिक चिकित्सक से मैने यह कहा तो उनके माथे पर बल आ गये। मैने कारण पूछा तो बोले कि अभी लाइसेंस नही है तो भी सेवा कर रहे है। लाइसेंस होने से सरकार जब भी बुलायेगी दौड कर जाना होगा। मुझे हँसी आ गयी। मैने कहा “ पर थाने वाले परेशान नही करेंगे।“ इस पर वे कुछ आश्वस्त दिखे। उस दिन मै और भी बहुत से पारम्परिक चिकित्सको से मिला। इनमे से कुछ वे थे जिनसे मै दस वर्षो पहले मिला था। उनकी आँखो मे ढेरो प्रश्न थे। कुछ सोच रहे थे कि शायद मेरे आने से कुछ खुशखबरी मिले। पर मेरे पास उनके लिये कुछ खास नही था। बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सको ने नयी पीढी के लालच के बारे मे शिकायत की। बताया कि कैसे उनके बच्चे अधिक लाभ की चाह मे बाजारु दवाओ को रोगियो को दे रहे है। पीढीयो के विश्वास से रोगी आ रहे है देश के कोने-कोने से। जब वे ऐसा छल देखते है तो उनका विश्वास जाता रहता है। आस-पास के जंगलो के तेजी से कटने के कारण अब वनस्पतियो की उपलब्धता कम हो गयी है। इन वनस्पतियो के लिये अब उन्हे रायपुर पर निर्भर रहना पडता है जहाँ जडी-बूटियो मे मिलावट अब आम बात होती जा रही है।

हाल ही मे एक देहाती मेले मे उडीसा से आए कुछ पारम्परिक चिकित्सको से मुलाकात हुयी। वे लोकवा या लकवा (पैरालिसिस) की चिकित्सा कर रहे थे। रोगियो की भीड लगी हुयी थी। वे नुस्खो के बारे मे बता रहे थे बिना संकोच के। मुझे आश्चर्य हुआ। जब उन्होने बरकस नामक वनस्पति के उपयोग के बारे मे बताना शुरु किया तो मैने कहा कि

यह तो आयुर्वेद के ग्रंथो मे लिखा नुस्खा है। भाषा भी वैसी ही थी। पारम्परिक चिकित्सको ने बताया कि यह किताबो मे लिखा नुस्खा ही है। पारम्परिक चिकित्सको से ऐसा सुनने की उम्मीद नही थी। उनके नुस्खे ठीक उसी स्वरुप मे ग्रन्थो मे नही मिलते। साथ ही ग्रंथो मे लिखे ज्यादातर नुस्खो का विस्तार उनके पास मिल जाता है। मै अपने व्याख्यानो मे यह उदाहरण देता हूँ। चरक सन्हिता ने एक नुस्खा है पक्षाघात के लिये। उसके विषय मे बहुत कम लिखा गया है। पर जब मैने इसी नुस्खे को पकडकर देश भर के हजारो पारम्परिक चिकित्सको से बात की तो आपको आश्चर्य होगा कि इस पर आधारित जानकारी के लिये हजारो पन्ने कम पड गये। अभी भी नयी जानकारियाँ मिल रही है। यह छोटा सा उदाहरण हमे अहसास कराता है कि पारम्परिक चिकित्सकीय़ का दस्तावेजीकरण कितना जरुरी है। चलिये, उडीसा के पारम्परिक चिकित्सको पर लौटे।

उन्होने खुलासा किया कि एक स्थानीय संस्था उन पर लगातार दबाव बना रही है कि वे अपने मूल नुस्खो को भूल जाये और उनके द्वारा बताये गये नुस्खो का प्रचार करे। जडी-बूटियाँ भी उनसे ले। उस संस्था ने मूल नुस्खे अपने पास रख लिये है। कुछ पारम्परिक चिकित्सक इसके लिये तैयार हुये। शेष ने हाथ खडे कर दिये। संस्था ने हामी भरने वालो के पक्ष मे प्रमाण-पत्र जारी कर दिये और मानदेय की व्यवस्था कर दी। शेष को नीम-हकीम घोषित कर दिया गया। यह स्तब्ध करने वाला समाचार था। नीम-हकीम घोषित किये गये पारम्परिक चिकित्सको ने थक-हार कर यह काम छोड दिया। ऐसे समाचार मन मे आग लगा देते है। सोचता हूँ काश मै दो या तीन होता ताकि अपने एक रुप को पारम्परिक चिकित्सको का संगठन बनाने और उनके हक की लडाई लडने के लिये कुर्बान कर देता। यदि पारम्परिक चिकित्सक एक हो जाये तो ऐसी कपटी संस्था का नामोनिशान मिट जाये। कभी-कभी इस उलझन मे भी पड जाता हूँ कि शेष जीवन मे भी इसी तरह लिखता रहूँ या जमीन पर इस संघर्ष के लिये कूद पड़ूँ। जो भी करना है जल्दी करना होगा। नही तो वे दिन दूर नही जब देश के इन पारम्परिक चिकित्सको की बाते मेरे लेखो तक ही सीमित रह जायेगी। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

आस्ट्रेलिया मे हाल ही लगी जंगली आग की खबर ने मुझे परेशान कर दिया। मेरे बहुत से वैज्ञानिक मित्र वहाँ पर है। समाचार पत्रो के अनुसार 200 से अधिक लोग इस आग के शिकार हो चुके है। अभी भी कई जगहो पर आग फैली हुयी है। मैने अपने एक मित्र राड को सन्देश भेजा और हाल-चाल जानना चाहा। मैने सन्देश मे लिखा कि मै आस्ट्रेलिया की वनस्पतियो के बारे मे ज्यादा नही जानता पर यदि प्रभावित क्षेत्र मे जाना हो तो गौर से देखना कि माँसल पौधो पर आग का क्या असर हुआ है? मुझे लगता है कि जिन क्षेत्रो मे माँसल (succulent) वनस्पतियाँ रही होगी वहाँ आग से नुकसान अपेक्षाकृत कम हुआ होगा। राड का जवाब आ गया। उन्होने बताया कि वे पश्चिमी आस्ट्रेलिया मे है, आग से 3500 किमी दूर। भले ही आग ने उन्हे प्रभावित नही किया हो पर यह पूरे आस्ट्रेलिया के लिये एक सबक है। माँसल वनस्पतियो और आग की विभीषिका उनके शब्दो मे पढे “As for succulents, Australia has very few native succulents, certainly no native Cactaceae. Most of the Flora is to some extent fire adapted but certainly not for fires of the magnitude being experienced now where everything is burnt to the ground even huge hardwood trees, just nothing left but ash even the houses burnt have been reduced to piles less than 30cm. Most of the fires are in native bushland and so far over 500,000 Ha has been affected and hundreds of communities.” यानि आस्ट्रेलिया मे केक्टस की तरह माँसल पौधे नही के बराबर है। यहाँ के पौधे हर साल लगने वाली इस आग से सबक सीख कर उसके अनुकूल हो गये है पर इस बार आग इतनी तीव्र थी कि बडे पेड और लोगो के घर जल गये और 30 सेमी ऊँची राख के ढेर मे बदल गये। यह सब दुखी करने वाला है पर यह जानकर तसल्ली हुयी कि राड कुशल है।

मैने अपने जीवन मे जंगल की आग को फैलते कई बार देखा है। गर्मी के मौसम मे वनोपज संग्रहकर्ता सुविधा के लिये जंगल की जमीन पर आग लगा देते है ताकि सूखी पत्तियाँ जल जाये और जगह साफ हो जाये। जगह साफ होने से गिरे हुये फल-फूल का एकत्रण आसान हो जाता है। आग लगा दी जाती है पर इसे बुझाया नही जाता। पलक झपकते ही इसका फैलाव बढ जाता है और पूरा जंगल चपेट मे आ जाता है। असंख्य वनस्पियाँ नष्ट हो जाती है और वन्य-प्राणियो को जान से हाथ धोना पडता है। जंगल विभाग कई तरह के उपाय अपनाता है। गाँव स्तर पर समितियाँ बनायी जाती है। आग पर नजर रखने वाले रक्षक तैनात किये जाते है। ये रक्षक सूखी पत्तियो को नियंत्रित दशा मे जलाकर आग लगने की सम्भावना को खत्म कर देते है। आग को फैलने से रोकने के

लिये इन्हे प्रशिक्षित किया जाता है। आग प्राकृतिक कारणो से भी लगती है। बहुत बार जंगल विभाग के लालची कर्मचारियो को भी इसके लिये दोषी ठहराया जाता है।

मुझे याद आता है गर्मियो की एक रात हम जीप से अमरकंटक मार्ग पर थे। घाटी मे चढाई जारी थी। अचानक ही ऊपर लगी भीषण आग हमे दिखायी दी। हम सावधानीपूर्वक ऊपर बढते गये। हमारे साथ चल रहे लोगो ने कहा कि इस क्षेत्र के जंगल अधिकारी के सिर पर बन आयी होगी। उसकी तो रात मुश्किल से कटेगी। अचानक हमारी जीप के सामने से कुछ जानवर भागे। आग से डरकर वे बदहवास भाग रहे थे। रात के एक बजे थे। हमे तो आग बुझाता कोई नही दिखा। आस्ट्रेलिया के पास तो सैकडो फायर फायटर है। वे विशेष रुप से प्रशिक्षित है। फिर हेलीकाप्टर से भी आग बुझाने वाले रसायनो का छिडकाव किया जाता है। ऐसा विदेशो मे ही होता है। हमारे देश मे तो ऐसे फायर फायटर है नही और ऐसा प्रशिक्षित समूह बनाने की योजना भी नही है। अमरकंटक का जंगल धू-धू कर जलता रहा। एक पहाडी गाँव मे हम रुके तो सन्नाटा पसरा हुआ था। आग दूर थी।शौच के लिये उठे एक व्यक्ति से हमने कुछ पूछना चाहा तो उसने कहा कि हर साल ऐसी आग लगती है। कोई खास बात नही है।

हमने आग की तस्वीरे लेनी चाही पर प्रकाश की समुचित व्यवस्था न होने के कारण हमारे कैमरो ने अच्छी तस्वीरे नही ली। कुछ दूर चलने पर अचानक ही कुछ लोग आग की दिशा मे बढते नजर आये। हमने सोचा कि ये जंगल विभाग के रक्षक होंगे पर उनके हाथो मे औजार देखकर यह समझने मे देर नही लगी कि ये शिकारी है और जानवरो की बेबसी का लाभ उठाने यहाँ आये है। हमे देखकर वे चौके। हमने अंजान बनते हुये उनसे बात करने की कोशिश की। ड्रायवर ने बीडीयाँ सुलगायी तो वे खुल गये। पता चला कि वे शिकारी कम तांत्रिक (ज्यादा) थे। जंगल की आग मे खतरा उठाते हुये रात को जानवरो का शिकार करने के उनके विशेष कारण थे। उनका दावा था कि आग लगने पर कुछ जानवर विचित्र व्यव्हार करते है। ऐसे जानवरो पर तांत्रिको की नजर होती है। उन्हे ही वे मारने की कोशिश करते है। आपने इस लेखमाला मे पहले पढा है कि कैसे बन्दर की खोपडी की साधना करने वाले तांत्रिक डाल से अपने आप गिरने वाले बन्दर को ही चुनते है? इसी तरह गोरोचन वाली गाय की पहचान उसकी विशेष हरकतो से की जाती है। आमतौर पर गाये किनारे पर खडे होकर पानी पीती है। वे पानी के अन्दर नही जाती है। पर तांत्रिक दावा करते है कि गोरोचन वाली गाय तालाब मे प्रवेश करके पानी पीती है और उसका पेट पानी मे डूबा रहता है। गाय वाली बात को अन्ध-विश्वास मानते हुये मैने ग्रामीणो से इस बारे मे पूछा। गाय को ध्यान से देखा। चरवाहो ने इस बात की पुष्टि की।

पर बिना देखे कहाँ विश्वास होता है? हाल ही मे जंगल के एक सरोवर मे गायो के झुंड को चरवाहे पानी पिला रहे थे। मै आस-पास के पहाडों की तस्वीरे ले रहा था। अचानक ही एक ऐसी गाय पर नजर पडी जो भीड से हटकर थी और बीच मे पानी मे डूबकर पानी पी रही थी। मैने तस्वीर उतारी और विडीयो भी लिया। चरवाहो ने इसे विशेष गाय की संज्ञा दी। पर यह निश्चित नही हो पाया कि यह गोरोचन से युक्त है या नही। गोरोचन का तांत्रिक महत्व तो है पर मेरी रुचि इसके औषधीय महत्व पर रही है। मैने इससे सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय़ ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया है। अपस्मार की चिकित्सा मे पारम्परिक चिकित्सक इसका प्रयोग सफलतापूर्वक करते है। मैने सन्दर्भ ग्रंथ खंगाल डाले पर न प्राचीन और न ही आधुनिक ग्रंथो मे गाय के इस विशेष व्यवहार का कारण मिला। बन्दर और गाय की तरह ही तांत्रिक बहुत से वन्य-प्राणियो के विचित्र व्यवहार की जानकारी रखते है। मै तांत्रिको के साथ रहा और उन्हे पूरा सुना इसलिये यह सब जान पाया और फिर इस सब का वैज्ञानिक विश्लेषण कर पाया। कुछ सालो की शिक्षा के बाद मै भी साहब बनकर इन्हे और इनके अनुभव को सिरे से नकार कर उन्हे अन्ध-विश्वासी कह देता तो यह सब शायद ही जान पाता। चलिये अब आग पर लौटे।

तांत्रिको की मंशा सुनकर मन हुआ कि डपट कर उन्हे वहाँ से भगा दिया जाये। यह भी उत्सुकता हुयी कि उनके इस शिकार को देखे। साथ चल रहे लोगो ने आगे बढने की सलाह दी क्योकि तांत्रिक नशे मे धुत थे और घातक हथियारो से लैस भी। हम आगे बढ गये। कुछ दिनो बाद हम फिर वहाँ से गुजरे तो हमे एक बडा इलाका साफ मिला। चारो ओर आग से हुयी तबाही का मंजर था। हमने वापस आकर सारे प्रमुख अखबार देखे पर यह समाचार किसी मे नही था। पत्रकार मित्रो ने बताया कि ऐसे समाचार कभी छपते ही नही। अखबार शहरो की चिंता करते है। एक सोने की चैन की लूट होने पर नगर बन्द की नौबत आ जाती है पर करोडो का वनस्पतियाँ जल जाने की खबर अखबारो मे जगह नही पाती। किसी की जिम्मेदारी तय नही होती और अगले साल आग को इस तरह अनदेखा करने का लाइसेंस अधिकारियो को मिल जाता है। मैने इस घटना पर आधारित बहुत से लेख लिखे। ऐसी सभाओ मे इस मुद्दे को उठाया जहाँ जिम्मेदार योजनाकार उपस्थित थे पर उनके कानो मे जूँ तक नही रेंगी।

ऐसी आग पारम्परिक चिकित्सको को बहुत मायूस कर देती है। आपने पहले पढा है कि कैसे वे वनस्पतियो को पीढीयो तक सहजते रहते है और पारम्परिक विधियो से औषधीय गुण सम्पन्न बनाते रहते है। एक ही आग से उनकी पीढीयो की मेहनत मिट्टी मे मिल जाती है। पिछले साल पारम्परिक चिकित्सक ऐसे ही एक स्थान पर आग बुझने पर ले

कर गये। एक जला हुआ पुराना पेड दिखाते हुये बोले कि इस पेड ने कैसर के सैकडो रोगियो को राहत पहुँचायी है। इस तरह का एक ही पेड इस इलाके मे था। मेरे परदादा ने इसे दादा को और दादा ने मेरे पिता को सौपा था। मै इसे अपने बेटे को सौपने की तैयारी मे था। अब मेरे रोगियो का क्या होगा? पारम्परिक चिकित्सक चिंतित भी थे और दुखी भी। एक आग ने सब बरबाद कर दिया। मैने जंगल विभाग के एक अधिकारी को यह सब बताया तो सिगरेट का धुँआ छोडते हुये वे बोले, सब बकवास है। ऐसे हम एक-एक पेड बचाते रहे तो सारी जिन्दगी इसमे ही खप जायेगी। बी प्रेक्टिकल। व्यव्हारिक बनो। ऐसी बाते करने वालो से दूर रहो। अधिकारी का जवाब सुनने के बाद मैने उनसे दूर रहना ही उचित समझा। शायद सारा ही देश ऐसे गैर-जिम्मेदार लोगो के हाथ मे है।

बहुत साल पहले नेपाल से आये एक वैज्ञानिक ने बताया था कि उनके दादा वन विभाग के ठेकेदार थे अंग्रेजो के समय। हिमालय की तराई मे उन्होने बहुत से ऐसे पेडो के बारे मे सुना था जिन पर आग का असर नही होता या कम होता है। उस वैज्ञानिक की बात से प्रेरित होकर मैने भी अपने अनुभवो से ऐसे पेडो की सूची तैयार की । मुझे लगता है भारत, आस्ट्रेलिया और दुनिया के उन देशो मे जहाँ एक ही स्थान पर बार-बार आग लगती है ऐसी वनस्पतियो की कतारे लगाकर आग के फैलाव को मानव आबादी से दूर रखा जा सकता है। हो सकता है कि अभी यह विचार छोटा लगे पर मुझे लगता है कि ऐसे ही प्रयास सही मायने मे लोगो को जंगल की आग से राहत दिलवा पायेंगे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“वर्ष 2004 मे नाइजीरिया मे चुडैलो की तलाश करने वाले ओझाओ ने जहरीला काढा पिलाकर 27 महिलाओ और पुरुषो को मार दिया। कुछ समय पहले एक बूढे व्यक्ति ने अपने बेटे की हत्या कर दी इस शक पर कि उस बेटे ने अपने तीन भाईयो को जादू से मार डाला। किसी बीमारी से उस व्यक्ति के तीन बेटे एक के बाद एक मर गये थे। पंकज जी, जो आप लिख रहे है वह केवल भारत तक ही सीमित नही है अपितु पूरे विश्व मे व्याप्त है। इसलिये अन्ध-विश्वास के साथ इस जंग को विश्वस्तर का बनाइये ताकि

विभिन्न देशो के लोग मिलकर आपके स्वर को बुलन्द कर सके।" इंटरनेट ने सचमुच दुनिया को छोटा बना दिया है। मै हिन्दी मे इस लेखमाला को लिख रहा है पर दुनिया भर से आ रहे ऐसे सन्देश इशारा करते है कि इसकी गूँज बहुत दूर तक जा रही है। यह सन्देश मुझे आफ्रीका के एक पाठक से मिला। शुद्ध हिन्दी मे लिखा यह सन्देश आत्मियता से भरा था। किसी हिन्दी प्रेमी ने अमेरिका मे इस लेखमाला को पढा और अपने विश्वविद्यालय के नोटिस बोर्ड पर इसके बारे मे जानकारी दी। वहाँ से यह जानकारी किसी छात्र के सहारे आफ्रीका पहुँच गयी। आफ्रीका के इस हिन्दी-प्रेमी ने बिना देर किये लेखमाला को पढ डाला। उनका कहना है कि अब वे अनुमति मिलने पर इस लेखमाला को दुनिया भर की भाषाओ मे प्रकाशित कर इस जंग को विश्वव्यापी करना चाहते है। उनका यह भी कहना है कि अन्ध-विश्वास से सबसे ज्यादा नुकसान महिलाओ और बच्चो का होता है। दुनिया भर मे सबसे ज्यादा मौते इनकी ही हुयी है। यदि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहल की जाये तो भारत मे एक छोटी सी घटना होने पर पूरा विश्व प्रभावित को सहारा देने के लिये तैयार हो सकता है। इसी तरह भारत दुनिया भर के देशो मे फैले अन्ध-विश्वास को समाप्त करने मे अपनी भूमिका निभा सकता है। उन्होने वीकीपीडीया की तर्ज मे एक ऐसा विश्वकोष बनाने का सुझाव दिया है जिसमे दुनिया भर के अन्ध-विश्वासो को दर्ज किया जाये और फिर इन पर वैज्ञानिक चर्चा हो। उनका दावा है कि एक ही तरह के अनगिनत अन्ध-विश्वास पूरी दुनिया मे अलग-अलग रुपो मे फैले हुये है और एक मामले का समाधान इस मंच की सहायता से दूसरे देशो मे फैले ऐसे अन्य मामलो के समाधान के लिये सहायक सिद्ध हो सकता है।

पिछले ही लेख मे मै बन्दरो पर चर्चा कर रहा था। बन्दरो की भाषा भले ही आम मनुष्य न समझ सके पर बहुत से वनवासी इस भाषा को समझने का दावा करते है। मुझे याद आता है कि काफी पहले मै एक ओझा से मिला था जो कि मानसिक रुप से अस्वस्थ लोगो को ठीक करने मे पारंगत माना जाता था। जब रोगी ओझा के सामने पहुँचता था तो उसे बन्दरो के पिंजरे के पास कुछ घंटो के लिये रख दिया जाता था। ओझा का दावा था कि रोग की तीव्रता के बारे मे जानकारी बन्दरो की हरकतो से हो जाती थी। इसके बाद वह दवा देता था। पर क्या सचमुच बन्दर रोग के निदान (डायग्नोसिस) मे मदद करते थे या फिर यह महज दिखावा था। उस समय तो यह मुझे महज दिखावा ही जान पडा। जैसे बहुत से ज्योतिषी अपनी प्रक्रिया को विश्वसनीय बनाने के लिये तोतो का प्रयोग करते है। पर वास्तव मे इसमे तोतो की कोई भूमिका नही होती है। जंगलो मे पारम्परिक चिकित्सको के साथ जब भी जाना होता है वे बन्दरो को खोजते रहते है। इनसे उनकी धार्मिक आस्था तो जुडी ही है। साथ ही वे बन्दरो के अनुभवो का लाभ भी

उठाते है। कौन से जंगली फल खाने योग्य नही है और कौन से नही, यह पता करने मे बन्दरो को अनजाने ही सहायता करते मैने कई बार देखा है। ऊँचे पेडो पर बन्दर हो और आप नीचे से गुजर रहे हो तो वे आप पर नजर रखते है। उनका ध्यान और खीचने के लिये आप लंगडा कर या उछल-उछल कर चले। बन्दरो की ओर न देखे। बस ऐसी चाले चलते रहे। थोडे ही समय मे पूरा झुंड आप पर नजर गडा लेगा। फिर आप झाडियो मे जाकर जंगली फलो को तोडे और मुँह तक लाये। बस इस प्रक्रिया मे ही उनके चेहरे के हाव-भाव बदलने लगते है। यदि फल मीठे होंगे तो उनकी उत्सुकता बढ जायेगी। यदि आपने धतूरा तोड लिया और खाने का प्रपंच करने लगे तो दल मे खलबली मच जायेगी। एक न एक बन्दर उछलेगा और अजीब आवाजे निकालेगा। मैने तो इससे आगे कुछ नही किया पर बहुत से पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि जहरीला फल खाकर बेहोश हो जाने का नाटक करने पर बन्दर उस जहर की काट वाली वनस्पतियो की ओर इशारा करते है। इसके लिये बहुत धैर्य की जरुरत पडती है। और यह एक दुर्लभ घटना है। पर यदि एक बार भी यह उपाय कारगर रहा तो बहुत ही उपयोगी जानकारी मिलती है। मैने पारम्परिक चिकित्सको द्वारा एकत्र की गयी ऐसी दुर्लभ जानकारियो का दस्तावेजीकरण किया है। इनमे से बहुत सी जानकारियो की वैज्ञानिक व्याख्या अभी शेष है। इस तरह की जानकारियाँ यह अहसास कराती है कि माँ प्रकृति ने इस धरती के सभी जीवो को एक-दूसरे का पूरक बनाया। यदि मनुष्य़ सोचे कि धरती पर उसका एकाधिकार हो जाये क्योकि वह सर्वश्रेष्ठ है, तो यह उसकी भूल है। जिस दिन वह इस धरती पर अकेला होगा वह दिन उसके जीवन का अंतिम दिन होगा।

दक्षिण आफ्रीका से पधारे एक वैज्ञानिक मित्र ने वन्य-प्राणियो पर लिखे मेरे शोध लेख पढे तो उन्होने कहा कि हमारे यहाँ तो बबून की भाषा कोई नही समझ पाता। मैने पूछा, ऐसा क्यो? उनका जवाब था कि वे अभिशप्त है। और फिर उन्होने एक आफ्रीकी लोक कथा सुनायी। इस कथा के अनुसार पहले बबून बोल सकते थे। एक ओझा ने अपने बेटे को धनुष बनाने के लिये जंगल की झाडियो से पतली डंडियाँ एकत्र करने भेजा तो बबूनो ने उसे घेर लिया। बालक को घेर कर गाने लगे, चिल्लाने लगे कि तुम्हारा पिता अपने आप को बुद्धिमान समझता है। धनुष बनाकार हम सब को मारना चाहता है। हम ऐसा नही होने देंगे। फिर बबूनो ने बालक को मारा और पेड की ऊँची डाल से बाँध दिया। उधर दूर गाँव मे ओझा ने अपनी पत्नी से बेटे के बारे मे पूछा। देर होने पर उसने जादुई मंत्रो का जाप किया तो उसे पेड मे लटके बेटे का चित्र दिख गया। वह उसी पल जंगल की ओर चल पडा। बबून अभी भी मस्ती मे गा रहे थे कि तुम्हारा पिता अपने आप को बुद्धिमान समझता है। धनुष बनाकार हम सब को मारना चाहता है। हम ऐसा नही होने

देंगे। ओझा को आते देखकर वे सब सहम गये। पर ओझा ने कहा कि तुम सब ऐसे ही गाते रहो। फिर वह जगलो से नुकीले काँटे तोड लाया। बबून अभी भी मस्ती मे नाच रहे थे। धूल का गुबार उठ रहा था। ओझा ने इसका लाभ उठाया और उनके पिछवाडे मे काँटा गडा दिया। चुभन महसूस होते ही वे गाना भूल गये और अजीब सी आवाज निकालते हुये जंगल मे भाग गये। उसके बाद आज तक किसी को यह समझ नही आया कि बबून आखिर क्या बडबडाते रहते है? ओझा ने जादू से बेटे को फिर से जिन्दा कर दिया।

मै अपनी जंगल यात्रा मे जब रात को यह कहानी सुनाता हूँ तो वनवासी साथी खूब आनन्द लेते है। उन्हे यह कथा अपनी लगती है। वे इसे आफ्रीकी नही मानते है। जो पात्र इस कथा मे है वे हमारे आस-पास भी है। ओझा के पास जादुई शक्ति है और बन्दर की बोली यहाँ भी अबूझ पहेली है। वे “बेन्दरा लाठी” अर्थात बन्दर की लाठी नामक कथा सुनाते है। वह भी इससे ही मिलती-जुलती है। यहाँ ओझा ने धनबहेर (अमलतास) के पेडो मे फल्लियाँ लगने का इंतजार किया फिर इन फल्लियो की सहायता से बन्दरो को सबक सीखाया। आज भी बहुत से भागो मे अमलतास की फल्लियो को बेन्दरा लाठी कहा जाता है। इन कथाओ की समानता मुझे उस आफ्रीकी पाठक के सुझावो की याद दिलाती है जिसके बारे मे मैने ऊपर चर्चा की है। विश्व स्तर पर अन्ध-विश्वास के खिलाफ जंग का सुझाव मुझमे एक नया जोश भर रहा है। मुझे अब जल्दी ही इस दिशा मे पहला कदम बढाना होगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“आजकल शहरो से किस तरह के रोगी ज्यादा आते है?” मैने एक पारम्परिक चिकित्सक से पूछा जिनके पास रोज सैकडो लोग आते है दूर-दूर से। “गैस से होने वाली नाना प्रकार की तकलीफ से प्रभावित रोगी” उन्होने जवाब दिया। “यह सब आधुनिक जीवनशैली के कारण है ना? क्या आपकी औषधियाँ मुक्ति दिलवा देती है इस समस्या से?” उन्होने राज खोला कि हम औषधियाँ देते है पर ज्यादातर मामलो मे खान-पान बदलने से ही सब

ठीक हो जाता है। “खान-पान माने तला-भुंजा मसालेदार भोजन मना करते होंगे?” इस पर पारम्परिक चिकित्सक ने जो कहा वो आँखे खोलने वाला था। वे तले-भुंजे से ज्यादा जहरीले रसायनयुक्त भोजन से परहेज की बात कर रहे थे। “ मै अपने खेत मे उगाया हुआ चावल, दाल और सब्जी दे देता हूँ और एक हफ्ते इसी को खाने कहकर उन्हे वापस भेज देता हूँ। साथ मे झूठ-मूठ की पुडियाँ दे देता हूँ। एक हफ्ते बाद वे ठीक होकर आ जाते है। तब मै राज खोलता हूँ कि पुडियाँ मे कुछ नही था। यह तो जैविक विधि अर्थात बिना रासायनिक खाद और दवा से उगायी हुयी सब्जियो और चावल-दाल का असर है। उनसे कहता हूँ कि इन्हे आजमाओ और फिर इस समस्या को भूल जाओ। जहरीले भोजन को खाओगे तो रोज धीरे-धीरे मौत की ओर बढोगे। कुछ लोग मेरी बात मानते है पर ज्यादातर लोग कहते है कि आप तो दवा दे दो। अब शहर मे जहर मुक्त खाना कहाँ मिलेगा? वे भी बेचारे क्या करे। शहर मे तो उगा नही सकते और रोज गाँव नही आ सकते।“ पारम्परिक चिकित्सक ने जो कहा वह कमोबेश पूरे देश के महानगरो पर फिट बैठता है।

छत्तीसगढ मे सरना नामक धान की किस्म बडे पैमाने पर बोई जाती है। किसान कहते है कि मुश्किल से मुश्किल परिस्थितियो मे भी यह किस्म कुछ न कुछ दे जाती है। कृषि की पढाई के दौरान हमे बताया जाता था कि किसानो को इस किस्म को लगाने की बजाय नयी उन्नत किस्मो को लगाने की सलाह देनी चाहिये। राज्य मे अन्य किस्मो की तरह इसकी खेती भी रासायनिक खेती के रुप मे होती है। रसायनो का अन्धाधुन्ध प्रयोग होता है। जिस साल सबसे तेज रासायनो से कीडे नही मरते उस साल किसान स्वयम नये प्रयोग करते है और कई तरह के रसायनो को मिलाकर डालते है। इससे कीडे तो कम हो जाते है पर चावल विषयुक्त हो जाता है। “सरना मतलब मरना” ये बात राज्य के बहुत से पारम्परिक चिकित्सक कहते है। वे इस किस्म की बुराई नही करते बल्कि इसकी खेती मे रसायनो के बढ रहे प्रयोग के बारे मे ऐसा कहते है। श्वेतकुष्ठ से लेकर नाना प्रकार कैसर अब नये रुपो मे दिखायी पड रहे है। पहले ये शहरी बीमारियाँ कहलाती थी। पहले किसान बेचने के लिये उगाये जा रहे धान मे रसायनो का प्रयोग करते थे और अपने प्रयोग के लिये उगाये गये धान मे कितने भी कीडे लग जाये इसकी परवाह नही करते थे। वे रसायनमुक्त चावल का उपयोग अपने और परिवार के लिये करते थे। पर नयी पीढी मे रसायनो के प्रति ऐसा अन्ध-विश्वास जागा कि अब सभी धानो मे जम कर रसायनो का प्रयोग होता है। इसके कारण गाँव भी रोगो के घर बनने लगे है। यह अजीब सा मंजर लगता है कि गाँव के रोगी शहर का रुख कर रहे है और शहर के रोगी गाँव का। यहाँ रायपुर मे तो रोगी के बस से उतरते ही एजेंट उन्हे पहचान लेते है और फिर प्रलोभन

शुरु होता है एक से बढकर एक महंगे अस्पतालो का। यह पूरी प्रक्रिया तो आपको जानी –पहचानी लगेगी पर इसमे कृषि रसायनो की अहम भूमिका को हम नजरान्दाज कर देते है। कृषि रसायन बेचने वाली कम्पनियाँ जमकर मेहनत कर रही है। कृषि रसायन प्रयोग करने वाले किसानो को पुरुस्कृत किया जा रहा है। विक्रेताओ को दुनिया भर की सैर करायी जा रही है। उनके घर महंगे उपहार पहुँचाये जा रहे है। जैविक खेती के प्रशंसको का माखौल उडाया जा रहा है। भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान दिखावे के लिये जैविक खेती की बात कर रहा है पर उसके आस्तिन मे कृषि रसायन बनाने वाली कम्पनियाँ मजे से रह रही है। महंगे विज्ञान सम्मेलनो के प्रायोजक ये ही लोग होते है। वेलेंटाइन डे पर मोर्चा निकालने वाले कभी इस मूल मुद्दे पर भी तो सोचे। दम है तो इन कम्पनियो और उन्हे शरण देने वाले विशेषज्ञो के खिलाफ आवाज बुलन्द करे। इस मौत के बाजार पर अंकुश लगाये ताकि आम भारतीयो को दो वक्त का शुद्ध खाना तो मिल सके।

“शहरो मे भी शुद्ध सब्जियाँ मिल सकती है। इसके लिये हम लोगो ने अनूठा प्रयोग किया। हमारी कालोनी के बीच मे एक सार्वजनिक उद्यान है। हम वहाँ रोज सुबह घूमने जाते है। उद्यान का एक हिस्सा खाली पडा था। हमने माली को पैसे दिये और हमारे लिये सब्जी उगाने को कहा। जैविक विधि से हमने सब्जिया उगायी तो धीरे-धीरे इसे लेने वाले बढने लगे। लोग दुगुने दाम देने के लिये तैयार हो गये। इससे जो आमदनी होती उससे हम लोगो ने उद्यान को सुन्दर बनाना शुरु किया। कुछ पैसे अधिकारियो को भी खिलाये ताकि हो-हल्ला ना हो। कालोनी मे सब्जी वालो को ग्राहक कम मिलने लगे। उन्होने भी रास्ता निकाला कि हम पास के गाँव से वैसी ही सब्जियाँ लेकर आयेंगे पर दाम कुछ अधिक लेंगे। हम तैयार हो गये। हममे से कोई भी गाँव मे जाकर यह सुनिश्चित कर लेता है कि गाँव की खेती मे कुछ गडबड तो नही हो रही है। धीरे से हमने उद्यान मे सब्जी उगानी बन्द कर दी। गाँव के दूसरे लोग भी हमारी विधि से सब्जी उगाने और बेचने का मन बना रहे है। यदि चाह हो तो राह भी है। शहर मे इतना पैसा कमाते है वो सब एक झटके मे रोगो के इलाज मे चला जाता है। हमने तो इससे सबक लिया है।“ महाराष्ट्र के एक महानगर से एक पाठक इस लेखमाला को पढकर यह लिखते है। मैने उन्हे धन्यवाद दिया और आस-पास उग रहे बेकार समझे जाने वाले पौधो पर आधारित बहुत से नुस्खे दिये जिससे वे सब्जियो मे लगने वाले कीडो से फसल की रक्षा कर सके। मुझे लगता है कि ऐसी पहल पूरे देश मे हो तो रसायनयुक्त खाद्य पदार्थ बेचने वाले ग्राहक के लिये तरस जायेंगे। जब ग्राहक नही मिलेंगे तो इसकी खेती कम होगी और नयी पीढी के किसान जैविक खेती की ओर भागेंगे। किसानो का यह रुझान जनता की गाढी कमायी पर शोध का प्रपंच कर रहे कृषि अनुसन्धान संस्थानो को नीन्द से उठायेगा और वे मजबूर होकर

इस पर काम करेंगे। शराबबन्दी के लिये गाँधी जी ने आन्दोलन किया था। अब एक बार कृषि रसायन बन्दी के लिये ऐसे ही आन्दोलन की जरुरत है ताकि पीढीयो तक भारतीय रोग मुक्त रह सके।

“तो हम आर्गेनिक फुड ले सकते है। वो भी तो बाजार मे है।“ कुछ लोग ऐसा कहते है। निश्चित ही उनके पास यह एक अच्छा विकल्प है पर इस तरह के उत्पादो को बेचने वाली फर्मो के क्रियाकलापो पर नजर जरुरी है। जिस तरह आर्गेनिक फुड बेचने वाली फर्मो की बाढ आयी हुयी है उसी तरह इन्हे प्रमाण पत्र देने वाली संस्थाए भी कुकुरमुत्ते की तरह बढ गयी है। बहुत सी ऐसी संस्थाओ के लोगो से जब लम्बी बातचीत होती है तो अन्दर ही अन्दर चल रहे भ्रष्टाचार की गन्ध सतह पर आती है। दिल्ली की एक प्रसिद्ध संस्था के आउटलेट मे मुझे आमंत्रित किया गया और बताया गया कि हम जो चावल की दुबराज किस्म यहाँ बेचते है वह तो आपके ही राज्य के एक बडे किसान हमे देते है। मैने उनसे कहा कि यह तो अच्छी बात है। क्या आप मेरी उनसे मुलाकात का प्रबन्ध कर देंगे? मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया गया। संस्था के एक प्रतिनिधि के साथ मै किसान के खेत पहुँचा। साधन-सम्पन्न किसान को देखकर ऐसा नही लगा कि मै किसी देशी किसान से मिल रहा हूँ। पर खेती देखी तो मै अभिभूत हो गया। एक खेत दिखाने के बाद बोले कि बाकी खेत दूरी पर है। फिर कभी चलेंगे। हम वापस लौटे। किसान ने भेट स्वरुप महुए की शराब दी। मै तो नही पीता पर प्रतिनिधि ने देर करने मे समझदारी नही समझी। महुए के इस करिश्माई पानी ने बोतल मे तो शालीनता दिखायी पर हलक के नीचे उतरी तो प्रतिनिधि से सब उगलवा दिया। पता चला कि एक खेत को दिखाकर दूसरे खेतो से बडी मात्रा मे कृषि रसायन युक्त चावल की आपूर्ति की जाती है। इस प्रतिनिधि से लेकर टेस्टिंग लैब तक सभी बिके हुये है। दिल्ली के आउटलेट मे आने वाले खुलेआम ठगे जा रहे है। इसलिये कभी-कभी मुझे लगता है कि अपनी निगरानी मे ही सब कुछ करना जरुरी सा हो गया है।

“लोग इतनी जल्दी नही जागेंगे। उन्हे दिवस और सप्ताह मनाने की आदत हो गयी है। क्यो न साल का एक दिन या एक सप्ताह ऐसा चुना जाये जब अलग-अलग माध्यमो से आम लोगो से उस समयावधि तक जहरयुक्त भोजन न करने की अपील की जाये। देख, यह सब अपने बूते पर करना होगा। सरकार से उम्मीद बेकार है। आम लोगो का जागना मतलब कृषि रसायन कम्पनियो को खरबो का नुकसान। वे हम सबके पीछे नहा-धोकर पडेंगे। इन सबके लिये तैयार हो तो शुरुआत करे इसी साल से।“ मेरे मित्र की यह सलाह मुझे जँच रही है। मैने इस लेखमाला मे इसे स्थान देकर देशवासियो के लिये विचार-

विमर्श का रास्ता खोल दिया है। मुझे लगता है कि देश इस सकारात्मक पहल को हाथो-हाथ लेगा। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“आपने जडी-बूटियो पर इतना लिखा है, हम आपको कुछ उपहार देना चाहते है अपनी आस्था के अनुसार ताकि आपका भविष्य सुरक्षित रहे।“ अमेरिका से मुझे यह सन्देश मिला उन दिनो जब मैने बाटेनिकल डाट काम पर लिखना शुरु ही किया था। सन्देश भेजने वाली एक महिला थी जो शायद उस वेबसाइट से जुडी हुयी थी। उन्होने उस उपहार की तस्वीर भेजी। वह एक चाँदी का बक्सा था जिसमे लाल रंग के पावडर मे कोई पतली सी चीज पडी हुयी थी। उन्होने लाल रंग को जब सिन्दूर बताया तो मेरा माथा ठनका। मैने कहा कि मेरा एक मित्र पढाई के सिलसिले मे वहाँ है। वो आपके पास आकर उपहार ले लेगा और फिर जब भारत आयेगा तो मुझे दे देगा। बात तय हो गयी। मित्र को उपहार देते वक्त बताया गया कि This is Cat’s Chord (Umbelical cord or placenta) and very lucky. मित्र ने मुझे इस उपहार के बारे मे बताया। नाम से समझ आ गया कि यह तो वही चीज है जिसे भारतीय तांत्रिक दुर्लभ बताते है। इसे भारत मे बिल्ली की जेर या नाल के नाम से बेचा जाता है। मैने उपहार देने वाले से पूछा कि क्या इसके बारे मे आपको जानकारी किसी भारतीय से मिली? उन्होने कहा कि नही, यह तो हम पीढीयो से उपयोग कर रहे है। हाँ, पहले हम इसे सूखा रखते थे पर किसी भारतीय गुरु ने बताया कि सिन्दूर मे रखो तो हमने उसे अपना लिया। मैने फिर पूछा कि क्या ये जानकारी आपको थाईलैंड से मिली या किसी एशियाई देश से? उन्होने फिर वही जवाब दोहराया। इसका मतलब क्या यह निकाला जाये कि बिल्ली की जेर से सम्बन्धित विश्वास और अन्ध-विश्वास विश्वव्यापी है?

उत्तर भारत विशेषकर मथुरा से होकर मुझ तक पहुँचने वाले बहुत से विदेशी इसे लेकर आते है। मुझे याद आता है कि नेपाल मे तंत्र-मंत्र की जानकारी एकत्र करने वाला एक यूरोपीय पर्यटक इसे लिये मुझ तक आ पहुँचा था। वह इसके बारे मे विस्तार से जानना

चाहता था। नेपाल मे उसे किसी ने इस जेर की बदले हजारो रुपये ले लिये थे और यह बता दिया था कि इसे पास रखने से आस-पास बैठी किसी भी महिला को वशीभूत किया जा सकता है। वशीकरण का यह औजार पाकर वह फूला नही समा रहा था। उसने पहले हवाई जहाज मे आजमाया और फिर भारतीय ट्रेनो मे पर इसका जादू नही चला। ट्रेन मे तो वह पिटते-पिटते बचा। अपनी दुख भरी कहानी बताते हुये मुझसे कहा कि जब इसे खरीदा था तब तक इसका असर था। बेचने वाले ने इसे अपनी दुकान मे जैसे ही चान्दी के डब्बे से निकाला वहाँ बैठी महिलाओ मे हलचल होने लगी। जल्दी से उसने जेर को वापस रख दिया। उस पर्यटक की बात सुनकर मुझे बहुत हँसी आयी। किसी बबली बंटी की ठगी का शिकार हो गया होगा वो और दुकान मे बैठी महिलाए उस ठग के दल की ही सदस्याए हो शायद।

थाइलैंड के एक वैज्ञानिक मित्र समय-समय पर वनस्पतियो की पहचान के लिये मुझे सन्देश भेजते रहते है। एक बार उन्होने बिल्ली की जेर के बारे मे भी पूछा था। मैने उनके वैज्ञानिक होकर इस पर यकीन करने पर व्यंग्य किया तो उन्होने इस जेर के बारे मे वहाँ फैली तरह-तरह की बाते बतायी। यह भी बताया कि भारत की ही तरह वहाँ भी इसके मनमाने दाम वसूले जाते है। इसे व्यवसायी दुकान मे रखते है, इस आशा मे कि इससे धन की आवक बढेगी। वशीकरण के लिये भी इसकी माँग है।

एक ऊँचे पहाड के किनारे से गुजरते हुये साथ चल रहे ग्रामीणो ने पहाड की चोटी की ओर इशारा करते हुये बताया कि ऊपर एक प्राचीन मठ है, आप चाहे तो चल सकते है। मैने उनसे कहा कि कोई खास बात हो तो चलेंगे। कोई विशेष वनस्पति या कीट। उन्होने कहा कि वनस्पतियाँ तो मिलेंगी ही पर उस मठ मे बहुत पुरानी एक जेर रखी हुयी है। बिल्ली की जेर। मठ मे बिल्ली की जेर क्यो? मैने पूछा। अरे, आप नही जानते यह शुभ वस्तु है। इसका तांत्रिक महत्व है। आप उस जेर के दर्शन करेंगे तो आपका राहु-केतु कुछ भी बिगाड नही कर पायेंगे। इतनी सारी बाते सुनकर मठ तक जाने का मन बन गया। गाडी नीचे रखी और कुछ देर की चढाई के बाद मठ तक पहुँच गये। वहाँ कोई नही था। लकडी के एक बक्से मे सिन्दूर मे लपटी जेर नुमा कोई चीज रखी हुयी थी। लकडी के बक्से मे क्यो? चाँदी के बक्से मे क्यो नही? ग्रामीणो ने बताया कि पहले चाँदी के बक्से मे रखी थी। किसी ने चोरी कर ली। शायद चोर को चाँदी के बारे मे मालूम था जेर के बारे मे नही। इसलिये उसने जेर को वही फेक दिया था। “मुझे भी जेर दिलवा दो। कैसे इसे एकत्र करते है, यह भी दिखा दो ताकि मै इस पर फिल्म बना सकूँ।“ मैने प्रस्ताव रखा। उन्होने कहा कि यह सब इतना आसान नही है। “इतनी सारी बिल्लियाँ है हमारे

आस-पास और वे बच्चे देती रहती है। फिर जेर की प्राप्ति मे इतनी मुश्किल क्यो?" पर उस समय मुझे इसका जवाब नही मिला।

अम्बिकापुर मे जब मै बेशरम नामक वनस्पति के सहायता से चूहे के नियंत्रण पर शोध कर रहा था तब एक स्थानीय ग्रामीण मेरी मदद के लिये पास के गाँव से आया करता था। मै बेशरम के विभिन्न भागो को पानी मे उबालकर काढा तैयार करता था और फिर उसमे चने भिगोकर पिंजरो मे बन्द चूहो के सामने रख देता था। चूहे उसे खाते ही नही थे। पर जबरदस्ती उन्हे खिलाया जाता था तो उनकी हालात बिगड जाती थी। इस प्रयोग का कोई व्यवहारिक उपयोग नही दिख रहा था। पर गुरुजन बडे उत्साहित थे और इसे बडी शोध उपलब्धि बता रहे थे। पर मुझे पता था कि इसे किसानो को देते वक्त यह बता देना होगा कि चूहो को पकड-पकड कर इसे खिलाना है। ऐसे रख दोगे तो चूहे देखेंगे ही नही। मैने इस मजाक को बैठको मे कहा भी पर प्रबुद्ध वैज्ञानिक गण समझने को तैयार ही नही थे। खैर, इस प्रयोग की असफलता को मेरा सहायक भी समझता था। एक दिन उसने कहा कि हमारे गाँव का बैगा एक जादुई चीज देता है जिसे घर के सामने या उस स्थान मे जहाँ अन्न रखा है, के सामने गाडने पर चूहे नही आते है। मैने उस ग्रामीण सहायक से उस चमत्कारी चीज को ले आने को कहा। दूसरे दिन हम उस चीज को पिंजरे के अन्दर रखकर चमत्कार की आशा मे बैठे थे कि अब चूहो मे धमा-चौकडी मच जायेगी। पर चूहो पर कुछ असर ही नही दिखा। उल्टे कुछ चूहे उसे कुतरकर देखने लगे। बैगा के पास पहुँचे तो उसने जादुई चीज का नाम बताया और मुझे हडकाया कि ऐसे सीधे परीक्षा नही की जाती। वह जादुई चीज बिल्ली की जेर थी। बैगा के कहने पर हमने उन घरो का रुख किया जहाँ उसने इसे गाडा था। बैगा के सामने तो ग्रामीण चुप रहे पर उसके हटते ही बोले कि यह चूहो पर बेअसर है।

मैने अपने पशु चिकित्सक मित्र से बिल्ली की जेर के बारे मे पूछा तो उन्होने खुलासा किया कि आमतौर पर बिल्ली इसे उसी समय खा लेती है। इसके कई कारण है। बहुत से वैज्ञानिक यह मानते है कि जेर मे ऐसे रसायन होते है जो बिल्ली के स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होते है, विशेषकर प्रसव के बाद। यह भी कहा जाता है कि बिल्ली अपने शत्रुओ से बच्चो को बचाने के लिये कोई ऐसा निशान या गन्ध नही छोडना चाहती है जिससे शत्रुओ को थोडी भी भनक लगे। बिल्ली वैसे ही रहस्यमय प्राणी मानी जाती है। जेर मुश्किल से मिलती है। और हर कम मिलने वाली चीजो से अन्ध-विश्वास जल्दी से जुड जाता है। बिल्ली की जेर का एक बहुत बडा बाजार है। आप इंटरनेट मे खोजेंगे तो बिल्ली की जेर को ऊँचे दामो पर बेचती बहुत से देशी-विदेशी वेबसाइट मिल जायेंगी। इन

वेबसाइटो मे बडे-बडे दावे है। धन की आवक से लेकर वशीकरण के दावे मिल जायेंगे। जिस अन्ध-विश्वास के साथ बाजार जुडा होता है वह तेजी से फैलता है और उसे मिटाना इतना आसान नही होता है। चीन के फेंग-शुई को ही देखिये। आज इसके पीछे ऐसी दीवानगी छायी है भारत के धार्मिक स्थानो मे नारियल के बाजू मे लाफिंग बुद्धा की मूर्ति बिकती दिख जायेगी। "ये क्या है" मैने छत्तीसगढ के प्रसिद्ध तीर्थ राजिम के राजीवलोचन मन्दिर के ठीक सामने वाली पूजा सामग्री की दुकान मे रखे लाफिंग बुद्धा को देखकर पूछा। "साहब इसे ले जाओ, कभी गम नही सतायेगा, कभी कुछ बुरा नही होगा, खुशियाँ ही खुशियाँ मिलेंगी।" काश! यह सही होता। यदि यह सही होता तो चीन के करोडो निवासी खुली हवा मे साँस ले रहे होते। उन्हे संगीनो के साये मे नही रहना पडता।

बिल्ली की जेर से जुडे जितने भी दावे किये जाते है वे खोखले है। यह बात मै अपने प्रयोगो और अनुभवो के आधार पर कह सकता हूँ। कुछ के विषय मे तो आपने अभी पढा ही है। पशु चिकित्सक मित्र कहते है कि ज्यादातर मामलो मे बिल्ली की जेर के स्थान पर दूसरी चीजे दे दी जाती है। सिन्दूर मे लपटे होने के कारण इसकी पहचान और भी मुश्किल हो जाती है। वैसे भी खरीददारो ने अपने जीवन मे पहले इसे देखा नही होता है। फिर चतुर तांत्रिक ज्यादा असर के लिये इसे किसी को नही दिखाने की शर्त जोड देते है। अपने पिताजी से जब मै ऐसे अन्ध-विश्वासो की चर्चा करता हूँ और धूर्त तांत्रिको के बारे मे बताता हूँ तो वे यही कहते है कि जब तक इस दुनिया मे मूर्ख जिंदा है तब तक ऐसे धूर्त कभी भूखे नही मर सकते। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

नमस्कार,

आपसे एक सलाह लेनी है। क्या सचमुच जेड गुडी के मामले मे चिकित्सको ने अपने हाथ खडे कर दिये है? यदि इन परिस्थितियो मे मै अपने वनस्पति से सम्बन्धित ज्ञान से ब्रिटेन के चिकित्सको के साथ मिलकर एक आखिरी कोशिश करना चाहूँ तो कैसे इस दिशा मे बढा जा सकता है? क्या ब्रिटेन का कानून इस अवस्था मे बाहरी व्यक्ति से

चिकित्सा की छूट देता है? मै बिना कोई शुल्क लिये यह प्रयास करना चाहूंगा यदि अवसर दिया गया तो। कैंसर मे हर पल कीमती है। मैने आपको लिखने का निर्णय करने मे ही एक दिन गँवा दिया। मै इस दिशा मे प्रयास करना चाहता हूँ। मेरे कार्यो के बारे मे तो आपको जानकारी है ही। मै कृषि वैज्ञानिक हूँ , चिकित्सक नही। मै इन दिनो इस रपट पर काम कर रहा हूँ।

Oudhia, P. (1994-2012). Let's discuss herb and insect based over 35,000 formulations used in treatment of different types of cancer, one by one with its merits and demerits. CGBD (Offline Database on Chhattisgarh Biodiversity), Raipur, India.

आपके मार्गदर्शन की प्रतीक्षा मे।

पंकज अवधिया

पिछले दिनो मैने अपने एक पत्रकार मित्र को यह सन्देश भेजा इस उम्मीद मे कि शायद उनके माध्यम से जेड गुडी से सम्पर्क साधा जा सके। जेड गुडी ब्रिटेन की चर्चित महिला है जिन्हे सरवाइकल कैंसर है और ब्रिटेन के चिकित्सको के अनुसार वे जीवन की अंतिम अवस्था मे है। अर्थात उनके बचने की कोई उम्मीद नही है। जेड ने अपनी मौत को सार्वजनिक कर दिया है। उनके मौत की ओर बढते कदम को टीवी पर दिखाया जा रहा है। इसके औचित्य पर दुनिया भर मे वाद-विवाद हो रहे है। कोई जेड के पक्ष मे है तो कोई विपक्ष मे। मुझे “बचने की अब कोई उम्मीद नही है”-ऐसा सुनने की आदत नही है। यह भारतीय पारम्परिक चिकित्सको के साथ लम्बा वक्त गुजारने के कारण हुआ है। वे जब तक जीवन शेष है, उम्मीद नही छोडते। अंतिम पल तक वे अपने ज्ञान के उपयोग से जीवन बचाने मे जुटे रहते है। बहुत बार तो वे काल के गाल से रोगियो को वापस ले आते है। यही कारण है कि जब आधुनिक चिकित्सक रोगियो को “अब कोई उम्मीद नही है”- ऐसा कह देते है तो वे सीधे पारम्परिक चिकित्सको के पास पहुँच जाते है। पारम्परिक चिकित्सक उन्हे निराश नही करते है। वे जी-जान लगाकर जुट जाते है।

जेड गुडी के बच पाने की उम्मीद आधुनिक चिकित्सको ने छोड दी हो पर मेरा अनुभव उनकी मौत का तमाशा देखने की बजाय उनकी शेष जीवनी शक्ति की सहायता से उनके जीवन को बचाने की तरफदारी करता है। मै चिकित्सक नही हूँ पर मुझे लगता है कि बरसो का अनुभव जेड के कुछ काम आ सकता है। पत्रकार मित्र ने तुरन्त जवाब दिया कि मै कोशिश करुंगा पर यह जरुरी नही है कि जेड के रिश्तेदार और मित्र इस प्रस्ताव को मान ही जाये। मैने कुछ और पत्रकारो को इस बारे मे लिखा है। ब्रिटेन के एक

पत्रकार पूछते है कि आपकी शर्ते क्या है? मैने उन्हे लिखा है"मैने पहले ही कह दिया है कि फीस मै नही लूंगा। आने-जाने की व्यवस्था हो जाये तो ही आना हो पायेगा। सबसे अच्छा तो यही होगा कि जेड भारत आ जाये ताकि पारम्परिक चिकित्सको से सीधे मिल ले। पर रोग की बढी हुयी अवस्था मे यह सम्भव नही दिखता है। मै यह चाहता हूँ कि चिकित्सा मे उपयोग की गयी सामग्रियो के बारे मे जानकारी गोपनीय रखी जाये। मै जेड की चिकित्सा के लिये वहाँ आऊँगा। कैसर की चिकित्सा के अमूल्य सूत्र आधुनिक चिकित्सको को सीखाने नही।" पत्रकार मित्र ने कहा कि यह सम्भव है। मै कोशिश करता हूँ। उन्होने यह भी पूछा है कि क्या आप जडी-बूटियाँ देंगे? मेरा जवाब है कि मै उन्हे रोजमर्रा के भारतीय (पारम्परिक) खाद्य पदार्थ दूंगा और इसी से उन्हे मौत के मुँह से वापस लाने की कोशिश करुंगा। जडी-बूटी के बारे मे मैने लिखा तो बहुत है पर इसे पारम्परिक चिकित्सक ही उपयोग करे तो ठीक रहेगा। पत्रकार मित्रो के सन्देशो की मै प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मीडीया मे तो बस मौत की चर्चा है। जीवन पर कोई भी चर्चा के लिये तैयार नही है।

क्या सचमुच कैंसर की ऐसी बढी हुयी अवस्था मे साधारण भारतीय खाद्य पदार्थ उपयोगी साबित होंगे? आपका प्रश्न सही है। मेरा उत्तर सकारात्मक है। कैंसर की भोजन के माध्यम से चिकित्सा सम्भव है। ऐसा मेरा निज अनुभव है। अपनी मधुमेह की रपट मे इन दिनो मै 10,500 से अधिक उन केसो पर लिख रहा हूँ जिनमे रोग की अंतिम अवस्था मे पहुँच चुके रोगियो को साधारण खाद्य पदार्थो और जडी-बूटियो के प्रभाव से लाभ मिला। अभी मै 6160 नम्बर के केस पर लिख रहा हूँ। हर केस मे पाँच हजार पन्नो से अधिक के दस्तावेज है जो कि विस्तार से सब कुछ बताते है। यूँ तो हजारो ऐसे केस है जिन पर इस विस्तार से लिखा जा सकता है पर मैने प्रथम चरण मे 10,500 केसो को चुना है। आप कल्पना कीजिये कि जब यह ज्ञान सही मायने मे आम लोगो के लिये उपयोग होगा तो मधुमेह की विश्व राजधानी कहे जाने वाले भारत से कुछ ही समय मे यह बुरा तमगा हट जायेगा। इसी तरह अलग-अलग प्रकार के कैंसर पर आधारित 35,000 से अधिक नुस्खो के विषय मे लिख रहा हूँ। आपने पहले पढा ही है कि चौदह सालो से यह दस्तावेजीकरण चल रहा है पर आज तक कोई भी भारतीय संस्थान कानूनी दायरे मे इस ज्ञान को जनहित मे जारी करने सामने नही आया। इतने सालो मे तो अनगिनत रोगियो को इससे राहत मिल सकती थी।

कैसर की चिकित्सा का मूल पारम्परिक ज्ञान विलुप्तप्राय हो चुका है। आजकल पारम्परिक चिकित्सक एकल मिश्रण का प्रयोग करते है और रोगी की दशा के अनुसार कम या

अधिक मात्रा का प्रयोग करते है। मूल पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान बहुत विस्तार लिये हुये था। सुबह चार बजे से लेकर रात को रोगी के सोते तक नाना प्रकार की आँतरिक दवाए चलती रहती थी। पारम्परिक चिकित्सक पूरे समय अपने सहायको के साथ सेवा हेतु तत्पर रहते थे। विशेष रुप से औषधीयो का चयन होता था और फिर उन्हे एकत्र किया जाता था। रोगियो के आहार पर विशेष ध्यान दिया जाता था। बहुत बार तो आहार के माध्यम से ही रोगियो को आराम मिल जाता था। जंगली फलो और फूलो की भी विशेष भूमिका होती थी। रोगी के लिये विशेष प्रकार के आवास का प्रबन्ध होता था। रोगी के सोने के बाद भी बाहरी चिकित्सा जारी रहती थी। निश्चित ही यह प्रक्रिया बहुत थकाने वाली और खर्चीली होती थी पर जान की कीमत से कम। फिर जब बडी संख्या मे रोगी आते थे तो सभी व्यवस्था हो जाती थी। जडी-बूटियो का अभाव नही था। पारम्परिक चिकित्सको और रोगियो दोनो मे असीम धैर्य था। आज एकल मिश्रण का प्रयोग होता है। रोगी सुबह आता है और घंटे-दो घंटे मे मिश्रण लेकर वापस चला जाता है हफ्ते भर के लिये। पारम्परिक चिकित्सक शहरी दुकानो से जडी-बूटियाँ ले लेते है जहाँ गुणवत्ता का कोई भरोसा नही रहता। पीढीयो से चले आ रहे ज्ञान पर बात तक करने को कोई तैयार नही दिखता। यह मेरा सौभाग्य है कि मै ऐसे बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सको के साथ महिनो गुजार पाया जिन्होने मूल पारम्परिक ज्ञान के व्यवहारिक पक्ष को देखा है। मैने उन्ही के शब्दो मे जब इस ज्ञान को दस्तावेज के रुप मे बदला तो मुझे उसमे वह सौन्धी सुगन्ध नही मिली जो आपसी विमर्श के दौरान मिलती थी। आज वे पारम्परिक चिकित्सक हमारे बीच नही है। न ही उनके मूल ज्ञान को उपयोग करने वाले। उनका ज्ञान दस्तावेजो मे है और गवाह के रुप मे मै हूँ। मै भी कब तक हूँ, निश्चित नही। यदि यह ज्ञान पुनर्जीवित हुये बिना मेरे साथ चला गया तो यह मानव जगत के लिये अपूरणीय क्षति होगी। मूल पारम्परिक ज्ञान को दस्तावेज का रुप देने की बजाय कई बार मुझे लगता है कि मै दूर अंजान शहर मे चला जाऊँ और बिन पैसे लिये इस ज्ञान से मानव-कल्याण मे जुट जाऊँ। जीवन बचाना ज्यादा पुण्य़ का काम है या जीवन बचाने के ज्ञान का दस्तावेजीकरण- यह मै तय नही कर पा रहा हूँ।

जेड गुडी के मामले मे हर पल कीमती है। मौत का अन्ध-विश्वास जीवन के दृढ विश्वास के सामने बौना साबित हो सकता है। इस दृढ विश्वास की सबसे ज्यादा जरुरत स्वयम जेड को है। यह दृढ विश्वास ही औषधीयो के माध्यम से शरीर को कैसर से लडने के लिये तैयार करेगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

दलदली क्षेत्रो मे जब भी जडी-बूटियो के एकत्रण के लिये जाने की योजना बनती है तो हम एक दल के रुप मे जाना पसन्द करते है। ऐसा दल जिसमे कम से कम तीन मजबूत कद-काठी के लोग हो, कम से कम दो स्थानीय जानकार, और साथ मे एक सर्प विशेषज्ञ हो। “दलदल” शब्द सुनते ही सनसनी फैल जाती है पर जब सघन वनो मे दलदली इलाको मे घूमना होता है तो एक-एक कदम सम्भल कर उठाना होता है। यह डरावना अनुभव होता है पर हर बार यह जोखिम कुछ न कुछ उपहार दे जाता है दुर्लभ जडी-बूटियो के रुप मे।

देश के अलग-अलग भागो के लिये अलग-अलग दल मैने तैयार किये है। दलदली इलाको के आस-पास के गाँवो को ही चुना जाता है और फिर वहाँ रात रुककर साथ चलने वालो को तैयार किया जाता है। मै छत्तीसगढ के दलदली क्षेत्रो मे अक्सर जाते रहता हूँ। यूँ तो पारम्परिक चिकित्सक ही दल के गठन मे मुख्य भूमिका निभाते है पर मुझे याद आता है कि एक गाँव मे एक बुजुर्ग व्यक्ति हर बार हमारे साथ चलने को आतुर दिखता। मुझसे वह बार-बार साथ ले चलने की बात करता। पर पारम्परिक चिकित्सको को वह फूटी आँखो नही सुहाता था। उस बुजुर्ग ने बिना पारिश्रमिक साथ चलने की गुहार भी की पर किसी ने उसकी नही सुनी। उसे जोड के असहनीय दर्द से परेशानी थी। आधुनिक चिकित्सालय दर्द शामको की खुराक देते थे। दवाओ का असर खत्म होते ही फिर दर्द से उसकी हालत खस्ता हो जाती थी। हमारे साथ दलदली क्षेत्रो मे जाकर वह अपनी जानकारी के अनुसार जडी-बूटी लाना चाहता था ताकि उसकी समस्या जड से समाप्त हो जाये। अकेले जाने से वह डरता था कि कही दलदल उसे ही अपनी सेवा के लिये न रोक ले। हम उसकी बतायी जडी-बूटी लाने को तैयार थे पर वह नाम बताने के लिये तैयार नही था। समस्या के समाधान के लिये मैने खुलकर पारम्परिक चिकित्सक और दल के दूसरे लोगो से बात की। सबने दोटूक कह दिया कि आप उसे नही जानते। यदि वो गया तो हममे से कोई वापस नही लौटेगा। वह “मसनहा” है।

मुझे याद आता है एक काला सा बुजुर्ग व्यक्ति अपने गाँव मे जिसे खेत-खलिहानो से दूर रहने की सख्त हिदायत थी। वह गल्ती से भी बस्ती की तरफ आता तो लोग दरवाजे बन्द कर लेते थे। गाँव के पंच उसे और उसके परिवार को सजा दिलवाने मे जरा भी देर नही करते थे। बालमन को ये बाते समझ नही आती थी। कुछ बडा हुआ तो गाँव के बच्चो ने आँखे चौडी कर बताया कि वह “मसनहा” है। वह जिस खेत मे जाता है वह बंजर हो जाता है। खडी फसल बरबाद हो जाती है। घर उजड जाते है। मेरा मन इसे मानने को तैयार नही होता था। किसने इसे “मसनहा” घोषित किया? मैने पूछा। “गाँव के बैगा ने।“ बच्चो ने एक स्वर मे कहा। मै बडे ही कौतूहल से उस बुजुर्ग आदमी को देखा करता था। घर से हिदायत थी कि बच्चे उससे दूर ही रहे। वह आम आदमी की तरह दिखता था। उसके चेहरे मे कोई शिकायत का भाव नही दिखता था। उसने शायद इसे नियति मान लिया था। बचपन मे उसके मन मे शायद विद्रोह जागा हो पर सम्भवत: इस लडाई मे स्वयम को अकेला पाकर सीने की आग पर पानी पड गया हो। अब बैगा की बात कौन टाले? वह बुजुर्ग अपने खेतो मे जा सकता था। खेती कर सकता था। उसका तथाकथित बुरा प्रभाव उसकी अपनी खेती पर नही पडता था। भला यह कौन सी बात हुयी? मन सोचता था। जब उसके खेत की फसल को कुछ नही हो रहा है तो भला दूसरे के खेतो को वह क्या नुकसान पहुँचा पायेगा? समय बीतता गया पर “मसनहा” शब्द और उसका खौफ दिमाग के किसी हिस्से मे पडा रहा।

पिछले सप्ताह ही मै दुर्ग क्षेत्र के एक बुजुर्ग से जलवायु परिवर्तन की बाते कर रहा था। एक घंटे से अधिक समय तक वह व्यक्ति कैमरे के सामने भयमुक्त होकर अपनी बाते कहता रहा। टोनही से लेकर चटिया-मटिया तक के बारे मे खुलकर चर्चा हुयी। बात “मसनहा” तक भी पहुँची। उन्होने कहा कि जब से बिजली आयी है टोनही तो गाँव से गायब हो गयी पर “मसनहा” अभी भी है। “क्या आप उनसे भेंट करवा सकते है?” वे बोले, बिल्कुल, अभी करवा देता हूँ। थोडी देर मे एक अधेड व्यक्ति मेरे सामने खडा था। बिल्कुल सामान्य-सा व्यक्ति पर गाँव वालो की माने तो खेतो को बंजर करने की जादुई शक्ति से युक्त व्यक्ति। इस अन्ध-विश्वास को आज के युग मे उसी बेशरमी के साथ खडा देखकर मै चकित रह गया।

आपने तीन तरह के व्यक्तियो के बारे मे ऊपर पढा जिन्हे “मसनहा” कह दिया गया था। ये तीनो अपनी जगह एकदम अकेले और बेबस है। पूरा समाज उनके विरुद्ध खडा है। इसमे पढे-लिखे लोग भी है। वे जानते है कि यह महज अन्धविश्वास है पर फिर भी समाज का भय उन्हे ऐसा बातो से किनारा करने को मजबूर किये हुये है। मै अपने

जीवन मे ऐसे दसो व्यक्तियो से मिला हूँ। छत्तीसगढ मे इन दिनो विदेशो से आकर अन्ध-विश्वास पर शोध करने वालो की होड लगी है। अन्ध-विश्वास पर विश्वविद्यालयीन स्तर पर शोध-ग्रंथ तैयार किये जा रहे है। फिल्मे बनायी जा रही है। पर इन जीवित “मसनहा” की सुध लेने वाला कोई नही है। यह लेखमाला ही है जिसके माध्यम से पहली बार हमारे समाज मे व्याप्त कोढ के समान इस अन्ध-विश्वास की बात सामने आ रही है।

अब फिर दलदली क्षेत्र के उस बुजुर्ग पर लौटे। दलदली क्षेत्र के उस बुजुर्ग को साथ ले चलने कोई तैयार नही हुआ। जब मैने अलग से दूसरे गाँव के लोगो की सहायता से उसकी मुराद पूरी करनी चाही तो दल के सदस्यो ने साफ कह दिया कि “मसनहा” से सम्बन्ध रखोगे तो आजीवन हमसे दूर रहना होगा। आपको हम पानी तक नही पिला पायेंगे। ये तेवर मुझे रोकते रहे पर ऐसा लम्बे समय तक नही हो पाया। मैने बिना दल को बताये उस बुजुर्ग को शहर बुलवाया और फिर दूसरे रास्ते से एक अन्य दल की सहायता से उसे जंगल ले गया। उस बुजुर्ग के पास जानकारियो का अम्बार था। उसे जंगल के चप्पे-चप्पे का पता था। पहले उसने अपने काम की जडी-बूटी एकत्र की और फिर हमे दुर्लभ वनस्पतियो जैसे तेलिया कन्द, लक्षमण कन्द, काला अंकोल, जगमंडल कान्दा और ऐसी ही जाने कितनी जडी-बूटियो के विषय मे बताया। उसने कहा कि वह इन वनस्पतियो के माध्यम से अपने क्षेत्र को रोगमुक्त कर सकता है पर उससे जुडी बाते उसे ऐसा करने से रोक देती है। उसकी दी वनस्पति को विष-तुल्य माना जाता है।

बचपन मे जिस व्यक्ति को “मसनहा” बताया गया था वह अब दुनिया मे नही है। वह बेवजह ही आजीवन अपमानित होता रहा। मेरी इच्छा थी कि बडे होकर उसे समाज की मुख्य धारा मे लाने का प्रयास करुँ पर यह सम्भव नही हो पाया। तीसरा व्यक्ति जो कि कुछ समय पूर्व ही मिला, अब मेरे एक मित्र के खेत की देखभाल कर रहा है। मित्र ने सब कुछ जानकर भी उसे अपने घर मे रखा है। हम चाहते है कि क्षेत्र के लोग प्रत्यक्ष रुप से देखे कि “मसनहा” के खेत मे जाने से फसलो का कोई बिगाड नही होता। न ही किसी का घर उजडता है। मेरा उद्देश्य नयी पीढी को यह सब दिखाना है ताकि आने वाले समय मे जब तांत्रिक उन्हे भ्रमित करने की कोशिश करे तो वे अपनी आवाज बुलन्द कर सके और निर्दोष इस अन्ध-विश्वास के शिकार न बने सके।

जिस गाँव मे यह सब हो रहा है वहाँ के बैगा को यह सब जँच नही रहा है। कुछ दिनो पहले वह मेरी गाडी के पास आया और फिर अन्दर झाँक कर आँखे लाल कर मुझसे कहा कि “मसनहा” का साथ छोड दे, अभी भी समय है, नही तो जिन्दगी भर कुँवारा ही

रहेगा। बैगा की इस बात को झुठलाने की इच्छा मन मे जाग रही है पर देखिये कब यह सम्भव हो पाता है। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“व्यापार, विवाह या किसी भी कार्य करने मे बार-बार असफलता मिल रही हो यह टोटका करे- सरसो के तेल मे सिके गेहूँ के आटे और पुराने गुड से तैयार सात पूवे, सात मदार (आक) के पुष्प, सिन्दूर, आटे से तैयार सरसो के तेल का रुई की बत्ती से जलता दीपक, पत्तल या अरंडी के पत्ते पर रखकर शनिवार की रात्रि मे किसी चौराहे मे रखे और कहे-हे मेरे दुर्भाग्य, तुझे यही छोडे जा रहा हूँ। कृपा करके मेरे पीछे न आना। सामान रखकर पीछे मुडकर न देखे।“ जीवन आसान करने का दावा करने वाले ऐसे बहुत से टोटको के बारे मे बताता एक लेख छत्तीसगढ की राजधानी मे छपा। और शाम होते-होते चौराहो पर ये सामग्रियाँ दिखायी देने लगी।

दो काले घोडे तेजी से दौडते जा रहे थे। कुछ दूर जाने पर वे रुक जाते और फिर दौडने लगते। उनपर सवार युवक झुककर कुछ उठाते और फिर घोडो पर सवार होकर आगे बढ जाते। इन दो घोडो के पीछे भागती महंगी कारे और उसमे सवार लोग, सबका ध्यान खीच रहे थे। पहले तो लगा कि ये शादी वाले घोडे है फिर उनकी हालत देखकर लगा कि पुलिस वालो के घोडे है पर हमारे ड्रायवर ने बताया कि शनि देवता का दोष दूर करने इन घोडो का प्रयोग हो रहा है। सवार घोडो को ढीली नाल पहना देते है और फिर उन्हे दौडाते है। जैसे ही नाल गिरती है सवार उसे एकत्र कर पीछे गाडियो मे आ रहे लोगो को मुँहमाँगी कीमत पर बेच देते है। फिर नयी नाल पहनायी जाती है। चार सौ से लेकर बीस हजार कुछ भी कीमत हो सकती है इस नाल की। कारो मे सवार लोग इस नाल से अंगूठी बनवाते है और फिर यह मानने लगते है कि बुरे भाग्य से उनका पीछा छूट गया।

जिधर देखो उधर पानी के लिये त्राही-त्राही मची है। फरवरी से ही नलकूप सूख गये है। तालाबो मे पानी नही बचा है। हर बार जून मे यह नौबत आती थी। भूजल विज्ञानी सालो से इस संकट से आगाह कर रहे थे। पर किसी ने उनकी नही सुनी। अब वे लोगो से

नलकूप न खुदवाने की गुहार कर रहे है। नीचे पानी नही है इसलिये नलकूप खोदने का मतलब पैसे की बरबादी। पर एक बार फिर भूजल विज्ञानियो की बात नजर अन्दाज की जा रही है। अचानक ही "वाटर डिवाइनर" कुकुरमुत्तो की तरह उग आये है। हाथ मे लकडी की डंडियाँ लिये वे घूमते है और दावा करते है कि जहाँ भी पानी होता है उनकी डंडियाँ अपने आप मुड जाती है। आम लोग बिना आधार और प्रश्न के इस पर विश्वास करते है। पानी की तरह पैसा तो बह जाता है पर पानी नही मिलता।

"अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग" इस लेखमाला की सौंवी कडी लिखते समय मै ये तीन उदाहरण आपके सामने रख रहा हूँ। सौ लेख लिख पाना बडा मुश्किल काम है। मै इस लम्बे सफर मे लगातार यह सोच कर अपनी पीठ ठोकता रहा कि यह लेखमाला आम लोगो की आँखे खोलेगी और लोग अन्ध-विश्वास से दूर हटेंगे पर जैसे-जैसे मै विषय की गहरायी मे जाता गया मुझे लगा कि मेरा यह प्रयास समाज मे व्याप्त अन्ध-विश्वास के सामने कुछ भी नही है। शायद मै जीवन भर भी लिखता रहूँ तो भी इस अन्ध-विश्वास के राक्षस को मिटा नही पाऊँगा। आपने पहला उदाहरण देखा। अखबार समाज को कुछ देने के लिये होते है। समाज के बिगाड के लिये नही। प्रतिष्ठित अखबारो मे अन्ध-विश्वास को बढावा देने वाले टोटको को आकर्षक साज-सज्जा के साथ प्रकाशित करना किसी अपराध से कम नही है। अन्ध-विश्वास फैलाना कानूनन जुर्म है। पर फिर भी अखबारो द्वारा यह काम चन्द पैसो के लालच मे बेशरमी से चल रहा है। गाँव के लोग एक बार ऐसे टोटको पर हँस दे पर शहर के लोगो को जाने क्या हो गया है। चौराहो पर पुवे फेकने और दीये जलाने से कैसे उनके दिन फिर जायेंगे, ये समझे और जाने बिना लकीर के फकीर की तरह इन टोटको को अपनाने मे लगे है।

घोडे की नाल के लिये मर-मिटने वाले भी शहरी है। उनका अन्ध-विश्वास देखते ही बनता है। मैने बहुत से लोगो पर व्यंग्य किया इस आशा मे कि शायद वे इन सब से दूर हो जाये पर वे उनकी अन्ध-भक्ति के आगे सारे प्रयास विफल हो गये। बहुत से घरो मे पैसो का अभाव है, बच्चे उच्च शिक्षा के लिये धन चाहते है पर उनके पालक लोहे के मामूली टुकडे के लिये वर्षो से जमा की गयी पूँजी को लुटा रहे है। क्यो हमारा शहरी समाज इतना भयभीत है? क्या सुख-सुविधाओ मे बढोतरी जीवन को असुरक्षित बना रही है? वे तो समृद्ध हो रहे है पर उनका मन विपन्न हो रहा है। आज का शहरी समाज गाँवो मे मजे से जीवन जी रहे ग्रामीणो को शहरी बनाने आमदा है। क्या उसे गाँवो का सुख चुभ रहा है? यह जानते हुये भी कि गाँव का जीवन शहर के जीवन से लाख गुना बेहतर है क्यो शहरी समाज सच से पर्दा किये हुये है?

पिछले दस सालो मे मैने दसो डण्डी घुमाकर पानी बताने वालो के साथ समय गुजारा है। पहले पहल उनकी अदाओ ने मुझे बडा प्रभावित किया पर जब मैने उनके हुनर को पास से जानना चाहा तो सभी नम्बर एक के धूर्त नजर आये। भूजल विज्ञानी का बेटा होने के कारण मैने पिताजी को भूमिगत जल का स्त्रोत बताने के लिये डेढ-दो दिनो तक पसीना बहाते देखा है। वे पूरे इलाके की छानबीन करते है और फिर क्षेत्र के नक्शे का बारीकी से अध्ययन करते है। उसके बाद पाइंट बता पाते है। खुदाई के समय वहाँ उपस्थित रहते है और पत्थरो की जाँच करके साफ बताते है कि कितनी गहराई मे पानी मिलेगा। पर आम लोगो को जाने क्या हो गया है? उन्हे वैज्ञानिक विधियो पर विश्वास नही होता है। भूजल विज्ञानियो की मामूली फीस देने मे वे आनाकानी करते है और डंडी घुमाने वालो की बातो मे आकर मुँहमाँगी कीमत दे देते है। ज्यादातर मामलो मे डंडी घुमाने वाले सामान्य ज्ञान के आधार पर स्थान विशेष मे पहुँचकर डंडी घुमा देते है और कहते है कि यह अपने आप हुआ है। पैसे लेते है और रफूचक्कर हो जाते है। कुछ मामलो मे उनका तुक्का चल जाता है। उसी को आधार बनाकर वे खुली लूट जारी रखते है। आम लोगो के इस अन्ध-विश्वास को समझ पाना मुश्किल है। वे सभी शिक्षित है तो क्या हमारी शिक्षा वैज्ञानिक विधियो के प्रति अविश्वास पैदा कर रही है?

इस लेखमाला के सौवे पडाव को अन्तिम पडाव बनाने का मेरा बिल्कुल भी मन नही है। यह लेखमाला चलती रहेगी और अन्ध-विश्वासो को वैज्ञानिक तरीको से खत्म करने की मुहिम जारी रहेगी। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“क्या किसी विशेष बीमारी के मरीज बढ रहे है आजकल?” मै अक्सर अपने वानस्पतिक सर्वेक्षणो के दौरान पारम्परिक चिकित्सको से यह प्रश्न पूछ लेता हूँ। कभी-कभी चौकाने वाले जवाब मिलते है। इन चौकाने वाले जवाबो को मै अपने डेटाबेस मे दर्ज कर लेता हूँ। साथ ही इसमे आधुनिक वैज्ञानिक शोधो को भी शामिल कर लेता हूँ। इस बार छत्तीसगढ मे मैदानी भागो के पारम्परिक चिकित्सको ने बताया कि बडे शहरो से यकृत (लीवर) की

खराबी वाले बहुत से मरीज आ रहे है। ये मरीज सभी उम्र के है। जब हम उनसे खान-पान के बारे मे पूछते है तो सभी मरीजो के एक चीज समान होती है। बहुत से मरीजो ने हमे वह चीज लाकर भी दिखायी पर हम समझ नही पाये। आप ही बताइये, ये क्या चीज है? इसके बारे मे शहरो मे अन्ध-विश्वास है कि इसे पीने से सारे रोग मिट जाते है। किसी तरह की बीमारी नही होती। इसके लिये लोग पानी की तरह पैसे बहाते है और फिर लीवर की बीमारी के साथ हमारे पास आ जाते है। पारम्परिक चिकित्सको की बात सुनकर मैने वह चीज देखी तो चौक पडा। यह मेरे लिये नयी नही थी। मै पहले भी खुल्लमखुल्ला इसके विषय मे लिखकर असंख्य लोगो को इसके चंगुल मे फँसने से रोक चुका था पर इससे लीवर को हो रहे नुकसान की बात मेरे लिये नयी थी। मैने पारम्परिक चिकित्सको की बाते दर्ज की और इसकी वैज्ञानिक पुष्टि के लिये लौट आया।

गूगल स्कालर पर ज्यो ही मैने इसका नाम लिखा, दुनिया भर मे इस पर हुये शोध सामने आ गये है। बहुत से शीर्ष शोध-पत्रो मे इसे “हिपेटोटाक्सिक” बताया गया था। इन शोध-पत्रो मे विदेशो मे हुये कई मामलो को बतौर सबूत पेश किया गया था। बताया गया था कि इसका प्रयोग लीवर के लिये नुकसानदायक है। भारत मे इस तरह के मामलो पर शोध- पत्र नही प्रकाशित हुये है। किसे फुर्सत है इन विषयो पर शोध करने की? आज भारत मे अनगिनत लोग इस चीज का प्रयोग कर रहे है। यदि इससे लीवर को नुकसान हो रहा है तो यह जनस्वास्थ्य से खिलवाड है। हमारे देश मे ऐसी निष्पक्ष संस्था का नितांत अभाव है जो इस चीज का इस्तमाल कर रहे लोगो की जाँच करे और पारम्परिक चिकित्सको से मिलकर सत्य जनता के सामने लाये। इस चीज की मार्केटिंग कर रही कम्पनियो ने समाज के प्रभावशाली लोगो को मुँहमाँगी कीमत पर खरीद रखा है। इसमे भारतीय विश्वविद्यालयो के भूतपूर्व कुलपति से लेकर जाने-माने चिकित्सक है। जब भी सच सतह पर आने के लिये हाथ-पैर मारता है, ये शिक्षाविद और चिकित्सक बडी आसानी से सच का गला घोट देते है। मैने पहले भी इस पर लिखा है, जैसा कि आप जानते है। इससे इस चीज के बाजार पर असर पड रहा है। इसकी पुष्टि आये दिन मिलने वाले इस तरह के सन्देशो से होती है।

Mr.Pankaj. goodmorning.
Do you have full knowledge about Noni? Firstly use it then write down any blogs.
becacuse noni is will going on first priority of every person in over the world.

Nobody can stop it. this is the life rush.
Wishing you best of luck

N.P.

जब सन्देश भेजने वालो को यकीन है कि कोई इसे नही रोक सकता तो भला मेरे लेखो की परवाह क्यो कर रहे है? सीधी सी बात है हिन्दी ब्लाग न केवल भारतीय जनमानस तक पहुँच रहे है बल्कि उन्हे सचेत कर रहे है। जो काम इस देश की मीडिया के बूते से बाहर है, वह काम हिन्दी ब्लाग के माध्यम से हो रहा है।

इसमे कोई दो राय नही कि नोनी के अपने लाभ होंगे पर किसी भी ऐसी चीज को कुशल चिकित्सको के मार्गदर्शन मे दिया जाना चाहिये। भारत मे नोनी को सभी रोगो की दवा बताया जा रहा है- यह सरासर गलत है। ऐसे गलत प्रचार पर अविलम्ब अंकुश लगना चाहिये। आप नोनी पीने वालो के बीच जायेंगे तो आपको साफ दिखेगा कि कैसे मनमाने ढंग से मात्रा का ध्यान रखे बगैर इसे लिया जा रहा है। इसे बेचने वाले नेटवर्क मार्केटिंग से जुडे लोग अधिक मात्रा के सेवन की सलाह देते है ताकि जल्दी से लाभ हो। ऐसा करने से उत्पाद जल्दी खत्म होता है और उन्हे सीधा फायदा होता है। कुछ वर्षो पहले लिखे लेख मे मैने साफ लिखा था कि कैसे सिकल सेल एनीमिया से प्रभावित किसान अपनी जमीन गिरवी रखकर नोनी पीने मजबूर है। उन्हे बताया जा रहा है कि इससे यह महारोग ठीक हो जायेगा जबकि नोनी से इस महारोग की चिकित्सा वैज्ञानिक तौर पर प्रमाणित नही है। ऐसी घटनाए खून खौला देती है। यदि यह कहा जाये कि इस देश मे अपने लोग जितनी लूट-खसोट कर रहे है उतने विदेशी नही कर रहे है, तो कोई अतिश्योक्ति नही होगी।

नोनी के अन्ध-विश्वास के साथ बाजार जुडा हुआ है। इसलिये जड से यह शायद ही समाप्त हो। यदि कुछ लोग ही मेरे लेखो पर विचार करके सही निर्णय ले ले मेरा लेखन सार्थक हो जायेगा। इससे उनके पैसे भी बचेंगे और स्वास्थ्य भी। नोनी कैसे भारतीय जनमानस को प्रभावित जर रही है- इस पर मै समय-समय पर लिखता रहूँगा।

सम्बन्धित लेख

नोनी, कृषि अमृत और प्रलोभन भरे फोन

- पंकज अवधिया

अरे, अब तो तौबा कर लीजिये नोनी से

- पंकज अवधिया

(क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“मेरे सिर के नये बालो का रंग काला है। यह घोर आश्चर्य का विषय है। मै समझ नही पा रहा हूँ यह कैसे हुआ? पारिवारिक मित्र और रिश्तेदार बडे बेसब्र हो रहे है, राज जानने के लिये। आपने ने जैसा जीवन जीने के लिये कहा था, मै वैसा ही जी रहा हूँ। जो खाने को कहा, वो खा रहा हूँ। पर मेरी समझ मे नही आ रहा है कि किस चीज से बाल काले हो रहे है?” इतना बेसब्र सन्देश हाल ही मे मुझे मिला। तीस वर्षीय युवक को मैने कुछ समय पूर्व ही मैने नियमित जीवन के गुर सीखाये थे। यह युवक दसो रोगो से ग्रस्त था। रोगो से ज्यादा वह इनकी चिकित्सा के लिये उपयोग की जा रही दवाईयो के सेवन से परेशान था। उसके बाल झड रहे थे। दांत भी तकलीफ पहुँचा रहे थे। खाना ठीक से पच नही रहा था। फिर नीन्द भी नही आती थी। दाँत की दवा लेता तो सिर की दवा लेने मे दिक्कत होती और सिर की दवा लेता तो दूसरी दवाओ मे दिक्कत होती थी। इंटरनेट पर मेरे लेखो को पढने के बाद दिव्य जडी-बूटी की खोज मे मुझ तक आ पहुँचा। उसे लगा कि मै एक नाम बताऊँगा और वह झट से वह वनस्पति ले आयेगा। एक खुराक लेते ही उसकी सारी तकलीफे दूर हो जायेंगी। पर मुझसे बात करने के बाद वह निराश दिखा।

मैने उससे कहा कि दिन भर क्या-क्या खाते हो? यह लिखकर दे दो, मै उसमे कुछ छोटी-छोटी चीजे डालकर उसे समृद्ध कर दूंगा। उसने ऐसा ही किया। मुझे डर था कि वह शायद ही मेरे सुझावो को पूरी लग्न से अपनाये। पर उसने मुझे निराश नही किया। कुछ ही समय बाद यह सन्देश मिला। नये बालो के काले निकलने की बात तो उसने प्रमुखता से लिखी पर दूसरे लाभो के विषय मे भी बताया। सफेद बालो का काला होना किसी चमत्कार से कम नही। पर सच माने तो मैने उसे इसके लिये कुछ विशेष नही दिया। मैने तो साधारण से उपाय जोडे जिससे पूरे शरीर पर प्रभाव पडे। जब शरीर ठीक रहेगा

तो बहुत सारी समस्याए अपने आप सुलझ जायेंगी और नयी समस्याए नही आयेंगी। यह सीधी सी बात है। पर युवक और उसके मित्र मेरे द्वारा बतायी दिनचर्या से ही कुछ चमत्कारिक खोजने के चक्कर मे दिखायी पडे।

मैने अब तक हजारो लोगो को ऐसी दिनचर्याए सुझायी है। बहुतो को लाभ हुआ। कुछ ऐसे भी थे जिन्होने इसे नही अपनाया। हर व्यक्ति के लिये अलग सुझाव मै देता हूँ भले ही इसमे समय और मेहनत लगे। एक तरह की दिनचर्या सभी के लिये उपयोगी साबित नही होती है। रोग विशेष से लडने की बजाय शरीर को स्वस्थ्य बनाने की ओर ध्यान देने की तरह ही हमारी धरती से जुडा मामला है। कभी हम पढते है कि गौरैया खत्म हो रही है, कभी पढते है कि गिद्धो का अस्तित्व संकट मे है। हाल ही मे एक संस्था का सन्देश आया कि हम गिद्धो को बचाने के लिये मुहिम चला रहे है, आप सहयोग करे। मैने उन्हे जानकारी के लिये धन्यवाद दिया और उनसे अनुरोध किया कि समस्या विशेष या प्राणी विशेष की बजाय पूरी धरती के लिये समंवित प्रयास हो। जब धरती अपने मूल स्वरुप मे रहेगी तो समस्त जीव अपने-आप फलेंगे और फूलेंगे। दलो मे बँटकर काम करने की बजाय धरती माँ के लिये काम कर रहे सभी लोगो को एक मंच पर आना होगा।

पिछले सप्ताह मै जब वानस्पतिक सर्वेक्षण के लिये निकला तो स्कूली बच्चो को प्रेम से चार (चिरौंजी) के फलो का खाता देखकर खुश हो गया। बच्चे बडे चाव से इसे खा रहे थे। हमारी गाडी पहाडी पर चढने लगी तो बहुत से बच्चे चार के पेडो पर चढे मिले। ऐसा बचपन बहुत कम ही जी पाते है। चार के फल वैसे तो स्वाद के लिये खाये जाते है पर पारम्परिक चिकित्सक बताते है कि इनका सेवन शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढा देता है जिससे लम्बे समय तक किसी रोग का आक्रमण नही होता है। इन दिनो परीक्षा का मौसम है। एक ओर शहर के बच्चे स्मृति बढाने वाली दवाए गटक-गटक कर बेहाल है वही गाँव के बच्चे चार के फलो का आनन्द ले रहे है। परीक्षा के लिये जाते समय भी और वापस आते समय भी। वे कडी दोपहरी मे पैदल चल रहे है और चार खा रहे है। शहरी बच्चो की स्मृति कितनी बढ रही है, यह तो भगवान ही जाने पर यदि कुछ पल के लिये भी वे देहाती माहौल मे चले जाये तो धूप को शायद ही सहन कर पाये। जंगली क्षेत्रो के बच्चे अब भी जंगली फलो से जुडे है इसलिये रोगो से दूर है।

छत्तीसगढ के मैदानी भागो मे एक समय मे स्कूली बच्चे बबूल की गोन्द एकत्र किया करते थे। बबूल की गोन्द को “बम्बरी लासा” कहते है। इस गोन्द के बदले उन्हे स्थानीय दुकान से कुछ पैसे मिल जाया करते थे। यह काम शौकिया तौर पर होता था। पर हाल के कुछ वर्षो मे हालात एक दम से बदल गये है। अब बच्चे स्कूल जाते है और वही पर

उन्हे भोजन भी मिल जाता है। मै बबूल की गोन्द के एकत्रण की घट रही रुचि से चिंतित नही हूँ। मेरी चिंता का विषय अलग है। गाँव के बुजुर्ग बताते है कि जब बच्चे बबूल की गोन्द एकत्र करते थे तो उस रास्ते मे मुंगेसा, जिल्लो, फुटु, कोल्ही-केकडी जैसी स्थानीय वनस्पतियो के स्वादिष्ट भागो का सेवन करते चलते थे। वे पीपल की पिकरी, गूलर या डूमर के फल, कैथ और बेल जैसे देशी फलो का सेवन कर लेते थे। इससे साल भर उनका स्वास्थ्य अच्छा बना रहता था। पर अब हालात उल्टे है। हाल ही मे एक ग्रामीण स्कूल मे जब मैने बच्चो से उनके खान-पान के बारे मे पूछा तो नूडल्स से लेकर आलू के चिप्स उनके नियमित खान-पान के अंग निकले। जंगली फलो का सेवन तो दूर की बात, ज्यादातर को उनके नाम भी नही मालूम थे। उनमे से कुछ ने नाक-मुँह भी सिकोडा और बताया कि उनके माता-पिता ने बाजार से खरीदकर लाये गये फलो को ही खाने की नसीहत दी है।

बच्चो के लिये सुझाव देते समय मै पालको को इन जंगली फलो को खान-पान मे शामिल करने का सुझाव देता हूँ। शहरी पालक एकदम से तैयार नही होते है। डूमर के फल का नाम सुनते ही उनके चेहरे के भाव बदल जाते है। जब उन्हे फिकस ग्लोमरेटा के फल खाने की सलाह दी जाती है तो वे झट से इंटरनेट पर इसे खोजते है और फिर जैसे ही इसके गुणो को बताने वाले विदेशी लेखो को पढते है, डूमर के फलो के लिये तैयार हो जाते है। ऐसी परेशानी एक ही बार आती है। जैसे ही वे इसे खान-पान मे शामिल करते है और इसके लाभ देखते है तो फिर उन्हे दोबारा समझाने की जरुरत नही पडती है। देशी फलो पर अविश्वास और बाजारु फलो पर अन्ध-विश्वास शहरी पालको और उनके बच्चो के लिये अभिशाप साबित हो रहा है। जब उन्हे बताया जाता है कि जंगली फल बिना कीट नाशक के उगते है और बाजारु फल कैसे जहरीले रसायनो से भरे होते है तो वे इस बात को जल्दी से समझते है। टीवी वाले बाबाओ के कहने से लौकी का रस पीने को आतुर लोगो को जब बताया जाता है कि इस बढी हुयी माँग को पूरा करने लिये सब्जी उत्पादक जहरीले रसायन के प्रयोग से रातो-रात उत्पादन बढा रहे है और आमलोगो की जान से खेल रहे है तो कम ही लोग कुछ पल के लिये सोचने के लिये मजबूर होते है। लौकी के रस के नाम पर आम भारतीय रोज जहर का प्याला पी रहा है। गाँवो मे बिना रसायनो से उगी लौकी अच्छे बाजार की बाट जोह रही है। लौकी घर मे भी उगायी जा सकती है। रसायनमुक्त लौकी आसानी से पहचानी जा सकती है पर लोगो को विचारने का समय ही कहाँ है?

अच्छे स्वास्थ्य से बडा धन और कोई नही है। यह सब जानते है पर सही मायने मे देखा जाये तो अच्छे स्वास्थ्य के लिये हम ज्यादा कुछ करते नही है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“एकाध भूत-प्रेत दिखा दो, अर्जुन। इतनी दूर से आया हूँ और फिर तुम तो बैगा भी हो।“ यूँ ही मजाक मे मैने साथ चल रहे अर्जुन बैगा से कहा। आँखो मे लगा काला चश्मा बता रहा था कि अभी-अभी उसका आपरेशन हुआ है मोतियाबिन्द का। मजे से वह मेरे साथ पास के खेत जाने के लिये चल रहा था। “अब मैने भूत-प्रेत का काम छोड दिया है। हाँ, जडी-बूटी का काम करता हूँ। वैसे भी अब बिजली आ जाने से भूत-प्रेत दिखते नही है। दिखते भी है तो पकड मे नही आते है। इसलिये मैने यह काम छोड दिया है। बस अब अपनी खेती की देखभाल करता हूँ।“ इस भूतपूर्व भूत-प्रेत विशेषज्ञ से बात करना दिलचस्प लग रहा था। छत्तीसगढ की राजधानी से सटे एक गाँव मे अर्जुन बैगा जवानी मे अपनी तंत्र विद्या के लिये पूरे क्षेत्र मे जाना जाता था। बिगडे गाँवो को सुधारने का जिम्मा उसी का था। उसकी प्रसिद्धि मुझे उस तक खीच लायी थी। रायपुर के आस-पास के गाँवो मे जमीन के भाव आसमान छू रहे है। अर्जुन ने बताया कि उसके पास ढाई एकड है और एक एकड के लिये लोग पच्चीस लाख देने को तैयार है। उसके अनुसार इतने पैसे मे तो कई जन्म मजे से गुजर जायेंगे। फिर क्यो भूत-प्रेत पर माथापच्ची की जाये? पुलिस का झंझट अलग। फिर राजधानी के पास होने पर कुछ भी ऊपर-नीचे होने पर सारे खबरची आ जाते है और पोल खुलने का डर रहता है। उसने आगे बताया कि बहुत से बैगा अपना पुश्तैनी काम छोडकर अब जमीन खरीदी-बिक्री के धन्धे मे लग गये है। पर आज भी बहुत से लोग है जो इस काम मे लगे है। पैसे भले कम हो पर सामाजिक रुतबा भी तो जरुरी है।

कुछ सप्ताह पूर्व पास के गाँव से खबर मिली कि धान के खेतो मे एक नये प्रकार के खरपतवार का आक्रमण हो रहा है जिससे खेती चौपट हो रही है। मैने गाँव जाने का मन बनाया। काफी दूर चलने के बाद हम प्रभावित स्थान पर पहुँचे। मेरे साथ किसानो के

अलावा अर्जुन बैगा भी था। चितावर नामक खरपतवार कहर बरपा रहा था। खेतो के पास एक नाला था। नाले मे इस जलीय खरपतवार का राज था। जब बरसात मे नाले का पानी खेतो मे भर जाता था तब ये खरपतवार बहकर खेतो मे आ जाते है और वही के होकर रह जाते है। एक बार खेत मे जमे तो फिर उन्हे खत्म करना टेढी खीर होता है। रावण के सिर की तरह एक स्थान से उखाडो तो दूसरे स्थान से उग जाते है। एक किसान के तो कई खेतो मे इसका प्रकोप था। इतना प्रकोप कि पिछले तीन सालो से धान की खेती नही हो पा रही थी। किसान सहायता के लिये विभागो और शोध-संस्थानो के चक्कर लगा रहे थे पर कोई उनकी मदद नही कर रहा था। राजधानी मे कृषि विभाग के आला आसर से लेकर मंत्री तक के स्तर के लोग होते है पर किसानो की सुनने वाला कोई नही था। अर्जुन बैगा ने बताया कि इस खरपतवार मे रेरा नामक चिडिया अपना घर बनाती है जो धान की फसल को सीधे नुकसान पहुँचाती है। गर्मी मे बुलडोजर की सहायता ली गयी पर फिर भी गहरी जडो वाले इस खरपतवार का बाल भी बाँका नही हुआ। वैज्ञानिक भाषा मे इसे टाइफा कहा जाता है।

मेरे पास कई उपाय थे। इनमे से एक कृषि रसायन का प्रयोग था। इससे यह खरपतवार मर तो जाता पर यह स्थायी समाधान नही था। बरसात मे नाला भरता और फिर यह खरपतवार आ जाता। नाले से खरपतवार को खत्म करना खर्चीला था। नाले से सफाई हो भी जाती तो नाले के ऊपरी भाग के गाँवो से इस खरपतवार के बहकर पहुँचने का खतरा बना हुआ था। सरकारी जमीन से खरपतवार को उखाडने कोई तैयार नही था। कमोबेश ऐसी ही स्थिति गाजर घास की है। जागरुक किसान और आम लोग अपने घरो के आस-पास की गाजर घास खत्म कर देते है पर सरकारी जमीन मे कोई इसकी सुध नही लेता। ये बेकार पडी जमीन सीड बैंक का काम करती रहती है और बीज लगातार रिहायशी इलाको मे पहुँचते रहते है। इस तरह लाख कोशिशो के बावजूद यह समस्या बनी हुयी है।

टाइफा प्रभावित किसानो के लिये मैने कलम को एक बार फिर से हथियार बनाया है। इस लेख की तरह बहुत से लेख लिख रहा हूँ ताकि समबन्धित विभाग नीन्द से जागे और किसानो की मदद करे। हाल ही मे पता चला कि मंत्री महोदय भी आस-पास के गाँव के है। अब इतना छोटा काम तो वे करने से रहे पर यदि वे अपने अधिकारियो से यह कह दे तो भी किसानो की बडी मदद हो जायेगी।

किसानो के साथ भ्रमण के दौरान अर्जुन बैगा से स्थानीय वनस्पतियो पर खुलकर बातचीत होती रही। ज्यादा खुलकर मै बातचीत करता दिखा,वह तो सारे राज अपने तक रखना चाहता था। हमने एक पीले फूलो वाली वनस्पति देखी। अर्जुन ने कहा कि यह

किसी काम की नही है। मैने उस वनस्पति को उखाडा और फिर उसका रस निकालकर सिर पर मला। जल्दी ही अर्जुन को ठंडक का अहसास होने लगा। मैने कहा कि गर्म दिमाग वालो के लिये यह बहुत ही उपयोगी है। इतना सुनना था कि अर्जुन ने इसके बारे मे विस्तार से बताना आरम्भ किया। अभी तक जिसे वह बेकार कह रहा था अब उसी के गुण गा रहा था। उसने इसका स्थानीय नाम धूप-काला बताया। धूप-काला हिन्दी नाम लगता है। उसके अनुसार गर्मी के मौसम मे होने वाली समस्त बीमारियो को इस एक वनस्पति से ठीक किया जा सकता है। यह वनस्पति किसानो के खेतो मे बिखरी पडी थी। किसान इसके उपयोगो को नही जानते थे। उनके गाँव का अर्जुन सब जानकर भी चुप था। यह वनसप्ति जानवरो के लिये भी उपयोगी है।

कुछ दूर चलने पर हमे एक बुजुर्ग व्यक्ति मिला जो पीडा से त्रस्त था। वह एक नीम-हकीम के पास इंजैक्शन लगवाने जा रहा था दर्दशामक दवा का। इसके बदले उसे मोटी फीस देनी पडती थी। उसकी पीडा से व्यथित होकर मैने और अर्जुन ने निश्चय किया कि गाँव की वनस्पतियो से ही इन्हे इस दर्द से मुक्ति दिलवायी जाये। हम अलग-अलग दिशाओ मे चले गये और आधे घंटे के अन्दर खजाने सहित हाजिर हो गये। मूल रोग के अनुसार सुझायी गयी वनस्पतियो से उन बुजुर्ग को लाभ हुआ।

मै अक्सर यह कहता और लिखता रहता हूँ कि आधुनिक खेती के बाद भी हमारे खेतो मे बहुत सी ऐसी वनस्पतियाँ बची है जिनसे गाँव के आम रोगो का इलाज हो सकता है। वनस्पतियो के जानकार भी गाँव मे है। यदि उन्हे थोडा सा प्रोत्साहन दिया जाये तो स्वास्थ्य के विषय मे गाँव आत्म-निर्भर हो सकते है एक बार फिर, जैसे पहले थे। यह कटु सत्य है कि वनस्पतियो की सहायता से नि:शुल्क चिकित्सा करने वाले सरकार की आँखो मे खटकते है पर दर्द-शामक लिये घूमते झोला-छाप डाक्टर जो शहरी डाक्टरो के लिये एजेंट का काम करते है, खुले आम अपना काम कर रहे है। देशी वनस्पतियो और देशी चिकित्सा को सहेजने का यह अंतिम अवसर है। हमे निज स्वार्थो से उठकर इनके संरक्षण के लिये जी-जान से जुट जाना चाहिये। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

कुछ महिनो पहले एक करीबी मित्र का फोन आया। उन्होने पूछा कि आजकल मधुमेह की रपट मे किस विषय पर लिख रहे हो? मैने कहा कि करेला और नीम पर। महिने-दो महिने बीते होंगे कि फिर उनका फोन आ गया। फिर वही प्रश्न पूछा गया। मैने कहा कि करेला और नीम पर। बेसब्र होकर उन्होने कुछ सप्ताह के इंतजार के बाद फिर फोन किया। और मेरे कहने से पहले ही कह दिया कि करेला और नीम से बात आगे बढी क्या? मैने विनम्रता से उत्तर दिया कि नही, करेला और नीम पर ही अटका हूँ। लगता है रपट की विशालता को देखते हुये पूरी जानकारी नही लिख पाऊँ। अब उनसे रहा नही गया। दनदनाते हुये घर आ पहुँचे। मैने उनका स्वागत किया और कहा कि अब दोपहर और शाम का भोजन करके ही जाइयेगा। फिर उन्हे रपट के कुछ अंश पढने को दिये। डीवीडी का ढेर भी उन्हे सौप दिया। वे समझ गये कि करेला और नीम पर सैकडो घंटे बहाये गये है। वे मन लगाकर पढते रहे और करेला और नीम से सम्बन्धित पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान से अभिभूत हो गये। उन्होने सोचा भी नही था कि मधुमेह (डायबीटीज) के लिये जिन वनस्पतियो का प्रयोग पूरी दुनिया मे हो रहा है उन पर इतने विस्तार से लिखा जा सकता है।

शाम के भोजन के बाद उन्होने प्रश्न किया कि करेला और नीम का प्रयोग सभी रोगी करते है। फिर इन वनस्पतियो पर आधारित ढेरो दवाए बाजार मे है। इनमे से किसी का उल्लेख इस रपट मे नही है। तो क्या बाजार मे उपलब्ध दवाए और आम लोगो की जानकारी बेमानी है? मैने कहा कि इसमे कोई शक नही कि करेला और नीम मधुमेह के रोगियो को असीम राहत पहुँचा सकते है। वे मधुमेह को ठीक भी कर सकते है पर जिस ढंग से इनका उपयोग आम भारतीय कर रहे है उससे उतना लाभ नही मिल पा रहा है जिनकी उम्मीद की जाती है। मैने प्रश्न किया “ आप ही बताये मधुमेह के असंख्य नुस्खो मे से किसी भी एक से आपने रोगियो को रोगमुक्त होते देखा है। मृगतृष्णा की तरह रोगी एक दवा से दूसरी दवा की खोज मे भटकता रहता है। और अंत मे मधुमेह का कहर लिये इस दुनिया से चला जाता है। मधुमेह की चिकित्सा के लिये उपयोगी जितने नुस्खे आम भारतीयो के पास है उतने पूरी दुनिया मे किसी के पास नही है। फिर भी भारत मधुमेह की विश्व राजधानी बनता जा रहा है। इसका मतलब यह नही है कि ये नुस्खे कारगर नही है। कमी इस बात की है कि इन नुस्खो के सही प्रयोग की जानकारी नही है। नुस्खे भले ही सरल दिखे। प्राचीन ग्रंथो के आधुनिक संस्करण भले ही करेला और

नीम के मिश्रण से मधुमेह मे लाभ होता है, बताकर चुप हो जाये पर इनका प्रयोग बहुत ही जटिल है। मुझे पूरा विश्वास है कि प्राचीन ग्रंथो की रचना करने वाले लोगो के पास प्रयोग विधियो की विस्तार से जानकारी थी पर उन्होने केवल नुस्खो को लिखा और प्रयोग विधि अपने शिष्यो तक ही सीमित रखी। कालांतर मे जब भारतीय चिकित्सको ने इन नुस्खो को देखा तो अपने विवेक के अनुसार इनका प्रयोग करने लगे। दवा कम्पनियो ने भी इसका लाभ उठाया और दवाए बाजार मे प्रस्तुत कर दी। सही प्रयोग विधियो के अभाव मे सारा दिव्य ज्ञान उपलब्ध होते हुये भी व्यर्थ हो गया। इस बात पर कभी विचार नही किया गया। प्राचीन ग्रंथकारो से शिष्यो और शिष्यो से नयी पीढी के शिष्यो के पास यह ज्ञान जुबानी ज्ञान के रुप मे आया। इस मूल ज्ञान के दस्तावेजीकरण के प्रयास कभी नही किये गये।

जब मैने करेला और नीम पर ध्यान केन्द्रित किया और जुबानी ज्ञान को कलमबद्ध करना शुरु किया तो ज्ञान का विस्तार देखकर मै दंग रह गया। इस विस्तार से यह स्पष्ट होने लगा कि जिन ग्रन्थो को हम सब कुछ मान बैठे है वे तो ज्ञान के विशाल सागर मे एक बून्द से भी कम है। यदि देश मे बिखरे जुबानी ज्ञान को सही मायने मे लिखना आरम्भ किया जाये तो असंख्य ग्रंथ तैयार हो जायेंगे। ये ग्रंथ न केवल वर्तमान पीढी के लिये उपयोगी साबित होंगे बल्कि पीढीयो तक भारत को विश्व के शिखर पर रखेंगे।

पश्चिमी देश करेला और नीम के चमत्कारिक गुणो को जानते है। इन पर विस्तार से शोध हो रहे है। पर मुझे यकीन है कि इन वनस्पतियो के विषय मे भारत मे उपलब्ध जुबानी ज्ञान को नये शोधो के माध्यम से समझने मे इन देशो को सदियाँ लग जायेंगी। करेला और नीम पर मेरे कुछ शोध आलेख इंटरनेट के माध्यम से पढे जा सकते है। उनमे केवल सतही जानकारी है। इस सतही जानकारी को ही खजाना मानकर दुनिया भर के विषेषज्ञ मुझे धन्यवाद सन्देश भेजते रहते है। यह जानकारी कुछ पन्नो की है। पता नही, हजारो घंटो मे नियमित लेखन से तैयार दस्तावेज जब दुनिया के सामने आयेंगे तब उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी?

करेला और नीम पर जानकारी के विस्तार को देखकर करीबी मित्र ने कहा कि अब इस रपट को जन साधारण के लिये उपलब्ध कराने के प्रयास शुरु कर देने चाहिये। लिखना तो जारी रहेगा पर इसके साथ ही ज्ञान का उपयोग होना भी जरुरी है। मित्र की सलाह सही है। पर इसमे ढेरो अडचने है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर “कोई” है जिसे भारतीय ज्ञान से समस्याए है। वह नही चाहता कि मेरा काम विश्व-मंच तक पहुँचे। मुझे इसका आभास तब ही हो गया था जब इकोपोर्ट मे मेरे योगदान को गूगल ने दिखाना बन्द कर दिया

था। उस समय मेरा नाम खोजी इंजनो पर खोजने से पाँच लाख से ज्यादा परिणाम सामने आते थे। उस समय इकोपोर्ट पर कूट भाषा मे मधुमेह का रपट नही डाली गयी थी। जब इतने शोध परिणाम सामने आते थे तो भारतीय ज्ञान को पेटेंण्ट से बचाने के लिये जी-जान से जुटे सामाजिक कार्यकर्ताओ को अपने पक्ष मे दस्तावेज मिल जाया करते थे। शोधार्थियो को मदद हो जाती थी। भारतीय ज्ञान के विस्तार के बल पर विशेषज्ञ दुनिया भर मे इसे उदाहरण के रुप मे प्रस्तुत कर देते थे। पर कुछ ही समय बाद इकोपोर्ट ने गूगल और अन्य खोजी इंजनो के प्रवेश को रोक दिया। कारण बताया गया कि तकनीकी खराबी है सुधार ली जायेगी। जब मैने मधुमेह की रपट के साढे छह लाख पन्ने इकोपोर्ट मे डाले तो भी इकोपोर्ट ने इस दस्तावेज को खोजी इंजनो की सहायता से दुनिया के सामने नही आने दिया। चूँकि सारी रपट कूट भाषा मे थी इसलिये ये साढे छह लाख पन्ने उसके कोई काम के नही थे। इकोपोर्ट के टालमटोल रवैये से असंतुष्ट होकर मैने अपने निजी डेटाबेस मे रपट को शामिल कर लिया। जैसा कि आप जानते है कि अब यह रपट करोडो पन्ने की हो गयी है। इकोपोर्ट से विदाई “उसे” रास नही आयी। परिणामस्वरुप मुझे अलग-अलग तरीको से परेशान किया जाने लगा। इनमे से एक गूगल से मेरे योगदानो को गायब करने का प्रयास भी है। आज गूगल मे मेरा नाम खोजने पर मुश्किल से 18 हजार परिणाम मिलते है जबकि नेट पर मेरे लाखो पन्ने, पैतीस हजार से अधिक चित्र और दूसरी शोध सामग्रियाँ है। इन्हे जानबूझकर नही दिखाया जाता है। याहू एक लाख परिणाम दिखाता है पर फिर भी ये कम है। यह अंतरराष्ट्रीय दबाव और भिड के काम करने को प्रेरित करता है। कोई किसी को आखिर कब तक रोक सकता है। 1000 जीबी से अधिक के निज डेटाबेस को अब आन-लाइन करने की योजना है। जैसा कि आप जानते है कि मैने अभी तक इन सब कार्यो के लिये देश से एक पैसा भी नही लिया है। सब अपने बूते पर करता रहा पर अब 1000 जीबी के डेटाबेस को आन-लाइन करने मे मै अपने को आर्थिक रुप से अक्षम पाता हूँ। फिर भी प्रयास जारी है। इसे आन-लाइन करने पर फिर से अडचने खडी की जायेंगी पर तब की समस्या से तब निपटा जायेगा।

इस विस्तृत रपट को समझाने की तैयारी मै कर रहा हूँ। आने वाले दिनो मे जब भारतीय स्वास्थ्य विशेषज्ञ इस रपट मे दर्ज पारम्परिक ज्ञान को समझना चाहेंगे तो मुझे उन्हे सरल ढंग से इसे समझाना होगा। अभी तक तैयार रपट को समझाने मे यदि मै रोज आठ घंटे दूँ तो भी पाँच साल लग जायेंगे। मै तैयार हूँ पर क्या पूरे धैर्य से कोई इसे समझना चाहेगा? यह एक बडा प्रश्न है। रोज शाम को जिस हेल्थ क्लब मे मै टेबल टेनिस खेलता हूँ वहाँ बहुत से लोग इस रपट के बारे मे जानने आ जाते है। वे कहते है

कि हमे आप कुछ लाइनो मे सारांश बता दे या सबसे अधिक प्रभावी नुस्खे बता दे। कही हमारे स्वास्थ्य विशेषज्ञ भी यही राह न पकड ले।

इस रपट मे पूरा समय लगने के कारण मै अन्ध-विश्वास के खिलाफ जंग मे सक्रिय रुप से भाग नही ले पा रहा हूँ। जैसा आपने पूर्व के लेखो मे पढा है कि दुनिया के बहुत से संगठन अन्ध-विश्वास के खिलाफ एक मंच पर आना चाहते है। वे इस लेखमाला से शुरुआत करना चाहते है। मैने पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण की कोई विधिवत शिक्षा नही ली है। मै तो कृषि वैज्ञानिक हूँ। बडी संख्या मे किसान इस अनुरोध के साथ राह देख रहे है कि मै कृषि के क्षेत्र मे अपना योगदान दूँ। पारम्परिक ज्ञान पर काम ठीक है पर इस घर फूँक तमाशे से तो जीवन चलने वाला नही। अन्ध-विश्वास के खिलाफ जंग के लिये जीवन समर्पित करना भी उतना ही जरुरी है जितना पारम्परिक ज्ञान पर काम करना। इसी उधेडबुन मे इस लेखमाला को जारी रखने मे जुटा हुआ हूँ। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“ये होम्योपैथिक दवाए तो तीन साल पुरानी है। मुझे इसी साल पैक की गयी दवाए दो।“ रायपुर की एक दवा दुकान पर एक सज्जन दुकान वाले से कह रहे थे। “अरे, आपको पता नही, होम्योपैथिक दवाए जितनी पुरानी होती है, उतनी अच्छी होती है। आप तो किस्मत वाले है जो आपको इतनी पुरानी दवा आसानी से मिल रही है।“ दुकान वाले के कुतर्को को सुनकर मै अवाक सा खडा था। सज्जन ने दवा लेने से मना कर दिया। जैसे ही वापस लौटे दुकान वाला अपने असली रंग मे आ गया। “अरे, नाराज क्यो होते आप पुरानी दवा के लिये बीस रुपये कम दे दीजियेगा। चलिये, तीस कम कर दूँगा।“ सज्जन समझ गये थे कि जरुर कुछ गडबड है। वे वापस चले गये। साथ ही मै भी।

रायपुर ही नही, देश मे बहुत से हिस्सो मे ऐसे किस्से आमतौर पर सुनने को मिल जाते है। मै बचपन से ही होम्योपैथी का प्रशंसक रहा हूँ। मुझे ज्ञानी-ध्यानी चिकित्सको के साथ काम करने का अवसर मिला है। पर हाल के वर्षो मे मैने होम्योपैथी की जो दुर्दशा

देखी है उससे मेरी आँखो मे आँसू आ जाते है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आजकल मिलने वाली होम्योपैथिक और बायोकेमिक दवाओ मे एक साल के भीतर ही अजीब सी गन्ध आने लगती है। शिकायत करने पर सही जवाब नही मिलता है। मुझे याद आता है कि डा. बी.आर.गुहा सालो तक दवाओ को सुरक्षित रखते थे और उनका बखूबी इस्तमाल करते थे। वे आज होते तो दवाओ को एक साल के अन्दर खराब होता देखकर दुखी हो जाते। कुछ छात्रो ने मुझे एक चौकाने वाली बात बतायी। उन्होने दावा किया कि अप अमुक दुकान मे जाकर किसी भी कपोल-कल्पित नाम लिखकर और फिर दुकानवाले को देकर उस नाम की होम्योपैथिक दवा प्राप्त कर सकते है। “जिसका उल्लेख मटेरिया मेडिका मे न हो, वो भी।” छात्रो ने कहा “ बिल्कुल और इस तरह कुछ भी बेचा जा रहा है, मनमानी कीमत पर।“ जिस दुकान की बात वे कर रहे थे उससे रायपुर के अस्सी प्रतिशत होम्योपैथी प्रेमी दवाए लेते है।

कृषि के क्षेत्र मे जब मैने होम्योपैथी पर शोध आरम्भ किया तो मुझे आरम्भिक प्रयोगो से लगने लगा कि यदि विस्तार से शोध किये जाये तो एग्रोहोम्योपैथी को विज्ञान की एक नयी शाखा के रुप मे स्थापित किया जा सकता है। पिछले एक दशक से भी अधिक समय से मै निरंतर प्रयोग कर रहा हूँ। विज्ञान के अपने स्पष्ट नियम है। प्रयोग करने की विशेष विधियाँ है। एग्रोहोम्योपैथी के प्रयोग मे मुझे सफलता के साथ असफलता भी मिल रही है। पर हर असफलता कुछ सबक दे रही है। एग्रोहोम्योपैथी की विज्ञान की अन्य शाखाओ की तरह कुछ सीमाए भी है। दुनिया भर के होम्योपैथी प्रशंसक अक्सर पूछते है कि मै कब अपने प्रयोगो को सार्वजनिक करुंगा? मै उनसे बीस और साल माँगता हूँ। मै पूरी तरह से निश्चिंत होकर ही इसे दुनिया के सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ। जब यह दुनिया के सामने आये तो मै इसके सभी वैज्ञानिक पहलुओ के समझा पाऊँ। कोई कोर-कसर न रह जाये। आजकल एग्रोहोम्योपैथी के नाम पर दुनिया भर मे कुछ लोगो ने हल्ला मचा के रखा है। वे इसे सभी कीटो और रोगो के लिये रामबाण बता रहे है। यह सम्भव नही है। वे जानते ही नही है कि दुनिया मे कितने तरह के पौधे है और उनपर कब और कितने कीटो और रोगो का आक्रमण होता है। दुनिया भर के कृषि वैज्ञानिक और किसान कीटो व रोगो से जूझ रहे है। इतना आसान नही है उनसे लड पाना। लगातार कृषि रसायनो को मजबूत बनाना पड रहा है क्योकि कीटो मे प्रतिरोधक क्षमता बढती जा रही है। जैविक उपाय अपनाए जा रहे है पर अब भी सभी कीटो और रोगो के लिये कारगर जैविक आदान विकसित नही किये जा सके है। शायद ऐसा कभी हो भी न। ऐसी परिस्थितियो मे कोई यह दावा लेकर खडे हो जाये कि एग्रोहोम्योपैथी से सारे कीटो और रोगो का सफाया हो सकता है तो उसे हँसी का पात्र बनने से कोई नही रोक सकता

है। आजकल इंटरनेट के माध्यम से ऐसे दावे किये जा रहे है। यह निज स्वार्थ से प्रेरित है। मेरा यह अनुभव रहा है कि विज्ञान की किसी भी शाखा को जितना बाहरी लोगो से नुकसान नही होता है उतना भीतरी लोगो से होता है। आप कुछ सालो तक अपने लाभ के लिये दुनिया को बेवकूफ बनाकर अपने उत्पाद बेच सकते है पर इससे विज्ञान की उस शाखा को जो स्थायी क्षति होती है वह अपूरणीय होती है।

एग्रोहोम्योपैथी के अपने प्रयोगो को मै कृषि अनुसन्धान संस्थाओ के साथ मिलकर आगे बढाना चाहता हूँ। जो प्रयोग मैने किये है वे यदि सही है तो दुनिया भर के अनुसन्धान केन्द्रो मे भी उनकी पुनरावृत्ति होनी चाहिये। मुझे विश्वास है कि अलग-अलग क्षेत्र के वैज्ञानिको के समंवित प्रयास आरम्भिक प्रयोगो की खामियो को दूर करेंगे और फिर एग्रोहोम्योपैथी को नये विज्ञान के रुप मे स्थापित करेंगे। भारत एग्रोहोम्योपैथी के क्षेत्र मे विश्व का नेतृत्व कर रहा है। अत: यह पहल भारत ही से आरम्भ होनी चाहिये।

आपने इस लेखमाला मे पहले पढा है कि कैसे भारतीय पारम्परिक चिकित्सक वनस्पतियो के सत्वो की सहायता से दूसरी वनस्पतियो को मनचाहे औषधीय गुणो से परिपूर्ण करते है। उनके इस ज्ञान को ट्रेडीशनल एलिलोपैथिक नालेज का नाम दिया है मैने। मैने इस विषय पर हजारो शोध दस्तावेज तैयार किये है। एग्रोहोम्योपैथी के आरम्भिक प्रयोगो की सफलता को देखते हुये मैने पारम्परिक चिकित्सको से वनस्पतियो के सत्वो के साथ होम्योपैथी दवाओ को मिलाने का अनुरोध किया। कुछ अफलताओ के बाद ये प्रयोग सफलता के रंग दिखाने लगे। होम्योपैथिक दवाओ का उपयोग केवल कीट और रोग नाशक की तरह होने की बजाय फसलो विशेषकर औषधीय और सगन्ध फसलो के औषधीय गुणो को बढाने के लिये भी किया जा सकता है। पारम्परिक चिकित्सको के साथ मिलकर किये जा रहे प्रयोग इसी कल्पना को साकार कर पायेंगे।

देश भर के होम्योपैथिक कालेज मे अपनी सेवाए दे रहे अपने मित्रो और प्रशंसको से मै आग्रह कर रहा हूँ कि जल्दी से जल्दी एग्रोहोम्योपैथी को एक पाठ के रुप मे कोर्स मे शामिल किया जाये। देश भर मे गहन शोध के लिये मुझे बडी संख्या मे उत्साही नवयुवको और नवयुवतियो की आवश्यकत्ता होगी जो होम्योपैथी को दिल से चाहते हो। मात्र डिग्री के लिये जुटे छात्र शायद ही विज्ञान की इस शाखा के विकास मे अपना योगदान दे पाये। बहुत से कृषि अनुसन्धान संस्थानो मे कार्यरत मित्रो ने इन प्रयोगो मे रुचि दिखायी है। मै उनसे स्पष्ट कह दे रहा हूँ कि शार्ट-कट नही चलेगा। इस बात का पूरा ध्यान रखना होगा कि हमारे किसी भी काम से इस नव-विकसित शाखा के सम्मान को चोट न पहुँचे।

होम्योपैथी मे आम लोगो की घटती रुचि मुझे चिंतित करती है। मित्र लिखते है कि कालेजो मे सीटे खाली पडी है। नये स्नातक आधारभूत विधा को छोडकर एलोपैथी की तर्ज पर होम्योपैथी का प्रयोग कर रहे है। दवाओ को अनाप-शनाप तरीके से मिलाया जा रहा है। व्यवसायिक लाभ के नाम पर दवाओ की इतनी अधिक मात्रा रोगी को दी जा रही है कि उसकी अधिक्ता से बुरे प्रभाव दिख रहे है। यहाँ मुझे बार-बार "एकल दवा" का डा. गुहा का सिद्धांत याद आता है। किसी भी मर्ज को वे दवा की एक खुराक से ठीक करना जानते थे। ये अलग बात है कि आधुनिक मरीजो की संतुष्टि के लिये वे लम्बे समय तक दवा रहित मीठी गोलियाँ देते रहते थे।

मै वनस्पतियो पर होम्योपैथी के प्रयोग कर रहा हूँ। कुछ वर्षो पहले मेरे कम्प्यूटर विशेषज्ञ ने बताया कि उसे बेहद तकलीफ है। पूरे शरीर मे समय-समय पर फोडे हो जाते है और फिर अपने आप ठीक हो जाते है। फोडो मे दर्द होता है। जीना-हराम हो जाता है। उसने सभी दवाए की। झाड-फूँक करवायी। नीम का रस पीया और करेले का भी। पर फोडो के निकलने का क्रम समाप्त नही हुआ। उसने मुझसे कुछ जडी-बूटी माँगी। मुझे डा. गुहा की याद आयी। उनके द्वारा दी गयी शिक्षा के आधार पर इस विशेषज्ञ के लिये केवल एक ही दवा जँचती थी। होम्योपैथी चिकित्सक मित्रो से सलाह-मशविरा किया। वे बोले कि यह दवा असर करेगी पर एक खुराक से कुछ नही होने वाला। मेरा कहना था कि मैने आज तक किसी होम्योपैथी दवा की एक खुराक से अधिक नही लिया है और हमेशा फायदे मे रहा हूँ। "सिर्फ एक खुराक। अरे, तू तो हम लोगो का धन्धा चौपट करवायेगा।" उनकी बात सही थी। उनकी रोजी-रोटी यही है। मै तो इस विधा के एक पैसे नही लेता किसी से। बहरहाल, विशेषज्ञ को दवा दी गयी। चिकित्सक मित्रो ने देखा। एक दिन बीता, फिर दो दिन, फिर तीन दिन और उसका फोन आ गया कि अभी वाला फोडा समय से पहले ठीक हो रहा है। फिर सप्ताह भर मे दवा के पूरे असर का फोन आ गया। आज सालो बीत जाने पर भी वह सामान्य जीवन जी रहा है। उसे मदद करने का दुष्परिणाम यह रहा कि पहले उसके रिश्तेदारो की भीड लग गयी और फिर दूसरे मरीजो की। मैने उनसे विनम्र अनुरोध किया कि मै चिकित्सक नही हूँ। मुझे वनस्पतियो तक ही सीमित रहने दे। विशेषज्ञ के ठीक होने मे मेरा कोई योगदान नही है। यह तो महात्मा हैनीमैन का अनुपम उपहार है। जिसने इसे गहराई से जान लिया, समझ लिया उसने सब कुछ पा लिया। बिना गहरा गोता लगाये सतह से इसे जानने का प्रयास कभी भी सही परिणाम नही दे सकता।

आज दुनिया के बहुत से देशो मे होम्योपैथी गहरे संकट मे है। देश के जाने-माने होम्योपैथ कानपुर के डा. प्रभात टंडन से मुझे यह बात पता चली। यदि दुनिया होम्योपैथी के महत्व को निज स्वार्थो के लिये नकार रही है तो वह अपने पैरो मे कुल्हाडी मार रही है। मेरा विश्वास है कि दुनिया एक दिन जरुर महात्मा हैनीमैन के इस उपहार को सिर-आँखो पर बिठायेगी पर तब तक होम्योपैथी को अन्दर से क्षति पहुँचा रहे आस्तिन के साँपो की पहचान कर उन्हे चेताना जरुरी है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

"जामुन से मधुमेह मे लाभ नही होता। चौक गये ना! पर ये सच है। यकीन न हो तो साथ मे भेज गये शोध पत्र देख लो। अब तो भारतीयो को जामुन का गुणगान करना बन्द कर देना चाहिये। बहुत बना लिया दुनिया को।" वनस्पतियो पर चर्चा के लिये बने एक गूगल ग्रुप मे किसी विदेशी का यह सन्देश आया। उसने निजी तौर पर मुझे भी यह सन्देश भेजा। उसे मालूम था कि उसने बर्रे के छत्ते मे हाथ डाला है। इस सन्देश पर जमकर प्रतिक्रिया होने वाली थी। फिर भी उसने यह किया था। रोज मिलने वाले ढेरो सन्देशो के ढेर मे यह सन्देश दब गया और मै जवाब नही दे पाया। दूसरे दिन फिर यही सन्देश आ गया। मैने संलग्न शोध-पत्रो को देखा तो उसने चूहो पर किये गये कुछ शोधो के विषय मे जानकारी थी। जामुन की पत्तियो के काढे के प्रयोग को विस्तार से बताया गया था। निष्क्रर्ष यह निकाला गया था कि जामुन मधुमेह के लिये उपयोगी नही है। मैने इस सन्देश पर कोई त्वरित प्रतिक्रिया नही दी। अब बाहर से फोन आने लगे। एक पहचान वाले वैज्ञानिक के जरिये वही सन्देश आने लगे। मै अनदेखा करता रहा तो उनकी बेसब्री और बढती गयी। आखिर उस वैज्ञानिक ने फोन लगाया। उसने कहा कि कोई खुलेआम तुम्हारे प्रिय पौधे का विरोध कर रहा है और तुम चुप हो। अरे, प्रमाण के साथ तगडा जवाब दो। मैने उन्हे विनम्रता से जवाब दिया कि जामुन मधुमेह के लिये पीढीयो से सफलतापूर्वक प्रयोग हो रहा है। अब इसे बार-बार सिद्ध करने की जरुरत नही है। चाहे जितने शोध-पत्र छापने है, छाप ले, जामुन भारतीय संस्कृति मे रचा-बसा है। फिर

मजाकिये लहजे मे मैने कह ही दिया कि हमारे यहाँ जामुन इन्सानो की डायबीटीज ठीक करता है। आप तो चूहो के डायबीटीज के बारे मे बात कर रहे है।

बात खत्म नही हुयी। विस्तार से प्रतिक्रिया का आग्रह होता रहा। मैने फोन रख दिया। इस तरह के हथकंडे वैज्ञानिक जगत मे सामान्य है। चतुर लोग जानते है कि किसी जानकार से कुछ उगलवाना है तो उन्हे गलत कह दो। इससे जानकारो के दिल पर चोट लगती है और फिर वे अपने को सही साबित करने के लिये ज्ञान की पूरी की पूरी गठरी खोल देते है। बेचारे जानकार समझाते रहते है और उकसाने वाले लोग माल समेटकर भाग जाते है। भारतीयो जानकारो मे मैने यह बात कुछ ज्यादा ही देखी है। विदेशो का मोह और उनके द्वारा वाह-वाही इतनी भली लगती है कि वे इसके लिये एडी-चोटी का जोर लगा देते है। जामुन वाली इस घटना मे भी असली उद्देश्य यही था। उनकी उम्मीद के अनुसार मै आवेश मे आता और जामुन के कुछ दुर्लभ प्रयोग उन्हे बता देता अपनी विद्वता झाडने के लिये और बस उनका काम बन जाता है। मेरा मौन उनके किये कराये पर पानी फेर देने वाला साबित हुआ।

जब मैने पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण करना आरम्भ किया तो शुरुआत मे मुझे बडी परेशानी हुयी। सभी को पकड-पकड कर यह मनवाना पडता था कि पारम्परिक चिकित्सक नीम-हकीम नही है। उनके पास सचमुच दिव्य ज्ञान है। वे सचमुच कैंसर के मरीजो को ठीक करने का प्रयास करते है। भले ही सिकल सेल एनीमिया को लाइलाज मान लिया गया है पर पारम्परिक चिकित्सक ऐसा नही मानते। लोग मेरी बातो को गम्भीरता से नही लेते थे। वे बोलते थे कि बिना नुस्खो को देखे हम कैसे मान ले? यह तो मुश्किल वाली बात थी क्योकि नुस्खे दिखाये नही जा सकते थे और बिना नुस्खे देखे वे मेरी बातो को अहमियत नही देते। मैने एक बार एक लेख लिखा कि कैसे पारम्परिक चिकित्सक एडस के मरीजो की चिकित्सा कर रहे है तो कुछ भारतीय वैज्ञानिक उठ खडे हुये। कहने लगे कि एडस तो अभी की बीमारी है फिर इसके विषय मे पारम्परिक ज्ञान कहाँ से आ गया? अब जब पारम्परिक ज्ञान ही नही था तो पारम्परिक चिकित्सक कैसे इलाज करेंगे? वे इस दावे के आधार पर मेरे दूसरे कार्यो को भी गलत बताने लगे। मैने उन्हे जवाब दिया कि एडस के रोगी को जब आधुनिक चिकित्सा पद्धति के चिकित्सक मरने के लिये छोड देते है तो मरता क्या न करता की तर्ज पर मरीज पारम्परिक चिकित्सको की शरण मे पहुँच जाते है। पारम्परिक चिकित्सक एडस का नाम तक नही जानते। वे तो बस मरीज के लक्षण के आधार पर अपने ज्ञान के अनुसार वनस्पतियो को आजमाते है। उन्हे लगता है कि मरीज की प्रतिरोधक क्षमता कम हो रही

है तो वे कुछ विशेष वनस्पतियो का प्रयोग करते है। बहुत से मामलो मे रोगी लम्बे समय तक जीवित रह जाते है। इसी आधार पर मैने लेख लिखा था।

मेरे जवाब को सुनकर भारतीय वैज्ञानिक तर्क करते रहे। इस बीच उन्होने मिलकर एक शोध-पत्र प्रकाशित कर दिया जिसमे मेरे उत्तर के आधार पर यह दावा किया गया कि जडी-बूटियो से एडस का इलाज हो सकता है। शोध-पत्र मे न तो मेरा नाम था और नही पारम्परिक चिकित्सको का सन्दर्भ। इस घटना ने मेरी आँखे खोल दी। मैने निश्चय किया कि यदि मै इसी तरह समझाने के चक्कर मे लगा रहा तो जीवन इसी मे बीत जायेगा और जाने-अनजाने लोग मुझसे सब कुछ उगलवाते जायेंगे। मैने शांति से अपने काम पर ही ध्यान केन्द्रित किया। इतना लिखा कि दुनिया मे शायद ही कोई देश हो जहाँ के शोध दस्तावेजो मे छतीसगढ के पारम्परिक चिकित्सको के महत्वपूर्ण योगदान की चर्चा न की गयी हो। पिछले वर्ष पचास से अधिक विश्व सम्मेलनो मे आमंत्रित वक्ताओ मे पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के दस्तावेजीकरण के इस प्रयास के विषय मे श्रोताओ को बताया। इस वर्ष फरवरी के आरम्भ मे दक्षिण आफ्रीका के डा. टोनी पुटर ने दिल्ली मे आयोजित एक विश्व कृषि सम्मेलन मे जानकारी दी कि आपके अपने देश भारत मे अमुक व्यक्ति ने मधुमेह पर एक करोड से अधिक पन्ने लिखे है तब लोगो ने आश्चर्य से आँखे चौडी कर ली। इस व्याख्यान को सुनने के बाद श्रोताओ मे से बहुतो ने मुझसे सम्पर्क किया। सही ही कहा गया है, घर का जोगी जोगडा और आन गाँव का सिद्ध।

किसी कार्य के बारे मे ज्यादा लोगो को जानकारी होना भी मुश्किल का काम है। कुछ समय पूर्व मुझे व्याख्यान के लिये मुम्बई बुलाया गया। आयोजको को खबर थी कि मै मधुमेह पर रपट लिख रहा हूँ। प्रमुख आयोजक मुझे अपने घर ले गये शाम के खाने के बहाने। चर्चा आरम्भ हुयी तो उन्होने दस उपयोगी नुस्खो के विषय मे जानकारी माँगी। मैने कहा कि यह तो देश का पारम्परिक ज्ञान है। ऐसे कैसे किसी को नुस्खो के बारे मे बताया जा सकता है? चर्चा का रुख बदला लेकिन फिर नुस्खो मे आ अटका। पेट मे चूहे कूद रहे थे पर खाने का नाम ही नही लिया जा रहा था। संकोचवश कुछ बोला नही गया। शाम सात से रात के बारह बज गये। मैने कहा कि अब वापस चलना होगा क्योकि कल सुबह यात्रा करनी है। इस पर प्रमुख आयोजक ने कहा कि जब तक आप नुस्खे नही बताते न तो आपको खाना मिलेगा और न ही आप यहाँ से जा सकते है। मै चौक गया। घबरा भी गया। मैने जोर से चिल्लाना शुरु किया। शोर सुनकर उनके घरवाले आ गये। मैने उन्हे सारी बात बतायी तो वे बहुत नाराज हुये। उनके बडे भाई ने आदर से मुझे होटल छुडवाया। दूसरे दिन मै हवाई अड्डे के लिये निकल ही रहा था कि प्रमुख आयोजक

फिर आ धमके और कहने लगे कि आपके पास नुस्खे है न, वो तो यहाँ के फुटपाथ मे और बसो मे दस-दस रुपयो मे बिकते है। वे चिल्लाते रहे और मै आगे बढ गया। फुटपाथ मे नुस्खे मिल रहे है तो यह सब ड्रामा करने की जरुरत ही क्या थी?

जामुन को पकने मे अभी देर है। फिर भी पारम्परिक चिकित्सक जामुन के पुराने पेडो के पास जाने की जिद मे है। सभी पारम्परिक चिकित्सको के पास जाना तो सम्भव नही है पर कुछ पारम्परिक चिकित्सको के साथ मै इसी सप्ताह जामुन से मिलने जाऊँगा। वनोपज एकत्र करने वाले जंगल की जमीन को साफ करने के लिये जंगल मे आग लगा देते है। इससे बहुत से उपयोगी पेड भी जल जाते है। पारम्परिक चिकित्सक जंगल जाकर इस बात की तसदीक कर लेना चाहते है कि सब कुछ ठीक है। फिर वे जामुन जिसे स्थानीय भाषा मे चिरई जाम कहा जाता है, को अलग-अलग सत्वो से सीचेंगे। इससे पेडो की सेहत सुधरेगी। पारम्परिक चिकित्सक कहते है कि जब ये पेड हमे औषधीय गुणो से परिपूर्ण फल दे रहे है तो हमारा भी यह दायित्व है कि हम उनकी सेवा करे। जंगली पेडो की ऐसी सेवा के बारे मे आपने शायद ही सुना होगा। मै तो अपने को परम सौभाग्यशाली मानता हूँ जो मै इस सेवा मे पारम्परिक चिकित्सको के साथ रहूँगा। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

“आतंकवादी जैसे ही राजनेता के घर घुसे सुरक्षा कर्मी पीछे लग गये। आतंकवादी दीवार तो लाँघ गये पर वनस्पतियो की बाड के सामने आकर ठिठक गये। उनका सिर घूमने लगा और पलक झपकते ही वे बेसुध होकर गिर गये। पीछे आ रहे सुरक्षा कर्मी भी बाड तक पहुँचे पर उनके ऊपर कोई असर नही हुआ। उन्होने मजे से आतंकवादियो को पकडा और अपने काम मे लग गये।“

“मीलो तक बारुदी सुरंगे फैली थी। सेना आगे बढे भी तो कैसे? इन बारुदी सुरंगो को यदि खोजने और नष्ट करने मे सेना जुटे तो उसे कई दशक लग जायेंगे। उसके पास बहुत से वाहन तो है पर वह पूरी तरह से आश्वस्त नही है। सेना को मन-मसोसकर अपना

अभियान रोकना पडता है। तभी किसी की सलाह आती है कि साहसी मनटोरा को बुला लिया जाये। आनन=फानन मे मनटोरा के गाँव हेलीकाप्टर भेजा जाता है। मनटोरा झट से आ जाती है। आखिर भारतीय रक्षको ने जो उसे याद किया था। अपने साथ वह पोटली मे भरकर कुछ बीज ले आती है। सेना के पास पहुँचते ही वह बीजो को एक घोल मे डुबोती है और बारुदी सुरंग वाले भागो मे बिखेर देती है। तीन दिनो के बाद उस भाग मे एक ही तरह के बीज से निकले दो तरह के पौधे दिखते है। एक तो स्वस्थ्य और दूसरे पीला पन लिये अस्वस्थ्य पौधे। मनटोरा कहती है कि अस्वस्थ पौधे जहाँ उगे है वहाँ बारुदी सुरंगे है। आप स्वस्थ्य पौधो के ऊपर से निकल जाये आपको कुछ नही होगा। पर यह आपको दस दिनो के भीतर करना होगा। दस दिनो के बाद अस्वस्थ पौधे अपना विस्तार करेंगे और इस प्रक्रिया मे उनकी जडे फैलेंगी। जडो के फैलने से बारुदी सुरंगे उडनी शुरु हो जायेंगी। तब सेना के लिये मुश्किल हो जायेगी।"

"ये क्या सर इतने विकास के बाद भी हमारी सेना सीधी लडाई कर रही है। बेवजह ही हमारे इतने सारे जवान मारे जा रहे है। अब किसी गाँव मे आतंकवादी छुपे है और घरो मे घातक हथियार होने की सम्भावना है तो इसके लिये घर-घर तलाशी की भला क्या जरुरत है। मुझे आप गाँव का एरियल व्यू दिखाइये। वनस्पतियाँ दिखाइये। घर के आँगन मे रखे तुलसी के पौधे दिखाइये, मै बताती हूँ किस घर मे आतंकवादी है और किस घर मे हथियार।"

ये साहसी मनटोरा नामक पात्र के इर्द-गिर्द रची जा रही विज्ञान कथा के कुछ अंश है। आशा है इन अंशो ने आपने मन मे जिज्ञासा को जनम दिया होगा। आज हैरी पाटर के युग मे मै ऐसे लेखन की बडी कमी महसूस करता हूँ। भाँति-भाँति के जंतुओ के बारे मे तो बहुत कुछ लिखा जाता है पर वनस्पतियो का वर्णन करने वाली विज्ञान कथाए बडी मुश्किल से मिलती है। आम लोग इस बारे मे पढना तो चाहते है पर उपलब्ध जानकारियाँ उन्हे नीरस लगती है। कुछ समय पहले ही मै एक आठ वर्षीय बालक से उसकी भविष्य़ योजनाए पूछ रहा था। उसने कहा कि वह सिंगर बनना चाहता है। उसके साथियो से भी पूछा तो इसी तरह के नये जवाब मिले। वैज्ञानिक बनने की बात किसी ने नही की। जब मैने उन्हे अपना परिचय दिया तो वे मेरे विषय मे ज्यादा रुचि लेते नही दिखे। कुछ प्रलोभन देकर मैने साहसी मनटोरा का अंग्रेजी संस्करण उन्हे पढने को कहा। उन्होने मन से पढना शुरु किया और आखिर तक पढते रहे। वह साहसी मनटोरा की जोखिम भरी कहानी थी जब पडोसी देश मे एक रहस्यमय बीमारी फैल रही होती। जाहिर है इसमे बहुत सी वनस्पतियो का वर्णन था। कहानी पढने के बाद बच्चो को मैने उन

वनस्पतियो के चित्र दिखाये और उनके बारे मे विस्तार से बताया। वे ये मानने को तैयार नही थे कि उनके आस-पास ऐसी वनस्पतियाँ हो सकती है। वे आँखे फाडकर चित्र देखते रहे। दूसरे दिन हमने पास के खाली पडे मैदान का भ्रमण किया और ढेरो वनस्पतियो को देखा। अब बच्चे जिद करने लगे कि वे साहसी मनटोरा की शेष कहानियाँ भी पढना चाहते है। मैने टालने की कोशिश की तो वे पीछे पड गये।

साहसी मनटोरा जैसी विज्ञान कथाए लिखना कठिन नही है पर सबसे बडी मुश्किल यह है कि इस विधा को प्रोत्साहित करने वाले बहुत कम लोग है इस देश मे। लेखक विज्ञान कथाओ की रचना तो कर ले पर उन्हे प्रकाशित कौन करेगा, उन्हे बेचेगा कौन? आज यदि हमारे बच्चे भारतीय विज्ञान कथाओ से दूर है और दूसरे देशो की कम स्तर की कथाए पढ रहे है तो इसके लिये सबसे बडे दोषी हम लेखक है जिन्होने ऐसी कथाओ की रचना नही की। यही अपराध-बोध मुझे समय निकालकर "साहसी मनटोरा" लिखने के लिये प्रेरित करता रहा है।

वैसे सही नजरिये से देखा जाये तो हम लोगो ने विज्ञान लेखक बनने की उम्र पार कर ली है। विज्ञान कथाओ मे गजब की कल्पना शक्ति चाहिये और जितनी कल्पना शक्ति बच्चो के पास होती है उतनी किसी के पास नही होती। भले ही हमारी आज की व्यव्स्था इस कल्पना शक्ति का गला घोटने की फिराक मे रहती है। बडे होते तक बच्चा समाज के दूसरे लोगो की तरह सोचने लगता है। बहुत कम ही अपनी मूल कल्पना शक्ति को सहेज पाते है। अकेले विज्ञान कथा लिखने का बजाय मै किसी बच्चे के साथ मिलकर जुगलबन्दी मे विज्ञान कथाए लिखना चाहूँगा। मुख्य लेखक का दर्जा निश्चित ही बच्चे को ही मिलेगा। मुख्य लेखक के रुप मे यह बच्चा बाद मे अपनी जिम्मेदारी को समझते हुये नयी पीढी को मुख्य लेखक के रुप मे प्रोत्साहित करता रहेगा।

बचपन मे पराग और नन्दन के माध्यम से बहुत सी विज्ञान कथाए पढने का अवसर मिला पर अब समझ आता है कि उनमे से ज्यादातर पाश्चात्य विज्ञान कथाओ से प्रेरित थी। यही कारण है कि उन्हे पढने और समझने मे दिक्कत होती थी। उनके लेखक यह मान बैठते थे कि पाठको को आधारभूत जानकारियाँ है जबकि हर बार ऐसा नही होता है। मुझे लगता है कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान को समझाती हुयी विज्ञान कथाए लिखनी चाहिये। ऐसी विज्ञान कथाए जो जीवन भर बच्चो का मार्ग-दर्शन करे। उन्हे संकट मे काम आये। इसी बहाने वह अपने परिवेश को समझ सके। आस-पास के जीवो और वनस्पतियो से रु-बरु हो सके। यदि लेखक भारतीय ज्ञान-विज्ञान की सहायता से दुनिया भर की समस्याओ को सुलझाने के लिये पाठको को प्रेरित कर सके तो यह सोने मे

सुहागा वाली बात होगी। “साहसी मनटोरा” मे मुख्य पात्र मनटोरा न केवल आस्ट्रेलिया के जगलो मे लगी आग को बुझाने मे स्थानीय ज्ञान का उपयोग करती है बल्कि इटली मे आये भूकम्प के कारण मलबे मे फँसे नागरिको के लिये उपाय सुझाती है।

मेरे एक सैनिक मित्र “साहसी मनटोरा” के कुछ अंशो को पढकर प्रतिक्रिया देते है कि यह तो बडो के लिये भी काम की चीज है। इसमे की गयी कल्पनाए भारतीय सैन्य विशेषज्ञो को प्रेरित कर सकती है अनसुलझी समस्याओ के समाधान के लिये। इस तरह की प्रतिक्रियाए प्रेरणा पुंज बनती है। भारत मे डा. अरविन्द मिश्र जैसे चुने हुये समर्पित लोग ही भारतीय विज्ञान काथाओ के प्रोत्साहन की अलख जगाये है। वे निश्चित ही प्रशंसा के पात्र है। मुझे लगता है हर लेखक को विज्ञान कथा लिखने का पुण्य काम करना चाहिये ताकि भारतीय ज्ञान-विज्ञान की महक पीढीयो तक यूँ ही बनी रहे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

क्या पानी भी कभी किसी के लिये अभिशाप बन सकता है? इसका जवाब हाँ मे है। दुनिया मे ऐसे गिने चुने लोग होते है जिन्हे “एक्वाजेनिक अर्टिकेरिया” नामक बीमारी होती है। ये लोग पानी पी सकते है बिना किसी मुश्किल के पर जब पानी से नहाने की कोशिश करते है तो इनके शरीर मे शीत-पित्ती की तरह चकत्ते पड जाते है। 1964 मे सबसे पहली बार इस अजब बीमारी के बारे मे पता चला था। दिसम्बर, 2008 मे न्यू साइंटिस्ट नामक प्रतिष्ठित चिकित्सा पत्रिका ने सात ऐसे रहस्यमय मामलो की पडताल की जिसमे विषय मे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के पास कोई ठोस जवाब नही है। “सेवन अनसाल्वड मेडीकल मिस्टरीज” के विषय मे आप इस कडी पर जाकर पढ सकते है। इस कडी मे आपको छ्त्तीसगढ के सम्बन्ध मे कुछ नही मिलेगा पर इस रहस्यमय मामले का सम्बन्ध छ्त्तीसगढ मे जुडता है।

जैसा कि आप जानते है कि अपने वानस्पतिक सर्वेक्षणो के दौरान मै पारम्परिक चिकित्सको से मिलता रहता हूँ। उनसे अलग-अलग विषयो पर चर्चा होती रहती है पर बहुत से ऐसे अनसुलझे और जटिल मामलो की चर्चा भी उनसे करता रहता हूँ। आपमे से

बहुत से लोगो ने यूनिवर्सिटी आफ पिट्सबर्ग के पैथोलाजी विभाग की यह वेबसाइट देखी होगी। चिकित्सा क्षेत्र मे शोध से जुडे लोग इस साइट मे केस स्टडीज को आपस मे बाँटते है और फिर विशेषज्ञो की राय से नतीजे तक पहुँचने की कोशिश करते है। इंटरनेट पर ऐसी बहुत सी वेबसाइट है। मै इन सभी जटिल मामलो को पारम्परिक चिकित्सको के सामने सरल भाषा मे रखकर उनसे चर्चा करता हूँ तो बहुत से उपयोगी सुझाव सामने आ जाते है। लम्बे समय तक इस क्षेत्र मे काम करने के कारण अक्सर इन मामलो मे मै भी बहुत कुछ सुझा पाता हूँ। पारम्परिक चिकित्सको और अपने सुझावो को मै अपने डेटाबेस मे दर्ज करता जाता हूँ। जब मै पानी से होने वाली एलर्जी का मामला लेकर पारम्परिक चिकित्सको के पास पहुँचा तो उन्होने आशा के विपरीत किसी भी तरह का आश्चर्य नही प्रकट किया। इसका मतलब यह था कि वे इस तरह की एलर्जी से परिचित थे। जब हमने कारणो पर चर्चा की तो वे मुस्कुराते हुये बोले कि रविवार को सुबह खाली पेट आना फिर इस पर चर्चा करेंगे।

अल सुबह मै उनके पास पहुँचा तो उन्होने बहुत सी वनस्पतियाँ अपने पास एकत्र कर रखी थी। सबसे पहले उन्होने कहा कि मै पास के झरने मे स्नान कर लूँ। मै वापस लौटा तो उन्होने कुछ जंगली फल खाने को दिये। फल खाने के कुछ समय बाद उन्होने मेरे हाथ को पानी मे डुबोया और कुछ ही देर मे शीत-पित्ती जैसे लक्षण उभर आये। मै आँखे फाडे देखता रहा। फिर उन्होने जंगली फलो के पेडो से एकत्र की गयी पत्तियो का रस पिलाया। फिर से पानी मे हाथ डुबायो तो चकत्ते नही निकले। कुछ देर की चर्चा के बाद उन्होने विशेष तरह के औषधीय चावल मे कुछ जडी-बूटियाँ मिलाकर मेरे सामने परोसा। एक निवाला ही खाया था कि अजीब स्वाद के कारण मै रुक गया। उन्होने कहा कि यदि नही अच्छा लग रहा हो तो न खाये। कुछ समय बाद फिर से पानी का पात्र लाया गया और उसमे हाथ डुबोया गया। चकत्ते फिर उभर आये। उसके बाद एक पेड की छाल चबाने को दी गयी। पानी मे फिर हाथ डुबोया गया तो चकत्ते नही उभरे। और जो थे वे ठीक हो गये। आपको आश्चर्य होगा कि उस दिन उन्होने बीस से अधिक किस्म की औषधीयाँ खिलायी और चकत्तो के उभरने और गायब होने का दौर चलता रहा। अनगिनत प्रश्न लिये मै उनसे चर्चा की बाट जोहता रहा।

पारम्परिक चिकित्सको से लम्बी चर्चा से यह सार निकला कि इस वाटर एलर्जी से प्रभावित व्यक्ति से विस्तार से चर्चा की जाये विशेषकर खान-पान और उसके आस-पास की वनस्पतियो के विषय मे पूछा जाये। उसकी प्रकृति के आधार पर विभिन्न वनस्पतियो का उस पर वैसा ही परीक्षण किया जाये जैसा मुझ पर हुआ और फिर एक बार मर्ज

पकड आने पर उसकी चिकित्सा की जाये। उन्होने विश्वास से कहा कि यह मर्ज ठीक हो सकता है। मै इसे दूसरे नजरिये से भी देखता हूँ। एक बार मरीज पर वनस्पति विशेष के प्रभाव को देखने के बाद होम्योपैथी के सिद्धांत को अपनाकर भी उसे ठीक किया जा सकता है। हमारे पारम्परिक चिकित्सक होम्योपैथी नही जानते। उनका अपना अलग ढंग चिकित्सा का।

क्या कोई विश्वास करेगा कि दुनिया की सात अनसुलझे चिकित्सा मामलो पर इतनी सरल चर्चा हम हिन्दी के एक आलेख मे कर रहे है और आप जैसे पाठक सबसे पहले इसे पढ रहे है। यह सब पढने के बाद आपको क्या यह नही महसूस होता कि किसी भी चिकित्सा समस्या को दुनिया भर के सभी विशेषज्ञो के सामने चर्चा के लिये रखना चाहिये, आधुनिक हो या पारम्परिक? इससे जो सकरात्मक परिणाम आयेंगे उससे अंतोगत्वा लाभ तो मानवता का ही होगा। मुझे मालूम है कि आधुनिक चिकित्सा के ज्यादातर जानकारो तक यह बात नही पहुँचेगी। पर फिर भी प्रयास करने मे क्या परेशानी है? मुझे लगता है कि यदि आधुनिक और पारम्परिक चिकित्सको के बीच सेतु का निर्माण किया जाये तो दुनिया भर मे असंख्य जाने बच सकती है। इंटरनेट पर दर्ज कैसर के बहुत से मामलो पर मैने अपने विचार डेटाबेस मे संजोये और साथ ही पारम्परिक चिकित्सको के सुझाये उपायो को भी अपने डेटाबेस मे रखा। मेरे पास कोई रास्ता नही था कि मै ये उपाय उन आधुनिक चिकित्सा शोधकर्ताओ और विशेषज्ञो के पास पहुँचा पाता जो कि कैसर की अंतिम अवस्था मे पहुँच चुके मरीजो का इलाज कर रहे थे। चिकित्सा सम्बन्धी पारम्परिक ज्ञान के विश्व स्तर पर खुले प्रयोग की इजाजत हमारा कानून नही देता। सबसे बडी बात भारतीय पारम्परिक चिकित्सको को अपने देश मे नीम-हकीम का दर्जा प्राप्त है। फिर मै भी चिकित्सक नही हूँ। ऐसे मे सारा ज्ञान वैसा का वैसा पडा रहा और जीवन के लिये संघर्ष कर रहे मरीजो के यह काम नही आया।

इस लेख के माध्यम से मै आप सभी पाठको से अनुरोध करता हूँ कि इस पर गहनता से विचार करे और मानवता की सेवा हो सके ऐसे पथ पर बढने का सुझाव दे। मै तो इन सब अनुभवो और ज्ञान को दुनिया के लिये दस्तावेज के रुप मे सहेज रहा हूँ पर चाहता हूँ कि मेरे जीवन मे ही वह दिन आये जब सारे बन्धन और अहम को छोडकर सभी क्षेत्र के चिकित्सक एक मंच पर आये और उनका उद्देश्य हो मानव-कल्याण। सभी अपनी चिकित्सा पद्धतियो के अच्छे गुणो से रोगो से लडे और विश्व-कल्याण मे अपना असल योगदान देवे।   (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

अहमदाबाद विमानतल से जैसे ही हमारे विमान ने उडान भरी बगल मे बैठे सज्जन बडे ही बैचैन दिखायी दिये। यह असामान्य बात नही थी क्योकि अक्सर उडान के समय बहुत से लोग तनावग्रस्त हो जाते है। जैसे-जैसे विमान ऊपर जाने लगा वे खिडकी से झाँककर नीचे देखने लगे। नीचे देखते हुये कुछ बुदबुदाते और फिर बार-बार कान पकडकर क्षमा माँगते। कुछ समय बाद तो वे रोने लगे। मुझसे रहा नही गया। मैने कहा कि यदि डर लग रहा है तो नीचे न देखे। मुझसे बात करे। डर की कोई बात नही है। वे कुछ नही बोले बस रोते रहे। जब विमान सीधा हो गया तो एक सहयात्री जो कि उनकी ही उम्र के थे, ने उनसे इस सब का कारण पूछा। “क्या यह आपका पहला सफर है?” उनका पहला प्रश्न था। “नही, मै तो सप्ताह मे चार बार मुम्बई से आना-जाना करता हूँ।“ यह उत्तर चौकाने वाला था। “दरअसल नीचे शहर मे हमारा मन्दिर है। जब विमान से आसमान की ओर जाता हूँ तो मुझे अपराध-बोध होता है कि मै भगवान से ऊपर पहुँच गया हूँ। इसलिये मंत्र बुदबुदाते हुये और रोते हुये कुछ प्रायश्चित कर लेता हूँ। इससे उडान का भय भी कम हो जाता है।“ उन्होने सारी बाते खोल दी। सब इस जवाब से हैरान थे पर किसी ने कुछ नही कहा। काफी देर बाद एक सहयात्री ने कहा कि भगवान नीचे नही आपके मन मे है। आप जितनी ऊँचाई या गहराई पर जाये वो हमेशा आपके साथ रहेगा। मंत्र वाले सज्जन चुप रहे और खिडकी से बाहर देखते रहे।

सेकंड एसी की एक यात्रा के दौरान एक मोटे से व्यक्ति ने सामने की सीट पर अपना सामान रखा और झट से अपने बारे मे बता दिया। कहा कि मै व्यापारी हूँ। वसूली करके आ रहा हूँ। सूटकेस मे लाखो है। कलकत्ता मे उतरना है। आप सभी भी कलकत्ता जा रहे है ना? शायद उसने रिजर्वेशन चार्ट से हमारे बारे मे कुछ जान लिया होगा। उस व्यापारी ने कोच अटेंडेंट को बुलाया और उसे कुछ पैसे दिये। फिर हमसे चर्चा करने लगा। उसने बताया कि वह दो बार जहरखुरानी का शिकार हो चुका है। लाखो की चपत लगी है। इसलिये सुरक्षा के उपाय कर लेता है। हम हैरान थे उसके उपायो वाली बात सुनकर। वह तो खुल्लमखुल्ला हम लोगो को पैसे दिखा रहा था। फिर क्यो सुरक्षा की बात कर रहा था? रात हुयी तो उसने कोई काली सी चीज बाहर निकाली और उसमे आग लगा दी।

चमडे के जलने जैसी गन्ध एसी कोच मे फैलने लगी। हमने उसे टोका पर उसने हमे शांत रहने को कहा। जल्दी ही वह चीज जलकर खाक हो गयी। अब उसके चेहरे पर निश्चिंतता के भाव दिखने लगे। उसने शराब की बोतल निकाली और काफी शराब हलक मे उतारने के बाद पैसो से भरे सूटकेस को तकिये की तरह सिरहाने मे रखकर सो गया। सुबह जब मैने उससे उस चीज के बारे मे पूछा तो उसने कहा कि अरे उसी चमडे ने तो रात भर पैसो की रक्षा की।

मुझे याद आता है बचपन मे गाँव जाते वक्त हमे खारुन नदी नाव (डोंगा) से पार करनी होती थी। पिताजी के पास लेम्ब्रेटा स्कूटर था। माता-पिता और हम दो भाई उसी शाही सवारी मे गाँव जाते थे। लेम्ब्रेटा बडी भारी गाडी होती थी। उसे नाव मे चढाना और फिर नदी पार करने के बाद उस पार उतारना किसी सिरदर्द से कम नही था। नाव मे छेद थे। एक आदमी अन्दर भर रहे पानी को उलीचता रहता था। खेवैया को भी नाव की खस्ता हालत का पता था। तभी तो थोडी भी नाव डोलती तो वह यात्रियो को छोडकर पानी मे छलांग लगा देता था। यात्री जब चिल्लाते थे कि सब ठीक है तो फिर वापस आ जाता था। तब तक यात्री भगवान भरोसे रहते थे। मुझे यह भी याद आता है कि एक बुजुर्ग नाव के बीच मे बैठे कुछ गुनगुनाते रहते थे। नदी पार होने के बाद ही कुछ बोलते थे। हमे पूरा विश्वास था कि वे इस खतरनाक परिस्थिति मे मंत्र या भजन गाते रहते होंगे। वे अक्सर उस रास्ते पर मिल जाते थे। कुछ बडा हुआ तो उनसे इस बारे मे पूछा। वे बोले "अरे मै तो मोहम्मद रफी के गाने गाता रहता हूँ। इससे खतरे से ध्यान बँटा रहता है। और गाने का शौक पूरा होता रहता है।"

ऊपर के तीनो उदाहरण इस बात की पुष्टि करते है कि इन तीनो ही मामलो मे सम्बन्धित व्यक्ति खतरो से ध्यान बँटाना चाहते थे। अज्ञात और अदृश्य ही सही पर इन तीनो को किसी सहारे की जरुरत थी जो उन्हे खतरो से बाहर निकाल सके। भगवान से क्षमा माँगते हुये हवाई सफर करने वाले सज्जन का उडान के समय उत्पन्न होने वाला डर काबू मे रहता था। वे शायद यह सब नही करते तो विमान मे सफर नही कर पाते। इन उदाहरणो से यह बात भी स्पष्ट होती है कि चाहे क्षमा माँगी जाये या चमडा जलाया जाये या फिर रफी के गाने गाये जाये, जो खतरा है वह तो बना ही रहता है। यदि आप पूछे कि इनमे से कौन सबसे पहले तांत्रिको का सरल शिकार बन सकता है तो मेरा जवाब होगा कि रेल वाला व्यापारी। सम्भवत: वह शिकार हो भी चुका हो। दूसरे नम्बर पर हवाईजहाज वाले सज्जन है। कोई उन्हे कह दे कि इतने रुपये का दान दे दो और यह माला पहन लो तो भगवान का गुस्सा कम हो जायेगा और वे कुछ नही कहेंगे तो वे

सहर्ष तैयार हो जायेंगे। संकट मे फिल्मी गाने गाने वाला शायद ही तांत्रिक के चंगुल मे आये।

ये तीनो व्यक्ति किसी न किसी रुप मे हमारे अन्दर भी है और अलग-अलग परिस्थितियो मे कभी कोई तो कभी कोई हावी होता रहता है। यदि आप तीसरे व्यक्ति की छवि को सदा मन मे रखे तो मुझे लगता है आप ज्यादा फायदे मे रहेंगे। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

(क्या आप बीटी बैगन के लिये प्रयोगशाला जीव बनने तैयार है?)
- पंकज अवधिया

जब चने की फसल मे इल्लियो का आक्रमण होता है तो बहुत से जानकार किसान खेतो मे घूम-घूम कर अपने आप मरी हुयी इल्लियो की खोज करते है। फिर इन इल्लियो को पानी मे मिलाकर घोल बनाते है और इस घोल को चने की प्रभावित फसल मे डाल देते है। कुछ ही समय मे चने की इल्लियाँ मरने लगती है और फसल इस कीट से मुक्त हो जाती है। यह चमत्कार नही है। इसका भी एक विज्ञान है। दरअसल किसान जिन मरी हुयी इल्लियो को एकत्र करते है उनकी स्वावभाविक मौत नही हुयी होती है। बैसीलस थरिजेनेसिस नामक जीवाणु (बैक्टीरिया) के कारण हुयी होती है। जब मरी हुयी इल्लियो का घोल बनाया जाता है तो इन जीवाणुओ को फैलने का मौका मिल जाता है। इल्लियो का घोल जब चने की फसल पर डाला जाता है तो ये जीवाणु फैल जाते है और स्वस्थ्य इल्लियो को अपनी चपेट मे ले लेते है। इस तरह बिना रसायन के किसान चने की इल्लियो से निपट लेते है।

जब वैज्ञानिको ने यह देखा तो उन्होने किसानो के दोस्त और इल्लियो के दुश्मन इस जीवाणु पर विस्तृत शोध आरम्भ किया। शोध के दौरान उन्होने जीवाणु के शरीर मे ऐसे जीन (टाक्सिन) का पता लगाया जो कि इल्लियो के लिये जानलेवा था। अब वैज्ञानिको का खुरापाती मन जागा और उन्होने इस जीन को उन फसलो मे डालना आरम्भ किया

जिनमे इन इल्लियो का आक्रमण होता था। उन्होने पाया कि जीवाणु के जीन युक्त पौधो मे इल्लियो का आक्रमण कम या नही के बराबर होता है। इसे एक क्रांतिकारी खोज माना गया।

आपने इस जीवाणु का वैज्ञानिक नाम पहले पढा है। बैसीलस थरिजेनेसिस। संक्षेप मे इसे बीटी कह दिया जाता है। वही बीटी जिसका नाम विदर्भ मे आत्महत्या कर रहे किसानो के सन्दर्भ मे बार-बार आता था। सबसे पहले बीटी कपास या काटन भारत मे प्रस्तुत किया गया। कपास की फसल को इल्लियो से बहुत नुकसान पहुँचता है। बीटी काटन को प्रस्तुत करने वाली कम्पनियो ने बडे-बडे दावे किये कि इससे किसानो का भला होगा और कीटो से होने वाले नुकसान मे भारी कमी होगी। आप जानते ही होंगे कि बीटी काटन का व्यापक विरोध हुआ। इसे जैव-विविधता और देशज वनस्पतियो के लिये खतरा बताया गया। यह भी कहा गया कि इससे देशी किस्मे धीरे-धीरे खत्म हो जायेगी और किसानो की निर्भरता विदेशी कम्पनियो पर बढ जायेगी। भारत मे बतौर प्रयोग इन्हे बहुत से स्थानो मे लगाया गया। दक्षिण भारत मे तो किसानो ने फसल को जला दिया। ऐसा नही है कि सभी इसके विरोध मे थे। देशी-विदेशी वैज्ञानिको ने इसका समर्थन किया।

बीटी फसलो का विरोध करने वाले ये चेताते है कि जीवाणु के जीन से युक्त फसले जब आम लोगो के द्वारा उपयोग की जायेंगी तो उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पडेगा। अब प्रकृति मे तो ऐसा होता नही है। यह तो मानव जनित प्रयोग के परिणाम है। कौन जाने ऊँट किस करवट बैठेगा? समर्थन करने वाले वैज्ञानिक कहते रहे कि इससे स्वास्थ्य को कोई नुकसान नही होगा जबकि विरोधी कहते रहे कि दूरगामी विपरीत परिणाम होंगे। जब बीटी काटन को प्रस्तुत किया गया तो यह दावा किया गया कि चूँकि कपास को किसी तरह मनुष्य़ खाने के उपयोग मे नही लाता है इसलिये जीवाणु के जीन युक्त कपास से मनुष्य़ॉ के स्वास्थ्य पर विपरीत असर नही पडेगा। पर विरोधियो ने तर्क दिये कि कपास की खली जानवर खाते है और उन जानवरो का माँस और दूध मनुष्य इस्तमाल करते है इसलिये जीवाणु का विष मनुष्य़ के भीतर आ सकता है। सारे विरोधो के बावजूद बीटी काटन भारत आया। किसानो ने इसे हाथो-हाथ अपनाया। इसके महंगे बीजो के लिये ऋण लिया। दावे खोखले निकले। इल्लियो का जबरदस्त आक्रमण हुआ और फसल चौपट हो गयी। किसान कर्ज के भारी बोझ मे दब गये और उसके बाद क्या हुआ हम सब जानते है। इस सब के बाद समर्थक यह खबरे प्रकाशित करवाते रहे कि किसानो की आत्महत्या का कारण बीटी काटन नही बल्कि खराब मौसम है। और विरोधी कहते रहे कि सारा किया कराया बीटी काटन का ही है।

अब एक बार फिर देश मे बीटी फसल की चर्चा है। इस बार बीटी बैगन आ रहा है। आ रहा है या कहे, आ गया है। समर्थक और विरोधी मोर्चे पर डटे हुये है। चूँकि यह क्लिष्ट तकनीकी विषय है इसलिये आम जनता इससे अंजान है। किसी ने उन्हे सरल भाषा मे समझाया नही। पर यह भी नग्न सत्य है कि इस बीटी बैगन को खाना उन्हे ही है। वैसे हमारे देश मे आम जनता से पूछने की परम्परा नही है। जनता नेताओ को चुन लेती है और वैज्ञानिक नेताओ से चिपक जाते है। बस ये दोनो ही आम जनता से पूछे बिना पाँच वर्षो तक अपना राज चलाते है। जनता मे से कोई पूछता है तो तकनीकी बाते करके उन्हे चुप कर दिया जाता है। जब हाल ही मे विदेशो से घटिया क्वालिटी का गेहूँ खरीदा गया था तो कुछ वैज्ञानिको ने दबी जबान से कहा था कि यह जहरीला है। और इसके साथ दसो नये खरपतवार आ जायेंगे। ये खरपतवार पीढीयो तक गाजर घास की तरह देश का अरबो नुकसान करते रहेंगे। उन वैज्ञानिको को चुप करा दिया गया। मैने इस विषय मे हिन्दी मे लेख लिखे पर पंजाब की एक कृषि पत्रिका ने इसे छापने से इंकार कर दिया। फिर दूसरे अखबारो ने भी जैसे मौन साध लिया। आज जहरीला गेहूँ दुकानो मे मिल रहा है। जहर तो चुपचाप असर कर रहा है पर गुणवत्ता के बारे मे शिकायते आने लगी है। कुछ ही महिने पहले भुवनेश्वर के कृषि विश्वविद्यालय ने एक खबर छपवायी कि विदेश से आयातित गेहूँ के साथ आये खरपतवारो ने उडीसा मे फैलना शुरु कर दिया है। चलिये अब वैज्ञानिको को नया काम मिला। अब खरपतवार फैलेंगे तो उनके नियंत्रण पर शोध होंगे। रसायनो का अनुमोदन होगा तो देशी-विदेशी कम्पनियो के दिन फिरेंगे। एक बार घटिया गेहूँ लाकर हमारे योजनाकर्ताओ ने दशको तक अपने लोगो की मलाई का प्रबन्ध कर दिया।

आम जनता को न तो घटिया गेहूँ के आयात का पता था न ही बीटी बैगन के आगमन का। मै यह दावे से कह सकता हूँ कि आपमे से अधिकतर पाठक भी इस लेख के माध्यम से पहली बार इस विषय मे सरल भाषा मे जानकारी पा रहे होंगे। यही इस लेख का उदेश्य भी है। अब आप ही बताइये कि क्या आप जीवाणु के जीन युक्त बैगन को खाना पसन्द करेंगे? क्या आप से किसी ने इसके बारे मे पहले पूछा? क्या इस पर व्यापक राष्ट्रीय बहस की जरुरत नही है? मुझे आम जनता की स्थिति बहुत दुखदायी लगती है। आम जनता जाने या न जाने पर वह चाहकर भी कुछ नही कर सकती। वह समर्थको और विरोधियो के बीच पिसने के लिये अभिशप्त है। मै बातो का खुलासा कर ही देता हूँ।

बीटी फसलो की जब भारत मे बात शुरु हुयी ही थी तो विरोधियो के तर्को से प्रभावित होकर मैने इसके विरोध मे बिगुल फूँका था। रैलियो और प्रदर्शनो मे भाग लिया और लेख

भी लिखे। एक बात मुझे हमेशा खलती रहती थी कि किसी ठोस वैज्ञानिक आधार पर हम विरोध नही कर रहे थे। बस विरोध करना है इसलिये कर रहे थे। प्रदर्शनो के दौरान मै साथियो से पूछता था कि आप क्यो विरोध कर रहे है? तो वे सीधा जवाब नही दे पाते थे। वे कहते थे कि इन फसलो से मनुष्यो मे कैसर हो जायेगा। कोई प्रमाण? तो वे बगले झाँकने लगते थे। कम्पनी के लोग दावा करते थे कि इससे कैंसर नही होगा। कोई प्रमाण? तो उनकी स्थिति भी वही होती थी। यह फसल वैज्ञानिको की कारतूत है। जब इससे पहले किसी ने इसे नही बनाया तो कैसे अनुमान लगाया जा सकता है कि आम मनुष्यो पर इसका कोई असर पडेगा कि नही। कम से कम दस साल तक प्रयोगशाला जीवो को खिलाकर यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि इसका क्या असर होगा मनुष्यो पर। पर बाजार के चलते यह सब करने को कोई तैयार नही है। कम्पनी साधन सम्पन्न है इसलिये बडे से बडा वैज्ञानिक उनके पक्ष मे बोलने को तैयार है। वे लोग अखबारो मे भी अपने पक्ष मे खबर छपवाने मे सक्षम है। उन्हे पता है कि आम जनता के मन मे वैज्ञानिको के प्रति बहुत सम्मान है। आम जनता तक बात पहुँचेगी और वे बीटी फसलो को अपना लेंगे। इस सब के चलते विरोधियो की आवाज नक्कारखाने मे तूती की आवाज साबित हो रही है। मै बीटी फसलो के विरोध की अपनी मुहिम की बात कर रहा था। मेरा विरोध चलता रहा। कुछ समय मे भीड छँटने लगी। राष्ट्रीय स्तर पर शोर मचाने वाले अचानक से चुप हो गये। मुझे देखकर कन्नी काटने लगे। मुझे असमंजस मे देखकर किसी ने कहा कि ऊपर सेटिंग हो गयी होगी। अब दूसरे मुद्दे पर आँदोलन करते है। आपको कुछ चाहिये था तो पहले कहना था न। उसके बाद बीटी काटन भारत आया और बरबादी फैलाता रहा। मजाल है कि विरोध मे एक भी स्वर उठे हो।

आज जब बीटी बैगन के विरोध मे स्वर उठ रहे है तो मुझे पुरानी बाते याद आ रही है। कौन जाने विरोध करने वाले कम्पनी के ही लोग हो ताकि दूसरे विरोधी न खडे हो। आप देखियेगा बीटी बैगन के विरोध का शोर भी अचानक थम जायेगा और जल्दी ही यह आपके खाने की टेबल पर दिखेगा। पर फिर भी इस लेख के माध्यम से मै आम जनता को इस नयी तकनीक के बारे मे बता देना चाहता हूँ। इस उम्मीद मे कि शायद वह प्रयोगशाला जीव बनने के लिये तैयार न हो और इस पर राष्ट्र स्तरीय चर्चा की पहल करे। अमेरिका के लोग प्रयोगशाला जीव बनने को तैयार है। यूरोपीय देश इस तकनीक को संशय से देख रहे है। हाल ही मे जर्मनी ने जनता का माँग पर ऐसी फसलो पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। क्या भारत के आम लोग जागेंगे? (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

(बीटी बैगन बनाम देशी बैगन : क्या कहते है पारम्परिक चिकित्सक)
- पंकज अवधिया

घर के पिछवाडे मे उग रहे बैगन के पौधो को दिखाते हुये पारम्परिक चिकित्सको ने फलो को गौर से देखने को कहा। फलो मे काँटे थे। वे बोले, "ये असली देशी बैगन है जिसका प्रयोग हम औषधीय मिश्रणो मे करते है। ये बाजार मे नही मिलता। आप इसे आम लोगो को दिखायेंगे तो वे असमंजस मे पड जायेंगे क्योकि उन्होने ऐसा बैगन देखा ही नही होगा। आप जब भोजन करेंगे तो इसके असली स्वाद का पता लगेगा।" पारम्परिक चिकित्सक कहते जा रहे थे और मै सुनता जा रहा था। उन्होने बैगन के फल तोडे और घर के अन्दर दे दिये। उस दिन दोपहर के भोजन मे बैगन जिसे स्थानीय भाषा मे भाटा कहा जाता है, की सब्जी परोसी गयी। सचमुच स्वाद गजब का था। इतना गजब का कि सिर्फ उसे ही खाते रहने का मन हुआ।

बैंगन भारतीय मूल की वनस्पति है। यह हमारा सौभाग्य है कि देशी बैगन अभी भी कुछ लोगो के पास है। अपना बीज बचाने की परम्परा के कारण ही किसानो और पारम्परिक चिकित्सको के पास यह सुरक्षित है। वर्ना वैज्ञानिको का बस चलता तो कब के वे ये बीज एकत्रकर किसानो से ले जाते और बदले मे नयी किस्मो के बीज दे जाते। ये नही पूछिये कि पारम्परिक बीज कहाँ जाते? बीज देने वालो की सात पीढीयाँ भी इस सवाल का जवाब नही पाती। बैगन आज भी हमारे समाज मे रचा बसा है। आम लोग इसके फलो के सब्जी के रुप मे उपयोग के विषय मे ही जानते है। उन्हे समय-समय पर बताया जाता है कि बैगन वास्तव मे बेगुन है अर्थात इसके सेवन से नुकसान होता है। यह सच है कि कुछ विशेष रोगो मे बैगन के उपयोग की मनाही है पर बैगन दिव्य औषधीय गुणो से युक्त है। हमारे प्राचीन चिकित्सा ग्रंथ इसके गुणो के बखान से भरे पडे है। देश के दूरस्थ अंचलो मे अपनी सेवाए दे रहे पारम्परिक चिकित्सक सैकडो नही हजरो नुस्खो मे बैगन का प्रयोग बतौर औषधी कर रहे है। केवल फल ही नही अपितु इसके सभी भागो का प्रयोग पारम्परिक चिकित्सा मे होता है। बैगन की जड उन जटिल मिश्रणो मे डाली

जाती है जिनका प्रयोग कैंसर जैसे लाइलाज समझे जाने वाले रोगो की चिकित्सा मे होता है। बहुत से जटिल त्वचा रोगो मे बैगन की जडो के पास की मिट्टी एकत्र कर ली जाती है और लेप के रुप मे इसका प्रयोग किया जाता है। पीपल, नीम और बरगद जैसे पेडो के नीचे से एकत्र की गयी मिट्टी के साथ भी इसका प्रयोग होता है। बैगन की फसल मे नाना प्रकार के कीटो का आक्रमण होता है। इन कीटो का प्रयोग भी पारम्परिक चिकित्सा मे होता है। बहुत सी औषधीय वनस्पतियो जिनमे अश्वगन्धा भी शामिल है, को औषधीय गुणो से समृद्ध करने के लिये बैगन के विशेष सत्वो का प्रयोग किया जाता है। यहाँ मै देशी बैगन की बात कर रहा हूँ न कि जहरीले रसायनो के घोल मे डुबोकर चमकदार बनाये गये जानलेवा बैगन की जिसे आपने कुछ ही दिनो पहले बाजार से खरीदा होगा।

बैगन का उत्पादन बढाने के लिये हमारे देश के कृषि वैज्ञानिको ने एडी-चोटी का जोर लगा दिया है। किसान बडे पैमाने पर इसकी खेती करते है और मुनाफा कमाते है। उनके पास कृषि रसायनो के घातक हथियार है जिनसे वे कीटो और रोगो पर नियंत्रण प्राप्त कर लेते है। जब कीटो और रोगो मे प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाती है तो किसानो को उससे भी घातक हथियार मुहैया करवा दिये जाते है। इस तरह यह क्रम दशको से चल रहा है। साल दर साल जहरीले रसायनो के प्रयोग से सबसे ज्यादा नुकसान आम जनता का हो रहा है जो बाजार से खरीदकर इसे खाती है। सब जानते है कि कृषि रसायन नुकसान करते है और इनका प्रयोग बढता जा रहा है पर फिर भी जहरीले बैगन को खाना कम नही करते है। शहर और गाँव दोनो ही रोगो के घर बनते जा रहे है। पारम्परिक चिकित्सक कहते है कि रोगियो को वे खेत मे उगायी गयी सब्जियो के प्रयोग से परहेज करने का निर्देश देते है। चूँकि बैगन ज्यादातर लोग खाते है इसलिये इसकी मनाही अवश्य की जाती है। वे दावा करते है कि बहुत से आधुनिक रोगो के लिये जहरीले बैगन जिम्मेदार है। लोग जानबूझकर अपने पैरो पर कुल्हाडी मार रहे है।

पिछले लेख मे मैने बीटी बैगन की चर्चा की। मैने जैसे आपको सरल शब्दो मे समझाया वैसे ही इस तकनीक के विषय मे पारम्परिक चिकित्सको से भी चर्चा की ताकि उनके विचार जान सकूँ। उन्होने जीवाणु के विष युक्त बीटी बैगन को मनुष्य़ की मूर्खता करार दिया। एक बुजुर्ग पारम्परिक चिकित्सक ने तो कहा कि अब हमे रोगो की नयी खेप के लिये तैयारी शुरु कर देनी चाहिये। मैने उन्हे बताया कि इस तकनीक का विरोध करने वाले लोग कह रहे है कि बीटी बैगन के आने से पारम्परिक बैगन की किस्मे खत्म हो जायेंगी। इस पर उनमे से कुछ ने ठहाका लगाया और कहा कि पारम्परिक किस्मे अब बची की कितनी है। आधुनिक किस्मो का बोलबाला है। जिसे देशी किस्मो की कीमत

मालूम है वह तो हर हाल मे बीज बचायेगा। फिर चाहे बीटी आ जाये या पीटी। मै उनकी बेबाक बयानी से अभिभूत था। मै उनकी मजबूरी भी समझ रहा था। देश की बहुत सी पारम्परिक फसलो के बीज किसान और पारम्परिक चिकित्सक चोरो से बचाकर सहेज के रखे हुये है। बीज बचाने की मुहिम के नाम पर राजधानी के पंच-सितारा होटलो मे चर्चा तो खूब होती है पर जमीनी स्तर पर कोई पहल नही करता। बीज बचाने वाले आपस संगठन मे बनाते है और जब उनके बारे मे मीडिया के माध्यम से राजधानी मे बैठे लोगो को पता चलता है तो संगठन को पुरुस्कार दे दिया जाता है। बीज सरकारी संगठनो के पास पहुँच जाते है। ये संगठन बाहरी पैसो पर काम करते है। शोध के नाम पर बीज बाहरी हाथो मे पहुँच जाते है। किसानो से कहा जाता है कि और पारम्परिक बीज एकत्र करे। किसान समझ जाते है कि जब तक बीज देते रहेंगे तभी तक उनकी महत्ता है। इस तरह उनका हौसला टूट जाता है।

इस लेख को पढने के बाद आप प्रश्न करेंगे कि कैसे देशी बैगन को बढावा दिया जाये? मेरा उत्तर होगा "यह आप यानि उपभोक्ताओ पर निर्भर है। बाजार उपभोक्ताओ की माँग पर चलता है। यदि उपभोक्ता जहरीले बैगन लेने से मना कर दे तो मजाल है कि बाजार इसे उपभोक्ता के सामने परोसे। जब बाजार इंकार कर देगा तो किसान इसकी खेती बन्द करेंगे और देशी बैगन उगायेंगे। पर इसके लिये उपभोक्ताओ को एकजुट होना होगा और लम्बी जंग लडनी होगी। एक पूरी पीढी की जंग लगी सोच को बदलना होगा। बहुत विरोध का सामना भी करना पडेगा। इतनी आसानी से कैसे जहरीले बैगन पर से अन्ध-विश्वास हटेगा? पर उपभोक्ता यदि इसमे सफल होते है तो इसके बदले उन्हे रोगमुक्त जीवन मिलेगा और खुशहाल नयी पीढी मिलेगी। अब फैसला आपको करना है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

(क्या बीटी बैगन के अलावा कोई विकल्प नही है?)

- पंकज अवधिया

“मैने तुलसी की बहुत सी पंक्तियाँ लगा दी है और अब गेन्दे की पंक्तियाँ लगाने जा रहा हूँ। पास के जंगल मे जाकर कुछ शाखाए ले आऊँगा कर्रा की और उन्हे खेत के चारो ओर लगा दूंगा। अब मेरा खेत सुरक्षित हो गया है। मजाल है जो एक भी कीडा नजर उठाके देखे इस खेत की ओर।“ मै कुछ दिनो पहले एक उत्साही किसान से उसके खेत पर ही बतिया रहा था। “ साहब, बाप-दादा के जमाने से हम लोग पुरानी खेती कर रहे है जिसे आप लोग आजकल जैविक खेती कहते है। हम सब्जियाँ उगाते है। हमारे आस-पास के किसान भी सब्जियाँ उगाते है पर उनमे से कोई भी जैविक खेती नही करता। सभी सरकारी लालच मे फँसे है इसलिये तरक्की नही कर पा रहे है। आप सुनना चाहे तो मै विस्तार से इनके बर्बाद होने की कहानी सुनाता हूँ।“ मैने हामी भरी तो उसने कहना जारी रखा।

“मेरे खेत मे खरपतवार होते है पर मै उन्ही खरपतवारो को उखाडता हूँ जो फसल को सबसे ज्यादा नुकसान करते है। बहुत से खरपतवार फसलो के लिये लाभदायक भी होते है- मेरे दादा ऐसा कहते थे। जैसे वन तुलसी का ही उदाहरण ले। इसके खेत के आस-पास जमे रहने से बैगन मे कीडो का आक्रमण कम होता है। पडोस के किसान के पास कृषि विभाग वाले आये थे। उन्होने रसायन के प्रयोग का प्रदर्शन किया। रसायन डालते ही सारे खरपतवार मर गये। विभाग वाले जाते-जाते रसायन विक्रेता का पता दे गये। अब पडोसी हर साल इन रसायनो को खेत मे डालता है। इसके लिये बहुत पैसे खर्चने होते है। रसायन से उपयोगी वनस्पतियाँ भी मर जाती है। इन वनस्पतियो के न होने से कीडो का आक्रमण ज्यादा होता है। कीडो के लिये फिर कीटनाशक डालना होता है। उसके बच्चे वही खेलते रहते है और रसायन के सम्पर्क मे आते रहते है। रसायन से तैयार फसल का उपयोग घर के लिये भी किया जाता है। सारा घर तरह-तरह की बीमारी से ग्रस्त है। बडी बिटिया जिसे बैगन बहुत पसन्द है किसी जटिल बीमारी से जूझ रही है। मैने तो उसे लाख समझाया पर वह नही माना।

मै खरपतवारो से घर की छत बना लेता हूँ। मेरे पशुओ को चारा मिल जाता है। इनके औषधीय उपयोग कर लेता हूँ। इन खरपतवारो की साग भी हमारे घर मे सभी खाते है। इससे सब्जी-भाजी पर होने वाला खर्च बच जाता है। फिर मौसमी रोगो से भी सुरक्षा हो जाती है। मेरे लिये तो खरपतवार किसी उपहार से कम नही है।

सालो पहले वानिकी विभाग से कुछ वैज्ञानिक आये। उन्होने बाप-दादा के जमाने से लगे पेडो को देखकर नाक-भौ सिकोडी और कहा कि इसकी जगह मुनाफा देने वाले पेड लगाओ। मैने कहा कि साहब, ये भी तो मुनाफा दे रहे है। नीम, मुनगा और अर्जुन जैसे

पेडो से तो लाख फायदे है। सबसे बडी बात यह है कि ये पुराने है, पिता के समान। इनका साया जरुरी है। वे मुझे गँवार कहकर आगे बढ गये। पडोसी ने उनका स्वागत किया मुफ्त के पेडो के लिये। वैज्ञानिको ने कुछ पापुलर और यूकिलिप्टस के पौधे मुफ्त मे दिये और बाकी खरीदने को कहा। उन्होने यूकिलिप्टस की माँग के बारे मे बताया। पापुलर से माचिस की तीलियाँ बनती है, ऐसा कहा। उनका कहना था कि पेडो के बढने की देर है, खरीददार खेत से आकर ले जायेंगे। पडोसी फिर उनकी बातो मे आ गया। यूकिलिप्टस बढे तो खूब बढे। पडोसी फूला नही समाता था। जब बोरवेल मे पानी का स्तर गिरा तो उसकी आँखे खुली। पूछ-परख की तो लोगो ने यूकिलिप्टस को दोषी बताया। पडोसी ने सोचा कि लोग उसके पेडो से चिढ रहे है, इसलिये यूकिलिप्टस को दोष दे रहे है। उसने शुल्क देकर मुझसे पानी ले लिया। इस बीच वैज्ञानिक आते रहे और तस्वीरे उतारते रहे। उन्होने इस “सफलता की कहानी” को विदेशो मे होने वाले विज्ञान सम्मेलनो मे बताया। उन्हे पुरुस्कार मिला। इस “सफलता की कहानी” को स्थानीय अखबारो ने भी छापा। पडोसी खुश था पर उसे पता नही था यह तो कहानी की शुरुआत है, अंत नही। यूकिलिप्टस और पापुलर के बडे होने पर आस-पास दूसरी फसले लेना मुश्किल हो गया। उनकी पत्तियाँ मिट्टी को अम्लीय कर रही थी। पत्तियो से जहरीले रसायन भी मिट्टी मे मिल रहे थे। चिडियो को उन पेडो मे घोसला बनाने मे दिक्कत होने लगी तो वे मेरे खेतो के आस-पास लगे देशी वृक्षो पर आ गयी। चिडियो ने शरण देने पर अहसान चुकाया। कीडो को सफाचट कर गयी।

साल दर साल बीते पर पडोसी के पेडो को खरीदने कोई नही आया। वैज्ञानिक भी आना बन्द कर चुके थे। थकहार कर वह शोध-संस्थान पहुँचा तो पता चला कि वैज्ञानिक पदोन्नति पाकर दूसरी जगहो पर चले गये थे। यह पदोन्नति उसी “सफलता की कहानी” के कारण मिली थी। अब उनकी तनख्वाह आधा लाख प्रति महिने से अधिक हो गयी थी। उनकी जगह दूसरे वैज्ञानिक आ गये थे। उन्होने किसान की बात सुनते ही कहा कि इन पेडो को काट डालो और जो भी भाव मिले बेच डालो। उसके बाद फिर मेरे पास आना। मै दो नयी विदेशी जातियाँ बताऊँगा। एक बार लगाओ और पैसे ही पैसे पाओ। किसान ने वहाँ से भागने मे भलाई समझी। वह स्थानीय अखबारो के पास पहुँचा ताकि सच बता सके। उसे भाव नही मिला। किसान के पास देने को जो कुछ नही था। मुफ्त के पेड बाँटकर वैज्ञानिको ने खबर छपवा ली थी। फिर स्थानीय अखबारो के लिये खबर बासी भी हो चुकी थी। उन्हे तो नयी “सफलता की कहानी” की तलाश थी। पडोसी किसान की स्थिति पागलो की तरह हो गयी।“ मै अपने किसान की समझदारी से खुश हुआ और बतौर उपहार गोबर और गोमूत्र पर आधारित बहुत से उपयोगी नुस्खे बताये। इनकी

सहायता से वह सालो तक कीटो और रोगो से अपनी फसलो की बेहतर सुरक्षा कर सकता है। फिर मैने उससे विदाई ली।

पिछले कुछ लेखो मे हम बीटी बैंगन की बात कर रहे है। एक विशेष प्रकार के कीडो के लिये विकसित किये गये बीटी बैगन की जरुरत क्या सचमुच भारतीय किसानो को है? क्या उन कीडो का नियंत्रण इतना मुश्किल हो गया है कि हम करोडो भारतीयो की जान दाँव पर लगाकर बीटी बैगन को भारत मे लाने व्यग्र है? यदि वैज्ञानिको से यह सवाल पूछा जाये तो वे शायद कहे कि हाँ, हाँ यह जरुरी है। पर बैग़न की खेती कर रहे किसान ऐसा नही कहेंगे। यह मेरा सौभाग्य है कि मै बैगन की पारम्परिक खेती कर रहे हजारो भारतीय किसानो से मिला हूँ। उनके पास गजब का पारम्परिक ज्ञान है। वे बिना किसी रसायन के बैगन को कीटो से बचा रहे है। उनके ज्ञान का यदि दस्तावेजीकरण किया जाये तो कृषि शोध संस्थानो के भवन छोटे पड जायेगे इन्हे रखने के लिये। ये महज किताबी ज्ञान नही है। किताबी ज्ञान होता तो न जाने कब का अतीत की गहराईयो मे खो जाता। यह ज्ञान खेतो मे फसलो पर प्रयोग हो रहा है और पीढी दर पीढी निखर रहा है। यह ज्ञान बैगन को कीटो से सदियो तक बचा सकता है। यह ज्ञान देश की असंख्य वनस्पतियो से सम्बन्धित है। ये वनस्पतियाँ और इनसे सम्बन्धित ज्ञान सभी की पहुँच मे है। उन वैज्ञानिको की पहुँच मे भी जिन पर आजादी के बाद इस देश ने खरबो रुपये जाया कर दिये है। देश के प्रत्येक भाग मे कृषि शोध संस्थान है पर शायद ही कोई संस्थान किसानो के ज्ञान से कुछ सीख ले रहा है। कितना अच्छा होता कि किसान और वैज्ञानिक मिलकर इस ज्ञान को संवर्धित करते। पर वैज्ञानिको ने निज स्वार्थ मे यह मौका खो दिया है। उन्हे बीटी बैगन को बढावा देना और फिर उसके एवज मे विदेशियो द्वारा सराहा जाना ज्यादा पसन्द आता है। यदि हमारे शोध सस्थान देश के किसानो के लिये काम नही कर सकते तो इन सस्थानो को बन्द करने मे अब देर किस बात की। सारा पैसा किसानो पर सीधे व्यय करिये। पलक झपकते ही स्थितियाँ बदल जायेंगी।

मुझे मालूम है कि आप पाठक किसानो की आत्महत्या से व्यथित है। आप उनके लिये कुछ करना भी चाहते है। पर आपको पता नही है कि आप क्या करे। मेरी माने तो आपके पास बहुत से विकल्प है। एक अच्छा विकल्प है कि आप पास के शोध संस्थानो मे एक आम नागरिक की हैसियत से जाये और आपकी गाढी कमायी का सही उपयोग हो रहा है कि नही, यह देखे। आप विशेषज्ञ की डिग्री और अकादमिक उपलधियो पर न जाये। आप तो किसान को साथ ले जाये और उनका सामना विशेषज्ञो से करवाये। सारा दूध का दूध और पानी का पानी हो जायेगा। आपका यह छोटा सा प्रयास शोध सस्थानो

को सचेत कर देगा। इस देश मे बहुत से संस्थान निरंकुश हो रहे है। उनकी जवाबदेही तय नही है। किसान आत्महत्या करे तो करे उनकी तनख्वाह और पदोन्नति पर कुछ भी फर्क नही पडेगा। एक बार, बस एक बार, उन पर नकेल कस गयी तो बीटी बैगन जैसी फसले दरवाजे से ही लौटा दी जायेंगी। आप कोशिश तो करिये। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

स्वाइन फ्लू (Swine Flu) और भारतीय वनस्पतियाँ
- पंकज अवधिया

मेक्सिको से पूरी दुनिया मे फैल रहा स्वाइन फ्लू (Swine Flu) महामारी का रुप लेता जा रहा है। 150 से अधिक लोग मेक्सिको मे मारे जा चुके है। मेक्सिको के स्वास्थ्य मंत्री कह रहे है कि प्रभावितो की संख्या हजारो मे हो सकती है। अभी और बुरी खबरे सुनने आम जनता को तैयार रहना चाहिये। इस बीमारी का कोई इलाज नही है। विषाणु अर्थात वाइरस से होने वाली इस बीमारी के लिये कोई भी दवा कारगर नही है। वैज्ञानिक कहते है कि वैक्सीन ही एक मात्र विकल्प है पर इसके विकास मे कम से कम छै महिने लगेंगे। तो क्या तब तक लोगो को यूँ ही कीडे-मकोडो की तरह मरने के लिये छोड दिया जाये? क्या कोई और प्रयास नही किये जाने चाहिये? ऐसे प्रयास जो भले ही प्रयोग हो और यदि लाभ न करे तो नुकसान भी न करे। यदि यह नयी बीमारी है तो क्या पुराने उपाय काम नही करेंगे? क्यो न उन पुराने उपायो को अपनाया जाये जो कि इससे मिलती-जुलती बीमारियो मे आजमाये जा चुके है?

भारतीय वनस्पतियो पर वर्षो से शोध करने के बाद मुझे लगता है कि जिस तरह के लक्षण रोगी मीडिया के माध्यम से बता रहे है उसमे बहुत सी वनस्पतियाँ कारगर हो सकती है। फिर क्यो न इन वनस्पतियो को स्वाइन फ्लू प्रभावित रोगियो पर आजमाया जाय? मैने अपने अनुभव के आधार पर दो साधारण वनस्पतियो की सहायता से तैयार किया गया औषधी मिश्रण इस जानलेवा रोग से लडने के लिये प्रस्तुत किया है। मुझे विश्वास है कि इसके प्रयोग से न केवल इन लक्षणो की रोकथाम की जा सकती है बल्कि उन्हे दूर भी किया जा सकता है। इस औषधीय मिश्रण मे एक-एक करके 132 वनस्पतियाँ मिलायी जा सकती है। इन वनस्पतियो को मिलाने से मिश्रण की शक्ति बढती

जायेगी। ये वनस्पतियाँ मेक्सिको मे उपलब्ध है। दुनिया भर मे इन्हे आसानी से आम जनता को उपलब्ध कराया जा सकता है। यह मिश्रण कैसे उन लोगो के पास पहुँचे और कैसे यह रोगियो की जान बचाने मे प्रयोग होने लगे-ये महत्वपूर्ण प्रश्न है। मै काफी समय तक इस उधेडबुन मे रहा। अंत मे मैने मेडीसीनल प्लांट वर्किंग ग्रुप की अध्यक्षा डाँ पेट्रीसिया डी-एंजीलिस को लिखा। कुछ ही घंटो मे उनका जवाब आ गया कि आप चाहे तो इस ग्रुप मे अपना सन्देश डाल सकते है। मुझे विश्वास है कि कोई न कोई रास्ता निकलेगा। मैने ग्रुप मे यह सन्देश भेज दिया

I am hearing news of Swine Flu. I am eager to extend my services for the patients sufferings from this deadly disease. Based on my experience (Not on my surveys), I want to suggest simple formulation having two herbs, available in Mexico as well as other parts of world.

I am in dilemma and searching right channel. I feel that this harmless formulation will act as preventive and also help the patients. Based on the symptoms described by the patients I am suggesting it. This basic formulation can be made more effective by adding more herbs one by one up to 132 medicinal herbs.

Dr. Patricia suggested me to post this message to MPWG group.

Please suggest proper channel.

regards

Pankaj Oudhia

इस समय मुझे “डाक्टर्स विदाउट बार्डर्स” की याद आ रही है जो पूरी दुनिया मे अपनी सेवाए देते है। पर उनके साथ मुश्किल यह है कि वे स्थानीय चिकित्सा प्रणालियो को महत्व नही देते है। वे सिर्फ और सिर्फ आधुनिक चिकित्सा के हिमायती है। अब स्वाइन फ्लू के मामले मे तो आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के पास हाल फिलहाल कोई कारगर उपाय नही है। उनके प्रयोग सफल नही है। ऐसे समय मे मै “डाक्टर्स विदाउट बार्डर्स” के ऐसे संस्करण की उम्मीद करता हूँ जो ऐसे नये रोगो से प्रभावित क्षेत्र मे बिना किसी देरी के अपने अनुभव से लोगो की जान बचाने के उत्सुक विशेषज्ञो को पहुँचा सके। मै स्वयम “साइंटिस्ट विदाउट बार्डर्स” का सदस्य हूँ पर यह काम उनके दायरे से बाहर का है।

MPWG ग्रुप मे सन्देश जाते ही लोगो की प्रतिक्रियाए दुनिया भर से आने लगी। ज्यादातर सन्देश येन-केन-प्रकारेण नुस्खे जानने के लिये भेजे गये। मसलन अमेरिका की एक दवा कम्पनी ने लिखा कि कही आपके नुस्खे मे अमेरिकन गोल्डनसील नामक वनस्पति तो

नही है? किसी ने लिखा कि कही आप ने जिनसैंग का प्रयोग तो नही सुझाया है? पर किसी ने अभी तक यह नही सुझाया कि कैसे स्वाइन फ्लू से प्रभावित लोगो तक इस मिश्रण को पहुँचाया जाये या इसके वैज्ञानिक पक्ष पर चर्चा की। एक सन्देश मे कहा गया कि कितने मे आप नुस्खा बेचेंगे? आपने कीमत क्या रखी है?

मुझे इस बात का आभास है कि इस नुस्खे के सार्वजनिक हो जाने पर इसके व्यवसायीकरण मे बिल्कुल देर नही लगेगी। ज्यादातर सन्देश अभी हो रही मौतो को नजरान्दाज कर भविष्य़ के व्यापार पर आधारित है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि यदि कोई विश्व हित मे अपना कोई नुस्खा सार्वजनिक करता है और उससे लोगो की जान बचती है तो उसका व्यवसायिक दुरुपयोग न हो। यदि सही हाथो मे पूरे आश्वासन के साथ यह नुस्खा आम लोगो के पास पहुँचता है तो मै इसके लिये कोई कीमत न लेने का मन बना चुका हूँ पर ऐसा होने की सम्भावना कम लगती है। जिस ग्रुप मे मैने सन्देश भेजा उसमे ढेरो भारतीय भी है पर किसी ने भी रुचि नही दिखायी। भगवान न करे कि यह महामारी भारत पहुँचे। पर यदि यह पहुँच गयी तो मै इस नुस्खे को सार्वजनिक करने मे जरा भी देर नही करुंगा।

दुनिया भर से सन्देशो के आने का क्रम जारी है। यदि आपके पास भी कुछ सुझाव हो तो अवश्य सुझाये।

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

(नुकसानरहित बीडी और सिगरेट पर चर्चा)

"दिन भर सोने से अच्छा है कि तेन्दू पत्ते की तुडाई के लिये चले जाओ। इस बार तो पैसे भी अच्छे मिल रहे है।"मैने जंगली क्षेत्र के एक ग्रामीण मित्र से कहा। वह पारम्परिक चिकित्सक है। ज्यादा जमीन नही है और न ही साधन इसलिये दूसरे किसानो की तरह गर्मी की फसल नही ले पाता है। अब गर्मियो मे ज्यादा जडी-बूटियाँ भी नही मिलती। इसलिये सारा दिन घर मे पडे-पडे बीतता है। "तेन्दू पत्ता तोडने चला तो जाऊँ पर घुनघुट्टी से कौन बचायेगा? और फिर बिच्छी से?" मेरे ज्यादा पीछे पडने पर उसने

खीझ कर कहा। आप यदि ग्रामीण जीवन से जुडे है तो आप घुनघुट्टी को अवश्य जानते होंगे। खाली बैठने पर यह आँखो के कीचड के लिये आस-पास मंडराती रहती है। इतनी देर तक कि आप तंग आ जाये। ये छोटी मक्खीनुमा जीव शहरो मे नही मिलता पर गाँवो मे अभी भी सताता है। हम क्या जंगल के राजा भी इससे त्रस्त रहते है। इसलिये दिन के समय वे अन्धेरी जगह मे चले जाते है। रात को जब घुनघुट्टी का राज खत्म हो जाता है तब ही राजा माँद से बाहर आते है। तेन्दु पत्ता तोडने वालो को इनसे बचना पडता है। बिच्छी बिच्छू नही है। यह एक तरह की इल्ली है जिसके शरीर के काँटे होते है। यह इल्ली तेन्दु की पत्तियो को खाती है। यह पत्ती की निचली सतह पर होती है। जब अचानक ही पत्तियो को तोडते समय इन पर हाथ पडता है तो बिच्छू के डंक की तरह अहसास होता है। मित्र को इन दोनो की चिंता थी। काफी बहस के बाद मैने उसे सुझाव दिया कि चलो एक पहर मै साथ चलता हूँ। इससे उसका हौसला बढेगा। मेरी कमाई भी उसके ही खाते मे जायेगी। वह तैयार हो गया।

शायद हम पहले तेन्दु पत्ता एकत्र करने वाले होंगे जो जंगल तक कार से पहुँचे। हमे कुछ और लोग मिल गये। तय हुआ कि गाना गाते हुये आगे बढेंगे। इससे समय भी कटेगा और भालू जैसे उलझने वाले जीव भी दूर रहेंगे। जिस बात की आशंका मित्र को थी वह सामने आने लगी। घुनघुट्टी से हम परेशान होने लगे और बिच्छी के दंश ने हमारे हौसले पस्त कर दिये। दूसरे लोग मजे से गा रहे थे और आगे बढ रहे थे। उन्हे अपनी समस्या बतायी तो कुछ ने हमसे गांजे का सहारा लेने को कहा। पर हम इसके लिये तैयार नही थे। वे कहने लगे कि गाँजे से काटने पर उल्टे झटका कीडे को लगता है। एक बुजुर्ग ने बढिया उपाय सुझाया।

उन्होने तेन्दु की जड हमे दी और फिर उसके रस को हाथ मे लगाने को कहा। रस के सूखने पर हमे फिर से पत्तियाँ तोडने को कहा। हमने ऐसा ही किया। हमे इल्ली के काँटे लगने बन्द हो गये। वे त्वचा मे घुस रहे थे पर दर्द का अहसास नही हो रहा था। वाकई यह तो कमाल हो गया। उन्होने हमे पलाश सहित बहुत सी ऐसी वनस्पतियाँ दिखायी जिनका उपयोग दंश से रक्षा कर सकता है। मैने इस लेखमाला मे पहले लिखा है कि भारतीय सेना की सहायता के उद्देश्य से मै एक शोध दस्तावेज तैयार कर रहा हूँ। इसमे छत्तीसगढ के जंगलो मे मौजूद तमाम तरह के खतरे यानि बिच्छी से लेकर जंगली भैसे और जहरीले साँपो तक की पहचान और उनसे निपटने के जमीनी उपाय का विस्तार से वर्णन है। मैने बुजुर्ग से मिली इस जानकारी को उनके हवाले से इस दस्तावेज मे शामिल कर लिया है।

बुजुर्ग से विस्तार से चर्चा होने लगी। तेन्दु पत्ता तोडाई का काम जैसे हम भूल से गये। बुजुर्ग ने बताया कि मुझे यह काम पसन्द नही है। तेन्दु पत्ता से बीडी का निर्माण होता है। बीडी का प्रयोग मेहनत-मजदूरी करने वाले लोग अक्सर करते है। बुजुर्ग ने कहा कि बीडी से हमे सुकून मिलता है और तेन्दु पत्ता तोडाई से पैसे पर जब हमारे परिवार का कोई बीडी के जहर के कारण कैंसर की जकड मे आता है तो पीढीयो की कमायी उसमे लग जाती है और फिर भी हम जान नही बचा पाते है। यदि हम इस बात को समझ जाये और तेन्दु पत्ता की तोडाई बन्द कर दे तो न बीडी बनेगी और न ही लोग अकाल मौत मरेंगे। मुझे उन बुजुर्ग की बात सही लगी पर इतने बडे व्यापार को रोक पाना सम्भव नही जान पडा। तेन्दु की पत्तियो के धुँए के जानलेवा प्रभाव के बारे मे तो प्राचीन भारतीय ग्रंथ चेताते आ रहे है। आम लोग आँखो के सामने अपने घर को बरबाद होते देख रहे है पर इसका मोह नही छूट रहा है। ऐसा नही है कि तेन्दु पत्ता के व्यापार पर विराम लगाने की ये क्रांतिकारी बात मै पहली बार सुन रहा था। मुझे याद है कि एक कैसर के मरीज के साथ मध्य भारत के एक बीडी निर्माता कुछ वर्षो पहले मेरे पास आये थे।

“हमारी माताजी कैंसर की अंतिम अवस्था मे है। सारे देशी-विदेशी चिकित्सक जवाब दे चुके है। आप ही कुछ सुझाये।“ उन्होने मुझसे अनुरोध किया। मैने कुछ पारम्परिक चिकित्सको के पते दिये। चर्चा के दौरान उन्होने बताया कि सालो तक हम बीडी के धन्धे से हजारो घर बर्बाद कर अपने घर मे रोशनी बढाते रहे। पर वो कहते है न कि ऊपर वाले की लाठी मे आवाज नही होती। वैसे ही हमारे घर मे कब कैंसर ने दस्तक दे दी, हमे पता ही नही चला। इसके बाद हमने फैसला कर लिया कि अब हम यह धन्धा नही करेंगे पर “इजी मनी” के दीवाने हमारे बेटे इस धन्धे को बन्द करने तैयार नही है। अब हमे लगता है कि हमारा जीवन इसी अभिशाप के साये मे चलेगा।

यूँ तो “बाय डिफाल्ट” सिगरेट और बीडी हर्बल ही है पर ये जानलेवा उत्पाद है। इसमे कोई दो राय नही है। देश के पारम्परिक चिकित्सकीय ज्ञान के दस्तावेजीकरण के दौरान मैने बहुत सी ऐसी हर्बल सिगरेट के बारे मे पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया जिसकी बानगी पूरी दुनिया मे नही मिलती। मिर्गी के रोगियो के लिये दसो किस्म की उपयोगी हर्बल सिगरेट है जो आज भी ग्रामीण अंचलो मे लोकप्रिय है। साँस की बीमारी से लेकर बवासिर और यहाँ तक कि साधारण सर्दी-जुकाम के लिये भी ऐसे देशी उत्पाद है। यह विडम्बना ही है कि इनमे से एक भी उत्पाद बाजार मे नही है। ग्रामीण कुटिर

उद्योग की अपार सम्भावना लिये इस परियोजना के बारे मे किसी के पास सोचने तक का समय नही है।

कुछ वर्षो पहले हर्बल सिगरेट को व्यवसायिक तौर पर आम जनता के सामने लाने के लिये कुछ स्थापित निर्माताओ ने मुझसे सम्पर्क किया था। मैने अपनी कल्पनाशक्ति और अनुभव के हिसाब से ढेरो उत्पाद बनाये पर इस जद्दोजहद मे एक बात सामने आयी जिसने प्रयोग की दिशा ही बदल दी। जिसे बीडी या सिगरेट का नशा लग गया था वह बिना तम्बाकू वाली हर्बल सिगरेट मे मन नही रमा पाता था। और जो इन्हे नही पीता था उसे हर्बल सिगरेट मे भी मजा नही आता था। यह कडवी पर सीधी बात थी। हमे ऐसी हर्बल सिगरेट बनानी थी जिसे पीते वक्त लोगो को लगे कि वे मूल सिगरेट पी रहे है पर इससे उन्हे नुकसान न हो बल्कि हो सके तो लाभ हो।

तेन्दु या तम्बाकू से नुकसान होता है ऐसा प्राचीन ग्रंथो मे लिखा है पर इसकी “काट” के बारे मे कुछ नही लिखा गया है। जंगल मे हर अच्छी-बुरी चीज की “काट” मौजूद है। मैने इस “काट” पर हजारो पन्ने रंगे है। एक वनस्पति दूसरी वनस्पति की “काट” का काम करती है पर बहुत बार एक ही वनस्पति मे ही “काट” रहती है। जैसे जड की “काट” पत्तियो मे होती है। तो क्या ऐसी सिगरेट बनायी जा सकती है जो हमारी कल्पना मे है। सौभाग्य से इसका जवाब हाँ मे है। पर अभी ये प्रयोग दिशा पाने के बाद आरम्भिक चरणो मे है।

चलिये अब उन बुजुर्ग के पास वापस लौटे जिन्होने बिच्छी का तोड बताया था। हम जंगल मे बैठकर बतिया रहे थे। मैने आदर्श सिगरेट की कल्पना उनके सामने रखी तो वे हैरत मे पड गये कि क्या सचमुच ऐसा हो सकता है? यदि ऐसा हो सकता है तो न तेन्दु पत्ता की तोडाई रोकनी होगी और न ही लोगो का बीडी पीना छुडाना होगा। बीडी का कारोबार भी फैलेगा और घर भी बरबाद नही होंगे। मैने अपने कुछ नुस्खे उन्हे देने का मन बना लिया। आखिर उन्होने मुझ अजनबी पर विश्वास करके ज्ञान बाँटा था। मैने एक बीडी ली और उसे खोला। पास से पाँच प्रकार की छालो को एकत्र किया और फिर उन्हे बीडी के अन्दर रख दिया। “छाल अभी कच्ची है इसलिये हो सकता है कि जलने मे कुछ दिक्कत हो।“ मैने कहा। उन्होने बीडी पी और कह पडे कि यह तो वैसी ही बीडी है जैसी हम रोज पीते है। इसका मतलब छालो की उपस्थिति से मूल रुप नही बिगडा था। पर ये छाले अंजाने रुप से तेन्दु की विषाक्तता को कम कर रही थी। उन्होने मुझे धन्यवाद दिया और हम लौट पडे।

मेरे ड्रायवर को जब यह सब पता चला तो वह बिफर पडा और बोला कि अनपढ गँवारो को तो आप झट से सब बता देते हो पर मुझ जैसे पढे-लिखो को कुछ भी नही बताते। मै मन ही मन उस पर हँसा। वह जिन्हे अनपढ-गँवार कह रहा था उनके पास ज्ञान का जो खजाना है वो जन्मो के किताबी अध्ययन के बाद भी हम नही पा सकते। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

- पंकज अवधिया

(हनुमान लंगूर और नि:संतान दम्पत्ति)

एक छोटी सी झोपडी के सामने महिलाओ की लम्बी कतार लगी देख मैने गाडी रुकवाई और लोगो ने इस बारे मे पूछा। लोगो ने बताया कि नि:संतान महिलाए यहाँ बाबा के दर्शन करने के लिये कतार मे खडी है। मैने गाडी किनारे करवायी और वही खडा हो गया। इतने मे बाबा का एक एजेंट आया और गाडी के अन्दर झाँकते हुये बोला कि अकेले आये हो? आपका इलाज नही होगा। अपनी घरवाली को लेकर आओ। ड्रायवर ने इस धृष्टता पर कुछ कहना चाहा तो मैने उसे चुप करा दिया। मैने एजेंट को जवाब दिया कि मुझे सारी प्रक्रिया देख लेने दो फिर मै अपनी पत्नी को लेकर आ जाऊँगा। इस पर वह बोला कि पैसा जमा करा दो ताकि अगली बार कतार मे न लगना पडे। कतार मे न लगने के लिये 1000 रुपये और वैसे 100 रुपये। मैने कहा कि मै पैसे बाबा ही को दूंगा। पहले मुझे इलाज देखने तो दो।

कुछ देर बाद हलचल बढी। बताया गया कि बाबा आ गये है। पास ही तुलसी चौरा था। वहाँ बैठकर एक अधेस मंत्र पढ रहा था। मंत्र स्पष्ट नही थे पर जै काली कलकत्ते वाली बार-बार सुनायी देता था। महिलाओ को एक पौधे पर नारियल चढाना होता था और फिर बाबा के पैर पडकर वापस लौट जाना पडता था। कोई जाँच नही होती थी और न ही किसी किस्म की जडी-बूटी दी जाती थी। थोडी देर तक बाबा को ध्यान से देखने पर याद आया कि इनसे कही मुलाकात हुयी है।अरे, ये तो दुकालू है। वही दुकालू जो मुझे राजिम के मेले मे साँप भगाने की जडी-बूटी बेचते अक्सर मिलता था। मैने उसपर एक फिल्म भी बनायी थी जिसमे उसने कहा था कि आजकल धन्धा नही चल रहा है। हो सकता है

कि उसने इसी के चलते यह शार्टकट चुना हो। मै उधेडबुन मे लगा ही था कि उसने मुझे पहचान लिया। कुछ सकपकाते हुये पास आ गया। उसके सामने नोटो का ढेर लगा था। चारो ओर भक्तो की भीड थी। मैने कोने मे ले जाकर उससे उस नये रुप के बारे मे पूछा तो उसने कहा कि उसके पास एक विशेष वनस्पति है जिसे नारियल अर्पित करने से बच्चे हो जाते है। वह इसे हिमालय से लाया है। लो जी कर लो बात। अब दुकालू भला कब हिमालय चला गया? फिर नारियल चढाने से तो बच्चे नही हो जाते। मैने वनस्पति पास से देखनी चाही। वनस्पति के पास जाते ही मेरे मुँह से बरबस निकल पडा "हनुमान लंगूर"।

मै अकसर देहाती बाजारो और ग्रामीण मेलो की खाक छानते रहता हूँ। मुझे सिरपुर मे लगने वाला मेला याद आ गया। वहाँ मैने "हनुमान लंगूर" को देखा था। देखा क्या था इसे खरीदने के लिये मुँहमाँगे दाम दिये थे। "हनुमान लंगूर" नाम सुनकर मै उस समय भी चौका था। आमतौर पर "हनुमान लंगूर" काले मुँह वाले बन्दर को कहा जाता है। किसी को वनस्पति विशेष को "हनुमान लंगूर" कहते मैने पहली बार सुना था। यह स्थानीय बोली का नाम भी नही था। छत्तीसगढ मे बन्दर के लिये बेन्दरा शब्द है। लंगूर तो स्थानीय भाषा का शब्द नही है।

सिरपुर के मेले मे जडी-बूटी बेचने वाला दावे कर रहा था कि पशु-चिकित्सा के लिये उसके पास एक दिव्य वनसस्ति है। दावे जोरदार थे पर वनस्पति कही नही दिखायी दे रही थी। उसका कहना था कि एडवांस देने पर ही वनस्पति दिखायी जायेगी। उसकी माँग पूरी की गयी तो मुझे "हनुमान लंगूर" दिखायी गयी। बताया गया कि इसकी आकृति बन्दर की पूँछ की तरह है इसलिये इसे यह नाम मिला। इसके गुणो का बखान करते-करते जडी-बूटी वाला इतना ऊपर चढ गया कि उसने इसे संजीवनी बूटी भी कह डाला। मुझे यह वनस्पति स्थानीय नही लगी। यह कैक्टस का एक प्रकार है। सिरपुर के मेले के बाद मैने यह वनस्पति बहुत से तांत्रिको के पास देखी। दवा के रुप मे इसके प्रयोग के दावे सुने पर कोई इसके तथाकथित प्रभावो को प्रमाणित नही कर सका। मैने भूत-प्रेत उतारने के नाम पर इसी काँटेदार कैक्टस से बेकसूर महिलाओ को पिटते भी देखा।

मैने दुकालू से ही इस गोरखधन्धे के स्त्रोत के बारे मे जानना चाहा। उसने कुछ भी बताने से इंकार कर दिया। भीड उसके साथ थी। जब पुलिस मे शिकायत की धमकी दी गयी तो उसने अलग से बात करने की इच्छा जतायी। आखिर उसने राज खोला। " देखिये साहब, आस-पास की वनस्पति को उठाकर उससे झाड-फूँक करो तो लोगो मे प्रभाव नही पड़ता। इसलिये राजधानी के नर्सरी वालो से सम्पर्क किया है। ये नर्सरी वाले कलकत्ता से जुडे है।

ये अजीबोगरीब पौधे लाकर देते है, जिन्हे हिमालय से साधना के बाद प्राप्त की गयी जडी-बूटी कहकर हम इलाज का ढोंग करते है। हमे इन नर्सरी वालो को लगातार हिस्सा देना होता है। छत्तीसगढ और उडीसा मे ऐसे सैकडो तांत्रिक है जो इस तरह के गोरखधन्धे मे लगे है।

नर्सरी वालो का नाम सुनते ही मुझे दिल्ली के एक नर्सरी वाले की याद आ गयी। आफ्रीका से लाये एक पौधे को दिल्ली का यह नर्सरी वाला एक एनजीओ की मदद से कल्पवृक्ष बताकर बेचने की तैयारी मे है। एक निजी टीवी चैनल ने तो बकायदा इसे देश भर को दिखाना शुरु कर दिया है। उसका दावा है कि इसके नीचे बैठने से समस्त मनोकामनाए पूर्ण हो जाती है। जल्दी ही इसे बाजार मे लाने की तैयारी है। इस गोरख धन्धे से असंख्य भारतीयो को उनकी धार्मिक आस्था का लाभ उठाकर ठगा जायेगा। नर्सरी वालो की इन करतूतो को सामने लाने मैने यह लेख लिखा है। आम लोगो के जागने की देर है। एक बार वे जाग गये तो पाखंडियो के पैर उखडते समय नही लगेगा। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

-पंकज अवधिया

सामने धधकती आग थी। सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थी। हम तीन लोग नंगे पाँव खडे थे। दर्शको का एक बडा समूह हमे घेरे हुये था। सभी उम्र के लोग थे। वे चिल्ला रहे थे और हमारी हौसला आफजायी कर रहे थे। आग के ऊपर नमक का छिडकाव किया जा रहा था। एक टेबल फैन भी रखा था ताकि आग धधकती रहे। मन मे किसी भी प्रकार का डर नही था। हमे आग पर से नंगे पाँव चलना था। कुछ कदमो की बात थी। तेजी से यह छोटी सी दूरी पार करनी थी। फिर किसी तरह से जलने का सवाल ही नही था। क्योकि अपने व्याख्यानो मे हमने पूरे विश्वास के साथ कहा था कि आग पर चलना किसी तरह का चमत्कार नही है। यह विज्ञान सम्मत है। जैसे घर मे माताए रोटी बनाते समय तवे को खाली हाथ छू देती है तो चूँकि उनका सम्पर्क कुछ पलो का होता है इसलिये वे जलती नही है। हमे तेजी से आग मे इसीलिये चलना था ताकि पैरो को

जलाने का मौका आग को न मिले। हमने पुस्तक भी प्रकाशित की थी जिसमे यह दोहराया गया था कि आग पर चलने का प्रदर्शन किया जा सकता है बिना नुकसान के। हमे याद है कि व्याख्यान के बीच कई स्थानो पर लोगो ने हमे चैलेंज किया था कि बोलने से कुछ नही होता, चल के दिखाओ तो जाने। आज हम आग पर चल कर दिखाने वाले थे।

कैमरे की भी व्यवस्था कर ली थी। तभी किसी ने मजाक मे हमे हिदायत दी कि हम मोबाइल बन्द कर दे। कही बीच रास्ते मे फोन आ गया और हम बात करने लग गये तो लेने के देने पड जायेंगे। हमे तैयार होता देख दर्शको मे अजीब सी खामोशी छा गयी। पहले दो लोग तेजी से निकल गये। लोगो ने जोर से तालियाँ बजायी। फिर मेरी बारी आयी। पहला कदम बढाया तो वह आग मे कुछ धँस सा गया। फिर दूसरा कदम बढाया वह भी कुछ धँसा। फिर अगले कदम से आग से बाहर हो गया। तालियो की आवाज से मन आनन्दित हो गया। लोग गले मिल रहे थे और डेयरिंग वाले इंसान होने की बात कह रहे थे।

इन सब से ध्यान बँटा तो पैरो मे हो रही जलन की ओर ध्यान गया। साथ वाले से पूछा कि जलन हो रही है क्या किया जाये? पहले तो उसने ध्यान नही दिया फिर मेरा मुँह दबाकर बोला कि जलन तो मुझे भी हो रही है पर यहाँ शोर मचाकर सब गुड गोबर मत करो। मै एक किनारे पर जाकर बैठ गया। लोगो ने मुझे घेर लिया और फिर पूछने लगे कही जले तो नही? मुझे बात छुपाने का आदेश था। मैने मोजे पहने और लडखडाते हुये लोगो से दूर होता गया। एक-एक कदम बेहद पीडा से भरा हुआ था। मै अपनी स्कूटर तक पहुँचा और फिर घर की तरफ चल पडा। रास्ते मे दर्द इतना बढा कि मुझे मरहम लेकर एक मित्र की दुकान पर रुकना ही पडा। जब हमने जख्मो को देखा तो हमारे होश उड गये। पैर बुरी तरह जल गये थे। बाये पैर का पंजा काला पड चुका था। एक सप्ताह के सतत इलाज के बाद कुछ राहत मिली। पर इतने वर्षो बाद आज भी बाये पैर के पंजे की त्वचा काली की काली है, एकदम जली हुयी। यह प्रदर्शन हादसा बन गया था। जिन्होने भी इस आग को पार किया सभी जले और अपना इलाज करवाते रहे पर जिस समिति से हम जुडे थे उसकी साख बचाने के लिये हमने मीडिया से लेकर उन सभी लोगो से झूठ बोला जो हमारे चेहरे पर पीडा देखकर प्रश्न कर बैठे थे। सबसे ज्यादा दुख इस बात का था कि हमने गलत व्याख्यान दिये। उस दिन यह सबक मिला कि खुद पर आजमाये बिना कभी भी किसी को गलत या सही ठहराने का दुस्साहस नही करना।

पर हम आग मे जले क्यो? हमारी समिति के एक वरिष्ठ सदस्य श्री चन्द्रशेखर व्यास उस समय मौजूद थे। उन्हे आग पर चलने का कई बार का अनुभव था। वे लगातार हमे सलाह दे रहे थे कि कुछ समय पूर्व जलायी गयी आग मे यह प्रदर्शन किया जा सकता है पर वहाँ तो आग को जलाये घंटो हो चुके थे। राख जमने लगी थी जो दुर्घटना को आमंत्रण दे रही थी। वे तैयारियो से भी नाखुश थे। चलते समय पैर नही धँसना चाहिये ऐसी तैयारी की आवश्य्कत्ता थी। वे पूरी तरह से संतुष्ट नही थे इसलिये उन्होने तय कार्यक्रम से पहले ही स्थल छोड देने का निर्णय किया। एक अनुभवी के चले जाने से हम सब को बडी हानि उठानी पडी। बाद मे लोगो ने बताया कि आग मे चलने से पहले पैरो को अच्छे से धो लेना चाहिये। चलने के बाद भी ऐसा करना चाहिये जिससे कि त्वचा जले न। यदि तलवो मे कोई जख्म हो या गोखरु (कार्न) हो तो यह प्रदर्शन न करे। पर किसी ने मुझे यह नही बताया। यह तो ऊपर वाले की मेहरबानी थी कि कोई बडा हादसा नही हुआ।

जैसी कि उम्मीद थी स्थानीय अखबारो ने शेष दो लोगो के बारे मे बढा-चढा कर छापा और एक बार फिर आम लोगो तक यह सन्देश गया कि आग पर चलना कोई चमत्कार नही है। मैने जले पैरो के साथ मीडिया से दूरी रखी। आज जब उनमे से एक को राष्ट्रीय पुरुस्कार से नवाजा जा चुका है और अब वापस नही लिया जायेगा-यह सुनिश्चित जानकर मैने अपने अनुभव लिखने का बीडा उठाया ताकि कोई नौसीखीया इस तरह के व्याख्यानो को सुनकर या पुस्तको को पढकर यह जोखिम न उठाये। (क्रमश:)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

अन्ध-विश्वास के साथ मेरी जंग : कुछ अनुभव

-पंकज अवधिया

अपने अभियानो मे सबसे अधिक आकर्षण हरेली अमावस्या की रात होने वाले अभियान का होता है जब एक काफिले के रुप हम लोग उन स्थानो का भ्रमण करते है जहाँ इस विशेष रात को आम लोग जाने से डरते है। भ्रमण का मुख्य उद्देश्य यह जताना होता है कि बुरी आत्मा जैसी कोई चीज नही होती। छत्तीसगढ मे यह मान्यता है कि इस

रात टोनही अपनी साधना के लिये बाहर निकलती है। इसलिये रात को आम लोग घरो के अन्दर ही रहते है। टोनही का अर्थ सामान्य शब्दो मे ऐसी महिला से है जो जादू-टोना करती है। आपने छत्तीसगढ मे टोनही प्रताडना के मामले सुने और पढे होंगे। प्रतिवर्ष बहुत से ऐसे मामले प्रकाश मे आते है जिनमे किसी महिला को टोनही का नाम देकर उसे प्रताडित किया जाता है। प्रताडना की पराकाष्ठा यहाँ तक होती है कि महिलाओ को निर्वस्त्र तक कर दिया जाता है और फिर गाँव मे घुमाया जाता है। आजादी के इतने साल बाद भी यह सब जारी है। दूरस्थ अंचलो मे ही नही बल्कि आधुनिक महानगरो के आस-पास भी। आम तौर पर इस मान्यता की गहरी जडे है समाज मे और यही कारण है कि इसके विरुद्ध संघर्ष उतना अधिक रंग नही ला पाता। मोटे तौर पर दो तरह की विचारधारा के लोग है। एक तो वे जो इस मान्यता पर विश्वास करते है और लगातार इस पर बाते कर नयी पीढी को इसके खतरे से आगाह करते है। दूसरी ओर पढा-लिखा वर्ग है जो इसे अन्ध-विश्वास मानता है और टोनही के नाम पर नारी प्रताडना के विरुद्ध है। दोनो ही तरह के लोगो के अपने-अपने तर्क है और दोनो ही अपने तर्को पर अडे है।

अपने अभियानो के दौरान हम सीधे ही आम लोगो से कहते है कि यह प्रताडना अब बन्द होनी चाहिये। लम्बे व्याख्यान देते है और अपनी आरामदायक गाडियो मे बैठकर शहर आ जाते है। फिर अखबारो मे इसे छपवा देते है। कही टोनही प्रकरण हुआ तो हमारे संस्था प्रमुख अपने नाम से इसकी आलोचना प्रकाशित करवा कर अपने कर्तव्यो की इतिश्री मान लेते है। बहुत बार हम लोग प्रभावित महिला से मिलने गये है। हमने उनसे बात की है और उन्हे ढाढस बन्धाया है। अपने रिकार्ड के लिये उनके साथ तस्वीरे उतारी है। उन्हे पुलिस तक पहुँचाया है और पुलिस से भारतीय कानून क हवाला देकर मदद की गुहार की है पर इन सब से प्रभावित महिला को बहुत कम राहत मिलती है। हम तो वापस चले आते है और पुलिस अपने काम मे लग जाती है। प्रभावितो को लौटकर उन्ही लोगो के बीच जाना होता है जिन्होने उन्हे प्रताडित किया है। वे लोग भले ही पुलिस के डर से फिर वैसा कुकर्म न करे पर तानो के माध्यम से एक जीवित महिला की जिन्दगी नरक बना देते है। महिला का परिवार जिल्लत भरी जिन्दगी जीता है। अक्सर उनके बच्चो से भेदभाव किया जाता है। स्कूल मे अलग से बिठाया जाता है। एक बार टोनही का लेबल लगने से पीढीयो तक इस अभिशाप से मुक्त होना सम्भव नही हो पाता है। इस तरह की सामाजिक समस्याए पत्रकारो और शोधकर्ताओ के लिये रोचक विषय होती है। यही कारण है कि छत्तीसगढ मे इस पर ढेरो फिल्मे बनी, लेख लिखे गये और यहाँ तक कि एक विदेशी महिला ने इस पर शोध ग्रंथ भी तैयार कर लिया। टोनही प्रताडना के नाम पर

कितने ही संगठनो को ग्रांट मिल गया और कितनो ने ही राष्ट्रीय पुरुस्कार प्राप्त कर लिया है पर आज भी समस्या जस की तस है। छत्तीसगढ सरकार ने इस पर विशेष अधिनियम बना दिया और लागू भे करवा दिया पर आज भी स्थानीय अखबारो मे इस रुप मे नारी प्रताडना के मामले आये दिन प्रकाश मे आते है। ऐसे मे व्याख्यान के नाम पर जागरुकता फैलाने वालो मे खुद को पाकर मै दुखी हो जाता हूँ।

इसमे दो राय नही कि जागरुकता फैलाने की जरुरत है पर जैसा कि मैने पहले लिखा कि यह आसान काम नही है। सबसे जरुरी यह है कि कार्यकर्ता गाँवो मे जाये और वहाँ रहकर प्रभावित महिलाओ की हौसला आफजायी करे। यह भी एक सशक्त कदम हो सकता है गाँवो मे सतायी गयी महिलाए अपना एक संगठन बनाये और फिर स्वावलम्बी होकर अन्ध-विश्वास मे जकडे समाज के मुँह पर तमाचा मारकर उन्हे जगाये। वे गाँव न छोडे बल्कि वही रहकर अपने संगठन के बल पर दूसरी महिलाओ को प्रताडित होने से बचाये। प्रभावित महिलाओ को एक मंच पर लाने और उन्हे संगठित कर उनके मन से डर हटाने के एक भी उपाय अभी तक नही किये गये है। टोनही प्रताडना के दसो मामलो मे मै सम्बन्धित संस्था के साथ गाँवो मे गया। खानापूर्ति की और वापस आ गया। अब सालो बाद फिर उस गाँव से गुजरना होता है तो प्रभावितो को उसी हाल मे देखकर कोफ्त होती है।

संस्था के कई सदस्यो ने नेताओ से मिलकर शहरो मे कुछ प्रभावित महिलाओ को घर दिलवा दिया और वाह-वाही लूटने का प्रयास किया पर मुझे लगता है कि प्रभावितो को उनके गाँव मे ही मदद कर संगठन के माध्यम से मजबूत बनाने की जरुरत है। शहरो तक उनके बारे मे बाते पहुँचने मे समय ही कितना लगता है। फिर एकाएक नयी परिस्थितियो मे अपने आप को पाकर वे असहज महसूस करती है। मददकर्ताओ के लिये भी मामला पुराना हो जाता है और वे नये मामले की ओर रुख कर लेते है।

जागरुकता अभियानो के दौरान आम लोगो को समझाने के दो रास्ते है। या तो अपने आप को विज्ञान का महारथी बताकर बिना तर्क-वितर्क के इस मान्यता को गलत ठहरा दिया जाये या फिर आम लोगो से इसके विषय मे विस्तार से जाना जाये और फिर परत दर परत समस्या को सुलझाया जाये। मै दूसरे रास्ते पर ज्यादा यकीन करता हूँ। इससे मुझे बहुत मदद भी मिली। मै टोनही नामक पात्र को अच्छे से जान पाया। यह पात्र आम लोगो के मन-मष्तिष्क मे गहरे बसा हुआ है। जितने मुँह उतनी बाते। आमतौर पर यह कहा जाता है कि हरेली की रात को आप को दूर कही आग का गोला दिखे फिर अचानक गायब हो जाये और फिर कुछ दूरी पर प्रकट हो जाये तब आप समझिये कि आपने

टोनही को देखा है। यदि यह आपके पास आ जाये तो आप इसके शरीर पर कपडे नही पायेंगे और जीभ से लाल रंग की प्रकाश उत्सर्जित करती लार को देख पायेंगे। जब यह सामने आ ही जाये तो फिर आप या तो मंत्र पढे या फिर मौत की प्रतीक्षा करे। क्योकि जो करना है उसे ही करना है। आग के गोले के रुप मे जलने को स्थानीय भाषा मे ‘टोनही बारना’ कहा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि टोनही के पास चमत्कारी शक्तियाँ होती है जिससे वह गाँवो मे बिगाड करती है और लोगो का जीना दूभर कर देती है। आमतौर पर इन्हे गाँव के बैगा ही सम्भालते है जो कि झाड-फूँक मे माहिर होते है। समस्त प्रताडना मे मुख्य विलेन की भूमिका उसी की होती है। गाँव वालो के लिये यह पूजनीय होता है क्योकि यह समस्या से बचाता है और गाँवो की रक्षा करता है। वो जो कहता है सभी उस पर आँखे बन्दकर यकीन करते है। यदि टोनही नामक पात्र की मदद के लिये कोई आगे आता है तो उसे कडा दंड मिलता है और उसे समाज से बाहर कर दिया जाता है।

कुछ वर्षो पहले रायपुर के पास एक गाँव मे हरेली के दिन हम व्याख्यान देने गये। ग्रामीणो ने बडे ध्यान से हमे सुना और माना कि टोनही नही होती है। फिर किसी ने सुझाव दिया कि गाँव के श्मशान मे जाया जाये। रात के बारह बज रहे थे। हल्की बारीश हो रही थी। हम एक कतार मे श्मशान तक पहुँचे। काफी संख्या मे युवा ग्रामीण भी साथ थे। आमतौर पर इन युवाओ से ही उम्मीद की जाती है कि वे जन-जागरण की अलख जगायेंगे। श्मशान से वापस लौटते हुये हमे एक सूखा हुआ डूमर का पेड मिला। मैने साथ चल रहे युवा से पूछा कि क्या बात है इस पेड को क्या बीमारी लग गयी? उसने कुछ नही कहा फिर बहुत पूछने पर कोने मे ले जाकर कहा कि इसे टोनही का तीर (बाण) लग गया है। हमारी सारी मेहनत धरी की धरी रह गयी। सब गुड-गोबर हो गया। जागरुकता अभियान का नतीजा सिफर लगने लगा। डूमर जैसी बहुत सी वनस्पतिया टोनही नामक पात्र की पसन्दीदा मानी जाती है। लोग डूमर के फलो को तो चाँव से खाते है और इससे औषधियाँ भी बनाते है पर पेड को सन्देह भरी नजरो से भी देखते है।

राज्य मे तो हमारे अभियानो को ज्यादातर लोग जानते है। कुछ समय पूर्व सफेद मूसली खरीदने एक किसान के साथ मै जलगाँव जा रहा था। किसान ने अपने एक प्रोफेसर मित्र को भी साथ रख लिया था। हम लोग टाटा इंडिका मे थे। अभी कुछ दूर ही चले थे कि टोनही नामक पात्र पर चर्चा शुरु हो गयी। बडे ही तीखे स्वर मे प्रोफेसर महोदय ने मुझे कोसा कि क्या आप राज्य की परम्पराओ और विश्वासो के खिलाफ काम करते है? वे कहने लगे कि उन्होने टोनही को देखा है। अपनी पूरी शक्ति मे। फिर घंटो तक इससे जुडी

बाते बताते रहे। मुझे तब तक ऐसा लगता था कि यह पात्र केवल गाँवो तक है पर अब स्पष्ट हुआ कि पढे-लिखे समझे जाने वाले आधुनिक समाज मे भी इसकी जडे है।

इसी तरह एक वयोवृद्ध किसान जिनके जीवन का लम्बा समय अमेरिका मे बीता था, ने मुझे बताया कि किसी महिला ने उन्हे खटिया से न उतरने की सलाह दी और फिर टोनही नामक पात्र का रुप धर के दिखाया। वे घंटो तक मुझे विश्वास मे लेने का असफल प्रयास करते रहे।

मैने अभियानो के दौरान जितनी भी प्रभावित महिलाओ से मुलाकात की सभी को साधारण महिला पाया। इतना तो मै पूरे विश्वास से कह सकता हूँ कि उनमे यदि कोई चमत्कारिक शक्ति होती तो वे सबसे पहले उन लोगो को दंड देती जिन्होने सरे राह उन्हे अपमानित किया। जिस महिला पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसने गाँव का बुरा कर दिया, भला वो कैसे इतनी असहाय हो सकती है? प्रताडना की सभी हदो को पार कर लोग आखिर कैसा सुख पाते है यह तो वे ही जाने पर कभी-कभी मुझे लगता है कि काश इन सतायी महिलाओ के पास इतनी ताकत होती कि वे इन लोगो से अपने दम पर निपट सकती।

अन्धेरे से मेरा पुराना वास्ता रहा है। रात मे कीडो की तलाश मे मैने कई राते घने जंगलो मे बितायी है। ऐसे घने जंगल जिनकी कल्पना से ही सिहरन होने लगती है। फसलो पर जंगली सुअरो का आक्रमण कैसे होता है? यह जानने के लिये भी खेतो मे रात गुजारी है। नियमगिरि मे हाथियो की प्रतीक्षा मे भी राते आँखो मे काटी है। पिछले एक दशक से भी अधिक समय से हरेली के दिन हर उस जगह पर गया जहाँ टोनही नामक पात्र के होने की सूचना मिली पर आज तक कभी आग के गोले को या ऐसे किसी पात्र को नही देखा। नयी पीढी के लोगो ने भी नही देखा पर फिर भी सुनी-सुनायी बातो पर यकीन कर इस विश्वास को अपने अंन्दर पसरने देते है।

टोनही नामक पात्र की चमकीली लार का राज जानने मैने बैगाओ से मुलाकात की, उनके कडे नियमो का पालन किया, जो कहा वो किया पर कभी इसे देखने का मौका नही मिला। मैदानी भाग के एक बैगा ने कहा कि यह पात्र अंडी की जड को चबाता है जिससे उसकी लार चमकीली होती है। अंडी या कैस्टर तो बडा ही जाना पहचाना पौधा है। तिलहन की फसल के रुप मे बडे पैमाने पर इसकी खेती होती है। इसकी जडो पर दुनिया भर मे शोध हो रहे है। मैने सन्दर्भ ग्रंथो को खंगाला पर जड के प्रयोग से चमकीली लार बनने की जानकारी कही नही मिली। मैने उस बैगा से कहा कि मै इस जड को चबाऊँगा,

जिस भी रुप मे कहोगे उस रुप मे। पहले उसने मना किया और चेताया कि ऐसा करने से मानसिक संतुलन बिगड सकता है पर डटे रहने पर उसने अपने सामने विधि-विधान से यह करवाया पर नतीजा सिफर ही रहा। इतना सब करने से एक लाभ यह हुआ कि अब इसका प्रदर्शन कर हम उन लोगो की बोलती उसी समय बन्द कर देते है जो चमकीली लार का दावा करते है।

इस पात्र को देखने का दावा करने वाले प्रोफेसर साहब से मैने कहा कि मै जिन्दगी भर आपकी गुलामी करुंगा यदि आप मुझे भी इसके दर्शन करवा दे। वे इस बात को टाल गये। आप ही बताइये जब यह मान्यता है कि विशेष रात को विशेष पेड के नीचे जाने से या विशेष स्थान पर जाने से इस पात्र से नही बचा जा सकता तब फिर क्यो हम लोगो पर इसका असर क्यो नही होता? कही यह कपोल-कल्पित बाते तो नही है?

डूमर के जिस पेड को टोनही नामक पात्र के तीर से मरने का भ्रम युवाओ ने पाल रखा था, उसे दूसरे ही दिन कृषि विशेषज्ञो को दिखाया गया। उन्होने जडो से एक कवक का पता लगाया जिसके प्रकोप से सडन हुयी और यह पेड मर गया। उन युवाओ ने पूरी प्रक्रिया देखी। माइक्रोस्कोप मे कवक को भी देखा। वे सहमत लगे पर मैने उनकी आँखो मे अन्दर तक देखा तो मुझे लगने लगा कि सिर्फ इतने से इनका विश्वास नही मिटने वाला। आँखो के ढेरो प्रश्न थे पर संकोचवश कह नही पा रहे थे।

हमारे सदस्यो मे कुछ विशेष सदस्य है। एक का नाम है श्री राजेन्द्र सोनी। वे जब भूत आने का अभिनय करते है तो बडे-बडे बैगाओ के होश फाख्ता हो जाते है। दूसरे सदस्य है डाँ.अशोक सोनी। उनके सामने बडे-बडे भूत को वश मे करने का अभिनय करते बैग़ा पानी माँगते दिखते है। बैगाओ का सारा अभिनय धरा का धरा रह जाता है। अभियानो मे ये हमारे लिये तुरुप के पत्ते होते है। इन दोनो ही के कारण ज्यादातर अभियानो मे हमने आम लोगो का विश्वास जीता है। जब भूत का अभिनय कर रहे लोगो के पाँव उखडते है तो आम लोगो का हमारी बातो पर विश्वास बढता जाता है। मैने उस वयोवृद्ध किसान से इन सदस्यो को मिलवा दिया। वे चेत गये और मान गये कि उस महिला ने मात्र अभिनय किया था।

टोनही नामक पात्र की चर्चा करते समय अक्सर ग्रामीण कहते है आप पगडंडी मे चले। यदि थोडा भी बाहर हुये तो यह पात्र आपको पकड लेगा। इस सलाह का वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर हम पाते है कि पगडन्डी पर चलने की सलाह ठीक ही है। आये-बाये होने पर विषैले जीवो विशेषकर साँप-बिच्छुओ का डर रहता है। तो क्या आम लोग राह

पर चले इसलिये इससे इस पात्र के डर को जोडा गया है? यदि इसका उत्तर सकारात्मक भी है तो भी यह सही नही कहा जा सकता क्योकि यह किसी न किसी तरह से इस पात्र के अस्तित्व को सही ठहराता है और अंत मे आम महिलाए ही इसका शिकार होती है।

एक ज्वलन्त प्रश्न यह भी है कि टोनही प्रताडना के सभी मामलो मे जुल्म उन महिलाओ पर होता है जो अकेली होती है। बहुत से मामलो मे पति और घर के दूसरे सदस्य काम के लिये दूर शहरो मे गये होते है। उसकी रक्षा करने वाला कोई नही होता। इन मामलो की विवेचना से पता चलता है कि बहुत से मामलो मे इन अलग-थलग पडी महिलाओ पर गाँव के प्रभावी लोगो की नजर होती है। मामला बनता न देखकर इस तरह से आरोप जड दिये जाते है और इंकार की सजा उन्हे सहनी पडती है।

हमारी बहुत-सी सभाओ मे बैगानुमा लोग पहुँच जाते है और दावा करने लगते है कि उन्हे अच्छे-बुरे लोगो को देखकर पहचानने की दैवीय शक्ति है। उनसे उलझे बिना ही हमारे सदस्य उनसे देश सेवा की गुजारिश करते है। हमारा इंटीलिजेंस तो आस्तीन के साँपो को पहचान नही पा रहा है। चलिये अब ये बैगानुमा लोग ही यह कसर पूरी कर दे। अहमदाबाद और बंगलुरु के विस्फोटो के बाद तो उनकी जरुरत और बढ सकती है, बशर्ते उनके सही मे ऐसी कोई शक्ति हो। क्यो वे अकेली महिला पर इस शक्ति का प्रयोग करते है? हमारे इस तर्क से ही वे शक्तिहीन हो जाते है। (क्रमशः)

(लेखक कृषि वैज्ञानिक है और वनौषधीयो से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण मे जुटे हुये है।)

© सर्वाधिकार सुरक्षित